स्व० सरदारनी चन्द कौर को

—डा० लाभ सिंह

पुण्य स्मृति में

●

स्वर्गीय हीरा तिवारी को

जिनकी स्मृतियाँ ही शेष रहीं

—डा० गोविन्द तिवारी

चतुर्थ संस्करण के सन्दर्भ में

वैज्ञानिक उपलब्धियो से नि.सन्देह ससार के समस्त लोगो को लाभ पहुँचा है। परन्तु इन उपलब्धियो से अनेक समस्याओं का भी जन्म हुआ है। मानव जाति वौद्धिक विशेषताओ से सम्बन्धित है जिसके कारण मानव इन समस्याओ मे उलझा हुआ है। यही उलझन उसे मानसिक अशान्ति की दुनियाँ मे ले जाती है। जिन्दगी आज के युग मे संघर्षपूर्ण दिखाई पडती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि समाज के प्रत्येक वर्ग मे अशान्ति एवं असन्तोप का वातावरण बना हुआ है। अगर इस युग मे मानव असामान्य मनोविज्ञान की व्यावहारिकता को नजरन्दाज न करे तो उसकी अनेक समस्याओ मे सामजस्य स्वत ही स्थापित हो सकता है। इसी आधारभूत उद्देश्य को सामने रखकर इस पुस्तक का सशोधन किया गया है। अल्प समय मे पुस्तक का चतुर्थ सस्करण आना इस बात का परिचायक है कि पुस्तक विद्यार्थी के लिये उपयोगी है परन्तु फिर भी इस क्षेत्र मे हुए अनुसंधान-परिणामो को यथास्थान संलग्न किया गया है जिससे कि विद्यार्थियो को आंग्ल भाषा की विभिन्न पुस्तको से विपय-सामग्री एकत्रित करने मे परेशान न होना पड़े।

चतुर्थ सस्करण को अधिक उपयोगी एवं व्यावहारिक बनाने मे मुख्य रूप से कु० रोमा पाल का योगदान मिला है जिन्होंने अपने अथक प्रयत्नों एव दूरदर्शी दृष्टिकोणो के माध्यम से वहुमूल्य सुझाव दिये है जिसके लिये हम उनके कृतज्ञ है।

इस नवीन सस्करण मे एक अध्याय "भारतीय मनश्चिकित्सा" जोड़ा गया है जिसे पढकर आसानी से यह निष्कर्प निकाला जा सकता है कि पाश्चात्य मनोचिकित्सा पद्धतियाँ भारतीय ग्रन्थो मे वर्णित मनोचिकित्साओ के अनुरूप है।

इस सस्करण की पाण्डुलिपि तैयार करने व प्रूफ पढ़ने के लिये विशेप रूप मे डा० मनोरमा तिवारी, कु० शशि गिलानी व कु० मजू अग्रवाल ने विशेप योगदान दिया है। हम इनके आभारी हैं।

अनेक सावधानियाँ रखने के बाद भी सम्भव है कि कुछ त्रुटियाँ पुस्तक मे रह गई हो। अत विद्यार्थीगण एवं शिक्षक समुदाय हमे सूचित करने का कष्ट करें जिससे कि आगामी सस्करण मे सशोधन किया जा सके।

1 मई, 1982

—डा० गोविन्द तिवारी

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक 'असामान्य मनोविज्ञान के मूल आधार' विद्यार्थियो एव शिक्षको के सम्मुख प्रस्तुत करते समय हमे हर्ष हो रहा है, क्योकि इस विषय पर हिन्दी मे अच्छी पुस्तको का नितान्त अभाव रहा है। कोई भी पुस्तक ऐसी दिखाई नही पड़ी जो विभिन्न विश्वविद्यालयो के निर्धारित पाठ्यक्रम की पूर्ति करती हो। प्रस्तुत पुस्तक इस अभाव की पूर्ति करने मे सक्षम है क्योकि असामान्य मनोविज्ञान की सम्पूर्ण विषय-सामग्री का 33 अध्यायो मे विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। किसी एक असामान्य मनोविज्ञान की पुस्तक को इसका आधार नही बनाया गया। कुछ नवीन अध्यायो को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जोडा गया है कि विद्यार्थियो व शिक्षको को असामान्य मनोविज्ञान के सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सके। 'मनश्चिकित्सा' (Psychotherapy) अध्याय मे नवीन चिकित्सा प्रविधियो का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस बात का पूर्ण ध्यान रखा गया है कि हिन्दी इतनी अधिक कठिन न हो जावे कि विद्यार्थियो को समझने मे कठिनाई का अनुभव हो। शब्द-चयन मे भारत सरकार के तकनीकी शब्द-कोष को आधार बनाया गया है परन्तु तकनीकी शब्दो एव विभिन्न विद्वानो के विचारो को पूर्ण रूप से स्पष्ट करने हेतु स्थान-स्थान पर अग्रेजी भाषा का भी प्रयोग किया गया है।

पुस्तक-प्रणयन की दिशा मे अनेक भारतीय मनोवैज्ञानिको ने प्रेरणा दी है परन्तु इस दिशा मे डा० मोहन चन्द्र जोशी (रायपुर), प्रो० दुर्गानन्द सिन्हा (इलाहाबाद), डा० भीखनलाल अत्रेय (वाराणसी), डा० वी० के० मित्तल (मेरठ), डा० नरेन्द्रसिंह चौहान (मेरठ), डा० हस कुमार कपिल (आगरा), डा० जे० डी० शर्मा (अलीगढ), श्रीमती प्रकाश अत्रेय (मुरादाबाद), डा० एन० के० सक्सेना (कानपुर) आदि विशेष प्रेरणा पात्र रहे है। भाषा एव अन्य सहयोग के लिए डा० रामकृष्ण टण्डन, डा० जगत प्रसाद अत्रेय (मुरादाबाद), डा० हरिगोपाल सिंह (हरिद्वार), डा० रघुनन्दन प्रसाद गुप्ता (आगरा), डा० सी० एन० राजपूत (आगरा), प्रो० गोपालकृष्ण माखीजा (आगरा), डा० कमल द्विवेदी (कानपुर) के हम विशेष आभारी है।

विषय-सूची

पृष्ठ

Aggressive), प्रमुखत· अपर्याप्त या निष्क्रिय (Predominently Inadequate or Passive), प्रमुखत रचनात्मक (Predominantly Creative), मनोविकृत व्यक्तित्व के कारण, मनोविकृत व्यक्तित्व का उपचार, चरित्रविकृतियाँ (Character Disorders), चरित्र विकृति का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Psychoanalytic Theory of Character Disorder) ।

1

मनोविज्ञान एवं असामान्य मनोविज्ञान
(PSYCHOLOGY AND ABNORMAL PSYCHOLOGY)

मानव व्यवहार का अध्ययन करना अपने आप मे ही एक समस्या है क्योकि मानव व्यवहार इतना जटिल है कि उसे समझने हेतु अनेक साधनो व विधियो का सहारा लेना पडता है। 'सामान्य' व 'असामान्य' व्यवहार दोनो का ही अध्ययन मनोविज्ञान करता है। एक ही व्यक्ति में 'सामान्य' व 'असामान्य' व्यवहारो के लक्षण विद्यमान होते है अत दोनो मे अन्तर ज्ञात करने के लिए यह आवश्यक है कि हम बडी सावधानी के साथ उनके लक्षणों के अन्तर [जिनमे प्रकार (Kind) का अन्तर नही होता बल्कि तीव्रता (Intensity) का अन्तर होता है] को समझें। इसी उद्देश्य के लिए हम इस अध्याय मे मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओ पर प्रकाश डालते हुए मनोविज्ञान व असामान्य मनोविज्ञान के सम्बन्धो व विषयवस्तु के अन्तरो पर प्रकाश डालेंगे।

मनोविज्ञान एक विज्ञान के रूप में
(Psychology as a form of Science)

मनोविज्ञान का आधुनिक स्वरूप एक विज्ञान के समान है। वैसे पहले मनोविज्ञान को मन या आत्मा का शास्त्र कहा जाता था परन्तु आधुनिक मनोविज्ञान इस पूर्व विचार को यह कहकर अस्वीकार कर देते हैं कि मन का वैज्ञानिक अध्ययन करना सम्भव ही नही है। एक सीमा तक उनका यह कहना ठीक भी है क्योकि मन का सम्बन्ध ज्ञान का आधार विषयगत या व्यक्तिगत मनन, चिन्तन या अन्त दर्शन पर आधारित है। विज्ञान के लिए विषयगत विधियो की आवश्यकता नही होती बल्कि वस्तुगत विधियो की आवश्यकता होती है। क्योकि मन का अध्ययन वस्तुगत विधियो से सम्भव नही है अत. मनोवैज्ञानिको ने विज्ञान की प्रगति के साथ ही साथ मनोविज्ञान के स्वरूप आदि मे भी परिवर्तन किया जिसके फलस्वरूप मनोविज्ञान मन से सम्बन्धित न होकर व्यवहार से सम्बन्धित हो गया। दूसरे शब्दो मे, प्रमुख रूप से मनोविज्ञान मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है। अब मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य

मन को समझना नही रह गया वल्कि सम्पूर्ण मानव-व्यवहार को समझना तथा उसका वैज्ञानिक अध्ययन करना हो गया है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मनोविज्ञान केवल मानव-व्यवहार के शारीरिक पक्ष का ही अध्ययन नही करता वल्कि मानसिक पक्ष का भी अध्ययन करता है। मानव-व्यवहार मे उसके मनोभावो, इच्छाओ, अनुभवो, विचारो आदि का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अत मानव-व्यवहार को समझने के लिए यह आवश्यक है कि मनोविज्ञान मानव-व्यवहार के दोनो पक्षो—मानसिक व शारीरिक, का अध्ययन करे।

मनोविज्ञान का यह रूप उन्नीसवी शताब्दी तक नही था। वैसे इसी काल मे प्रसिद्ध दार्शनिक अफलातून (Plato) व अरस्तू (Aristotle) ने मानव-स्वभाव के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय विचार प्रकट किए थे जिन्हे आज भी हम, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे, स्वीकार करते है, परन्तु इनके विचारो मे वैज्ञानिकता का अभाव था। प्रमुख शरीरवेत्ता वेबर (Weber), फेकनर (Fechner), हेल्महोल्ट्ज (Helmholtz), हेरिंग (Herring) आदि ने अपने शोध-परिणामो के आधार पर यह सिद्ध किया कि मानव-व्यवहार व शारीरिक क्रियाओ मे एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार मानव-शास्त्र व शरीर-विज्ञान—दोनो मे एक निकट सम्बन्ध स्थापित हुआ।

मानव-व्यवहार के विकास मे समाज का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। दूसरे शब्दो मे, मानव-व्यवहार मुख्यत सामाजिक होता है। यहाँ यह बताना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि मनोविज्ञान के विकास पर समाजशास्त्र व राजनीतिशास्त्र का भी प्रभाव पडा तथा मनोविज्ञान ने भी अपना प्रभाव इन शास्त्रो पर डाला। मानव-व्यवहार का क्षेत्र काफी विस्तृत है। अत मनोविज्ञान की अनेक शाखाएँ होना स्वाभाविक है। नीचे हम सक्षेप मे इन शाखाओ का वर्णन करेंगे।

मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाएँ
(Various Branches of Psychology)

जव सर्वसाधारण लोगो के व्यवहार का अध्ययन किया जाय, अर्थात् निरीक्षण व परीक्षण के माध्यम से सामान्य या साधारण व्यक्तियो के व्यवहार के सम्बन्ध मे तथ्य एकत्रित किये जायें तथा उन्हे वैज्ञानिक ढग से वर्गीकरण करके सामान्य नियमो की स्थापना की जाय तो उसे सामान्य मनोविज्ञान की सज्ञा दी जाती है। सामान्य मनोविज्ञान, दूसरे शब्दो मे, शुद्ध व सैद्धान्तिक मनोविज्ञान है। व्यवहार एक सरल प्रत्यय नही है वल्कि एक जटिल प्रत्यय है। अत आवश्यकता यह है कि इससे सम्बन्धित समस्याओ व विविध प्रश्नो का उचित सुलझाव किया जाय। इस आवश्यकता की पूर्ति प्रयोगात्मक मनोविज्ञान करता है। केवल व्यवहार के सैद्धान्तिक पक्षो का ही मनोविज्ञान अध्ययन नहीं करता वल्कि सैद्धान्तिक गवेषणाओ की भावी उपयोगिता के सम्बन्ध मे भी अध्ययन करता है। इस प्रकार का अध्ययन मनोविज्ञान की शाखा—व्यवहारात्मक मनोविज्ञान मे होता है। सक्षेप मे, मनोविज्ञान की मुख्य शाखाएँ अग्रांकित हैं—

(1) **शारीरिक मनोविज्ञान** (Physiological Psychology)—मनोविज्ञान की इस शाखा मे व्यवहार के शारीरिक आधार का अध्ययन होता है। जैसाकि हम पहले वर्णन कर चुके है कि व्यवहार को प्रकट करने, निर्माण या विकास मे शारीरिक व मानसिक दोनो पहलुओ का योगदान होता है। यही कारण है कि मनोविज्ञान व्यवहार का विस्तृत एव पूर्ण रूप से अध्ययन करने के लिए इस शाखा मे मुख्य रूप से यह अध्ययन करता है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की ज्ञानेन्द्रियाँ, मासपेशियाँ, ग्रन्थियाँ, स्नायु-तन्त्र आदि कैसे कार्य करते है, उनकी रचना व विकास कैसे होता है, कौन-कौन-से तत्त्व इन पर प्रभाव डालते है। उनके दोषो, दुर्बलताओ व विकारो का व्यवहार पर क्या प्रभाव पडता है ? ध्यान रहे कि इन आन्तरिक व वाह्य अगो के सचालन से अनेक प्रकार की क्रियाएँ व परिवर्तन (आन्तरिक एव वाह्य) आते हैं, जिनका प्रभाव मानव के व्यवहार, जीवन व मानसिक क्रियाओ, भावो आदि पर पड़ता है तथा इनकी जानकारी मनोवैज्ञानिक के लिए आवश्यक है। अत यह पूर्णत स्पष्ट है कि शारीरिक मनोविज्ञान से मनोवैज्ञानिक शोध-परम्परा पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा है।

(2) **तुलनात्मक मनोविज्ञान** (Comparative Psychology)—तुलनात्मक मनोविज्ञान मे अन्य प्राणियो के व्यवहार की मानव-व्यवहार से तुलना की जाती है। जैसाकि हम पहले वता चुके है कि मानव-व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक उच्च, विकसित व जटिल है। उसका नाडीतत्र विषम है, उसमे बुद्धि का स्तर अपेक्षाकृत अन्य प्राणियो से अधिक है। परन्तु इतना होते हुए भी उसके व्यवहार का सरलतम रूप अन्य जीवो व पशुओ मे देखा जा सकता है। पशु एक नवीन क्रिया को कैसे सीखता है, उसकी मूल-प्रवृत्तियाँ कौन-कौन-सी होती हैं, उनकी सहज-क्रियाएँ (reflex action) क्या है, उनमे विभिन्न सवेगो की अभिव्यक्ति किस रूप मे होती है, आदि ऐसे मौलिक प्रश्न है जिनका समुचित अध्ययन तुलनात्मक मनोविज्ञान करता है। इस प्रकार के अध्ययन-परिणामो मे मानव-व्यवहार का सरल व मौलिक रूप दिखाई पडता है तथा इस प्रकार के अध्ययनो से मनोविज्ञान के विकास को वहुत अधिक सहायता प्राप्त हुई।

(3) **विकासात्मक मनोविज्ञान** (Developmental or Genetic Psychology)—मानव-व्यवहार के सम्वन्ध मे एक मौलिक प्रश्न यह उठता है कि क्या व्यवहार अचानक वन जाता है ? वास्तव मे इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही है, क्योकि व्यवहार का विकास अवस्थानुसार होता है। विकास की विभिन्न अवस्थाओ; यथा—वाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढावस्था आदि मे पाये जाने वाले व्यवहार, रुचि, अभिवृत्ति, विचार, क्रियाओ आदि मे एक स्पष्ट अन्तर होता है। कुछ मौलिक मानसिक शक्तियो को मानव जन्म से अपनी वश-परम्परा के माध्यम से प्राप्त करता है परन्तु कुछ मानसिक तत्त्वो को वह समाज, परिवार या पर्यावरण के सम्पर्क से प्राप्त

करता है या जन्मजात मानसिक तत्वो का विकास करता है। इन सभी बातो का अध्ययन मनोविज्ञान की इस शाखा मे होता है।

(4) **बाल-मनोविज्ञान** (Child Psychology)—आधुनिक युग मे बाल-मनोविज्ञान एक स्वतन्त्र मनोविज्ञान की शाखा के रूप मे विकसित हो रहा है, यद्यपि इसके बहुत-से विषयो का सम्बन्ध विकासात्मक मनोविज्ञान से है। बाल-मनोविज्ञान मे नवजात शिशु से लेकर किशोरावस्था तक के विभिन्न शारीरिक एव मानसिक विकास का अध्ययन इस मनोविज्ञान की शाखा मे किया जाता है। बालको की स्वय की समस्याएँ होती हैं जिनमे प्रौढो की अपेक्षा मात्रात्मक नही वल्कि गुणात्मक अन्तर होता है। बाल-व्यवहार व समस्याओ के अध्ययन के लिए एक विशेष दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है क्योकि दिन-प्रतिदिन उसमे भिन्न-भिन्न प्रकार का शारीरिक व मानसिक विकास होता रहता है जिसके फलस्वरूप उसके व्यवहार के विभिन्न रूप होते हैं। बालमनोविज्ञान के अध्ययन से ही यह स्पष्ट हुआ है कि माता-पिता या सरक्षक, अध्यापक, डाक्टर आदि इसके ज्ञान से भिन्न-भिन्न तथा एक उचित स्वस्थ दृष्टिकोण के माध्यम मे बाल-समस्याओ का निराकरण करें। यही बाल-मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य है।

(5) **वैयक्तिक मनोविज्ञान** (Individual Psychology)—मनोविज्ञान की इस शाखा मे व्यक्ति के व्यवहार, उसकी विशेषताएँ, गुण, विकास आदि का अध्ययन होता है। वैयक्तिक मनोविज्ञान मे व्यक्तित्व तथा इस पर पडने वाले प्रभावो, निर्माण व सगठन, दोष व विकार आदि का भी अध्ययन किया जाता है।

(6) **भेदक मनोविज्ञान** (Differential Psychology)—इस शाखा मे मुख्य रूप से व्यक्तिगत भेदो का अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियो से शारीरिक व मानसिक रूप मे भिन्न होता है। ध्यान रहे, इस भिन्नता का प्रभाव उसके व्यवहार पर भी पडता है। भेदक मनोविज्ञान मे बुद्धि, योग्यता, प्रेरणाओ आदि के मापन के लिए परीक्षण, रचना तथा उनका वर्णन भी होता है।

(7) **समाज-मनोविज्ञान** (Social Psychology)—समाज मानव-व्यवहार के निर्माण मे एक प्रभावशाली भूमिका निभाता है। मनोविज्ञान की इस शाखा मे मानव-व्यवहार के सामाजिक पक्ष का अध्ययन होता है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार पर दूसरे व्यक्तियो के व्यवहार का भी प्रभाव पडता है। सामूहिक जीवन मे अनुकरण, निर्देश, सहानुभूति, प्रचार, सकेत, प्रतिस्पर्द्धा आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इन सभी बातो का विस्तृत रूप से अध्ययन समाज-मनोविज्ञान मे होता है।

(8) **प्रयोगात्मक व व्यावहारिक मनोविज्ञान** (Experimental and Applied Psychology)—प्रयोग से किसी विज्ञान की विषय-सामग्री की वृद्धि तो होती है परन्तु साथ ही साथ उस विज्ञान को निश्चित स्वरूप भी प्राप्त होता है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान मे मनोवैज्ञानिक तथ्यो, नियमो, सिद्धान्तो, प्रत्ययो आदि के निश्चित स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। यहाँ एक प्रश्न उठना आवश्यक है कि मनो-

विज्ञान का हम क्यो अध्ययन करें, क्या जीवन मे भी इनका उपयोग मभव है ? इस प्रश्न का समुचित उत्तर व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक देता है। दूसरे शब्दो मे, व्यावहारिक मनोविज्ञान मनोवैज्ञानिक तथ्यो, नियमो व सिद्धान्तो के माध्यम से जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे आने वाली समस्याओ के समाधान का प्रयास करता है। वह यह सीखता है कि दूसरो के प्रति किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए तथा जीवन की विभिन्न समस्याओ या उलझनो का किस प्रकार समाधान करना चाहिए।

(9) **असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology)**—बीसवी शताब्दी का अपना एक विशेष स्थान है। विज्ञान की प्रगति चरम सीमा पर है। मानव अपनी जिज्ञासा की शान्ति के लिए दिन-प्रतिदिन कार्य मे सलग्न है। अनेक तकनीकी खोजे प्रकृति को ललकार रही है फिर भी आज का मानव चिन्ताओ, कुण्ठाओ एव विभिन्न प्रकार के नैराश्यो से बेचैन दिखाई पड रहा है। वैसे तो आदिकाल से मानव अनेक ऐसे व्यवहार को बडे आश्चर्य से देखता रहा है जो सामान्य व्यवहार से मेल नही खाता। ऐसे बेमेल व्यवहार के प्रमुख उदाहरण कुस्वप्न (nightmares), आक्षेपी दौरे (convulsive fits), तीव्र सवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ (acute emotional reactions) आदि हैं। इस प्रकार के बेमेल व्यवहार की व्याख्या की आवश्यकता व सामान्य मनोविज्ञान की विधियो एव व्यावहारिक विचलनो (behaviour deviations) के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने के फलस्वरूप असामान्य मनोविज्ञान का जन्म व विकास हुआ है।

आधुनिक सघर्षमय जीवन मे अनेक मानव अपने को अति सम्पन्न, तो कुछ व्यक्ति अपने को अति निकृष्ट समझते है। विश्व के सर्वाधिक सम्पन्न देश अमेरिका मे मावव अपनी चिन्ताओ, नैराश्यो व तनावो से मुक्ति, प्राप्त करने के लिए कई सौ टन मादक द्रव्यो का सेवन कर रहा है। प्रतिवर्ष लगभग 100,000,000,000 डालर मद्यपान पर खर्च कर रहा है।

मानव व्यवहार केवल सामाजिक व सामान्य ही नही होता बल्कि कभी-कभी विकृत और असाधारण भी हो जाता है। असामान्य मनोविज्ञान मुख्य रूप से यह अध्ययन करता है—मानव का व्यवहार सामान्य व्यक्तियो के व्यवहार से स्पष्टत भिन्न क्यो होता है ? दूसरे शब्दो मे, असाधारण, विकृत व रुग्ण मानसिक अवस्थाओ का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान की इस शाखा मे हम यहाँ अधिक वर्णन नही करेंगे क्योकि इस पुस्तक मे इसी विषय की विस्तृत रूप से विवेचना की जायेगी।

असामान्य मनोविज्ञान एक व्यावहारिक मनोविज्ञान के रूप मे
(Abnormal Psychology as an Applied Psychology)

असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो मुख्यत उन व्यक्तियो का अध्ययन करती है जो मानसिक रूप से विकृत या रुग्ण होते है। सरल शब्दो मे, उनके व्यवहार मे इतनी अधिक भिन्नता होती है कि उन्हे सामान्य व्यक्ति की श्रेणी मे नही रखा जा सकता है। असामान्य मनोविज्ञान के प्रमुखत. दो रूप हैं—प्रथम,

सैद्धान्तिक तथा द्वितीय, व्यावहारिक । सैद्धान्तिक रूप से यह इस बात को स्पष्ट करता है कि कौन-सी विशेषताओ के कारण अमुक व्यक्ति असामान्य है, उसे कौन-सा रोग है ? विशिष्ट मानसिक रोगो का वर्गीकरण तथा उनके लक्षणो का वर्णन करना भी इसी रूप मे आता है । असामान्य मनोविज्ञान, दूसरे शब्दो मे, असामान्य व्यवहार व व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक पक्ष का विस्तृत वर्णन करता है । परन्तु यहाँ यह भी बताना उचित होगा कि असामान्य मनोविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष व्यावहारिक भी है । अन्य शब्दो मे, वह केवल विभिन्न मानसिक व शारीरिक रोगो का वर्णन-मात्र ही नही करता बल्कि यह भी बताता है कि इनका निदान कैसे हो, कौन-कौन-सी उपचारात्मक पद्धतियो का उपयोग किया जाय तथा एक सामान्य व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य को किस प्रकार से स्वस्थ रखे । असामान्य मनोविज्ञान इस कारण और भी अधिक व्यावहारिक है, कि वह यह स्पष्ट करता है कि यह पूर्णत सम्भव है कि सामान्य व्यक्ति असामान्य हो जाय और अगर असामान्य व्यक्ति का सही उपचार किया जाय तो उसे बिल्कुल सामान्य व्यक्ति बनाया भी जा सकता है। इस प्रकार इस व्यावहारिक शाखा से सामान्य व असामान्य—दोनो प्रकार के व्यक्तियो को लाभ पहुँचता है । सामान्य व्यक्ति इसके अध्ययन से यह जान लेता है कि कौन-कौन-सी विशेषताओ, लक्षणो तथा कारणो से मानसिक गतिरोध उत्पन्न या विकसित होता है । दूसरी तरफ वह यह भी बताता है कि असामान्य व्यक्तियो या रोगियो के साथ सौतेला अनुचित व्यवहार नही करना चाहिए, बल्कि उनके साथ ऐसा वर्ताव करना चाहिए जिससे कि वे स्वस्थ हो सकें । मानसिक रोगों के निदान के लिए असामान्य मनोविज्ञान नवीन तथा वैज्ञानिक उपचारात्मक पद्धतियो की भी खोज करता है । इस प्रकार असामान्य मनोविज्ञान व्यावहारिक मनोविज्ञान की एक शाखा है ।

असामान्य मनोविज्ञान की समस्याएँ
(Problems of Abnormal Psychology)

विस्तृत रूप से असामान्य मनोविज्ञान के सम्बन्ध मे हम अगले अध्याय मे वर्णन करेंगे । यहाँ सक्षेप मे यह जानना आवश्यक है कि असामान्य मनोविज्ञान की प्रमुख समस्याएँ कौन-कौन-सी हैं ? जैसाकि हमे ज्ञात है कि असामान्य मनोविज्ञान असामान्य क्रियाओ का अध्ययन करता है । अत उसकी समस्याओ का मुख्य सम्बन्ध असामान्य व्यवहार व अनुभूति से होता है । दूसरे शब्दो मे, असामान्य मनोविज्ञान की मुख्य समस्याओ का केन्द्र व्यवहार के निम्न प्रकारो पर आधारित होता है—

(अ) वह व्यवहार जो कुसमायोजन (maladjustment) उत्पन्न करता है ।

(ब) वह व्यवहार जिसमे कुसमायोजन के लक्षण (symptoms) विद्यमान होते हैं ।

(स) वह व्यवहार जो कुसमायोजन के परिणामस्वरूप ही होते हैं ।

व्यवहार के इन प्रकारो से अग्रांकित समस्याएँ उत्पन्न होती हैं —

(अ) कौन-कौन-से व्यवहारो को इस श्रेणी मे रखा जाय जिनसे कुसमायोजन उत्पन्न होता है ?

(ब) कुसमायोजन व्यवहार के मुख्य-मुख्य लक्षण कौन-कौन-से है ?

(स) उन व्यवहार-प्रकारों का पता लगाना जो कुसमायोजन के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होते हैं ?

असामान्य मनोविज्ञान की सम्पूर्ण विषय-सामग्री इन तीनो प्रमुख समस्याओ पर केन्द्रित रहती है।

आधुनिक युग में असामान्य मनोविज्ञान का महत्त्व
(Importance of Abnormal Psychology in Modern Age)

प्रो० कोलमैन के अनुसार —"सत्रहवी शताब्दी को प्रबुद्धपूर्ण युग, अठारहवी को विवेक का युग और उन्नीसवी को प्रगति का युग तथा बीसवी को चिन्ता का युग कहा है।"[1] बीसवी शताब्दी को 'चिन्ता का युग' कहने का मुख्य कारण यह है कि शारीरिक बीमारियो के साथ ही साथ मानसिक बीमारियो मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ मानव आवश्यकताओ मे असीमित वृद्धि हुई है। मानव इस असीमित आवश्यकताओ की न तो पूर्ति कर पा रहा है और न ही उन्हे कम ही कर पा रहा है जिसके फलस्वरूप उसे अनेक असफलताओ, संघर्षों, सन्देहों आदि का सामना करना पड रहा है। उसका व्यक्तिगत जीवन एक ओर जहाँ आर्थिक, वैज्ञानिक व राजनैतिक प्रगतियो से प्रभावित हो रहा है वहाँ दूसरी ओर उसे घोर असन्तोष, असफलता व निराशा का सामना करना पड रहा है। पचास वर्षों मे विज्ञान ने इतने अधिक आविष्कार किये है कि आज मानव जीवन के समस्त
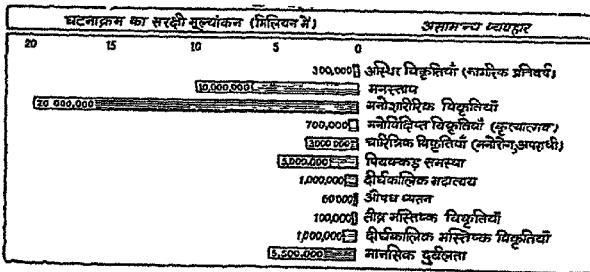
चित्र 1—विभिन्न प्रकार के असामान्य व्यवहार का घटना-क्रम

---

1. "The seventeenth century has been called the Age of Enlightment, the eighteenth, the Age of Reason; the nineteenth, the Age of Progress; and the twentieth, the Age of Anxiety."—Coleman, J. C.: *Abnormal Psychology and Modern Life*, 1969, p. 2.

पक्षो पर उसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। इन वैज्ञानिक उपलब्धियो से आज अनेक विकराल समस्याएँ भी उठ खडी हुई है। यह बडे ही आश्चर्य का विषय है कि वैज्ञानिक प्रगति के वावजूद चारो तरफ दु खद वातावरण छा रहा है। अनेक व्यक्ति जीवन का वास्तविक आनन्द नही उठा पा रहे हैं, क्योकि वे ठीक प्रकार से समायोजन नही कर पाये हैं। इस चिन्ता के युग मे अमेरिका जैसा सम्पन्न देश प्रतिवर्ष 10 मिलियन डॉलर व्यक्तित्व-समायोजन के लिए खर्च कर रहा है। इसके फलस्वरूप आज 60,00,00,000 व्यक्ति मनस्पात (Neurotic) है, 50,00,000 अमेरिकन शराव पीने के कारण समस्यात्मक व्यक्ति वन गये है, 70,000 अमेरिकन मानसिक सस्थाओ मे है, 30,00,000 लोग चारित्रिक विकृति (Character Disorder) रोग मे पीडित है तथा 30,00,000 अमेरिकन बालक सवेगात्मक व व्यवहार-समस्याओ से पीडित हैं। ये आँकडे उस विकसित देश के हैं, जहाँ उपचार के लिए अनेक मानसिक चिकित्सालय उपलब्ध है तथा जो अन्य देशो की अपेक्षा अधिक विकसित व सम्पन्न देश है।

मानसिक रोगियो की सख्या मे दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। उदाहरणस्वरूप, अमेरिका मे ही सन् 1880 मे 40,942 मानसिक रोगी अस्पताल मे थे, जबकि सन् 1964 मे यह सख्या 7,50,000 थी। इस प्रकार 84 वर्षो मे मानसिक रोगियो की सख्या मे केवल अमेरिका मे ही 18 गुनी वृद्धि हुई है।

भारत भी इन मानसिक असामान्यताओ मे उलझता जा रहा है। अनेक प्राकृतिक प्रकोपो व शारीरिक रोगो के अतिरिक्त भारत मे अनेक आर्थिक, सामाजिक,
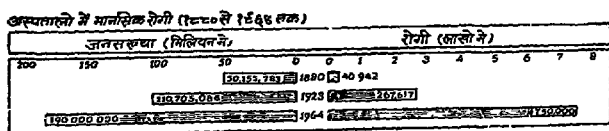
चित्र 2—मानसिक रोगियो की संख्या

राजनैतिक समस्याओ मे दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। पाश्चात्य सभ्यता का जीवन के प्रत्येक पक्ष पर प्रभाव पड रहा है जिसके फलस्वरूप अनेक सामाजिक व नैतिक परिवर्तन हो रहे हैं। इन कारणो के फलस्वरूप मानव अनेक सूक्ष्म मानसिक रोगो के वन्धन मे उलझता जा रहा है। आज भारतीय अनेक मानसिक रोगो से पीडित है। भारत मे मानसिक अस्पतालो की कमी है जिसके फलस्वरूप इस सम्वन्ध मे सही सख्या ज्ञात नही है कि कितने भारतीय वास्तव मे मानसिक रोगो से ग्रस्त है। अभी हाल मे (1971) मे विश्व-स्वास्थ्य-सगठन के अनुसार भारत मे लगभग 120 लाख मानसिक रोगियो की चिकित्सा की आवश्यकता है, लेकिन इस समय भारत मे केवल 400 समर्थ मनोवैज्ञानिक चिकित्सक, अस्पतालो मे 10,000 शैय्याएँ तथा केवल 30 मानसिक अस्पताल ही उपलब्ध है। 55 करोड़ की आवादी के लिए 33 मानसिक

अस्पताल, 25 वाल-निर्देशन केन्द्र का ही होना एक आश्चर्य का विषय है। जहाँ 120 लाख मानसिक रोगियो की चिकित्सा की व्यवस्था करनी है वहाँ केवल 15,000 मानसिक रोगियो के भरती होने की व्यवस्था है। भारत की जनसख्या को देखते हुए यह आँकडे वहुत कम हैं, क्योकि भारत से अमेरिका, जनसख्या की दृष्टि से काफी छोटा देश है, परन्तु फिर भी वहाँ 500 से अधिक मानसिक अस्पतालो मे 7,50,000 रोगियो के भरती होने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त 1961 मे अमेरिका मे 1,568 मानसिक स्वास्थ्य निदानशालाएँ थी। आज तो इनकी सख्या काफी वढ गयी है। आज वहाँ 12,000 सदस्य अमेरिकन मानसोपचार-शास्त्र सस्था के, 1,000 सदस्य अमेरिकन मनोविश्लेषण सस्था के व 3,000 सदस्य अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संस्था के हैं जो कि असामान्यता को दूर करने मे रत हैं। मानसिक रोगियो के उपचार के लिए 80,00,00,000 डालर वार्षिक खर्च किए जाते हैं।

इस प्रकार भारत मे अपेक्षाकृत अधिक असामान्य मनोविज्ञान का महत्त्व है, क्योकि असामान्य मनोविज्ञान असामान्य व्यवहार के अध्ययन करने के साथ ही साथ इस तथ्य पर भी जोर देता है कि कौन-से ऐसे साधनो का उपयोग किया जाय जिनसे कि व्यक्ति सतुलित व्यवहार, ठीक प्रकार से समायोजन तथा मानसिक रूप से स्वस्थ हो सके।

अत. आज जव विभिन्न समस्याएँ विकराल रूप लेती जा रही है जिनसे असन्तुष्ट, असफल होना व्यक्ति को स्वाभाविक ही है, उस समय असामान्य मनोविज्ञान के महत्त्व मे वृद्धि होना कोई आश्चर्य का विषय नही है। सक्षेप मे, आधुनिक युग मे असामान्य मनोविज्ञान के महत्त्व का सही मूल्याकन निम्न तथ्यो के आधार पर किया जा सकता है —

1. असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन के माध्यम से एक व्यक्ति अपनी दैनिक समस्याओ का आसानी से हल करना सीख लेता है।
2. असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन से एक व्यक्ति आसानी से यह समझ जाता है कि किस प्रकार एक सामान्य व्यक्ति मानसिक रोगो से ग्रस्त हो जाता है तथा चेतन एव अचेतन मन के द्वारा समस्याओ का समाधान किस प्रकार होता है।
3. असामान्य मनोविज्ञान के माध्यम से एक चिकित्सक को उपचार करने मे काफी सहायता मिलती है, क्योकि असामान्य मनोविज्ञान मानसिक रोगो के स्वरूप, लक्षण, कारण तथा निदान पर काफी विस्तृत रूप से प्रकाश डालता है।
4. असामान्य मनोविज्ञान का शिक्षा के क्षेत्र मे भी काफी महत्त्व है। जिन विद्यार्थियो को किसी प्रकार का मानसिक रोग, मानसिक दुर्वलता या अन्य मानसिक दोष होता हैं, उनकी शिक्षा किस प्रकार हो, उनका

समुचित समायोजन विधि कौन-सी हो, उनकी असामान्यता का निदान कैसे हो, आदि के सम्बन्ध मे असामान्य मनोविज्ञान काफी विवेचना प्रस्तुत करता है।

5. समाज का कलंक अपराध है। अपराधियो की सुधार की वहुत आवश्यकता होती है तथा असामान्य मनोविज्ञान मे समाज-विरोधी (anti-social) व्यक्ति के आचरण एव व्यक्तित्व का विस्तृत अध्ययन किया जाता है।
6 असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन से व्यक्ति दूसरे व्यक्तियो के बारे मे आसानी से समझ सकता है कि कही वह गलत कार्यो मे रुचि तो नही ले रहा है। उसकी प्रवृत्तियाँ या व्यवहार असामान्यता की ओर तो नही बढ़ रही है।
7. असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन से कानून को यह सहायता मिलती है कि वास्तविक अपराधी कौन है तथा यह अपराधी असामान्य तो नही है। दूसरे शब्दो मे, इसके द्वारा मानसिक रोगी को पहचानने मे कानून को सहायता मिलती है।

2

असामान्य मनोविज्ञान का स्वरूप, क्षेत्र व समस्याएँ
(NATURE, SCOPE AND PROBLEMS OF ABNORMAL PSYCHOLOGY)

परिचय
(Introduction)

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। व्यवहार के मुख्यत दो रूप होते है—(1) सामान्य, (2) असामान्य। असामान्य मनोविज्ञान असामान्य व्यवहार का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दो मे, असामान्य मनोविज्ञान उन व्यक्तियो का अध्ययन करता है जिनके व्यवहार मे सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा कुछ विशेषताएँ होती है। उसके व्यवहार मे कुछ ऐसी क्रियाएँ होती है जो सामान्य व्यक्ति मे नही पायी जाती, जैसे—अगर एक नया व्यक्ति, नये व्यक्तियो के समूह के समक्ष नवीन विषय पर भाषण देने मे प्रथम वार डरता है या काँपता है तव इस प्रकार का व्यक्ति सामान्य कहलायेगा। लेकिन अगर कोई जाना-पहचाना व्यक्ति, जाने-पहचाने विषय पर, जाने-पहचाने व्यक्तियो के समक्ष वोलने मे हिचकिचाता है तो इस प्रकार के व्यक्ति को असामान्य कहेगे, क्योकि यह व्यक्ति अनेक वार वोल चुकने के वावजूद हिचकिचाहट का अनुभव कर रहा है। वास्तव मे असामान्य मनोविज्ञान की सही प्रकृति को समझने के लिए हमे विस्तृत रूप से सामान्य व असामान्य का अध्ययन करना पड़ेगा।

सामान्य व्यक्ति कौन है ?
(Who is a Normal Person ?)

'नॉरमल' (*Normal*) शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द 'नॉर्मा' (*Norma*) से हुई है, जिसका अर्थ है—"वढई का वर्ग" (*Carpenter's square*)। अत आग्ल भाषा मे 'नॉर्मा' का अर्थ नियम, प्रतिरूप या प्रतिमान लगाया जाने लगा।[1] अन्य शब्दो

1. "The word *normal* comes from the Latin *norma*, which means a carpenter's square. A *norma* therefore became a rule or pattern or standard, and it was in this sense that the word was introduced into the English language." —Kisker, G. W. : *The Disorganized Personality*, p. 2.

मे, सामान्य व्यक्ति वह होता है जो साधारण रूप से अपनी क्रियाओ को करता हो, अपने दैनिक क्रिया-कलापो पर विचारपूर्वक निर्णय लेता हो तथा सामाजिक नियम एव मान्यताओ का एक सीमा तक पालन करता हो। दूसरे शब्दो मे, एक सामान्य व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक, वैयक्तिक, सास्कृतिक तथा पारिवारिक—सभी प्रकार की परिस्थितियो के साथ समायोजन तथा सन्तुलन बनाये रखता है। हॉर्नी के अनुसार—जिस व्यक्ति मे स्वीकारात्मक एव रचनात्मक सम्भावना (Potential) विद्यमान होती है, उसका व्यक्तित्व सामान्य होता है तथा उसे ही सामान्य व्यक्ति कहते है।

सामान्य व्यक्तित्व की विशेषताएँ
(Characteristics of a Normal Personality)

सक्षेप मे एक सामान्य व्यक्ति मे मुख्यत निम्न विशेषताएँ होती है—

(1) **सामाजिकता**—सामान्य व्यक्तियो मे एक विशेषता यह होती है कि उनमे सामाजिक व्यवहार के दृष्टिकोण से कानून की मर्यादा की रक्षा तथा सामाजिक परम्पराओ व मर्यादाओ के सम्मान का गुण विद्यमान होता है। ये व्यक्ति ऐसे कार्य नही करना चाहते जिनका सम्बन्ध समाज-विरोधी कार्यों से होता है। वे सामाजिक उत्सवो मे भाग लेते हैं तथा विभिन्न सामाजिक उपदेशो को स्वीकार करते हैं एव जाति, संस्कृति, धर्म आदि के नियमो का उल्लघन नही करते। परन्तु इनका यह तात्पर्य नही है कि ये व्यक्ति समाज की बुराइयो के प्रति विरोधात्मक भावना का प्रदर्शन नही करते, वल्कि इन बुराइयो को दूर करने के लिए कदम उठाते है। एक सामान्य व्यक्ति वदनामी से डरता है तथा सामाजिक सम्मान व यश की प्राप्ति करना चाहता है। वह समाज के अन्य व्यक्तियो से सहयोग की कामना करता है तथा मिल-जुलकर समाज व देश की उन्नति करना चाहता है। वह केवल स्वार्थ के लिए ही कार्य नही करता वल्कि दूसरो के हित-अहित का भी ध्यान रखता है।

(2) **व्यक्तित्व-विशेषताओं में समानता**—वैसे तो व्यक्तित्व-विकास के दृष्टिकोण से कोई भी व्यक्ति न तो समान ही होते है और न ही उसमे समान कहे जाने वाले सभी सवेगात्मक, चारित्रिक या वौद्धिक गुणो का समान वितरण होता है। लेकिन यदि हम वहुसंख्यक व्यक्तियो के जीवन-इतिहास (case history) का अध्ययन करे तो हमे उनके जीवन मे एक प्रकार की समानता अवश्य मिलेगी, जैसे—प्रधानतया सामान्य व्यक्तियो मे असाधारण उत्तेजनशीलता, एकाकीपन, विषादयुक्तता, सन्देहशीलता आदि गुण नही होते। अगर उनमे ये सव गुण होते है तो औसत मात्रा मे ही होते हैं। उनमे व्यक्तित्व-दोष तो पाये जाते हैं लेकिन एक सीमा तक ही। जीवन की विफलताओ एव कष्टो से इनका जीवन असन्तुलित नही होता वल्कि उनमे उपचार की भावना से विचार होता है, क्योकि इनमे कठिन परिस्थितियो का धैर्यपूर्वक सामना करने की क्षमता होती है।

(3) **विभिन्न आवश्यकताओं तथा क्रियाओं मे समानता**—सामान्य व्यक्तियो मे एक विशेषता यह भी होती है कि वह अपनी विभिन्न आवश्यकताओ के प्रति समायोजनिक दृष्टिकोण से ध्यान देता है। जीवन की अनेक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वह नौकरी, व्यापार आदि करता है तथा अपनी विभिन्न क्रियाओ को करते समय बुद्धि का सहारा लेता है। वह छोटी-छोटी कठिनाइयो या विफलताओ पर घबराता नही वल्कि साहस का परिचय देता है। उसे अपने परिवार के सुख एव समृद्धि का ध्यान रहता है। ऐसे व्यक्तियो के जीवन मे अनेक कठिनाइयाँ आती है लेकिन वे अपना सन्तुलन नही खोते वल्कि उन्हे दूर करने के अनेक प्रयास करते है। इनमे सामाजिक कल्याण की भावना रहती है।

(4) **परिस्थिति के अनुरूप समायोजन**—सामान्य व्यक्तियो मे एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि वे अपने व्यवहार को समय एव परिस्थिति के अनुरूप समायोजित (adjust) करते हुए कार्य करते है। अगर . दु.खद परिस्थिति है तो वह रोता है, दु ख के भाव को प्रकट करता है और अगर सुखद परिस्थिति है तो वह हँसता है। इस दु खद या सुखद भाव को प्रकट करने मे वह इस वात का भी ध्यान रखता है कि अन्य लोगो की राय मे यह ठीक है या नही।

(5) **सही तथा गलत नियमों का ज्ञान होना**—एक सामान्य व्यक्ति को इस वात का पूर्ण ज्ञान होता है कि वह अपनी क्रियाओ मे सामाजिक, सास्कृतिक या राजनैतिक विधानो या नियमो, परम्पराओ, नैतिक आदर्शो आदि का सही रूप मे पालन कर रहा है या नही। वह समझता है कि अमुक कार्य का अनुकूल एव प्रतिकूल रूप क्या है ? अत वह प्राय सही कार्यों को करता है तथा गलत कार्यो से वचने का प्रयास करता है।

(6) **अवैधानिक कार्यो के प्रति पश्चाताप**—ऐसा नही है कि एक सामान्य व्यक्ति गलत कार्य करता ही न हो ? वह जीवन मे वहुत गलतियाँ करता है लेकिन यह अनुभव होने पर कि यह गलत काम हो गया है, वह पश्चाताप (feeling of remorse) भी करने लगता है।

सामान्य व्यक्तित्व की परख के आधार
(Criteria of Normal Personality)

प्रो० मैश्लो व मिटिलमैन[1] ने सामान्य व्यक्तित्व को परखने के लिए अग्रलिखित तत्वो का विवेचन किया है—

(1) **सुरक्षा की उपयुक्त भावना** (Adequate Feeling of Security)—सामान्य व्यक्ति वह है जो सभी परिस्थितियो मे उपयुक्त प्रकार से समायोजन कर

1. Maslow, A. H. and Mittlemann, B.: *Principles of Abnormal Psychology*, p. 13-15.

सके। वह किसी भी परिस्थिति से घबडाये नही, अपने को पूर्ण असुरक्षित न समझे। इससे यह अर्थ नही निकालना चाहिए कि एक सामान्य व्यक्ति पूर्ण रूप से सुरक्षित या भय से मुक्त होता है। परन्तु अगर वह बिना कारणो से अपने को असुरक्षित समझता है तो वह असामान्य व्यक्ति कहलायेगा।

(2) **वास्तविक जीवन-उद्देश्य** (Realistic Life Goals)—सामान्य व्यक्ति के जीवन उद्देश्य निश्चित व सामाजिक परिस्थितियो के अनुकूल होते हैं। वह अपनी योग्यताओ व क्षमताओ के आधार पर ही इन उद्देश्यों का निर्माण करता है तथा इनकी प्राप्ति के लिए समुचित साधन एकत्रित करता है। परन्तु जो व्यक्ति अपनी सामर्थ्य, योग्यता, क्षमता से बाहर लक्ष्य स्थापित करता है और इन लक्ष्यो का सम्बन्ध सामाजिक हित के अनुरूप नही होता, वह व्यक्ति असामान्य कहलाता है।

(3) **वास्तविकता से प्रभावकारी सम्पर्क** (Efficient Contact with Reality)—वह सामान्य व्यक्ति कहलाता है जो प्रत्येक प्रकार के वातावरण से उचित समायोजन रखने मे समर्थ होता है। वह हवाई किले नही बनाता है और न ही जीवन की सामान्य कष्टप्रद परिस्थितियो या घटनाओ से घबडाता ही है।

(4) **उपयुक्त स्वच्छन्दता** (Adequate Spontaneity)—सामान्य व्यक्ति वह होता है जिसमे यह योग्यता होती है—समय, स्थान, व्यक्ति व परिस्थिति को ध्यान मे रखते हुए व्यवहार करना। असामान्य व्यक्ति मे यह योग्यता नही होती, क्योंकि उसके व्यवहार मे अस्वाभाविकता दृष्टिगत होती है या स्वाभाविकता के नाटक की झलक होती है।

(5) **समुचित संवेगशीलता** (Appropriate Emotionality)—सामान्य व्यक्ति मे जहाँ दृढ सवेगात्मक सम्बन्ध बनाये रखने की क्षमता विद्यमान होती है वहाँ असामान्य व्यक्ति मे सवेगो की अभिव्यक्ति परिस्थितियो के अनुरूप नही होती है।

(6) **आत्म-मूल्याकन का ज्ञान** (Reasonable Degree of Self-evaluation)—सामान्य व्यक्ति मे इतनी क्षमता निहित होती है कि वह अपनी कमियो को जान लेता है, उसमे आत्म-सम्मान व आत्म-मूल्याकन आदि गुण निहित होते हैं। असामान्य व्यक्ति मे आत्म-मूल्याकन की योग्यता नही होती।

(7) **पूर्व-अनुभवो से सीखने की योग्यता** (Ability to Learn from Past Experiences)—सामान्य व्यक्ति इतना योग्य होता है कि वह अपने पूर्व-अनुभवो का लाभ वर्तमान व भविष्य मे उठाता है जबकि असामान्य व्यक्ति ऐसा नही कर पाता है।

(8) **अपनी वैयक्तिकता को बनाए रखने के साथ ही साथ समूह की आवश्यकता की पूर्ति कर सकने की योग्यता** (Maintaining one's own Individuality and Ability to Satisfy the Needs of the Group)—सामान्य व्यक्ति से यह योग्यता विद्यमान रहती है कि यह अपनी वैयक्तिकता को बनाए रखने के साथ

ही साथ समूह की आवश्यकताओ की पूर्ति करने की क्षमता निहित रहती है, जबकि असामान्य व्यक्तियो मे ऐसा नही होता है ।

(9) संगठित व स्थायित्व व्यक्तित्व (Integration and Consistency of Personality)—सामान्य व्यक्तित्व की मुख्य विशेषता यह होती है कि सकल्प, चिन्तन व बोध—तीनो पक्षो मे सन्तुलन होता है, जबकि असामान्य व्यक्ति मे ऐसा नही होता ।

असामान्य व्यक्ति कौन है ?
(Who is an Abnormal Person ?)

एक असामान्य व्यक्ति की विशेषताओ के सम्बन्ध मे अध्ययन करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि असामान्य से क्या तात्पर्य है । असामान्य को अंग्रेजी मे 'ऐबनॉरमल' (*Abnormal*) कहते है । 'ऐबनॉरमल' शब्द की उत्पत्ति 'एनोमेलस' (*Anomelos*) से हुई है । 'एनो' (*Ano*) का अर्थ है—नही (Not), तथा 'मेलस' (*Melos*) का अर्थ है—नियमित (regular) । अत शब्द-व्युत्पत्ति के अनुसार असामान्य (Abnormal) का अर्थ है—नियमित नही अथवा अनियमित (Not regular or irregular) । अतः हम कह सकते है कि असामान्य व्यक्ति मे एक प्रमुख विशेपता यह होती है कि उसके व्यवहार मे अनियमितता होती हैं ।

कुछ विद्वानो ने 'ऐबनॉरमल' शब्द का नवीन ढग से विश्लेषण किया है । उनका कहना है कि इस शब्द का निर्माण 'ऐब' (*Ab*) व 'नॉरमल' (*Normal*) के सयोग से हुआ है । 'ऐब' का अर्थ है—दूर (Away) तथा 'नॉरमल का अर्थ है—सामान्य (Normal) । अत. इस दृष्टिकोण से एक असामान्य व्यक्ति, सामान्य से दूर है (Away from normal) । वास्तव मे दोनो दृष्टिकोणो को ध्यान से विचार करने पर यह पता चलता है कि इन दोनो विचारो मे एकरूपता है । क्योकि अनियमित व्यवहार से तात्पर्य यह है कि व्यवहार मे एकरूपता नही है तथा यह गुण एक असामान्य व्यक्ति मे ही होता है ।

दैनिक जीवन मे कुछ ऐसे व्यक्ति हमारे सामने आते है जिनका व्यवहार अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा भिन्न होता है । ये व्यक्ति अपने विचारो को न तो स्वय समझते हैं और न ही अन्य लोगो को समझा पाते हैं । ऐसे व्यक्तियो मे सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा सीमित बुद्धि, अस्थिर सवेग, असंगठित व्यक्तित्व, दूषित चरित्र आदि अनेक गुण विद्यमान होते है । इनमे सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा मानसिक व शारीरिक दृष्टिकोण से अन्तर होता है । इनके व्यवहार में न तो सामाजिक कल्याण की ही भावना रहती है और न ही व्यक्ति-विशेष की । इनमे समायोजन (adjustment) के स्थान पर असमायोजन (maladjustment) तत्व क्रियाशील रहता है । समाज क्या चाहता है ? समाज के प्रति यह व्यवहार ठीक है या नही ? आदि प्रश्नो से उसका सम्बन्ध नही होता ।

पेज[1] (Page) का मत है कि असामान्य समूह मे उन व्यक्तियो को रखा जा सकता है जिनमे सीमित बुद्धि, सवेगात्मक अस्थिरता, विघटित व्यक्तित्व और चारित्रिक दोष निहित होते हैं। ये व्यक्ति एक अजीब प्रकार का जीवन व्यतीत करते है। इन्हे सामाजिक उत्तरदायित्व आदि का अनुभव नही होता। किसकर (Kisker) के अनुसार, मानव-व्यवहार व अनुभूति, जो अजीब, अनुपयोगी या सामान्य के अनुरूप न हो, उसे असामान्य कहा जा सकता है।[2]

अभी तक हमने असामान्य व्यवहार के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी प्राप्त की, लेकिन यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि असामान्य मनोविज्ञान क्या है ? असामान्य मनोविज्ञान मुख्यत असामान्य व्यवहार का अध्ययन करता है। असामान्य व्यवहार का अध्ययन करते समय एक मनोवैज्ञानिक उसके मौलिक कारणो को ढूंढता है तथा उन्हे दूर करने का भी प्रयत्न करता है। इस सम्बन्ध मे कोलमैन (Coleman) की परिभाषा अधिक उपयुक्त है —"**असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का वह क्षेत्र है जिसमें असामान्य व्यवहार को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के उपयोग तथा विकास का व्यवहार किया जाता है।**"[3]

असामान्य व्यक्तित्व की विशेषताएँ
(Characteristics of an Abnormal Personality)

सक्षेप मे एक असामान्य व्यक्ति की निम्नाकित विशेपताएँ होती हैं—

1 अधिकतर असामान्य व्यक्तियो मे बौद्धिक दुर्बलता या मानसिक रोग-ग्रस्तता निहित रहती है।
2 ये व्यक्ति असतुलित होते हैं।
3 इनकी क्रियाओ मे असामाजिकता रहती है, क्योकि इन्हे अच्छे व बुरे का ज्ञान नही होता।
4. सवेगात्मक अस्थिरता रहती है।
5 दूपित चरित्र व जीवन प्रमुखत समाज-विरोधी (anti-social) होता है।

---

1. "Included in this abnormal group would be individuals marked by limited intelligence, emotional instability, personality disorganization and character defects, who for the most part, led wretched personal lives and were social misfits or liabilities"
—Page, J. D. *Abnornal Psychology*, p 2.
2. "Human behaviour and experience which are strange, unusual or different ordinarily are considered abnormal."—Kisker *Ibid*, p. 2
3. 'Abnormal Psychology is' the field of Psychology which specializes in the development and integration of psychological principles for the understanding of abnormal behaviour"
—Coleman. *Abnormal Psychology and Modern Life*, p. 21.

6. ये व्यक्ति समाज पर बोझ बनकर रहते है तथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज को हानि पहुँचाते है। दूसरे शब्दो मे, असामान्य व्यक्ति मे सामाजिक कल्याण की भावना नही होती।

सामान्य व्यक्तित्व तथा असामान्य व्यक्तित्व का अन्तर—

सामान्य व्यक्तित्व
(NORMAL PERSONALITY)

असामान्य व्यक्तित्व
(ABNORMAL PERSONALITY)
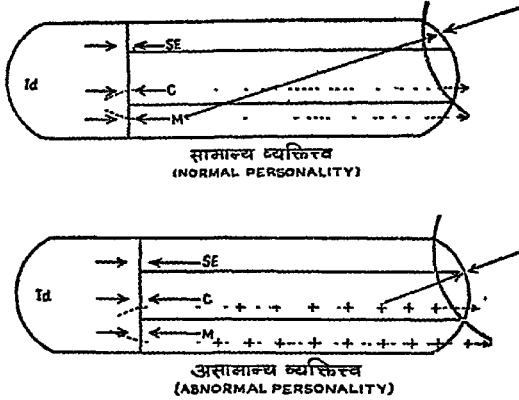
चित्र—3

→←—सामजस्य सन्तुलन (Harmonious Balance)।

→← असामजस्य सन्तुलन (Inharmonious Balance)।

बड़ा तीर समग्र रूप से पर्यावरण के साथ सापेक्षिक सन्तुलित व्यक्तित्व को सम्बोधित करता है।

छोटा तीर व्यक्तित्व के अन्तर्गत ही सापेक्षिक सन्तुलन को सम्बोधित करता है।

........→सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यवहार (socially acceptable behaviour)।

—+—+—+—+→ अस्वीकृति होती है लेकिन छद्‌मवेश मे होती है,

—+....+→ छद्‌मवेश मे, परन्तु आशिक रूप से स्वीकृति।

SE परम अहम् (Super Ego)।

C व M अहम् का ज्ञानात्मक (cognitive) व गत्यात्मक (motor) पक्ष।

सामान्य व्यक्तित्व मे इदम्, अहम् व परम अहम् मे एक प्रकार का सामजस्य पक्ष का पूर्ण सन्तुलन रहता है, पर्यावरण से उचित सम्वन्ध होता है तथा सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यवहार होता है जबकि असामान्य मे व्यवहार आशिक रूप से अथवा

पूर्ण रूप से असामाजिक होता है तथा इदम्, अहम् व परम अहम् में कम सन्तुलन होता है या सन्तुलन होता ही नहीं।

असामान्यता सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोण
(Different Viewpoints Regarding Abnormality)

सामान्य व असामान्य के सम्बन्ध में अभी तक मनोवैज्ञानिकों के समक्ष कोई ऐसा मापदण्ड निर्धारित नहीं हुआ है जिसके आधार पर इनकी वास्तविक सीमा का निर्धारण हो सके। वैसे इस दिशा में प्राचीन काल से ही अनेक विचारकों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। उनके दृष्टिकोणों को आलोचनात्मक ढंग से अध्ययन करने के बाद ही हम असामान्यता के सम्बन्ध में सही दृष्टिकोण उपस्थित करने का प्रयास करेंगे।
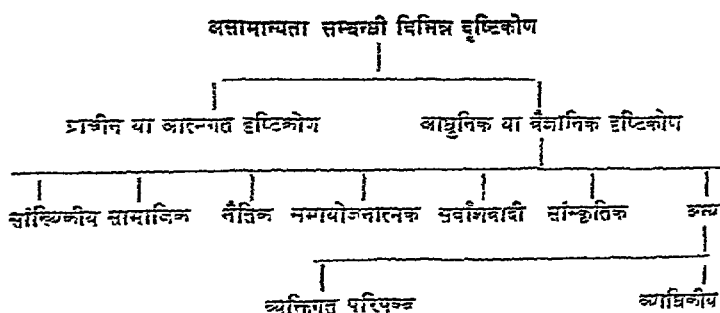
(1) असामान्यता का प्राचीन या आत्मगत मत
(Old or Subjective Concept of Abnormality)

असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास पर विचार करने से यह पता चलता है कि लगभग 600 वर्ष पूर्व असामान्यता की धार्मिक दृष्टिकोण के आधार पर व्याख्या की गई थी। असामान्य लोगों को परमात्मा का अभिशाप या भूत-प्रेत की कृपा माना जाता था। असामान्य व्यक्तियों को हीन-दृष्टि से देखा जाता था तथा उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती थीं। उनके साथ अनेक प्रकार के मजाक किए जाते थे। प्राचीन मत के अनुसार—व्यक्तित्व-विशेषताओं (personality characteristics) के आधार पर व्यक्तियों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—(1) असामान्य (Abnormal), (2) सामान्य (Normal), (3) प्रतिभाशाली (Genius)। (देखिए चित्र—4)

डा० ब्राउन ने अपनी पुस्तक[1] में इस सम्बन्ध में प्राचीन मत की व्याख्या करते हुए कहा है कि असामान्य लोगों को एक विशेष समूह में रखा जाता था यह

---

1. Brown, J. F.: *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour*

विशेष समूह सामान्य समूह से नीचे होता था तथा जो लोग विशेष गुण वाले होते थे, वे सामान्य समूह से ऊपर होते थे अर्थात् तीनो वर्ग आपस मे सम्बन्धित नही थे ।
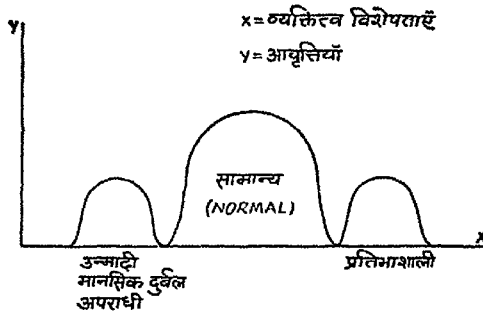
चित्र 4—प्रचलित या प्राचीन दृष्टि से व्यक्तित्व-विभाजन

तीनो ही वर्गो के लिए अलग नियम थे जिनके कारण ही इनमे भिन्न विशेषताएँ आती थी अर्थात् उन्मादी, मानसिक दुर्बल व अपराधी व्यक्तियो को एक विशेष समूह मे रखा जाता था जो कि सामान्य समूह से नीचे होते थे तथा सामान्य समूह से ऊपर वे व्यक्ति आते थे, जो प्रतिभाशाली होते थे ।[1] इन तीनो वर्गों मे कोई सतति या निरन्तरता (continuity) नही होती थी । अत. सामान्य व्यवहार सामान्य कारणो से होता था जबकि असामान्य या प्रतिभाशाली व्यवहार का सचालन कुछ विशेष कारणो से होता था । असामान्यता एक व्यक्ति को भगवान के द्वारा या पूर्वजो से वशानुक्रम के आधार पर प्राप्त होती थी । इस प्रचलित विधि को काफी समय तक मान्यता मिलती रही । इसके प्रचलित होने का मुख्य कारण यह था कि उस समय सभी लोग इस सिद्धान्त को स्वीकार करते थे कि पागलपन देवी-देवताओ के प्रकोप के कारण ही होता है । उस समय व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे यह धारणा थी कि यह स्थिर व भगवान के वरदान (*Constant or God Gifted*) के रूप मे प्राप्त होता है, क्योकि असामान्य लोगो से भगवान नाराज हो गया है । अत उन्हे उनके कर्म का फल मिल रहा है । यही कारण था कि अधिकतर लोग असामान्य व्यक्तियो का कोई उपचार नही करते थे ।

---

1. "Until very recently the insane, the mentally deficient and the criminal were considered to form a special group *below* the normal group, just as the particularly gifted were considered to form a special group *above* the normal group. The laws governing the behaviour of the insane and delinquent, as well as those governing the behaviour of genius were considered special laws." — Brown, J. F. , *Ibid*, p. 7.

आत्मगत दृष्टिगोचर से तात्पर्य है कि असामान्य व्यवहार का व्यक्तिगत विचार के आधार पर मूल्याकन किया जाय। अगर व्यक्ति का व्यवहार निर्णायक के व्यवहार के अनुरूप होता था तो वह व्यक्ति सामान्य और अगर इसके विपरीत होता था तो वह व्यक्ति असामान्य समझा जाता था। लेकिन यह मत अधिक दिनो तक मान्य नही रहा क्योकि यहाँ निर्णायक के आधार को ही मापदण्ड बनाया जाता था। अत एक से अधिक निर्णायको के मत जानने पर समान निष्कर्ष नही प्राप्त होते थे।

(2) असामान्यता का आधुनिक या वैज्ञानिक मत
(Modern or Scientific Concept of Abnormality)

प्राचीन या आत्मगत दृष्टिकोण अधिक दिनो तक प्रचलित नही रहा, क्योकि इसमे वैज्ञानिकता व व्यावहारिकता का अभाव था। अत धीरे-धीरे इसके स्थान पर आधुनिक या वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मान्यता मिलने लगी। इसके अन्तर्गत विभिन्न विद्वानो ने विभिन्न समयो पर विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए, यथा —

(अ) सांख्यिकीय दृष्टिकोण (Statistical viewpoint),
(ब) सामाजिक दृष्टिकोण (Social viewpoint),
(स) नैतिक दृष्टिकोण (Ethical viewpoint),
(द) समायोजनात्मक दृष्टिकोण (Adjustive viewpoints),
(य) सर्वांशवादी दृष्टिकोण (Eclectic viewpoint),
(र) सांस्कृतिक दृष्टिकोण (Cultural viewpoint),
(ल) दैहिक दृष्टिकोण (Physiological viewpoint),
(व) व्यक्तिगत परिपक्व दृष्टिकोण (Personal mature viewpoint),
(प) व्याधिकीय दृष्टिकोण (Pathological viewpoint),

इन सभी दृष्टिकोणो की हम नीचे सक्षिप्त रूप मे व्याख्या प्रस्तुत करेंगे—

(अ) सांख्यिकीय दृष्टिकोण (Statistical Viewpoint)—सांख्यिकीय दृष्टिकोण के आधार पर असामान्य, सामान्य व प्रतिभाशाली या श्रेष्ठ व्यक्तियो मे एक आनुपातिक सम्बन्ध है। इस मत के अनुसार सामान्य असामान्य मे वर्ग का अन्तर नहीं बल्कि मात्रा (degree) का अन्तर है।[1] असामान्य व्यक्ति, इस मत के अनुसार, वह है जिसके व्यवहार मे औसत व्यक्तियो के व्यवहार से भिन्नता होती है। जब किसी व्यक्ति मे किसी गुण की मात्रा मे सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा बहुत अधिक या बहुत कम अन्तर हो तो दोनो ही अवस्थाओ मे वह व्यक्ति असामान्य समझा जायेगा। दूसरे शब्दो मे, सांख्यिकीय दृष्टिकोण के अनुसार सामान्य से तात्पर्य गुणो के एक प्रकार के औसत या केन्द्रीय प्रवृत्ति (average or central tendency) से होता है। सांख्यिकीय दृष्टिकोण के अनुसार—जनसख्या का अधिकाश भाग सामान्य

1. "Thus abnormal phenomena differ from the normal in degree and not in kind."—Brown J. F. : *Ibid*, p. 9.

कोटि से सम्बन्धित होता है। अगर सामान्य, असामान्य व प्रतिभाशाली व्यक्तियो को एक चित्र का रूप दिया जाय तो उसका आकार एक घण्टे के (bell shaped) रूप मे होगा। इस प्रकार की वक्ररेखा के मध्य मे सामान्य कोटि के लोग आवेंगे तथा बाएँ व दाएँ क्रमश असामान्य व प्रतिभाशाली कोटि के व्यक्ति आवेंगे। दूसरे शब्दो मे, सामान्य व्यक्तियो का सम्पूर्ण जनसंख्या मे 68·26% भाग होता है। इस भाग मे विचलन जैसे ही बढेगा या घटेगा तो व्यक्ति मे सामान्यता के स्थान पर असामान्यता आती जावेगी। चित्र—5 से इस बात की पुष्टि होती है।
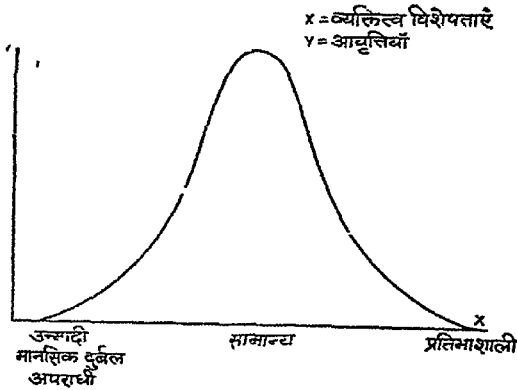
चित्र 5—व्यक्तित्व-विभाजन का वैज्ञानिक मत

असामान्यता के सम्बन्ध मे इस दृष्टिकोण के आने के कारण प्राचीन मत पूर्णत समाप्त हो गया। क्योकि सांख्यिकीय दृष्टिकोण के अनुसार सामान्य, असामान्य व श्रेष्ठ मे केवल मात्रा का अन्तर है जबकि प्रचलित या प्राचीन मत—इन तीनो में वर्ग के अन्तर को मानता था। प्रो० जे० एफ० ब्राउन (Prof J F. Brown) के के अनुसार—"असामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्य सामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्यो का अतिरंजित (अत्यधिक बढ़ा या घटा) तथा विकृत स्वरूप है।"[1] इस प्रकार सामान्य तथा असामान्य मे कोई वर्ग या प्रकार (kind) का अन्तर न होकर केवल अंशो या मात्रा का अन्तर है। चित्र—6 को देखने से यह ज्ञात होता है कि विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व प्रकारो का वितरण क्रमिक है तथा कही भी कोई रिक्त (gap) स्थान नही है। चित्र के दोनो छोरो पर व्यक्तियो की सख्या उत्तरोत्तर कम होती जाती है तथा बीच मे सर्वाधिक संख्या मे लोग आते है।

---

1. "......abnormal psychological phenomena are simply exaggerations (i. e., overdevelopments or underdevelopments) or disgussed (i. e., perverted) dovelopments of the normal psychological phenomena."—Brown : *Ibid*, p. 9.

व्यक्तित्व की विशेषताएँ सभी लोगो मे विद्यमान रहती है लेकिन अगर उन्ही विशेषताओ का एक व्यक्ति मे अतिरंजित या विकृत रूप हो जाय तो वह व्यक्ति सामान्य न होकर असामान्य हो जावेगा। इसी बात को हम एक उदाहरण के द्वारा भी समझा सकते है, जैसे—खाना तो प्रत्येक व्यक्ति खाता है लेकिन जो व्यक्ति अत्यधिक खाना खा जाय तो वह असामान्य कहलायेगा। दूसरे शब्दो मे, प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर सुरक्षा व आत्म-रक्षा की भावना रहती है। इसी से प्रेरित होकर जब व्यक्ति के समक्ष कोई खतरनाक परिस्थिति आती है तो वह सुरक्षा का प्रयत्न करता है। लेकिन जब कोई व्यक्ति बिना खतरनाक परिस्थिति के ही भय प्रदर्शन करता है या सकटकालीन अवस्था होने पर भी आत्म-रक्षा की व्यवस्था नही करता तो इस प्रकार का व्यवहार असामान्य व्यवहार कहलायेगा। अत असामान्य व्यवहार सामान्य व्यवहार का ही घटा या बढ़ा रूप होता है।

पेज (Page) ने साख्यिकीय एव व्याधिकीय दृष्टिकोण के आधार पर असामान्य, सामान्य व उच्च समूह को अन्त सम्बन्धित किया है। उसने सम्भावित गुणात्मक अन्तरो के आधार पर तीनो समूहो को तीन वृत्तो (circles) के आधार पर समझाया है। तीनो ही वृत्तो मे प्रकार (kind) का अन्तर न होकर अशो (degrees) का अन्तर है। यह बात निम्नाकित चित्र से स्पष्ट हो जाती है—

चित्र 6—सामान्य, असामान्य व उत्कृष्ट समूहो का अन्त सम्बन्ध
(विभिन्न गोलार्द्धों मे विभिन्न प्रकारो मे केवल अशो का अन्तर है।)

किसकर (Kisker) के अनुसार सामान्यता, साख्यिकी मत के आधार पर औसत (average) का प्रतिनिधित्व करती है तथा इस मत को सामान्य वितरण वक्र (Normal Distribution Curve) के आधार पर समझाया जा सकता है। बुद्धि-लब्धि का अगर सामान्य वितरण किया जाये तो इसके मध्य मे अधिकतर व्यक्ति

औसत बुद्धि वाले आयेगे। बहुत कम व्यक्ति बहुत अधिक बुद्धि वाले होगे और इसी प्रकार बहुत कम ऐमे व्यक्ति होगे जिनकी बुद्धि-लब्धि (I. Q.) बहुत ही कम होगी। यह बात निम्नाकित चित्र से स्पष्ट हो जाती है।
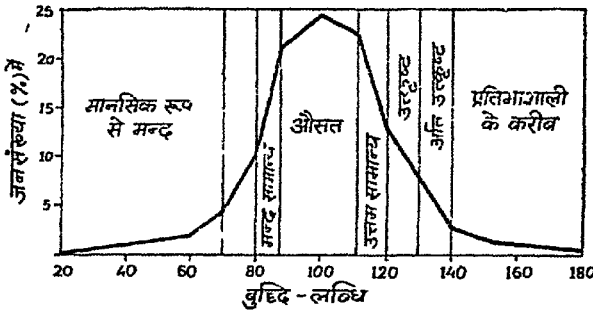
चित्र 7—सामान्यता का सांख्यिकीय प्रारूप

विशेषताएँ—इस मत की निम्नलिखित विशेषताएँ है—

(1) इस दृष्टिकोण को मानने से प्राचीन मत की वह मान्यता समाप्त हो जाती है जिसके अनुसार सामान्य व असामान्य मे प्रकार (kind) या वर्ग का अन्तर माना जाता था। क्योकि इस मत के अनुसार सामान्य, असामान्य व प्रतिभाशाली मे केवल मात्रा (degree) का अन्तर है।

(2) इस मत की दूसरी मुख्य विशेपता यह है कि सामान्य, असामान्य व प्रतिभाशाली—तीनो को समझने के लिए हमे अलग-अलग नियमो का अध्ययन नही करना पड़ता बल्कि एक ही प्रकार के नियमो के माध्यम से तीनो का सचालन होता है। इस प्रकार असामान्य मानसिक तथ्यों के लिए किसी विशेप शक्ति (*e g. 'Punishment by God', 'Possession by the devil' or 'Spiritual inspiration'*) की आवश्यकता नही होती बल्कि इसका कारण सामान्य मनोवैज्ञानिक नियम है।[1] इस प्रकार से इस मत के माध्यम से असामान्यता के भ्रामक मत का खण्डन हो जाता है।

1. "........we consider that these abnormal mental phenomena have natural causes and obey the same laws as do the normal mental phenomena. Thus abnormal mental phenomena are not caused by supernatural forces like *"punishment by God"* or *"possession by the devil"* or, on the other hand, by *"spiritual inspiration"* but by ordinary psychological laws."—Brown, J. F. : *Idid*, p. 9.

(3) इस मत के अनुसार, कोई भी व्यक्ति पूर्णत सामान्य या असामान्य नही है। दूसरे शब्दो मे, सामान्य व्यक्तियो मे थोडी-बहुत असामान्यता विद्यमान रहती है। इसका मुख्य कारण है कि सामान्य व असामान्य मे प्रकार (kind) का अन्तर नही है बल्कि मात्रा का अन्तर है। इस प्रकार यह मत इस प्रवृत्ति का द्योतक है कि सामान्य असामान्य हो सकता है, और असामान्य सामान्य हो सकता है, अगर दोनो मे कुछ मात्रा की वृद्धि या कमी कर दी जाय।

(4) यह सिद्धान्त एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का निर्माण करता है जिसके अनुसार इन तीनो ही के लिए एक से ही मनोवैज्ञानिक नियम (psychological laws) है। जिस प्रकार बिजली चाहे प्रयोगशाला मे बने या बादलो के माध्यम से या बिजली-घर मे, लेकिन उसके बनाने के नियम सभी जगह एक से होते हैं। उसी प्रकार सामान्य व असामान्य व्यक्तियो के लिए नियम एक से ही होते है। इस प्रकार सामान्य मनोविज्ञान के नियमो का असामान्य मनोविज्ञान मे तथा असामान्य मनोविज्ञान के नियमो का सामान्य मनोविज्ञान मे उपयोग किया जा सकता है।

(5) साख्यिकीय मत मे वैज्ञानिकता के साथ ही साथ व्यावहारिकता भी है, क्योकि यह मत इस बात को पूर्णत स्पष्ट करता है कि एक असामान्य व्यक्ति को पुन सामान्य व प्रतिभाशाली बनाया जा सकता है।

(6) इस मत के प्रतिपादन से मनोविज्ञान की नई दिशा मिली है, क्योकि अनेक सामान्य नियमो व जानकारियो का उपयोग असामान्य के क्षेत्र मे तथा असामान्य के नियमो का सामान्य के क्षेत्र मे उपयोग किया जा सकता है, उदाहरणस्वरूप, अगर एक सामान्य व्यक्ति के सम्बन्ध मे जितनी अधिक जानकारी हासिल की जाय, तो उसका उतना ही अधिक उपयोग असामान्य व्यक्तियो के लिए हो सकता है।

रोजेन व ग्रेगरी के शब्दो मे, असामान्यता के साख्यिकीय दृष्टिकोण से महत्त्व-पूर्ण निष्कर्ष यह ज्ञात होता है कि सामान्य व असामान्य किसी प्रकार का अन्तर नही है तथा दोनो के मध्य कोई भेदक रेखा नही खीची जा सकती। सरल शब्दो मे, असामान्य सामान्य का ही अतिरजित रूप है।[1]

सीमाएँ (Limitations)—(1) समस्त गुणों का मात्रात्मक मापन सम्भव नहीं—साख्यिकीय दृष्टिकोण के अनुसार, मनुष्यो के गुणो को मात्रा मे मापन किया जा सकता है परन्तु वास्तव मे ऐसा सम्भव नही है।

---

1. "Analysis of 'the statistical criterion of abnormality thus leads to the important conclusion that there is a gradual continuum from the normal to the abnormal instead of a sharp separation between the two The abnormal is usually an exaggeration of the normal."—Rosen and Gregory *Abnormal Psychology*, p 7.

(2) **गुण-विशेष के आधार पर सामान्य व असामान्य का भेद असंभव**—साख्यिकीय मत के अनुसार किसी गुण-विशेष के आधार पर सामान्य व असामान्य का निर्णय किया जाता है लेकिन यह तर्कसगत नही है, क्योकि एक व्यक्ति हो सकता है कि एक गुण मे औसत (average) से कम हो, दूसरे मे औसत पर हो तथा कुछ गुणो मे औसत से भी अधिक हो। इस स्थिति मे सामान्य व असामान्य का निर्णय करना असम्भव है।

(3) **सामान्य, असामान्य तथा प्रतिभाशाली के बीच एक सीमा-रेखा का अभाव**—साख्यिकीय दृष्टिकोण इस बात की विवेचना नही करता कि किस सीमा तक सामान्यता की सीमा है और किस स्थान से असामान्यता की सीमा है। यह निश्चय करना बहुत ही मुश्किल है कि औसत से कितने विचलन पर असामान्य व प्रतिभाशाली व्यक्ति होता है। वैसे कुछ लोग 90 से 110 बुद्धि-लब्धि (I. Q) वाले व्यक्ति को सामान्य कहते हैं, परन्तु यह कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

(4) **असामान्य व श्रेष्ठ मे अन्तर**—साख्यिकीय मत के आधार पर कुछ लोग औसत गुण वाले व्यक्ति को सामान्य व्यक्ति मानते हैं तथा इससे विचलित होने पर सभी व्यक्तियो को असामान्य मानते है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण से असामान्य व श्रेष्ठ या प्रतिभाशाली व्यक्तियो मे अन्तर सम्भव नही है।

(ब) **सामाजिक दृष्टिकोण (Social Viewpoint)**—कुछ विद्वानो के अनुसार किसी सस्कृति एव समाज के सामान्य व्यवहार के प्रतिकूल जो भी व्यवहार होगा, वह असामान्य है तथा अनुकूल होने पर सामान्य। इस मत के अनुसार, असामान्य व्यवहार का अर्थ है—समाज के प्रतिमानो से सतुलन न होना। दूसरे शब्दो मे, यह दृष्टिकोण इस बात का प्रतीक है कि जिस व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक रीति-रिवाज के अनुकूल होगा, वह व्यक्ति सामान्य व्यक्ति होगा। लेकिन यह दृष्टिकोण एकाकी है, क्योंकि—

(1) **सामाजिक नियमों को मापदण्ड बनाना अनुचित**—असामान्यता के लिए सामाजिक रीति-रिवाज या नियम को मापदण्ड मानना ठीक नही है, क्योकि सामाजिक नियमो मे स्वय ही एकरूपता नही है। एक समाज मे एक ही नियम का पालन करना सामान्यता का परिचायक है तो दूसरे समाज मे वही नियम असामान्यता का परिचायक होता है। ऐसी दशा मे किसको सामान्य या असामान्य कहा जाय ?

(2) **यह असामान्यता की सार्वभौमिक परिभाषा प्रस्तुत नहीं करती**—सामाजिक दृष्टिकोण असामान्यता की सार्वभौमिक परिभाषा प्रस्तुत नही करती। क्योकि इस मत के अनुसार अल्पमत के व्यवहार को असामान्य व्यवहार माना जाता है लेकिन वास्तव मे यह गलत है। जैसे एक समाज जिस सिद्धान्त या नियम को 'कल्याणकारी' के रूप मे स्वीकार करता है तो इसका समाज उसे ही 'सर्वनाशी' नियम या सिद्धान्त की सज्ञा देता है। अत यहाँ यह कठिनाई उत्पन्न हो जाती है कि किसे ठीक माना जाय ?

(स) नैतिक दृष्टिकोण (Ethical Viewpoint)—कुछ विद्वानो के अनुसार अनैतिक व्यवहार (immoral behaviour) असामान्य है और नैतिक व्यवहार सामान्य। दूसरे शब्दो मे, जिस व्यक्ति का व्यवहार नैतिक नियमो के अनुकूल है, वह सामान्य व्यक्ति है और जिस व्यक्ति का व्यवहार नैतिक नियमो के प्रतिकूल है, वह असामान्य व्यक्ति है। लेकिन नैतिकता स्वय ही देश-काल के द्वारा निर्धारित होती है। अत यह दृष्टिकोण उचित नही है। इस दृष्टिकोण मे निम्नलिखित दोष पाये जाते है—

1 मनोविज्ञान एक प्रत्यक्ष विज्ञान (Positive science) है। अत इसकी अध्ययन-सामग्री मे नैतिक-अनैतिक, अच्छे-बुरे को शामिल करना गलत है।

2 नैतिक मापदण्ड का निर्माण समाज के माध्यम से ही होता है। इसे अगर समाज से अलग कर दिया जाय तो इसका स्वय का कोई अस्तित्व न रह जावेगा।

3 विभिन्न समाजो मे नैतिक नियम एक समान नही है। अत नैतिक दृष्टि-कोण से असामान्यता की व्याख्या का कोई महत्त्व नही है।

(द) समायोजनात्मक दृष्टिकोण (Adjustive Viewpoint)—आज अनेक मनोवैज्ञानिको का कहना है कि समस्त मानसिक रोगो के मूल मे उनका दूषित समायोजन है। इसी कारण कुछ लोगो के समायोजन को कसौटी मानकर असामान्यता सम्बन्धी विचार प्रकट किये है। इस दृष्टिकोण के अनुसार जो व्यक्ति अपनी समस्याओ के प्रति ठीक ढग से समायोजन कर लेते है, तथा उन्हे आन्तरिक चिन्ता नही होती। वे अपने वातावरण को स्वस्थ बनाये रखता है तथा उन्हे किसी प्रकार की मानसिक बेचैनी नही होती। इस प्रकार के व्यक्ति सामान्य व्यक्ति कहलाते है, लेकिन इसके विपरीत जो व्यक्ति अपनी समस्याओ को ठीक ढग से हल नही कर पाते, उन्हे मानसिक अन्त-र्द्वन्द्व का सामना करना पडता है, ऐसे व्यक्ति असामान्य होते हैं। वैसे यह दृष्टिकोण उपयोगी है, क्योकि यह आन्तरिक तथा वाह्य—दोनो प्रकार के समायोजन पर जोर देता है, फिर भी इस दृष्टिकोण मे निम्नाकित दोष हैं—

(1) असामान्यता का यह दृष्टिकोण एक प्रमुख दोष यह उपस्थित करता है कि एक सामान्य व्यक्ति मे यह अतिवार्य चिह्न होता है कि वह वर्तमान सामाजिक, नैतिक व सास्कृतिक मान्यताओ से समायोजन करता है। अगर ऐसा एक व्यक्ति न करे तो वह सामान्य न रहकर असामान्य कहलायेगा। परन्तु यह कसौटी गलत है, क्योकि ये मान्यताएँ समय के साथ परिवर्तित होती जाती है। स्वाभिमानी तथा महान् व्यक्ति सदैव गलत परम्पराओ या विचारो का विरोध करते है लेकिन वह असामान्य नही होते।

(2) दूसरा प्रमुख दोष इस मत मे यह है कि व्यक्तिगत व्यवहार का समाज पर पडने वाले प्रभावो का अध्ययन नही करता। एक नेता आज अपने को समाज मे

ठीक ढग से अभियोजित करने मे सफल है लेकिन चुनाव के समय उसे समाज का ध्यान नही रहता, वह गलत कार्यो के माध्यम से चुनाव जीतने का प्रयत्न करता है। उसमे व्यक्तिगत स्वार्थ निहित होता है। इस मत के माध्यम से यह नही पता चलता है कि यह व्यक्ति सामान्य है या असामान्य।

(य) सर्वांशवादी दृष्टिकोण (Eclectic Viewpoint)—यह दृष्टिकोण असामान्यता के सभी दृष्टिकोणो को अलग-अलग न रखकर एक सम्मिलित रूप का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दो मे, इस दृष्टिकोण मे सभी दृष्टिकोणो को उचित स्थान दिया है। इस दृष्टिकोण के आधार पर यह कहा जाता है कि सम्पूर्ण जनसख्या का 10 प्रतिशत भाग ऐसे व्यक्तियो का होता है जिन्हे असामान्य कहा जाता है। इनका व्यक्तित्व असगठित, दूषित एव असामाजिक होता है। इसी प्रकार 10 प्रतिशत भाग प्रतिभाशाली व्यक्तियो का होता है, जो सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान, कुशाग्र, सामाजिक अभियोजन, सगठित व्यक्तित्व वाले होते हैं। इन्ही श्रेष्ठताओ के कारण उनका समाज मे एक विशेष स्थान होता है। 80 प्रतिशत भाग सामान्य व्यक्तियो का होता है। इनका सामाजिक समायोजन ठीक होता है।

(र) सांस्कृतिक दृष्टिकोण (Cultural Viewpoint)—रोजेन व ग्रेगरी ने इस दृष्टिकोण को 'प्रचलित सामाजिक व्यवस्था से विरोध' (*Social Nonconformity*) के नाम से सम्बोधित किया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार जो व्यक्ति अपनी सस्कृति के नियमो, मान्यताओ एव आदर्शो को स्वीकार करते हुए कार्य करता है, वह सामान्य है तथा इसके विपरीत कार्य करने वाला व्यक्ति असामान्य है। लेकिन यह दृष्टिकोण भी अनेक दोषो से युक्त है, तथा—

(1) प्रत्येक समाज मे एक भिन्न सस्कृति को मान्यता मिली रहती है। ऐसा कदापि सम्भव नही है कि प्रत्येक देश व समाज मे एक ही प्रकार की सस्कृति हो। एक बात एक समाज को मान्य होती है तो वही दूसरे समाज मे अमान्य होती है। ऐसी अवस्था मे किसको असामान्यता का आधार माना जाय!

(2) सस्कृति समय के साथ ही साथ परिवर्तित होती रहती है, उदाहरणस्वरूप, अगर प्राचीन सस्कृति एव आधुनिक सस्कृति मे अन्तर ज्ञात किया जाय तो हमे काफी परिवर्तन दिखलाई पडेगा, उदाहरणार्थ, प्राचीन समय मे सती-प्रथा मान्य थी लेकिन आज कानूनी रूप से अपराध है। अत इस मत को मानने मे यह प्रमुख कठिनाई है कि सस्कृति की कसौटी क्या मानी जाय। इसलिए यह दृष्टिकोण सन्देहास्पद है।

(ल) दैहिक दृष्टिकोण (Physiological Viewpoint)—दैहिक रूप से आकार, लम्बाई-चौड़ाई व ऊँचाई आदि के आधार पर सामान्य व असामान्य का निर्धारण किया जाता है। यह दृष्टिकोण कुछ सीमा तक तो ठीक है क्योंकि सात फीट के दीर्घकाय या तीन फीट के लघुकाय (बोने) व्यक्ति को हम असामान्य ही कहेंगे। परन्तु यह दृष्टिकोण भी एकांगी है। क्योंकि केवल दैहिक प्रतिक्रियाओ का

सामान्य व्यक्तियो की प्रतिक्रियाओ की तरह न होना असामान्यता का एकमात्र लक्षण नही माना जा सकता ।

(ब) व्यक्तिगत परिपक्व दृष्टिकोण (Personal Mature Viewpoint)—कर ने इस दृष्टिकोण को 'विषयगत रूप' (subjective model) के नाम से धित किया है । उनके अनुसार अगर एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियो मे व्यक्तिगत य मे समान है तो वह सामान्य है और अगर वह अपने कार्यो या चिन्तनो मे न्य व्यक्तियो की तुलना मे बहुत अधिक अन्तर रखता है तो वह असामान्य है । इस के अनुसार प्रत्येक आयु-स्तर पर एक विशेष व्यवहार की आशा की जाती । जो व्यक्ति अपने आयु-स्तर के हिसाब से व्यवहार प्रकट करता है, वह व्यक्ति न्य कहलायेगा और अगर वह आयु-स्तर के अनुरूप व्यवहार न करे तो वह सामान्य कहलायेगा । जैसे एक वयस्क व्यक्ति बच्चो की तरह व्यवहार करे तो वह न्य कहलायेगा ।

(प) व्याधिकीय दृष्टिकोण (Pathological Viewpoint)—इस दृष्टिकोण अनुसार असामान्य व्यक्ति वह है जो किसी न किसी प्रकार की मानसिक व्याधि से ीडित है । मानसिक रोगग्रस्त व्यक्ति का व्यवहार सामान्य व्यक्ति के व्यवहार से भन्न होता है ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिको के अनुसार सामान्य व असामान्य मे मात्रा का न्तर होता है । यह बात इस दृष्टिकोण मे लागू होती है । यह सामान्य अनुभव की है कि हम सभी किसी न किसी प्रकार की मानसिक व्याधि से ग्रस्त होते हैं पर व इनकी तीव्रता मे वृद्धि हो जाती है तब यही असामान्यता मे परिवर्तित हो जाती , उदाहरणस्वरूप, प्रत्येक व्यक्ति मे स्मरण के तत्त्व विद्यमान होते हैं लेकिन गात्मक कमजोरी (emotional weak) होने पर इसकी मात्रा मे अन्तर हो है ।

आधुनिक मत की महत्ता के पक्ष में तर्क
(Comments for Importance of Modern Concepts)

ब्राउन ने अपने मत की महत्ता को तर्क-युक्त बताते हुए 3 तर्क प्रस्तुत किए —(i) सैद्धान्तिक, (ii) क्रियात्मक या प्रयोगात्मक एव (iii) सास्कृतिक ।

"... ...normality is a personal judgement on the part of each individual. The judgement is made by establishing oneself as the standard of comparison If other people are similar to ourselves, we are likely to consider them normal. If they are sufficiently different from ourselves by deviating in their patterns of action and thinking, it is probable that we would consider them abnormal."—Kisker *Ibid*, p. 3.

(1) सैद्धान्तिक (Theoretical)—विभिन्न मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानो के माध्यम से यह स्पष्ट हो गया है कि सामान्य क्रियाओ का घटा या बढा रूप ही असामान्य मानसिक प्रक्रियायें है। दोनो प्रकार के व्यवहारो से एक-दूसरे के लिए निष्कर्ष निकाले जा सकते है। इसका यह अर्थ है कि सामान्य व्यक्तियो पर अध्ययन करके हम यह ज्ञात कर सकते है कि असामान्यता से सम्बन्धित ज्ञान का स्वरूप किस प्रकार होगा और असामान्यता व्यक्तियो पर प्रयोग करके सामान्य सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किये जा सकते है। इस प्रकार असामान्यता को सामान्यता से पृथक नही किया जा सकता।

(2) क्रियात्मक या प्रयोगात्मक (Practical)—ब्राउन के अनुसार असामान्यता का आधुनिक मत व्यावहारिक क्रियात्मक या प्रयोगात्मक है। क्योंकि असामान्यता व सामान्यता मे मात्रात्मक भिन्नता है, प्रकार की दृष्टि से कोई अन्तर नही है—इस कथन की सत्यता की जाँच हम व्यावहारिक दृष्टान्तो से कर सकते है। ब्राउन के अनुसार, असामान्य व्यक्तियो को न केवल सामान्य ही बनाया जा सकता बल्कि सामान्य व्यक्तियो को प्रतिभा-सम्पन्न क्षेत्र मे भी प्रवेश कराया जा सकता है। उसे आज से कई वर्ष पूर्व यह मान्यता थी कि जो व्यक्ति मानसिक सन्तुलन खो बैठा हो, पुन ठीक नही किया जा सकता। परन्तु आधुनिक युग मे ऐसी अनेक चिकित्सा-विधियाँ उपलब्ध है जिनसे असामान्य व्यक्ति को पूर्णत सामान्य बनाया जा सकता है अत आधुनिक मत व्यावहारिक है।

(3) सांस्कृतिक (Cultural)—असामान्य का आधुनिक दृष्टिकोण मे सास्कृतिक तर्क भी निहित है। इस दृष्टिकोण से यह समझने मे सहायता प्राप्त हुई है कि रहस्यवादी क्षेत्र के अन्तर्गत पागलपन व प्रतिभा नही आते। मानव प्रगति के इतिहास मे प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा मानव प्रगति के सम्बन्ध मे अगर कुछ कहना है तो मानव प्रकृति पर पडने वाले वैज्ञानिक व दार्शनिक प्रभाव की जानकारी करनी पडेगी।

सामान्यता व असामान्यता के मूल्यांकन हेतु पाँच मुख्य आधार[1]

(1) मनोवैज्ञानिक क्रियाओ की कार्यकुशलता
(Proficiency of Psychological Functioning)
Inadequate.......................... Superior
Impaired .... Effective
Disordered .... Integrated

(2) सामाजिक कार्यों की विशेषता
(Quality of Social Functioning)
Inadequate .... Superior
Egocentric .... Socially Concerned
Discordant ....Harmonious

1. Page, J. D.: *Psychopathology*: The Science of Understnding Deviance, 1975, p. 54.

(3) ऐच्छिक नियन्त्रण की श्रेणी या तीव्रता
(Degree of Voluntary Control)

Uncontrolled........	.... Controlled
Unconscious ..	... .Conscious
Rigid....	.. . . Flexible
Inhibited.... .	.... Spontaneous

(4) सामाजिक दृष्टि से मूल्यांकन
(Society Evaluation)

Unacceptable	.... Loudable
Liability...	Asset
Disruptive	....Satisfying
Threatening	Beneficial

(5) व्यक्तिगत दृष्टि से मूल्यांकन
(Individual's Evaluation)

Unacceptable....	.... Gratifying
Liability ..	... ... Asset
Distressing ...	... Satisfying
Threatening	Comforting

असामान्य मनोविज्ञान की विषय-सामग्री
(Subject-matter of Abnormal Psychology)

प्रो० सिंह के मतानुसार—असामान्य मनोविज्ञान, " एक प्रत्यक्ष विज्ञान (Positive Science) है जो पर्यावरण से सम्बद्ध व्यक्ति की असामान्य अनुभूतियो व व्यवहारो का अध्ययन करता है।"[1] यह परिभाषा असामान्य मनोविज्ञान की विषय-सामग्री मे निम्नाकित बातो को सम्मिलित करती है—

(1) असामान्य व्यक्ति के पर्यावरण का अध्ययन—असामान्य मनोविज्ञान असामान्य व्यक्ति का तो अध्ययन कराता ही है परन्तु असामान्य व्यक्ति को समग्र रूप से समझने के लिए पर्यावरण का भी अध्ययन करता है। पर्यावरण के अन्तर्गत असामान्य व्यक्ति के चारो ओर की परिस्थितियाँ, वस्तुएँ तथा उसकी वाह्य एव आन्तरिक स्थितियाँ आदि आ जाती है, जिनको असामान्य मनोविज्ञान अपने अध्ययन की सामग्री मानता है।

(2) असामान्य अनुभूतियो का अध्ययन—व्यक्ति परिस्थितियो के प्रति जो

---

1 "Abnormal Psychology is a positive science which studies the abnormal experiences and behaviour of the individual in his environment" —Singh, S. *Abnormal Psychology* (Hindi) Bharati Bhawan, 1969, p. 42.

मानसिक प्रतिक्रिया करता है, उसे अनुभूति कहते हैं। असामान्य मनोविज्ञान मुख्य रूप से असामान्य अनुभूतियो का अध्ययन करता है। ध्यान रहे, ये अनुभूतियाँ परिस्थिति के विपरित होती है जिसके प्रमुख उदाहरण—सुखद परिस्थितियो मे दु:ख व निराशा का अनुभव होना आदि है।

(3) **असामान्य व्यवहारों का अध्ययन**—जिन क्रियाओ का सम्बन्ध दोषपूर्ण समायोजन से होता है, उसे असामान्य व्यवहार कहते हैं। यह आन्तरिक व वाह्य दोनो ही हो सकते है। असामान्य व्यवहारो को निम्नांकित तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है—

(अ) वे व्यवहार जो कुसमायोजन उत्पन्न करते है।
(ब) वे व्यवहार जिनमे कुसमायोजन के लक्षण विद्यमान होते है।
(स) वे व्यवहार जो कुसमायोजन के ही परिणामस्वरूप होते है।

प्रो० सिंह ने अपनी परिभाषा मे एक तथ्य को स्वीकार नही किया है। वह यह है कि जहाँ एक तरफ असामान्य मनोविज्ञान असामान्य व्यक्ति, उसके पर्यावरण, असामान्य अनुभूति व व्यवहार का अध्ययन करता है, वही दूसरी ओर इनको पूर्ण रूप से समझने के लिए यह भी अध्ययन करता है, कि कौन सा-व्यक्ति सामान्य है, उसमे कौन-कौन सी ऐसी विशेषताएँ है जिनसे कि वह पर्यावरण की विभिन्न परिस्थितियो के उचित प्रकार से व्यवहार या क्रिया कर लेता है, जबकि एक असामान्य व्यक्ति नही कर पाता है। ध्यान रहे, असामान्य मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य असामान्य व्यवहार के कारण, लक्षण, नियन्त्रण एव उनका निराकरण करना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ती तब ही सम्भव हो सकती है जबकि मनोविज्ञान असामान्य व्यक्तियो के साथ ही साथ सामान्य व्यक्तियो का भी अध्ययन करे। वास्तव मे असामान्य मनोविज्ञान असामान्य व सामान्य—दोनो का अध्ययन करता है। वह असामान्यता के सम्बन्ध मे यह कदापि स्वीकार नही करता कि सामान्य व असामान्य मे वर्ग का अन्तर है। वह यह मानकर चलता है कि सामान्य व असामान्य व्यवहारो मे तो केवल अशो (degree) का ही अन्तर है। असामान्य व्यक्ति सामान्य रूप से अपने पर्यावरण के साथ व्यवहार कर सकता है। वह तो मन (mind) के गतिक पक्षो (dynamic aspects) का अध्ययन करता है, वह अनुभूतियो के तीन वर्गों – चेतन, अवचेतन व अचेतन (sub consious' or for-concious and unconscious) का अध्ययन करता हैं। दूसरे शब्दो मे, असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन की मुख्य सामग्री का केन्द्र तो असामान्य व्यक्ति, उनकी अनुभूतियाँ व व्यवहार है, परन्तु इन्हे पूर्ण रूप से समझने के लिए, असामान्यता का निदान या निराकरण करने के लिए इसकी विषय-सामग्री मे सामान्य व्यक्ति व उसके व्यवहार के अध्ययन को भी सम्मिलित किया गया है।

असामान्य व्यवहार का मूलाधार अचेतन है। असामान्य मनोविज्ञान मे यही कारण है कि हम विस्तृत रूप से अचेतन का अध्ययन करते है। मुख्य रूप से अचेतन

की क्रिया-विधि, उसका चेतन मन व व्यवहार से सम्बन्ध तथा प्रभाव, रचना, उसके अस्तित्व का प्रमाण, उसकी क्रियाओ के फलस्वरूप प्रतिदिन जीवन मे उत्पन्न होने वाले विकारो का अध्ययन असामान्य मनोविज्ञान का मुख्य विषय है। इसके अतिरिक्त इसमे विभिन्न प्रकार की मनोविक्षिप्तता (Psychoses), मनस्ताप (Neurosis), लिंग-

चित्र 8—असामान्य मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्र
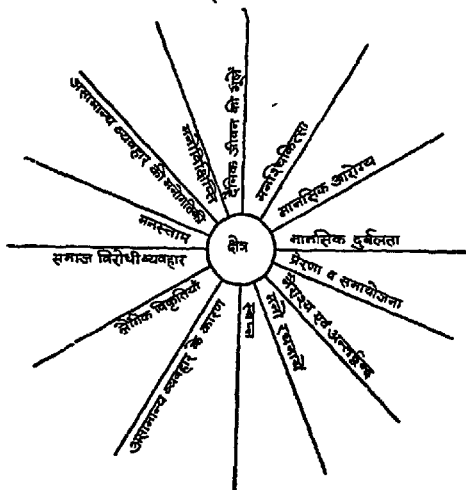
सम्बन्धी अपराध (Sex-crime) आदि से सम्बन्धित मानसिक विकृतियो तथा उनकी व्याख्या, मनश्चिकित्सा (Psychotherapy) आदि का भी अध्ययन किया जाता है। अन्त मे, असामान्य मनोविज्ञान की विषय-सामग्री का सम्बन्ध उसके विभिन्न क्षेत्रो से होता है। असामान्य मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो को चित्र—8 मे प्रदर्शित किया गया है।

असामान्य मनोविज्ञान की समस्याएँ
(Problems of Abnormal Psychology)

हमे ज्ञात है कि असामान्य मनोविज्ञान असामान्य क्रियाओ का अध्ययन करता है। अत उसकी समस्याओ का मुख्य सम्बन्ध असामान्य व्यवहार व अनुभूतियो से होता है। दूसरे शब्दो मे, असामान्य मनोविज्ञान की मुख्य समस्याओ का केन्द्र व्यवहार के निम्नलिखित प्रकारो पर आधारित होता है—

(अ) वह व्यवहार जो कुसमायोजन (maladjustment) उत्पन्न करता है।

(ब) वह व्यवहार जिसमे कुसमायोजन के लक्षण (symptoms) विद्यमान होते हैं।

(स) वह व्यवहार जो कुसमायोजन के परिणामस्वरूप ही होते है—

व्यवहार के इन प्रकारों मे निम्नांकित समस्याएँ उत्पन्न होती है :—

(अ) कौन-कौन-से व्यवहारो को इस श्रेणी मे रखा जाय जिनसे कुसमायोजन उत्पन्न होता है ?

(ब) कुसमायोजन व्यवहार के मुख्य-मुख्य लक्षण कौन-कौन-से हैं ?

(स) उन व्यवहार-प्रकारों का पता लगाना जो कुसमायोजन के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होते है ?

असामान्य मनोविज्ञान की सम्पूर्ण विषय-सामग्री इन तीन प्रमुख समस्याओ पर केन्द्रित रहती है ।

असामान्यता के प्रकार
(Forms of Abnormality)

वैसे तो हम इस पुस्तक मे विभिन्न प्रकार की असामान्यताओ की व्याख्या करेंगे परन्तु यहाँ उनके वर्गीकरण को सक्षेप मे जानना आवश्यक है । जैसाकि हम जानते हैं, असामान्यता के वितरण मे निरन्तरता होती है जिसके कारण असामान्य व्यवहार को स्पष्ट एव निश्चित प्रकारो मे बाँटना एक कठिन कार्य है । परन्तु इस दिशा मे विद्वानो ने कुछ उल्लेखनीय कार्य किया । सक्षेप में, यहाँ उनका वर्गीकरण करना आवश्यक प्रतीत होता है ।

(1) अमेरिकन मानसोपचार-शास्त्र संस्था के अनुसार
(According to American Psychiatric Association)

सन् 1952 मे अमेरिकन मानसोपचार-शास्त्र सस्था (*APA*) ने असामान्य विकृतियो का विभाजन निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है—

(अ) **मनोजात उद्भव विकृतियाँ** (Disorders of Psychogenic Origin)—इस वर्ग मे वे विकृतियाँ आती है जिनमे निश्चित व स्पष्ट शारीरिक कारण या मस्तिष्कीय विकृति-विज्ञान (brain pathology) के लक्षण नही दिखाई पड़ते । इस वर्ग मे प्रमुख रूप से निम्नलिखित विकृतियाँ आती हैं—

(1) परिस्थितिजन्य अस्थायी व्यक्तित्व-विकृतियाँ (Transient situational personality disorders);

(2) मनस्ताप विकृतियाँ (Psycho-neurotic disorders)

(3) मनोदैहिक स्वत व अभ्यन्तराग विकृतियाँ (Psycho-physiologic autonomic and viscaral disorders),

(4) कार्यपरक मनोविक्षिप्तता (Functional psychoses),

(5) चारित्रिक या व्यक्तित्व विकृतियाँ (Personality disorders or Character disorders) ।

(ब) आंगिक मस्तिष्क विक्षोभ से उत्पन्न विकृतियाँ (Disorders associated with organic brain disturbance)—इस श्रेणी मे वे विकृतियाँ आती है जिनमे आगिक कारण स्पष्ट रूप से दिखाई पडते हैं। मुख्य रूप से इसमे दो विकृतियाँ आती है—

(1) तीव्र मस्तिष्कीय विकृतियाँ (Acute brain disorders)।

(2) दीर्घकालिक मस्तिष्कीय विकृतियाँ (Chronic brain disorders)

(स) मानसिक मन्दन या मानसिक दुर्बलता (Mental retardation or Mental deficiency)—असामान्यता की इस श्रेणी मे हल्का या तीव्र मानसिक मन्दन या मानसिक दुर्बलता (जिनमे बुद्धि सम्बन्धी दोष विद्यमान होते है) जैसी मानसिक विकृतियाँ आती है।

(2) केमरॉन के अनुसार
(According to Cameron)

केमरॉन के अनुसार—"मनोविकृति विज्ञान बहुआयाम सातत्यक है जिसे हम विवेचन करने तथा समझने के लिए सम्बन्धित तत्त्व समूहो में विभाजित करते हैं।"[1] केमरॉन ने मुख्य रूप से मनोविकृति विज्ञान को चौदह मुख्य सलक्षणो (syndromes) या समूहो मे वर्गीकृत करके अध्ययन किया है—

(अ) मनस्ताप (Neurosis)

केमरॉन ने मनस्ताप सलक्षण के अन्तर्गत निम्नलिखित विकृतियाँ रखी है—

(1) चिन्ता प्रतिक्रियाएँ (Anxiety reactions),

(2) दुर्भीति या भय प्रतिक्रियाएँ (Phobic reactions),

(3) रूपान्तरित प्रतिक्रियाएँ (Conversion reactions),

(4) मनोविच्छेदी प्रतिक्रियाएँ (Dissociative reactions),

(5) मनोग्रस्तता-बाध्यता प्रतिक्रियाएँ (Obsessive-compulsive reactions),

(6) मनस्तप विषाद प्रतिक्रियाएँ (Neurotic-depressive reactions)।

(ब) मनोविक्षिप्तता (Psychoses)

(7) सभ्रान्तिवत् प्रतिक्रियाएँ (Paranoid reactions),

---

1. "Psychopathology is a multidimensional continuum We have to break it up into groups of related phenomena in order to be able to handle it and particularly to discuss it"—Cameron, Norman · *Personality Development and Psychopathology—A Dynamic Approach*, 1969 (IInd Reprint), p. 17.

(8) मनोविक्षिप्त विषाद प्रतिक्रियाएँ (Psychotic-depressive reactions)
(9) उत्साह-विषाद प्रतिक्रियाएँ (Manic reactions or manic-depressive cycles),
(10) मनोविदलता सम्बन्धी प्रतिक्रियाएँ (Schizophrenic reactions),
(11) प्रत्यावर्तनकालीन मनोविक्षिप्त प्रतिक्रियाएँ (Involutional psychotic reactions);

(स) अन्य मुख्य विकृतियाँ (Other Major Disorders)
(12) व्यक्तित्व विकृतियाँ (Personality disorders),
(13) मनोदैहिक विकृतियाँ (Psychosomatic disorders),
(14) चारित्रिक विकृतियाँ (Character disorders)।

(3) सामान्य रूप से असामान्यता के प्रकार
(According to General View)

असामान्य व्यवहार को मुख्य रूप से निम्नांकित भागो में बाँटा जा सकता है—
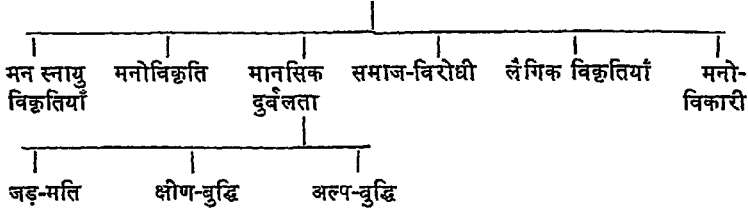
इन सब असामान्य व्यवहारो की विस्तृत व्याख्या हम आगे करेंगे लेकिन यहाँ हम सक्षेप मे इसके सम्बन्ध मे व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

(1) **मनःस्नायुविकृतियाँ** (Psychoneurosis)—इस प्रकार की विकृति मे मनुष्य कठिन परिस्थितियो मे असन्तुलित एवं अस्त-व्यस्त हो जाता है। यह एक ऐसा मानसिक रोग है जिसमे तीव्रता व उग्रता का अभाव रहता है। इसमे व्यक्ति को कष्ट या असुविधा तो होती है परन्तु उसके सामाजिक समायोजन (social adjustment) मे इनका कोई प्रभाव नही पडता है। इन विकृतियो के लक्षण चिन्तन, सवेगात्मक अनुभव, स्मरण, कल्पना आदि मे दृष्टिगोचर होते है। इस प्रकार की विकृति मे शारीरिक लक्षण भी दिखाई पडते है जो कि सवेगात्मक व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप होते है। इसमे रोगी कभी तो विना किसी कारण के डरने लगता है, थकावट या सिर-दर्द का अनुभव करता है तो कभी आशका का शिकार हो जाता है। इस प्रकार के लक्षण सामान्य व्यक्तियो मे भी पाये जाते हैं लेकिन मन स्नायुविकृति से ग्रस्त व्यक्तियो मे इनकी मात्रा (degree) मे अधिकता होती है। उदाहरणस्वरूप, सामान्य

व्यक्ति की यह आशका—'उसे कोई पुकार रहा है', उस समय समाप्त हो जाती है जिस समय वह बाहर आकर देख लेता है। लेकिन मन स्नायुविकृति से ग्रस्त व्यक्ति बाहर देखने के बाद कि कोई भी पुकार नही रहा है, इस सन्देह मे ही रहता है कि कोई मुझे पुकार ही रहा है। मनु स्नायु-विकृतियाँ मुख्यत मन श्रान्ति (Neurasthenia), चिन्ता उन्माद (Anxiety Hysteria), उन्माद (Hysteria), बाध्यताएँ (Obessions) आदि है।

(2) **मनोविकृति** (Psychoses)—मनोविकृति मे मन स्नायुविकृति की अपेक्षा अधिक तीव्रता रहती है। मनोविकृति मे मानसिक सन्तुलन बिगड जाने से व्यक्ति का सामाजिक अभियोजन भी असन्तुलित हो जाता है। इसमे रोगी के व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है। उसके व्यवहार मे इतना दोषपूर्ण उतार-चढाव आ जाता है कि दूसरे लोग उसे पागल कहने लगते हैं। रोगी को समाज एव वातावरण का ध्यान नही रहता। ये व्यक्ति मुख्यत विभ्रम (hallucinations) व व्यामोह (delusions) के शिकार हो जाते है। मानसिक सन्तुलन बिगड जाता है, रोगी कल्पना की उडानो मे उडता रहता है। कभी अपने को हिटलर, गाँधी, नेहरू या शास्त्री समझने लगता है तो कभी वह यह समझता है कि यह ससार मेरे विरुद्ध है। इस प्रकार की विकृतियो मे मनोविदलता (Schizophrenia), स्थिर व्यामोह (Paranoia), उत्साह-विषाद मनोविकृति (Manic-depressive psychoses) आदि प्रमुख है।

(3) **मानसिक दुर्बलता** (Mental Deficiency)—इसे दुर्बल बुद्धि या मन्द-**बुद्धि** (feeble-msndness) भी कहते है। इस प्रकार की असामान्यता मे व्यक्ति के मन (mind) का एक स्तर पर विकास रुक जाता है। मानसिक विकास अवरुद्ध होने के कारण उसमे बुद्धि की भी कमी हो जाती है। इस प्रकार की बुद्धिहीनता के निम्नाकित तीन प्रकार प्रमुख है—

(अ) **जड़मति** (Idiot)—इसमे बुद्धि की बहुत ही कमी होती है। इस प्रकार के बुद्धिहीन व्यक्ति न तो अपनी रक्षा ही कर पाते हैं और न दैनिक क्रियाओ को ही ठीक ढग से कर पाते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति नि सकोच पानी मे छलाग लगा सकते हैं। इनकी भाषा का विकास भी ठीक ढग से नही होता।

(ब) **क्षीण-बुद्धि** (Imbecile)—इस प्रकार के बुद्धिहीन व्यक्तियो मे जडमति की अपेक्षा अधिक बुद्धि होती है। सामान्य खतरो से अपना बचाव तथा सामान्य कार्यो को ये व्यक्ति आसानी से सीख लेते हैं। इन्हे बोलने की अपेक्षा लिखना, अत्यधिक कम आता है।

(स) **अल्प-बुद्धि** (Morons)—इनमे सभी प्रकार के बुद्धिहीन व्यक्तियो से अधिक बुद्धि होती है। ये व्यक्ति कुछ कार्यो को आसानी से कर लेते है परन्तु नये एव जटिल कार्यों को सफलता के साथ नही कर पाते। इस प्रकार के हीन बुद्धि वाले व्यक्तियो को बडी आसानी से गलत कार्यों मे लगाया जा सकता है, जैसे—अल्प-बुद्धि वाली लड़कियाँ आसानी से व्यभिचार के रास्ते पर लाई जा सकती हैं तथा लड़को

को आसानी से चोरी करना सिखाया जाता है। इनको उपचार एव निर्देशन के माध्यम से ठीक रास्ते पर लाया जा सकता है।

(4) **समाज-विरोधी (Anti-social)**—इस प्रकार की असामान्यता मे वे व्यक्ति आते है जो समाज-विरोधी व्यवहार को प्रकट करते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुधा दो प्रकार के होते है—(अ) कानून के उल्लंघन से दडित व्यक्ति, (ब) वे लोग जिनका व्यक्तित्व मनोविकृत होता है। आयु के आधार पर कानून का उल्लघन करने वाले व्यक्तियो को भी दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—बाल अपराधी (Juvenile Delinquent) तथा अपराधी (Criminal)। अपराध का मुख्य कारण या तो यह होता है कि व्यक्ति मानसिक दुर्बल हो या मानसिक विकृतियो (Mental Disorders) से पीड़ित हो। अपराध के मुख्य कारण—वशानुक्रम, सामाजिक वातावरण, मानसिक रोग तथा दूषित शिक्षा-प्रणाली हो सकती है।

(5) **लैंगिक विकृतियाँ (Sexual Disorders)**—जब व्यक्ति अपनी काम-इच्छा को सामान्य रूप से न कर असामान्य रूप से करता है तो उसके इस प्रकार के व्यवहार को लैंगिक असामान्य व्यवहार की सज्ञा दी जाती है। एक व्यक्ति के मनोलैंगिक विकास (Psychosexual development) मे अगर किसी प्रकार की असामान्यता आ जाती है तो व्यक्ति अपनी काम-इच्छा की सन्तुष्टि सामान्य रूप से न करके असामान्य रूप से करता है।

फ्रायड (Freud) ने अनेक लैंगिक विकृतियो का वर्णन किया है। जैसे परपीड़न (sadism) से पीड़ित व्यक्ति अपने प्रेमपात्र को कष्ट प्रदान कर कामानन्द (sexual pleasure) प्राप्त करता है। वे कभी-कभी तो अपनी जननेन्द्रिय या स्तन को दाँत से काट लेते है या कभी-कभी अधिक उत्तेजित होकर प्रेमपात्र की हत्या भी कर डालते है। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति समजाति लैंगिकता (homo-sexuality) के शिकार हो जाते है। समजाति लैंगिकता से तात्पर्य है। कि पुरुष, पुरुष की ही गुदा (anus) का व्यवहार करके व स्त्री, स्त्री की योनि (vagina) से अपनी योनि को रगड कर कामानन्द प्राप्त करते है। स्वपीडन (masochism) भी एक प्रकार की लैंगिक विकृति है जिसमे कष्ट पहुँचा कर व्यक्ति अपनी कामेच्छा की पूर्ति करता है।

(6) **मनोविकारी व्यक्तित्व (Psychopathic Personality)**—कुछ व्यक्ति इस प्रकार का व्यवहार करते हैं जो न तो सामान्य व्यवहार के अनुकूल ही होता है और न ही उन्हे मन स्नायुविकृति या मनोविकृति से पीड़ित कहा जा सकता है। अत इस प्रकार के व्यक्तियो को एक नई श्रेणी मे रखा जाता है, जिसे मनोविकारी व्यक्तित्व कहते है।

असामान्य मनोविज्ञान एवं विभिन्न व्यवसाय
(Abnormal Psychology and Different Occupations)

असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र को पूर्ण रूप से समझने के लिए यह समझना

आवश्यक है कि मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओ से सम्बद्ध अन्य व्यवसायो से असामान्य मनोविज्ञान का क्या सम्वन्ध है। मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो व्यवहार की अनेक विशेषताओ (specialities) का अध्ययन करता है। असामान्य मनोविज्ञान भी मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है। परन्तु इसके अन्तर्गत समस्त मानव-व्यवहार का अध्ययन नही किया जाता, वल्कि एक विशेप वर्ग मे आने वाले व्यक्तियो के ही क्रिया-कलापो का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार यह सामान्य मनोविज्ञान का ही एक पक्ष है जो व्यवहार तथा अनुभव मे घटित होने वाले विचलनो या व्यवहार के विकारो का अध्ययन करता है। इससे अन्य व्यवसायो को भी सहायता मिलती है। नीचे हम सक्षेप मे इस सम्बन्ध मे व्याख्या प्रस्तुत करेंगे

(1) **मनोरोगविज्ञान** (Psychiatry)—मनोरोग-चिकित्सक (psychiatrist) वह चिकित्सक होता है जो मानसिक रूप से ग्रस्त व्यक्तियो का इलाज करता है तथा विशेष रूप से औपधि-विज्ञान (medicine) मे प्रशिक्षित होता है। मनोरोग-चिकित्सक एम० डी० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् लगभग पाँच वर्ष के मनोविकार-विज्ञान मे प्रशिक्षण प्राप्त करता है। इस प्रकार का चिकित्सक अस्पताल मे भर्ती होने वाले रोगियो का परीक्षण व साक्षात्कार करता है तथा रोगी का इलाज किस प्रकार चलना चाहिए, यह भी वताता है। जव वह यह अनुभव करता है कि रोगी ठीक है तव वह आवश्यक कार्यवाही करता है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मनोरोग-चिकित्सक का परामर्श तभी लिया जाता है जवकि रोगी का व्यक्तित्व तीव्र रूप से विघटित हो जाता है तथा इसका कोई आगिक कारण नही होता परन्तु रोग की तीव्रता मे अत्यधिक वृद्धि के कारण अस्पताल की देखरेख आवश्यक हो जाती है। यहाँ यह वताना उचित प्रतीत होता है कि मनश्चिकित्सक (psychotherapist) व तन्त्रिमनश्चिकित्सक (neuropsychiatrist) मे अन्तर है। जव मनोरोग-चिकित्सक इलाज के लिए भौतिक विधियो का सहारा लेता है तव उसको तन्त्रिमनश्चिकित्सक (neuropsychiatrist) की सज्ञा दी जाती है और जव इलाज मे मनोवैज्ञानिक विधियो का सहारा लिया जाता है, तव उसे मानश्चिकित्सक कहते हैं।

(2) **नैदानिक मनोविज्ञान** (Clinical Psychology)—इस प्रकार के मनोविज्ञानी को भी प्रशिक्षण लेना पडता है। इस प्रशिक्षण की अवधि चार वर्ष होती हैं, तत्पश्चात् किसी निदानशाला या अस्पताल मे स्थानवद्ध (internship) रहना पडता है। इसके वाद डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करनी होती है। इस प्रकार के मनोविज्ञानी को विश्वविद्यालय, कारावास, वाल-निर्देशन निदानशाला, मनश्चिकित्सीय अस्पताल (psychiatric hospital), किशोर न्यायालय-निदानशाला (Juvenile court clinic), नर्सरी स्कूल व शोधक सस्था (correctional institute) आदि स्थानो पर कार्य करना पडता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक के प्राय 3 कार्य होते हैं— (1) निदान, (2) चिकित्सा, व (3) अनुसन्धान। इन कार्यो के सम्पादन के लिए वह व्यवहार व व्यक्तित्व का उचित मूल्याकन करता है। इस मूल्याकन के लिए वह

विशिष्ट परीक्षण प्रविधियो का उपयोग करता है। वह प्रदत्तो को तीन स्रोतो से प्राप्त करता है—व्यक्ति-इतिहास, मनोवैज्ञानिक परीक्षण तथा नैदानिक साक्षात्कार आदि। नैदानिक मनोविज्ञानी चिकित्सा के क्षेत्र मे अनेक कार्य करता है। इस प्रकार वह निदान-विशेपज्ञ (diagnostician) व चिकित्सा के कार्य के अतिरिक्त सम्वन्धित क्षेत्र मे अनुसन्धान भी करता है।

(3) **मनोरोग-चिकित्सीय सामाजिक कार्य** (Psychiatric Social Work)—इस प्रकार के कार्य को करने के लिए 'मास्टर ऑफ सोशल वर्क' की डिग्री लेनी पड़ती है। इस प्रकार के कार्यकर्त्ता को असामान्य मनोविज्ञान, निदान व इलाज का ज्ञान होता है जिसका उपयोग व मानसिक रोगियो के उपचार में करता है। वह रोगों को नवीन स्थिति से समायोजन करने मे सहायता प्रदान करता है तथा मनोरोग चिकित्सक को सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरण सम्वन्धी सूचना देता है। वह रोगी के परिवार में रोग के कारण उत्पन्न प्रतिवल व खिचाव (strains) को कम करने मे भी सहायता देता है।

(4) **मनोविकार-उपचर्या** (Psychiatric Nursing)—नर्स या उपचारिका को भी असामान्य मनोविज्ञान की जानकारी होनी चाहिए। क्योंकि उसे वरावर व काफी समय तक रोगी के सम्पर्क मे रहना पड़ता है, अतः उसे विविध प्रकार की बीमारियो, नैदानिक प्रक्रियाओं व उपचार विधियो का ज्ञान होना चाहिए।

(5) **अध्यापन व्यवसाय** (Teaching Profession)—असामान्य मनोविज्ञान की जानकारी से अध्यापको को भी लाभ प्राप्त होता है। एक कक्षा में एक समान बुद्धि या योग्यता वाले विद्यार्थी नही होते अपितु कुछ प्रखर-बुद्धि के होते हैं तो कुछ मन्द बुद्धि के और कुछ आक्रमणकारी व विरोधी व्यवहार का प्रदर्शन करने वाले। अगर उसे असामान्य मनोविज्ञान की जानकारी होगी तो वह विद्यार्थियो के व्यक्तित्व-विकारों की जानकारी कर सकता है तथा उनकी समस्याओं का उचित समाधान कर सकता है। प्राय. यह देखा जाता है कि कॉलेज मे अनेक विद्यार्थी अन्तर्द्वन्द्वों में पड़े रहते है जिनका सम्बन्ध मुख्यत. कामुकता (sexuality) से होता है। इससे कॉलेज पर्यावरण में दो प्रकार के व्यवहार दिखाई पड़ते है—(1) विपमलिंगकामी (hetrosexual) व (2) समलिंगकामी (homosexual)। इस प्रकार के व्यवहारों से अपराध का घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा इससे व्यक्तित्व को न तो स्थिरता प्राप्त होती है और न ही उचित सवेगात्मक सन्तुलन।

(6) **कानूनी व्यवसाय** (Legal Profession)—कानून या न्याय के क्षेत्र में भी असामान्य मनोविज्ञान का महत्त्व है। वकीलो को फौजदारी के मुकद्दमों में अभियोग (prosecution) व बचाव (defence) के लिए अपराधियो के मनोवैज्ञानिक विक्षोभो (psychological disturbance) की जानकारी आवश्यक है, क्योंकि कभी-कभी सवेगात्मक प्रतिवल के कारण व्यक्ति अपराध कर डालता है या आक्रमणकारी व्यवहार का प्रदर्शन करता है। कभी-कभी व्यक्तित्व-विकारों की अभिव्यक्ति

मुकद्दमो के द्वारा होती है। इसकी जानकारी से ही वकील अपने व्यवसाय को सफल वना सकता है।

(7) धर्म व कारोबार (Religion and Business)—प्राचीनकाल से ही धार्मिक आधार पर रोगो का इलाज होता रहा है। धार्मिक सलाह के माध्यम मे अनेक स्त्रियो व पुरुषो को सवेगात्मक सहायता प्राप्त हुई है। सत्सग से आज भी करोडो व्यक्तियो को मानसिक शान्ति प्राप्त हुई है। इस प्रकार के धार्मिक उपवोधन (religious counselling) का आधार प्राय अन्त प्रज्ञात्मक (intuitive) रहा है। आज अनेक पादरी, गुरु व मन्त्री सवेगात्मक विक्षोभ के सम्बन्ध मे तथ्यो की जानकारी प्राप्त करने के लिए मनोविकार-विज्ञान व नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्रो मे पहुँचे हैं। कारोबार व उद्योग के लिए भी असामान्य मनोविज्ञान का काफी महत्त्व है।

ज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध
(Relations to Other Branches of Knowledge)

असामान्य मनोविज्ञान व्यावहारिक मनोविज्ञान की एक शाखा है परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि इसका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व ही नही है। वास्तव मे, असामान्य मनोविज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जिसके पास विशिष्ट एव निश्चित अध्ययन सामग्री उपलब्ध है, भिन्न तथ्यो का क्षेत्र एव अनुसन्धानात्मक पद्धतियाँ है। इतना होने पर भी अगर इसे स्वतन्त्र विज्ञान न माना जाय तो यह विषय के प्रति अन्याय होगा। इस अध्याय मे हम असामान्य मनोविज्ञान के ज्ञान की अन्य शाखाओ के सम्वन्ध मे प्रकाश डालेंगे।

जैसा कि हम जानते हैं कि कोई भी विज्ञान को पूर्णता मिलने मे उसके सम्बन्धित क्षेत्र के विषय-सामग्री व अनुसन्धानो का काफी योगदान रहता है। असामान्य व्यवहारो को भी सही ढग से समझने के लिए अनेक क्षेत्रो के अनुसन्धानो का काफी योगदान रहा है। अत. पूर्ण रूप से असामान्य व्यवहार को समझने के लिए यहाँ यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम मनोविज्ञान (Psychology), मानसोपचार-शास्त्र (Psychiatry), मनोविश्लेपण (Psychoanalysis), चिकित्साविज्ञान (Medicine), मानव-विज्ञान (Anthropology), समाजशास्त्र (Sociology), शिक्षा (Education), कानून (Law), धर्म (Religion), मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान (Mental Hygiene) आदि क्षेत्रो से असामान्य मनोविज्ञान के सम्वन्ध को समझ लें।

(1) मनोविज्ञान
(Psychology)

मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन करता है। असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक शाखा है। व्यवहार मुख्यत दो प्रकार का होता है—सामान्य व असामान्य। मनोविज्ञान मुख्यत सामान्य मानसिक क्रियाओ का अध्ययन करता है जबकि असामान्य मनोविज्ञान असामान्य व्यक्तियो की मानसिक क्रियाओ व व्यवहारो

का अध्ययन करता है। यह कदापि सम्भव नहीं है कि मनोविज्ञान व असामान्य मनोविज्ञान की विषय-सामग्री को अलग-अलग भागों में बाँट कर अध्ययन किया जा सके। वास्तविक दृष्टिकोण तो यह है कि दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। एक ही व्यक्ति दोनों ही का अध्ययन-केन्द्र बन सकता है, क्योंकि एक सामान्य व्यक्ति भी असामान्य हो सकता है तथा एक असामान्य व्यक्ति भी सामान्य बन सकता है।

(2) मानसोपचार-शास्त्र
(Psychiatry)

यह एक प्रकार की चिकित्सा है जिसके चिकित्सक को मानसोपचार-शास्त्री (Psychiatrist) कहते हैं जिनकी प्रमुख विशेषता यह होती है कि ये मानसिक रोगों का उपचार करते हैं। मानसोपचार सैद्धान्तिक नहीं बल्कि व्यावहारिक है। इसका प्रमुख उद्देश्य मानसिक रोगों का उपचार करना है। असामान्य मनोविज्ञान मानसिक रोग की चिकित्सा से सम्बन्धित न होकर केवल सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ही मानसिक रोगियों का अध्ययन करता है। दूसरी ओर मानसोपचार-शास्त्री मानसिक रोगियों के उपचार से सम्बन्धित होता है। लेकिन फिर भी दोनों की विषय-सामग्री की जानकारी से दोनों को ही लाभ पहुँचता है, क्योंकि रोगी को समझे बिना न तो सैद्धान्तिक जानकारी ही ज्ञात हो सकती है और न ही व्यावहारिक जानकारी। वहाँ असामान्य मनोविज्ञान सामान्य व असामान्य में अन्तर कराना सिखाता है वहाँ मानसोपचार-शास्त्र असामान्य व्यक्तियों को फिर से सामान्य बनाने का प्रयत्न करता है। एक मानसोचार-शास्त्र अगर असामान्य मनोविज्ञान का अध्ययन करे तो वह असामान्य व्यक्तियों को आसानी से सामान्य से अलग कर सकता है और असामान्य व्यक्तियों में से भिन्न-भिन्न मानसिक रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों को पहचान सकता है।

जब से आधुनिक मत इस क्षेत्र में आया है तब से साधारण चिकित्सा-विज्ञान एवं मानसोपचार-शास्त्र में एक घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना हो गई है। आधुनिक मत से तात्पर्य है कि मन व शरीर में घनिष्ठ सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में, चिकित्सा के क्षेत्र में यह माना जाने लगा है कि शारीरिक रोगों के मानसिक पहलू और मानसिक रोगों के शारीरिक पहलू होते हैं जिनका उपचार करना आवश्यक है। दूसरे रूप में, अगर रोगी को पूर्ण रूप से ठीक करना है तो उसकी शारीरिक एवं मानसिक (मनोवैज्ञानिक) दोनों प्रकार से चिकित्सा करना आवश्यक है। इस प्रकार मन व शरीर (mind and body) के घनिष्ठ सम्बन्ध को स्वीकार करने से चिकित्सा विज्ञान में एक नये क्षेत्र का जन्म हुआ जिसे मनोदैहिक चिकित्सा विज्ञान कहते हैं। इसके माध्यम से हृदय-विकृति, श्वास-प्रश्वास सम्बन्धी व्यतिक्रम एवं कण्ठ-ग्रन्थि (thyroid gland) से ग्रस्त रोगों का इलाज सरलता से किया जा सकता है।

(3) मनोविश्लेषण
(Psychoanalysis)

मनोविश्लेपण मानसोपचार-शास्त्र की एक विधि है। इस विधि का जन्मदाता

मुख्यत' फ्रायड (Frend) है। इस विधि के माध्यम से रोगी की चिकित्सा की जाती है। रोगी को आराम से बैठाकर कुछ प्रश्नो को पूछा जाता है, रोगी उन प्रश्नो को सुनकर बिना किसी सकोच के उत्तर देता है, इसे मुक्त साहचर्य विधि (Free Association Method) कहते है। मनोविश्लेषण का मनोविज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(4) मानव-विज्ञान

(Anthropology)

असामान्य मनोविज्ञान को मानव-विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धानो से काफी सहायता मिली है। मानव-विज्ञानशास्त्रियो ने अपने अनुसन्धानो के माध्यम से यह ज्ञात किया कि सभी जातियो मे सामान्यता (normality) का एक मानदण्ड नही होता। एक ही व्यवहार या प्रथा एक जाति-विशेष मे वाछनीय व नैतिक है तो दूसरी जाति मे अवाछनीय व अनैतिक मानी जाती है। इस प्रकार के अनुसन्धानो से असामान्यताओ के विश्लेपण मे काफी सहायता मिली है।

(5) शिक्षा

(Education)

बहुत-सी असामान्यताओ का जन्म कथाओ मे होता है। यह कदापि सम्भव नही है कि विद्यालय मे एक समान व्यक्ति ही आये। जहाँ विद्यालय मे सामान्य बालक आते है वहाँ किशोर अपराधी, हीन बुद्धि, असामाजिक, पिछडे हुए आदि बालक भी आते है। अत एक शिक्षक का ध्येय यही नही होता कि वह पाठ्यक्रम को ही पूरा कराये बल्कि उसका उद्देश्य यह भी होता है कि वह इन समस्यात्मक बालको के सामने एक नवीन वातावरण बनाए। यह तब भी सम्भव है जबकि शिक्षक असामान्य मनोविज्ञान की जानकारी करे। शिक्षा का सही अर्थ है कि बालक की सभी शक्तियो का समुचित उपयोग एव विकास हो। यह उद्देश्य तब ही प्राप्त हो सकता है जबकि समस्या-प्रधान बालको की समस्याओ को दूर किया जाय तथा यह बात केवल असामान्य मनोविज्ञान की जानकारी द्वारा सम्भव है।

(6) कानून एवं धर्म

(Law and Religion)

ससार के सभी प्रगतिशील देशो मे यह कानून है कि दण्ड उन्ही व्यक्तियो को दिया जायेगा जो असामान्य या मानसिक रोगी नही होगे तथा असामान्य रोगी को अपराध करने पर दण्ड के स्थान पर उपचार की व्यवस्था की जावेगी। यही कारण है कि आज अदालत मे जो भी अपराधी आता है, अगर वह असामान्य है तो उसके उपचार की व्यवस्था की जाती है। न्यायाधीश को इस प्रकार सामान्य अपराधियो एव असामान्य अपराधियो मे भेद करके ही निर्णय देना पडता है। अत असामान्य मनोविज्ञान की जानकारी न्यायाधीशो के लिए भी आवश्यक है। कानून और असामान्य व्यवहार मे इस प्रकार एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्योकि कानून के क्षेत्र मे असामान्य

व मानसिक रोग से ग्रस्त व्यक्तियो को सामान्य से अलग करने के लिए असामान्य मनोविज्ञान की काफी आवश्यकता पडती है।

प्राचीन काल मे धर्म के आधार पर असामान्य लोगो का इलाज किया जाता था। धर्म पुरोहित मानसिक रोगियो पर अनेक अत्याचार करते थे, उन्हे शारीरिक यातनायें दी जाती थी। इसका कारण उनका यह विश्वास था जिसके आधार पर असामान्य व्यक्ति के अन्दर भूत-प्रेत का निवास होता था और यातना व अन्य अत्या-चारो के माध्यम से तथाकथित भूत-प्रेत भगाया जाता था। लेकिन असामान्य मनो-विज्ञान की प्रगति के साथ ही साथ यह धारणा भी निर्मूल हो गई कि असामान्यता का कारण देवी-देवताओ का प्रकोप है वल्कि असामान्यता का कारण उनके व्यक्तित्व-गुणो मे मात्रा की भिन्नता है। अत रोगियो का उपचार धर्म पुरोहित के द्वारा न होकर मानसिक चिकित्सक के हाथों आ गया। असामान्यता के इस आधुनिक रूप से प्रेरित होकर योरोप मे अनेक धर्म-पुरोहितो ने असामान्य मनोविज्ञान की विशेष शिक्षा प्राप्त की तथा ऐसे मानसिक उपचार गृहो की स्थापना हुई जहाँ धर्मोपदेश भी दिया जाता है तथा रोगियो की चिकित्सा भी की जाती है। युग (Jung) जो एक प्रमुख मानसोपचार-शास्त्री था, उसने चिकित्सा का एक आवश्यक अंग धार्मिक भावना उत्पन्न करना बताया है।

3

असामान्य मनोविज्ञान अथवा मनोविकृतिविज्ञान का इतिहास

HISTORY OF ABNORMAL PSYCHOLOGY OR PSYCHOPATHOLOGY

परिचय
(Introduction)

मानसिक अस्वस्थता का प्रत्यय नवीन नहीं है, क्योंकि जब से इतिहास का जन्म हुआ तभी से सवेगात्मक विक्षोभ व विकृतियों के अस्तित्व को किसी-न-किसी रूप मे स्वीकार किया गया है। मनुष्य ने अपने को समझने के लिए मुख्यत. जादू, धर्म व विज्ञान जैसी विधियो का सहारा लिया है। यही कारण है कि उच्च विचारो के इतिहास का प्रारम्भ जादू-टोने से प्रारम्भ होकर, धर्म तक पहुँचते हुए ही विज्ञान तक पहुँचा है।[1]

जे० जी० फ्राजर (J. G Frazer) ने बड़े ही सुन्दर ढग से मानव के बौद्धिक उत्पादन के इतिहास के सम्बन्ध मे एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार आज के बुद्धिमान व्यक्ति के इतिहास की एक ऐसे कपडे से तुलना की जा सकती है जिसकी बुनाई 3 रगो से धागो के माध्यम से हुई है—काला, लाल व सफेद धागा (thread)। काला धागा जादू (Magic), लाल धागा धर्म (Religion) व सफेद धागा विज्ञान (Science) का प्रतीक है। इस प्रकार इतिहास अनेक घटनाओ की एक शृखला है। यह बात असामान्य मनोविज्ञान के लिए भी सत्य है। आज इस आधुनिक या वैज्ञानिक रूप ने पहले असामान्यता को जादू-टोने (magic) या देवी-देवताओ (religion) के प्रकोप के रूप मे समझा जाता था। मानसिक

---

1. "Magic, religion, and science are the three chief methods tnrough which man has tried to understand his place in the cosmos and to better it. Sir J. G. Frazer writes in his *'Golden Baugh'*. "The movement of higher thought has been from magic through religion of science."—Brown, J. F . *The Psychodyna-mics of Abnormal Behaviour*, p. 23.

असामान्य मनोविज्ञान का ऐतिहासिक विकास

	प्राथमिक या असभ्ययुगीन विचार	मध्यकालीन युग	कुछ आरम्भिक सशयवादी तथा मानवतावादी	दैहिक युग	मनोजात युग	मनोदैहिक युग
मानसिक विकारों के प्रमुख कारण	1 बुरी या-प्रेत शक्ति	1. भूत-प्रेत या 2. दुष्टात्मा का प्रवेश	1 मानसिक बिकार	1 मस्तिष्क विकृति	1. मनोवैज्ञानिक कारण 2. मानसिक दुर्बलता 3 शक्तिहीनता 4 दमित कामवृत्तियाँ 5. आत्मसम्मान की भावना का कुंठन 6. मूलभूत चिन्ता 7. सामाजिक कारण	1. मनोदैहिक 2. मनोवैज्ञानिक 3 शरीरिक 4. मानसिक स्वास्थ्य
प्रमुख उपचार	1. जादू-टोने (शारीरिक यातनाये) 2. खोपडी का कुछ हिस्सा पत्थर से काटकर (मस्तिष्क आपरेशन)	1. धार्मिक आधार 2 भूत-प्रेत को निकालना 3. गालियो का उपयोग	1. चिकित्सा	1. दैहिक आधार	1. सम्मोहन का उपयोग 2. स्वतन्त्र साहचर्य विधि 3 मनोविश्लेपण विधि	1. रोगी-केन्द्रित चिकित्सा 2. व्यवहार-चिकित्सा 3. सामूहिक-चिकित्सा 4 आघात-चिकित्सा 5. मन शल्य-चिकित्सा

विकृतियो का इतिहास मानव-इतिहास के साथ ही जुडा है लेकिन उसकी प्राचीन धारणा एव आधुनिक धारणाओ मे काफी परिवर्तन हुआ है। असामान्य मनोविज्ञान की जो वर्तमान रूपरेखा है, उसको समझने के लिए हमे उस पृष्ठभूमि (background) को समझना पडेगा, जिसके माध्यम से असामान्य मनोविज्ञान को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से योगदान प्राप्त हुआ है। असामान्य मनोविज्ञान के विकासात्मक इतिहास को हम निम्न भागो मे विभाजित करके अध्ययन कर सकते है —

(1) प्राथमिक या असभ्ययुगीन विचार (Primitive and Precivilized Ideas)
(2) मध्यकालीन युग (The Middle Era)
(3) कुछ आरम्भिक सशयवादी व मानवतावादी (Some Early Skeptics and Humanitarians)
(4) दैहिक युग (The Somatogenic Era)
(5) मनोजात युग (The Psychogenic Era)
(6) मनोदैहिक युग (The Psychosomatic Era)

प्राथमिक या असभ्ययुगीन विचार
(Primitive and Precivilized Ideas)

बहुत-से विद्वानो ने इस युग को 'अन्धविश्वास का युग' (Superstition Age) भी कहा है क्योकि इस युग मे लोग दैवी शक्ति जादू-टोना आदि को बहुत मानते थे। वे लोग सामान्य व असामान्य के सम्बन्ध मे एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत करते थे। किसकर (Kisker) के मतानुसार, मानसिक अस्वस्थता के प्रति प्रारम्भिक विचार इस विश्वास पर आधारित था कि सम्पूर्ण ससार शक्तियो (spirits), भगवानो (gods) या अलौकिक शक्तियो से सचालित होता है। जिस प्रकार शक्तियो के द्वारा ही हवा बहती है, झरना बहता है, पेड-पौधे उगते है, ठीक इसी प्रकार समस्त मानव-व्यवहार सचालित होता है।[1] ब्राउन[2] (Brown) ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि अगर

---

1. "The earliest attitude toward mental illness grew out of the primitive concept of *animism*, or the belief that the world is controlled by spirits, gods, and other kinds of supernatural beings. Primitive man believed that the winds blew, streams flowed, stones rolled, and trees grew because of spirits residing within the objects. He explained in the same way all behaviour."
—Kisker, G. W *Ibid*, p. 36

2. "If normal or 'good' behaviour was accounted for by the spirit then when there was abnormal or 'bad' behaviour the good spirit must have been replaced by a bad spirit".
—Brown . *Ibid*, p. 27.

सामान्य व्यवहार दैवी शक्ति (*God spirit*) के माध्यम से होता है तो असामान्य व्यवहार का कारण बुरी या प्रेत-शक्ति (*Bad or Evil spirit*) है। के० स्टेफन (K. Stephen) ने भी इस सम्वन्ध मे यही लिखा है कि इस युग मे लोग सभी वस्तुओ एव कार्यों पर दो प्रकार की शक्तियों का शासन मानते थे—(1) प्रेत शक्ति (evil spirit), (2) दैवी शक्ति (god spirit)। सभी अच्छे कार्यों एव सामान्य व्यवहारो की व्याख्या दैवी शक्ति के आधार पर और सभी गलत एव अलौकिक या असामान्य व्यवहारो (जैसे—मृत्यु, स्वप्न, पागलपन आदि) की व्याख्या प्रेत-शक्ति के आधार पर की जाती थी। उनका कहना था कि यह व्यक्ति पागल या असामान्य इसलिए हो गया है, क्योकि इसके अन्दर किसी कारणवश प्रेत-शक्ति का प्रवेश हो गया है तथा प्रेत-शक्ति का शरीर मे प्रवेश हो जाने के कारण दैवी शक्ति निकल गई है। अत. मानसिक व्याधियो का एकमात्र उपचार यह है कि किसी प्रकार प्रेत-शक्ति को शरीर से वाहर निकाल दिया जाय। यही कारण था कि रोगियों को भयकर यातनाएँ दी जाती थी, उन्हे जजीर से बाँध दिया जाता था, उन्हे कठिन-से-कठिन शारीरिक यातनाएँ दी जाती थी, जिससे कि प्रेत-शक्ति उनके शरीर से निकल जाय। रोगी को कभी-कभी अंधविश्वासियो को सौंप दिया जाता था जो कि उन्हे झाड-फूंक, जादू-टोने के माध्यम से ठीक करने की कोशिश करते थे। सक्षेप मे, इस युग मे मानसिक व्याधियो का उपचार जादू-टोने या शारीरिक यातनाओ के माध्यम से किया जाता था। यह धारणा यूनान के दार्शनिकों एव रोम के चिकित्सको मे काफी समय तक प्रचलित रही।

पाषाण युग के प्राप्त अवशेपो से इस तथ्य के पूर्ण प्रमाण प्राप्त होते है कि इस युग मे भी मानसिक रोगी पाये जाते थे तथा उनका उपचार किया जाता था। उस समय की उपचार-पद्धति आज की 'ट्रेफिनिग पद्धति' (*Trephining technique*) से मिलती-जुलती थी। पाषाण-युग मे लोग मानसिक रोगियो का उपचार खोपडी के कुछ हिस्से को गोलाकार रूप मे काट कर करते थे। इस प्रकार का आपरेशन पत्थर से वने उपकरणों के माध्यम से किया जाता था। परन्तु इस प्रकार के आपरेशन के पीछे यह भावना निहित थी कि इस प्रकार रोगी को कष्ट देने से दुष्ट आत्माएँ वाहर निकल जाती है। आकस्मिक रूप से अनेक रोगियो को लाभ भी हो जाता था। मस्तिष्क सर्जरी की यह प्रारम्भिक पद्धति अत्यधिक अपरिष्कृत (crude) के साथ ही साथ प्रेत-विद्या (demonology) पर आधारित थी।[1]

लेकिन इम्पेडॉक्लस (Empedocles) व हिप्पोक्रेट्स (Hippocrates) ने इस मत मे अपनी आस्था प्रकट नही की। उनका कहना था कि मानसिक व्याधियो से

---

1. "This early brain surgery left much to be desired in terms of technique, but it was even more inadequate in terms of the native, unscientific theory of demonology upon which it rested".

—Coleman, J. C. : *Ibid*, p. 25.

ग्रस्त रोगियो का आधार दैवी-शक्ति का प्रकोप या प्रेत-शक्ति नही है, वल्कि इनका आधार मस्तिष्क मे उत्पन्न विकार है। हिप्पोक्रेटीज (460 B C) वास्तव मे आधुनिक असामान्यता के विचारो का जन्मदाता है, क्योकि इसने सर्वप्रथम इस आधुनिक विचार को कहा कि मस्तिष्क चेतना (consciousness) का केन्द्र है तथा मानसिक असामान्यता मस्तिष्क विकार (brain pathology) के कारण होती है।[1] हिप्पोक्रेटीज को चिकित्सा का जन्मदाता माना जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उन्होने जीववाद के मत को अस्वीकार किया तथा स्पष्ट रूप से कहा कि प्रेतात्मा, देवता तथा दानव को वीमारी का कारण नही माना जा सकता। उन्होने अपनी पुस्तक मे वताया कि अगर आप सिर (head) को काट कर खोलें तो आपको मस्तिष्क दिखाई पड़ेगा जो बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया होगा। इस तरह आप देखेंगे कि इस क्षति का कारण 'भगवान' नही है वल्कि वीमारी है।[2] लेकिन हिप्पोक्रेटीज के समय मे भी जादू-टोना किसी न किसी रूप मे अवश्य था। लेकिन ईसाई-धर्म के आगमन से जो वैज्ञानिक आभा उदय हुई थी, उसकी समाप्त हो गई। ईसाई-धर्म के आने से धार्मिक अन्धविश्वास ने मानसिक व्याधियो की व्याख्या मे सक्रिय रूप से स्थान ले लिया। लोगो ने यह विश्वास करना शुरू कर दिया कि दो शक्तियाँ सभी वस्तुओ का नियन्त्रण एव सचालन करती है। ये दो शक्तियाँ—ईश्वरीय शक्ति व पैशाचिक शक्ति है। इस समय चर्च के पादरियो की आज्ञा का उल्लघन करना निषिद्ध-सा हो गया था। क्योकि यह धारणा व्याप्त हो गई थी कि चर्च के पादरियो के आदेश के अनुकूल कार्य करने से भगवान खुश रहता है अन्यथा वह नाराज हो जावेगा। भगवान के खुश रहने पर व्यक्ति सामान्य व अच्छा रहता है लेकिन पादरियो के आदेश का उल्लघन करने से भगवान नाराज हो जाता है जिसके कारण व्यक्ति पिशाच के हाथो मे पड जाता है तथा उसके परिणामस्वरूप वह मानसिक व्याधि या विकृति का शिकार हो जाता है। इस प्रकार असामान्यता के उपचार का एकमात्र उपाय पादरियो को खुश करना था।

मध्यकालीन युग
(The Middle Age)

इस युग मे असामान्यता की व्याख्या का आधार तो प्राचीन ही था परन्तु फिर भी कुछ ऐसे दार्शनिक व चिकित्सक इस क्षेत्र मे आये जिन्होने मानसिक

---

1. "*Hippocrates* first established the modern view that the brain is the seat of consciousness and the mental abnormality is due to brain pathology."— Brown *Ibid*, p 38.

2 "If you cut open the head, you will find the brain humid, full of sweat, and smelling badly. And in this way, you may see that it is not a God which injures the body, but disease"— Hippocrates · *The Sacred disease*, Vol xvii, cited by W. H. S. Jones, *Hippocrates*, Vol.' 2, Cambridge, Mass . Harvard University Press, 1943.

व्याधियो की व्याख्या मे ईसाई धर्म एवं गिरजाघरों के प्रभुत्व को स्वीकार नही किया। लेकिन साधारण लोगों में यह विश्वास अभी तक विद्यमान था कि मानसिक व्याधियो का कारण रोगी के शरीर मे भूत-प्रेत या अन्य किसी दुष्टात्मा का प्रवेश ही है। लेकिन फिर भी वेयर (Weyer—1514 से 1587), प्लेटर (Plater—1566 से 1614) आदि ने इस विचारधारा का खुलकर विरोध किया। पार्सेलसस (Paracelsus—1493 से 1541) ने भी असामान्यता की प्राचीन ढग से व्याख्या करने को स्वीकार नही किया। फिर भी कुल मिलाकर इस युग मे भी धार्मिक अन्ध-विश्वासो का बोलबाला ही रहा। मध्यकाल मे 10वी शताब्दी से 15वी शताब्दी तक के बीच-बीच मे सामूहिक पागलपन (mass madness) का रूप भी देखने को मिलता है। यह सामूहिक पागलपन क्षोभोन्माद (Hysteria) के समान था। इसका एक प्रमुख रूप सामूहिक नृत्य (Dancing mania) का था। इटली मे इसे टार्नटिज्म (Tarntism), जर्मनी तथा यूरोप मे सेण्ट वीट्स डान्स (St. Vitus Dance) कहा जाता था। कोलमैन (Coleman) ने ह्वाइट (White) द्वारा वर्णित इस रोग का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—**"जर्मनी में भिक्षुणियों के एक आश्रम में एक भिक्षुणी को अनेक साथियों को दांत से काटने का तीव्र मनोवेग उत्पन्न हो गया, उसका यह उन्माद भिक्षुणियो में इस प्रकार फैला कि लगभग सभी ने एक-दूसरे को काटना प्रारम्भ कर दिया। काटने का यह दौर जर्मनी में एक कानवेण्ट से दूसरे कानवेण्ट में फैल गया। यह उन्माद जर्मनी तक ही सीमित न रहकर हालैण्ड तथा इटली तक भी फैल गया।"**

मध्य युग मे रोगियो की चिकित्सा धार्मिक आधार पर की जाती थी। मानसिक रोगी के अन्दर बसे हुए भूत-प्रेत को नाना प्रकार की विधियो से निकालने का प्रयास किया जाता था। भूत-प्रेत को भगाने के लिए गन्दी से गन्दी गाली का उपयोग किया जाता था तथा नाना प्रकार की धमकियाँ दी जाती थी, जैसे—"तुम्हारे सभी दुश्मन प्रेत एक साथ आक्रमण करें और तुम्हे नर्क में घसीट कर ले जावें। भगवान तुम्हारे सिर पर कील ठोकें तथा उस पर हथौडो से चोट करे। देवता तुम्हारे सिर व हाथो को काट डालें ......।"[1]

कुछ आरम्भिक संशयवादी एवं मानवतावादी
(Some Early Skeptics and Humanitarians)

18वी शताब्दी मे भौतिक विज्ञानो की प्रगति के साथ ही साथ मनोविज्ञान के क्षेत्र मे भी कुछ ऐसे सशयवादी विचारकों ने प्रवेश किया, जो कि ईसाइयों द्वारा

---

1. "...... ..May all the devils that are thy foes rush forth upon thee, and drag thee down to hell !........May God set a nail to your skull and pound it in with a hammer,....May, ...Sother break the head and cut off thy hands.....,"—Coleman ; *Ibid*, p 32.

प्रतिपादित गिरजाघर उपचार पद्धति को सशय की दृष्टि से देखने लगे। इन सशय-वादियो ने प्रचलित अमानुषिक विधियो के द्वारा रोगियो की उपचार पद्धति की भर्त्सना की। इसी आलोचना के कारण मानसिक रोगियो के उपचार के लिए अस्पताल आदि का स्थापना-कार्य प्रारम्भ किया।

असामान्यता के नवीन आधार मानने मे महत्त्वपूर्ण योगदान फिलिप पाइनेल (Philip Pinel—1445 से 1826) का है। फ्रास मे पाइनेल ने इस बात को अस्वीकार कर दिया कि मानसिक व्याधि का कारण भूत-प्रेत या धार्मिक आदि से प्रभावित होता है। पाइनेल ने रोगियो पर अत्याचारो के विरुद्ध आवाज उठाई तथा रोगियो को कोठरी मे वन्द कर देने या जजीर मे बाँध देने की उपचार प्रणाली का खडन किया। फ्रास मे पाइनेल ने अपने इस सिद्धान्त का व्यापक रूप से प्रचार किया कि मानसिक व्याधि मानसिक विकार के कारण होती है, यह एक प्रकार की बीमारी है जिसको दूर किया जा सकता है। मानसिक रोगी पापी नही है बल्कि एक साधारण रोगी के समान है, उसे शारीरिक यातनाएँ या दण्ड की नही बल्कि उपचार की जरूरत है। इसी उद्देश्य को व्यावहारिक रूप देने के लिए पाइनेल ने फ्रास मे सर्वप्रथम एक चिकित्सालय की स्थापना की, जिसमे रोगियो की चिकित्सा मानसिक व्याधि या मानसिक विचार के आधार पर शुरू की, पाइनेल का यह कदम वैज्ञानिकता की ओर एक ठोस कदम था।

असामान्यता से वैज्ञानिकता की ओर ले जाने मे इस्क्वीरॉल (Esquirol—1772-1840) ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होने अपना एक ग्रन्थ मानसोपचार-शास्त्र पर प्रकाशित करवाया तथा पाइनेल के कार्यों को आगे बढाया। 19वी शताब्दी के आरम्भ मे पाइनेल व इस्क्वीरॉल ने इस मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर इगलैण्ड मे क्वेकर (Quaker) तथा विलियम ट्यूक (William Tuke) ने इस दृष्टिकोण को समस्त ब्रिटेन मे तथा अमरीका मे वेनजामिन रश (Benjamin Rush 1745-1813) तथा डोरोथिया डिक्स (Dorothea Dix . 1802-1887) ने काफी प्रचार किया। वास्तव मे इसका मुख्य कारण पाइनेल व इस्क्वीरॉल का योगदान ही था।

विलियम ट्यूक ने इगलैण्ड के एक कार्य-घर (work-house) मे कगाल पागलो की दशा का वर्णन करते हुए कहा—"मैं उन स्त्रियो की दशा को देखकर उत्पन्न भावना व आश्चर्य का वर्णन नही कर सकता जिनको मैंने विना कपडो के देखा था, उस समय काफी सर्दी थी तथा एक दयनीय व्यक्ति विना कम्बल के लेटा हुआ था।" ट्यूक ने इस दशा को देखकर मानसिक रोगियो की दशा मे काफी सुधार करने का प्रयत्न किया।

मानसिक रोगियो की दशा मे सुधार लाने के प्रयत्न का कार्य केवल फ्रास व इगलैण्ड तक ही सीमित न रहा बल्कि जर्मनी मे भी इस दिशा मे सराहनीय कार्य हुआ। जॉन क्रिश्चियन रील (Johann Christian Reil 1759-1813) व

जॉन हीनराथ (Johann Heinroth 1773-1843) ने जर्मनी मे इस दिशा में सराहनीय कार्य किया तथा बताया कि मानसिक बीमारियो की उत्पत्ति मे नैतिक कारक बहुत अधिक महत्त्व रखते है।

अमेरिका में प्रथम मानसिक अस्पताल सन् 1909 मे मिचीगन विश्वविद्यालय मे विलहैम ग्रिसिंगर (Wilhiam Griesinger, 1817-1868) के कार्य के फलस्वरूप स्थापित हुआ। परन्तु नवीन मनोरोगविज्ञान की उत्पत्ति 1783 मे हुई जबकि बेंजामिन रश (Benjamin Rush : 1745-1813) पेंसिलवानियाँ अस्पताल के स्टाफ मे सम्मिलित हुआ। रश ने जब 24 मानसिक रोगियो को सीलन भरी कोठरियो में बन्द देखा तो उन्हे अति दु ख की वेदना हुई तथा उन्होने इसके खिलाफ आपत्ति उठाई। 13 वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद उन्हे मानसिक रोगियों की चिकित्सा के लिए अलग वार्ड निर्मित करने मे सफलता मिली।

दैहिक युग
(The Somatogenic Era)

इस युग के आने से अन्धविश्वास या दैवी-शक्ति आदि मे विश्वास करने वाले लोगो ने अपनी धारणा मे परिवर्तन किया तथा वे यह समझने लगे कि मानसिक असामान्यता को भूत-प्रेत आदि उत्पन्न नही करते बल्कि मानसिक रोग उतना ही वास्तविक एव निश्चित है जितना शारीरिक रोग। 1812 ई० में बेंजामिन रश (Benjamin Rush) ने मानसिक रोगो पर एक लेख लिखा जिसमे आधुनिक मनोचिकित्सा का सकेत मिलता है। बेनजामिन रश के बाद सन् 1845 मे विलियम ग्रेसिंगर (William Griesinger : 1840-1902) ने एक पुतस्क.लिखी, जिसमें दैहिक युग का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। ग्रेसिंगर ने मनोविकृतिविज्ञान (Psychopathology) का आधार मस्तिष्क-विकृतिविज्ञान बताया। उन्होंने बताया कि मस्तिष्क मे किसी प्रहार से विकार हो जाने के फलस्वरूप एक व्यक्ति मानसिक व्याधि का शिकार हो जाता है तथा उसका व्यवहार अलौकिक या असामान्य हो जाता है। इस प्रकार उन्होने मानसिक व्याधि के उपचार के लिए दैहिक आधार का आश्रय लेने पर विशेष जोर दिया।

एमिल क्रेपलिन (Emil Kraepelin . 1859-1926) ने ग्रेसिंगर के मत को स्वीकार किया तथा दैहिक दृष्टिकोण (Somatogenic Viewpoint) का व्यवस्थित रूप प्रस्तुत किया। क्रेपलिन ने मानसिक रोगो का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जिसे कुछ अंशो मे अभी तक स्वीकार किया जाता है। उसने मस्तिष्क-विकृतिविज्ञान (Brain pathology) पर विशेष जोर दिया। क्रेपलिन का मुख्य योगदान मानसिक व्याधियों का वर्गीकरण एव व्याख्या करना था।[1]

---

1. "*Kraepelin* developed the scheme of classification and nosology which is even today in many aspects the standard one. He also

(Contd.)

एडॉल्फ मायर (Adolf Meyer, 1866-1950), जो कि प्रमुख अमरीकी मनोरोग चिकित्सक थे, क्रेपलिन के वर्गीकरण को स्वीकार नही किया। मायर ने विशेष मानसिक बीमारियो के स्थान पर प्रतिक्रिया प्रारूपो (reaction types) या व्यवहार प्रतिरूपो को समझने का प्रयास किया। इसे उसने '*Ergasias*' का नाम दिया तथा इसी के आधार पर वर्गीकरण किया परन्तु यह वर्गीकरण प्रकाशित नही हुआ।

जॅर्मन के क्राफ्ट एबिंग (Kraft Ebing) ने भी इस दृष्टिकोण मे महत्त्वपूर्ण कार्य किये। एबिंग ने मानसिक असामान्यताओ के वर्गीकरण मात्र पर ही विचार प्रकट नही किये, वलिक उनके विभिन्न कारण, रोगी के व्यक्तित्व-इतिहास आदि बातो पर भी जोर दिया। काम-विकृति (sexual perversion) के सम्बन्ध मे भी उन्होने उपचार की एक विशेष पद्धति का आरम्भ किया। इस प्रकार अब लोगो ने यह स्वीकार करना शुरू कर दिया कि मानसिक रोगो का उपचार सम्भव है तथा मानसिक रोगो मे शारीरिक रोगी के समान ही ध्यान देना चाहिए।

मनोजात युग
(The Psychogenic Era)

दैहिक युग मे मुख्यत मानसिक व्याधियो की चिकित्सा दैहिक आधार पर की जाती थी परन्तु इस प्रकार की चिकित्सा से केवल 10% रोगी ही लाभ प्राप्त कर सके। इसी कारण चिकित्सको का ध्यान दूसरी तरफ भी गया। अनेक अनुसधान हुए तथा उन अनुसन्धानो के प्रमाणो से ज्ञात हुआ कि कुछ ऐसे रोग भी होते हैं जिनमे कोई स्नायु की गडबडी नही होती, लेकिन इसके कुछ मनोवैज्ञानिक कारण हो सकते है। इसी उपकल्पना ने असामान्यता के इतिहास मे मनोजात दृष्टिकोण (psychogenic viewpoint) को जन्म दिया। इस दृष्टिकोण के विकास मे सम्मोहन एव क्षोभोन्माद (hypnosis and hysteria) की खोज ने काफी सहायता प्रदान की। नीचे हम इसके बारे मे विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

सम्मोहन के वैज्ञानिक सिद्धान्त का विकास
(The Development of a Scientific Theory of Hypnosis)

सम्मोहन उस गहन निर्देशनशीलता की अवस्था को कहते हैं, जिसमे सम्मोहित व्यक्ति ऐसी मोह-निद्रा की अवस्था मे आ जाता है जहाँ कि उसे तात्कालिक चेतनता का ज्ञान नहीं होता है। दूसरे शब्दो मे, उसकी चेतना केवल सम्मोहक के निर्देशानुसार ही कार्य करती है। जब वह व्यक्ति सम्मोहन की अवस्था से वापस आता है तब उसे

(*Contd from prev. page*)

insisted on the importance of brain pathology He is further notable because he saw the possibility of co-operative work between experimental psychologists and psychiatrists Kraepelin's chief contributions were classificatory and descriptive"—**Brown**, *Ibid*, p. 33-34.

सम्मोहनावस्था मे दिये गये निर्देश या सुझाव स्मरण नही होते ।[1] जब व्यक्ति सम्मोहन की अवस्था मे होता है तो कुछ ऐसी गत स्मृतियो को व्यक्त करता है जिसका ज्ञान उसे चेतनावस्था मे नही होता ।

सम्मोहन का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन ऐन्टन मेस्मर (Anton Mesmer, 1733-1815) मे प्रस्तुत किया। मेस्मर ने यह देखा कि अगर रोगी को चुम्बक की सहायता से छुआ जाय तो वह काफी आराम का अनुभव करता है। आज यह बात पूर्णत सत्य है कि रोगी की चुम्बक मे आराम नही मिलता था बल्कि चुम्बक को शरीर मे छुआते समय जो निर्देश दिया जाता था, उसका रोगी पर काफी प्रभाव पडता था। लेकिन मेस्मर ने चुम्बक के आधार पर यह निष्कर्ष ज्ञात किया कि प्रत्येक व्यक्ति मे एक चुम्बकीय शक्ति होती है जिसका अगर वह ठीक ढग से उपयोग करे तो उससे दूसरे व्यक्ति भी प्रभावित हो सकते है। मेस्मर ने सन् 1778 मे पेरिस मे फ्रास एकादमी के सम्मुख अपनी इस विधि का प्रदर्शन किया जिसके फलस्वरूप इस मेस्मरिज्म को काफी ख्याति मिली। लेकिन अनेक चिकित्सको ने मेस्मर के विरुद्ध लेख लिखे तथा मेस्मर के कार्य का विरोध किया।

इङ्गलैड के जेम्स ब्रेड (James Braid, 1795-1860) ने मेस्मेरिज्म द्वारा उत्पन्न मोहनिद्रा को सम्मोहन का नाम दिया। मोहनिद्रा के सम्बन्ध मे जेम्स ब्रेड ने यह अनुभव किया कि यह एक ऐसी अवस्था है जो बिना यत्र, उपकरण या चुम्बक के भी उत्पन्न की जा सकती है। इस प्रकार मेस्मर की विचारधारा का समर्थन जेम्स ब्रेड के द्वारा मिलने पर 19वी शताब्दी के प्रारम्भ तक सम्मोहन का काफी प्रचलन रहा। लन्दन विश्वविद्यालय जॉन इलियटसन (John Elliotson, 1791-1868) ने सम्मोहन द्वारा अंग-शून्यता पर तथा भारत मे जेम्स इसडेल (James Esdaille, 1808-1859) ने अनेक कठिन आपरेशन किये। फ्रास के लीबॉल्ट (Lieubault, 1823-1904) तथा बर्नहिम (Bernheim, 1840-1919) ने भी सम्मोहन का उपयोग चिकित्सा-कार्य मे किया। इनके अनुसन्धानो द्वारा यह ज्ञात हुआ कि सम्मोहन एवं क्षोभोन्माद (Hypnosis and Hysteria) मे गहरा सम्बन्ध है क्योकि दोनो ही निर्देश (suggestion) से सम्बन्धित है। शार्को (Charcot, 1825-1893) ने पहले तो इस मत को स्वीकार नही किया परन्तु बाद मे यह स्वीकार कर लिया कि क्षोभोन्माद (उन्माद) की चिकित्सा मे सम्मोहन की उपयोगिता है। उसने अपनी चिकित्सा प्रणाली मे भी सम्मोहन का उपयोग किया।

---

1. "Hypnosis is a state of very deep suggestibility in which the hypnotized individual goes into the so-called "hypnoid" or "somanambulistic" state, where he loses immediate consciousness and where, so to speak, his own conscious self is superseded by that of the hypnotist."—**Brown** : *Ibid*, p. 36.

क्षोभोन्माद (उन्माद) सम्बन्धी सिद्धान्त की स्थापना (The Establishment of the Concept of Hysteria)—क्षोभोन्माद सम्बन्धी सिद्धान्तो की स्थापना वैसे तो 18वी शताब्दी मे हुई परन्तु फिर भी इसका इतिहास काफी प्राचीन है। हिस्टीरिया मे ऐसे शारीरिक लक्षणो का उदय हो जाता है जिनमे बिना किसी आगिक विकृति के भी विभिन्न अगो मे पक्षाघात या निष्क्रियता आ जाती है।[1] उदाहरणस्वरूप, एक व्यक्ति स्पर्श की सवेदना को ग्रहण नही कर पाता जबकि उसका ज्ञान व गतिवाही स्नायु ठीक ढग से कार्य करती रहती है।

चिकित्सा-विज्ञान के पिता हिप्पोक्रेटीज (Hippocrates) ने क्षोभोन्माद के सम्बन्ध मे यह कहा था कि यह रोग स्त्रियो को अधिक होता है। यही कारण था कि इसका नाम भी यूनानी शब्द 'हिस्टेरियन' (Histerion) के नाम के आधार पर रखा गया, जिसका अर्थ है—गर्भाशय। प्राचीन विचारको ने क्षोभोन्माद के सम्बन्ध मे यह दृष्टिकोण बना रखा था कि शरीर मे गर्भाशय के इधर-उधर घूमने के कारण ही यह रोग होता है।

क्षोभोन्माद के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आरम्भ 1860 के बाद हुआ। नान्सी स्कूल (Nancy School) के निर्देशक लीबॉल्ट (Liebeault, 1823-1904) तथा बर्नहीम (Bernheim, 1840-1919) ने उन्माद एव सम्मोहन मे घनिष्ठ सम्बन्ध बताया। इस दिशा मे शार्को (Charcot) ने उल्लेखनीय कार्य किया। उसने यह बताया कि मानसिक रोगो का कारण मनोजात (psychogenic) है अर्थात् मानसिक रोगो का कारण मानसिक विकृति है। शार्को ने इस दिशा मे इतना महत्त्वपूर्ण योगदान किया कि वह एक सक्रिय नेता बन गया। उसने यह बताया कि सम्मोहन के द्वारा उन्माद की चिकित्सा सम्भव है तथा सर्वप्रथम यह बात बताई कि स्त्रियो के अलावा पुरुषो को भी क्षोभोन्माद का रोग होता है।

इस श्रृखला मे पीरी जैनेट (Pierre Janet) का नाम भी काफी उल्लेखनीय है। इसने मनोजात दृष्टिकोण को काफी प्रचलित करने की कोशिश की। मानसिक व्याधियो के सम्बन्ध मे अनेक अनुसन्धान किये तथा इनके कारणो के बारे मे मत प्रकट किया। अपनी अनुसन्धानात्मक खोजो के आधार पर जैनेट ने यह बताया कि मन स्नायुविकृतियो का मुख्य कारण मानसिक दुर्बलता एव शक्तिहीनता है।

इस युग के प्रमुख मनोवैज्ञानिक एवं उनका योगदान

फ्रायड का योगदान

(Contribution of Freud)

मनोजात दृष्टिकोण को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान देने का श्रेय सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud, 1856-1939) को है। फ्रायड का जन्म 1856 ई० मे

1. "Hysteria refers to the development of physical symptoms of both a positive and negative sort in organs where there is no demonstrable pathology. —Brown *Ibid*, p. 40

वियाना मे हुआ था। उसका मुख्य अध्ययन-विषय स्नायुरोग विज्ञान (Neurology) था। उसने जोसफ ब्रूयर (Josef Breuer) तथा शार्को के साथ कार्य किया। लेकिन वह उनकी अस्थायी चिकित्सा प्रणाली से सन्तुष्ट न हुआ तब उसने हिस्टीरिया के उपचार मे सम्मोहन के स्थान पर स्वतन्त्र साहचर्य विधि (Free Association method) का प्रयोग किया। बाद मे मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) का प्रतिपादन किया।

मनोविश्लेषण की सहायता से फ्रायड ने असामान्यता के सम्बन्ध के साथ ही, व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे भी एक नवीन प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की। फ्रायड ने व्यक्तित्व को दो पक्षो (aspects) मे रखकर अध्ययन किया—(1) गत्यात्मक, (2) अकारात्मक। व्यक्तित्व के गत्यात्मक भाग को 3 भागों मे विभाजित करके अध्ययन किया—इदम् (Id), अहम् (Ego), तथा परम अहम् (Super Ego) तथा व्यक्तित्व के अकारात्मक भाग को भी 3 भागो मे विभाजित किया—चेतन (Conscious), अवचेतन (Forconscious), तथा अचेतन (Unconscious)। फ्रायड ने स्वप्न (Dream), लिंग-विकृति (Sex-perversion) तथा अन्य मानसिक विकृतियाँ (Mental disorders), यथा—मन.स्नायुविकृति (Psychoneurosis) व मनोविकृति (Psychosis) आदि को अचेतन मन मे दमित काम-वृत्तियो की छद्म अभिव्यक्ति (disguise-expression) के कारण के रूप मे व्याख्या प्रस्तुत की।

युंग व एडलर का योगदान
(Contributions of Jung and Adler)

फ्रायड की विचारधारा के कारण केवल असामान्य मनोविज्ञान को ही वैज्ञानिक रूप नही मिला बल्कि सम्पूर्ण मनोविज्ञान को नई दिशा मिली। फ्रायड के शिष्य युंग (Jung) व एडलर (Adler) ने भी इसके विकास मे काफी मदद की। युंग ने फ्रायड के विचारो को पूर्णत स्वीकार नही किया। फ्रायड के अचेतन एव उसके महत्त्व को तो स्वीकार किया, परन्तु अचेतन को दो प्रकार क्रमश. वैयक्तिक व जातीय या सामूहिक (Individual and Racial or Collective) मे विभाजित करके स्वीकार किया। युंग ने भी एक नये वाद (ism) की स्थापना की, जिसे **'विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान'** (Analytical Psychology) कहते है। एडलर ने फ्रायड के काम-शक्ति (Libido) सिद्धान्त को स्वीकार नही किया बल्कि उसने जीवन-शैली (*Style of Life*) को स्वीकार किया। एडलर ने मानसिक रोगो के सम्बन्ध मे यह बताया कि इनका कारण काम-प्रवृत्तियों का दमन नही बल्कि आत्म-सम्मान की भावना के कुंठन का परिणाम है। एडलर ने अपनी विचारधारा को **'वैयक्तिक मनोविज्ञान'** (Individual Psychology) मे व्यक्त किया।

कैरेन हॉर्नी का योगदान
(Contribution of Karen Horney)

असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास मे हॉर्नी को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हॉर्नी (1885-1952) ने 15 वर्ष के लगातार फ्रायड पद्धति से चिकित्सा करते

के बाद यह मत व्यक्त किया कि वास्तव मे फ्रायड की पद्धति मे पर्याप्त रूप से दोष है। उसने फ्रायड के योगदान के महत्त्व को तो स्वीकार किया परन्तु उसका विश्वास था कि फ्रायड के चिन्तन मे कुछ कमियाँ हैं। वह चाहती थी कि मनोविश्लेपण को मूल-प्रवृत्तियो एव वशानुक्रम के प्रभाव-सीमा को घटाया जाय तथा उसके स्थान पर सामाजिक व सास्कृतिक कारको को महत्त्व प्रदान किया जाय। उसने मनस्ताप का प्रमुख कारण 'मूल-भूत चिन्ता' (basic anxiety) माना। हॉर्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त को एडलर, युग, फ्रॉम आदि के सिद्धान्तो से अधिक व्यवस्थित व व्यापक बनाया तथा व्यक्तित्व-विकास मे सामाजिक व सास्कृतिक कारको को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया।

एरिक फ्रॉम का योगदान
(Contribution of Erich Fromm)

फ्रॉम ने अपने व्यक्तित्व-सिद्धान्त मे जैविक पक्ष के स्थान पर सामाजिक पक्ष पर अधिक जोर दिया है। उसका विश्वास था कि सामाजिक प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति की प्रवृत्तियो, रुचियो या अरुचियो का जन्म व विकास होता है। फ्रॉम प्रेरणाओ को फ्रायड के अनुसार मूलत मूल-प्रवृत्त्यात्मक स्वीकार नही करता। उसने आवश्यकताओ (needs) के सम्बन्ध मे भी विचार प्रकट किया है, उसने व्यक्तित्व-विकास की प्रमुख मनोलैंगिक अवस्थाओ को जैविक विकास का रूप न मानकर समाजीकरण की प्रक्रिया माना है। उसने अपना एक सामाजिक दर्शन भी प्रस्तुत किया है। उसके सामाजिक दर्शन मे ऐसा समाज विद्यमान है, जहाँ मनुष्य को अकेलापन, पृथकता व नैराश्यता का अनुभव नही होगा।

हैरी स्टैक सलिवन् का योगदान
(Contribution of Harry Stack Sullivan)

सलिवन् पर मुख्य रूप से सास्कृतिक मानवशास्त्र (cultural anthropology), समाजशास्त्र (sociology) एव समाज मनोविज्ञान (social psychology) का प्रभाव पडा है। मुख्य रूप से सलिवन् सामाजिक मानसोपचार शास्त्र का समर्थक था। उसने अपने व्यक्ति-सिद्धान्त को 'अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धो का सिद्धान्त' (*An interpersonal relations theory*) कहा है। उसने फ्रायड के 'काम-शक्ति सम्बन्धी दृढता सिद्धान्त' (*Theory of libidinal fixation*) को स्वीकार नही किया। उसने मानव-व्यक्तित्व की अपने एक विशेष ढग से व्याख्या प्रस्तुत की है। इस सम्बन्ध मे उसका दृष्टिकोण—चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव है।

इनके अतिरिक्त कुछ और भी मनोवैज्ञानिक है, जिन्होने असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास मे काफी योगदान दिया है, इस शृखला मे प्रमुख रूप से ओटो रैंक (Otto Rank), मैक्डूगल (McDougall), कार्ल अब्राहम (Karl Abraham) आदि के नाम उल्लेखनीय है। इनका वर्णन हम अन्य अध्यायो मे करेंगे।

मनोदैहिक युग
(The Psychosomatic Era)

दैहिक एव मनोजात—दोनो दृष्टिकोणो मे काफी दिनो तक सघर्ष होता रहा, लेकिन आज यह सघर्ष समाप्त हो गया है, क्योकि आज सभी चिकित्सक इस तथ्य को पूर्णत स्वीकार करते है कि कभी-कभी शारीरिक रोगो का कारण मनोवैज्ञानिक भी हो सकता है और मानसिक रोगो का शारीरिक। अत चाहे वह शारीरिक रोगो का चिकित्सक हो, चाहे मानसिक रोगो का चिकित्सक, रोगो के पूर्णरूपेण निदान के लिए मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक—दोनो कारणो को जानना आवश्यक है। इसे ही मनोदैहिक दृष्टिकोण कहते है। डाक्टर कार्ल मेनिन्जर (Dr Karl Menninger) के अनुसार—"प्रत्येक विचारवान चिकित्सक जानता है कि मनोवैज्ञानिक तत्त्व उतने ही वास्तविक एवं प्रभावशाली हैं जितने भौतिक व रासायनिक तत्त्व।"[1]

नवीन मनोविकृति-विज्ञान के स्रोत
(Sources of New Psychopathology)

आधुनिक युग मे मनोविकृति-विज्ञान के सम्वन्ध मे तीन महत्त्वपूर्ण उपागम हैं—(1) वर्गीकरण, (2) आंगिक, व (3) मनोवैज्ञानिक उपागम। नीचे हम संक्षेप मे इसका वर्णन प्रस्तुत कर रहे है—

(1) **वर्गीकरण उपागम** (Classification Approach)—प्राचीन काल मे क्योकि मानसिक रोगो के कारणो को जानने का प्रयत्न नही किया जाता था अत वर्गीकरण करने का प्रश्न ही नही उठता था। हिप्पोक्रेटीज ने मानसिक रोगो को चार प्रकारो मे वर्गीकृत किया—(1) अपस्मार, (2) उन्माद, (3) विषाद, व (4) मानसिक ह्रास। इस वर्गीकरण के वाद **गैलेन व आरेटियस** ने वर्गीकरण किए परन्तु उनके वर्गीकरण का आधार हिप्पोक्रेटिस का ही वर्गीकरण था। 16वी सदी मे वैसेल निवासी **फैलिक्स प्लेटर** (Felix Plater) ने अपना वर्गीकरण किया जिसमे जन्मजात व अर्जित मानसिक रोगो मे विभेद किया। अठारहवी शताब्दी मे अनेक दृष्टियो से मानसिक विकार का वर्गीकरण किया गया। 19वी सदी के मध्य मे प्रत्येक नवीन लक्षण को एक नई वीमारी की सज्ञा प्रदान की। **क्रेपलिन व मायर** ने इस दिशा मे उल्लेखनीय योगदान दिया। द्वितीय महायुद्ध के समय व उसके उपरान्त विद्वानो की रुचि मानसिक रोगो के वर्गीकरण मे कम हो गई। 1952 मे 'अमरीकी मनोरोग सम्वन्धी सघ' ने वर्गीकरण के सम्वन्ध मे स्थायी पद्धति का प्रचलन किया। 1961 मे इसी सस्था द्वारा कुछ नये सशोधन किए तथा मानसिक वीमारियों को सात मुख्य भागो मे विभाजित किया—

(1) अल्पकालिक प्रतिवल विकार (Transient Stress Disorder)

---

1. "Every thoughtful physician knows that psychological factors are as real as effective as physical or chemical factor."
—**Karl Menninger** : *Psychiatry and Medicine.*

(2) व्यक्तित्व विकार (Personality Disorder)
(3) मनस्तंत्रिकातापीय विकार (Psychoneurotic Disorder)
(4) मनोदैहिक विकार (Psychophysiologic Disorder)
(5) मनोविक्षिप्त विकार (Psychotic Disorder)
(6) मस्तिष्क विकार (Brain Disorder)
(7) मानसिक न्यूनता (Mental Deficiency)

(2) **आंगिक उपागम** (Organic Approach)—आंगिक उपागम के अन्तर्गत मुख्यत तीन प्रकार के विकास दृष्टिगोचर होते हैं—

(i) मस्तिष्क के अध्ययन मे व्यवहार विकारो को भी समझना,
(ii) मानसिक विकारो के शारीरिक कारणो की खोज करना, तथा
(iii) उपचार हेतु प्राकृतिक विधियो को उपयोग मे लाना।

मस्तिष्क विज्ञान (Phrenology) के सिद्धान्त को प्रमुख रूप से मान्यता दिलाने का श्रेय **फ्रेन्ज जोसेफ गॉल** (Franz Joseph Gell, 1758-1825) को है। विद्यार्थी जीवन से ही गॉल की रुचि मस्तिष्क के कार्यो को जानने की थी। उनके मतानुसार चरित्र लक्षण मस्तिष्क के 37 भागो मे स्थानीकृत होते हैं। उनका यह भी कहना था कि अगर किसी विशेष मनोवैज्ञानिक लक्षण का अधिक विकास हो जाय तो मस्तिष्क के क्षेत्र मे भी वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप कपाल की रेखाओ (Contour) मे भी वृद्धि हो जाती है। गॉल के व्याख्यानो से प्रेरित होकर **जॉन गैस्पर स्परजीन** (Johnann Gasper Spurzheum) ने भी अनेक स्थानो पर भ्रमण किया।

जर्मनी के अन्तर्गत **ग्रेसिंगर** (Griesinger, 1817-1868) ने अपनी पुस्तक '*Patholngy and Therapy of Psychic Disorders*' (1945) मे बताया कि मानसिक विकार मस्तिष्क के रोग होते हैं तथा जिनका एकमात्र कारण शरीर-क्रियात्मक होता है। जर्मनी मे ही फ्रीडरिक लियॉपॉल्ड गॉल्ज (Friederic Leopold Goltz, 1834-1902) ने मस्तिष्क के कार्य पर उल्लेखनीय कार्य किया। मस्तिष्क एव व्यवहार के सम्बन्ध को समझने की दिशा मे गस्टैव फ्रिश (Gustav Fritsch) व एडवर्ड हिजिग (Edvard Hitzig) ने उल्लेखनीय कार्य किया।

आधुनिक युग मे आंगिक उपागम की महत्त्वपूर्ण देन उपचार की भौतिक विधियाँ है।

(3) **मनोवैज्ञानिक उपागम** (Psychological Approach)—मानसिक बीमारियाँ के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिक उपागम के आरम्भ करने का श्रेय **फ्रेन्ज एन्टन मेस्मर** (Franz Anton Mesmer, 1734-1815) को है। स्मरण रहे कि इसने ही चुम्बकीय चिकित्सा पर सर्वाधिक कार्य किया था। जेम्स ब्रेड (James Braid), जो कि मेस्मरिज्म को धोखा समझता था, बाद मे इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मेस्मरिज्म एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक घटना है जिसका प्रमुख लक्षण सुझाव (Suggestions) है।

जॉन इलियटसन (John Elliotson, 1791-1860) ने सर्जरी मे मेस्मेरिज्म का प्रयोग किया। जेम्स स्डेली (James Esdaile, 1808-1859) ने सम्मोहन के माध्यम से सवेदनाहरण (anaesthesia) करके 250 से अधिक आपरेशन किये।

फ्रास मे मनोविकृतिविज्ञान को विकसित करने का श्रेय जीन मार्टिन शार्को (Jean Martin Charcot, 1825-1893) को है। इसी दिशा मे फ्रायड, एडलर व युग ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

आधुनिक युग मे मनोचिकित्सा
(Psychotherapy in Modern Age)

वर्तमान मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन मे सवमे अधिक योगदान एक व्यक्ति व एक किताव का है। वह व्यक्ति था—**क्लिफोर्ड डब्ल्यू० बीयर्स** (Clifford W. Beers, 1876-1943), जिसने अपनी पुस्तक *'A Mind that Found Itself'* मे मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे आधुनिक विचार प्रस्तुत किया। येल से 1897 मे ग्रेजुएट होने के उपरान्त बीयर्स ने व्यापार प्रारम्भ किया। सन् 1900 मे उसे सवेगात्मक विक्षोभ (emotional disorder) का अनुभव हुआ, जिसके उपचार के लिए वह तीन चिकित्सालयो मे अनेक वर्षो तक रहा। जव वह अपना उपचार करा रहा था तो उसने रोगियो पर होने वाले व्यवहार का उपचार व्यवस्था का सूक्ष्म निरीक्षण किया तथा सम्बन्धित उच्च अधिकारियो का ध्यान उस ओर आकर्षित कराने का प्रयास किया। 1908 मे उसने अपनी आत्मकथा का प्रकाशन कराया जिसमे उसने मानसिक चिकित्सालयो के सम्बन्ध मे अनेक उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किये। इस पुस्तक के प्रकाशन के वाद ही मानसिक स्वास्थ्य की सम्वन्वित सस्था का निर्माण हुआ। इसकी सफलता के परिणामस्वरूप 1909 मे न्यूयार्क मे मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक राष्ट्रीय कमेटी की स्थापना हुई, जिसमे बीयर्स (Beers) को सचिव पद पर नियुक्त किया गया। सन् 1950 से इस कमेटी का विलीनीकरण हो गया तथा 'मानसिक स्वास्थ्य राष्ट्रीय समिति' (*National Association for Mental Health*) की स्थापना हुई। सन् 1960 तक अमरीका मे इसकी 800 से अधिक संस्थाएँ है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य की राष्ट्रीय कमेटी का गठन 1930 मे हुआ। इस कमेटी के गठन व कार्यो के परिणामस्वरूप 1948 में लन्दन मे *'World Federation for Mental Health'* की स्थापना हुई। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस सगठन ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये है। 1960 मे इस फेडरेशन की 43 देशो मे 123 सदस्य-परिपदे थी। इसके अतिरिक्त 17 देशो मे 83 सम्वन्धित संगठन व 1,800 सहयोगी भी। यह फेडरेशन *'World Mental Health'* नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित करता है।

इस प्रकार असामान्य मनोविज्ञान का इतिहास काफी कठिनाइयो से गुजरा तथा अन्त मे इसे वर्तमान वैज्ञानिक स्वरूप प्राप्त हुआ। आज मानसिक रोगो के सम्वन्ध मे पूर्णतावादी दृष्टिकोण (holistic views) अपनाया जाता है। रोग के निदान के लिए अन्तर्निहित कारणो की खोज की जाती है। रोगो के उपचार मे मानवीय दृष्टिकोण के साथ ही साथ सामाजिक दृष्टिकोण का भी ध्यान रखा जाता है।

4

असामान्य मनोविज्ञान की अध्ययन-पद्धतियाँ
(METHODS OF STUDYING ABNORMAL PSYCHOLOGY)

प्रस्तावना
(Introduction)

मुख्यत असामान्य मनोविज्ञान असामान्य व्यवहार व अनुभव को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाता है । यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि इनके अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक कौन-सी पद्धतियाँ का उपयोग करता है क्योकि असामान्य मनोविज्ञान की विषय-सामग्री को अध्ययन के लिए विशेष प्रकार की पद्धतियो की आवश्यकता होती है । असामान्य मनोविज्ञान के विकास व विषय-सामग्री के अनुरूप अध्ययन-पद्धतियो का विकास हुआ है । प्राथमिक या असभ्ययुगीन व मध्यकाल मे असामान्य मनोविज्ञान के पास कोई वैज्ञानिक पद्धति नही थी तथा उस समय आधार-हीन परिकल्पना (armchair speculation) ही इसके अध्ययन की एकमात्र प्रणाली उपलब्ध थी । स्मरण रहे, यह उस समय की बात है जब मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र की एक शाखा थी । असामान्य व्यक्तियो के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाते तथा विकसित करने मे सर्वप्रथम मुख्य योगदान प्रारम्भिक सशयवादी व मानवतावादी विचारको को है । पीनल (Pinel, 1746-1826) ने प्रथम वैज्ञानिक चिकित्सालय की स्थापना की । असामान्य व्यक्तियो के वैज्ञानिक अध्ययन की माँग एस्क्विरोल (Esquirol, 1772-1840) ने अपनी पुस्तक के माध्यम से की । मुख्य रूप से असामान्य मनोविज्ञान की अध्ययन-पद्धतियाँ निम्न है :—

निरीक्षण व परीक्षण पद्धतियाँ
(Observation and Experimental Methods)

समस्त विज्ञानो मे निरीक्षण व परीक्षण विधियो का उपयोग किया जाता है । निरीक्षण विधि से निरीक्षणकर्त्ता अपनी ज्ञानेन्द्रियो के उपयोग से तथ्य एकत्रित करता

है, जबकि परीक्षण विधि मे प्रयोगशाला के अन्दर नियन्त्रित अवस्थाओ मे निरीक्षण किया जाता है। असामान्य मनोविज्ञान मे इस विधि के द्वारा निरीक्षणकर्त्ता एक निश्चित उद्देश्य के साथ असामान्य व्यक्ति का व्यापक व क्रमबद्ध रूप से निरीक्षण करके वैज्ञानिक अध्ययन करता है। निरीक्षण विधि के विभिन्न तत्त्व निम्न है :—

(अ) असामान्य व्यवहार का प्रत्यक्ष अध्ययन।

(ब) असामान्य व्यवहार को तटस्थ रूप से नोट करना।

(स) असामान्य व्यवहार की व्याख्या व विश्लेषण।

(द) सामान्यीकरण।

निरीक्षण विधि की आलोचना
(Criticism of Observational Method)

(1) **व्यक्तिगत रुचि, पूर्व-धारणा आदि का अभाव**—यदि निरीक्षक तटस्थ रूप से निरीक्षण नही करता है तो उसकी रुचि, पूर्व-धारणा आदि का प्रभाव तथ्यों पर पडता है जिसके फलस्वरूप वह सही तथा वास्तविक तथ्यो को तोड-मरोड़ कर देखता या लिखता है। परन्तु अगर वह तटस्थ होकर निरीक्षण करे तो इस दोष का प्रभाव दूर हो जाता है।

(2) **व्यापक व क्रमबद्ध निरीक्षण का अभाव**—निरीक्षण विधि में एक प्रमुख दोष यह है कि केवल इसी विधि के माध्यम से असामान्य व्यवहार को नही समझा जा सकता है क्योकि एक ही प्रकार के व्यवहार के अनेक कारण होते हैं।

इस आलोचना से यह नही समझना चाहिए कि इस विधि का असामान्य मनोविज्ञान मे महत्त्व नहीं है या प्रयोग नही किया जाता है। वास्तव में निरीक्षण विधि की उपर्युक्त कठिनाई को वैज्ञानिक तटस्थता से दूर किया जा सकता है तथा रचनात्मक कल्पना (constructive imagination) के माध्यम से अन्य व्यक्तियों के मनोभावो या मनोदशाओ का अध्ययन किया जा सकता है। इन आलोचनाओ के सम्बन्ध में यहाँ एक बात बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि सूक्ष्म व्यवहार का निरीक्षण करना अभ्यास से ही आता है। वास्तव में, निरीक्षण वह वैज्ञानिक विधि है जो वस्तुनिष्ठ है, जिसमें निरीक्षक एक उद्देश्य के साथ निरीक्षण करता है तथा इससे प्राप्त सामग्रियों का सांख्यिकीय निरूपण करना भी सम्भव है। इस प्रकार निरीक्षण विधि को असामान्य मनोविज्ञान मे एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

जब नियन्त्रित अवस्थाओ मे व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है तो उसे प्रयोग या परीक्षण (experiment) कहते है। असामान्य मनोविज्ञान में इस विधि का अधिक उपयोग नही होता है।

सम्मोहन विधि
(Hypnosis Method)

असामान्य मनोविज्ञान की सम्मोहन विधि बहुत ही प्राचीन विधि है, जिसका सर्वप्रथम उपयोग वियना निवासी **एन्टोन मेस्मर** (Anton Mesmer, 1733-

1815) ने शुरू किया था। मेस्मर ने सम्मोहन-सिद्धान्त के आधार पर असामान्य व्यवहारो की व्याख्या की तथा मानसिक रोगो का उपचार प्रारम्भ किया। यह वह अवस्था है, जिसमे सम्मोहित व्यक्ति को सम्मोहक ऐसे मौखिक सकेत देता है जिससे वह शिथिल (relaxed) अवस्था में आ जाता है और सम्मोहक के निर्देशानुसार ही कार्य करता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जे० डी० पेज के अनुसार, "सम्मोहन कृत्रिम रूप से उत्पन्न समाधि की वह अवस्था है जिसमे उच्च सुझावग्राहिता का गुण विद्यमान होता है।"[1] मैक्डूगल[2] (McDougall) के अनुसार, "सम्मोहन का आधार एक विशिष्ट मूलप्रवृत्ति (Instinct-innate disposition) होती है जिसमें सम्मोहक तत्व मुख्य रूप से होता है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति इस प्रेरणा के माध्यम से होती है।" फिशर (Fisher) महोदय का मत है कि सम्मोहन "वह अस्थायी मानसिक मनोविच्छेद अवस्था है जिसमें उच्चतम अधीनतापन या दब्बूपन की विशेषता पाई जाती है और जो मनोवैज्ञानिक प्रविधि के माध्यम से अकृत्रिम रूप से लायी जाती है।"[3]

मेस्मर ने सर्वप्रथम सम्मोहन के लिए चुम्बक को ही माध्यम बनाया परन्तु बाद मे उन्होने बताया कि केवल स्पर्श करने के माध्यम से ही रोगी को आराम मिल जाता है। मेस्मर के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति मे एक चुम्बकीय शक्ति होती है जिसका समुचित उपयोग करने से उसे मोहित किया जा सकता है। आरम्भ मे इस विधि को मेस्मरिज्म (Mesmerism) की सज्ञा दी जाती थी। मेस्मर के अतिरिक्त इस विधि का उपयोग जेम्स ब्रेड (James Braid, 1725-1860) ने किया। जॉन इलियटसन (John Elliotson, 1791-1868) ने लन्दन मे सम्मोहन-शून्यता (hypnotic anaesthesia) की अवस्था मे अनेक आपरेशन भी किये। आजकल इस विधि का मुख्य प्रयोग क्षोभोन्माद (hysteria) के रोगियो के उपचार के लिए होता है।

सम्मोहन विधि की आलोचना
(Criticism of Hypnotic Method)

(1) इसके माध्यम से उपचार अस्थायी होता है क्योंकि कुछ आलोचको का

---

1. "Hypnosis is an artificially induced trance state, characterised by heightened suggestibility" —Page, J. D. . *Abnormal Psychology*
2. "....McDougall's assumption that hypnosis is based upon or involves, a specific instinct (innate disposition) and that hypnotic phenomena are primarily but an expression of this motive" —Fisher, V. E. . *An Introduction to Abnormal Psychology*, 1947, p 455.
3. "A temporary state of mental dissociation, characterized by extrme submissiveness and brought about artificiality by psychological techniques."—Fisher, V. E. . *Ibid*, p. 512.

कहना है कि इसके द्वारा उपचार केवल वाह्य स्तर पर होता है, आन्तरिक सघर्षो को दूर करना सम्भव नही है।

(2) इस विधि मे रोगी के अन्दर आश्रितता की भावना का जन्म हो जाता है जिसके कारण वह अपने अनेक कार्यों का उत्तरदायित्व सम्मोहक को मानता है।

(3) इस विधि के माध्यम से केवल 20 प्रतिशत रोगो का ही अध्ययन किया जा सकता है, 80 प्रतिशत रोगो का अध्ययन सभव नही है।

(4) इस विधि का उपयोग सभी मनोवैज्ञानिक या चिकित्सक नही कर सकते। क्योकि इसके लिए प्रशिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकता होती है।

(5) यह एक आत्मनिष्ठ विधि (objective method) है।

व्यक्ति-वृत्त विधि
(Case-History Method)

व्यक्ति-वृत्त विधि को असामान्य मनोविज्ञान मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस विधि के माध्यम से असामान्य व्यक्ति के विगत जीवन से सम्वन्धित विभिन्न प्रकार के तथ्य, जैसे—पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा, परम्परागत रोग का विवरण, लक्षण, रोगी का पारिवारिक सदस्यो के साथ सम्वन्ध, रोगी की आदतें, आर्थिक स्थिति, शिक्षा आदि एकत्रित किये जाते हैं। दूसरे शब्दो मे, इस विधि के माध्यम से असामान्य व्यक्ति से सम्वन्धित सभी प्रकार की सूचनाये प्राप्त की जा सकती हैं। इन सूचनाओ के आधार पर व्यक्ति के वर्तमान समायोजन के सम्वन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है, जैसे—एक 22 वर्षीय युवती जलाशय, कुएँ या नदी से किनारे जाने से वहुत डरती थी। इस विधि के माध्यम से जव युवती का अध्ययन किया गया तो उसके एक निकट के रिश्तेदार मे यह ज्ञात हुआ कि एक वार जव वह अपनी मौसी के साथ पिकनिक पर गयी थी तो विछड गयी तथा झरने मे गिरकर वेहोश हो गई थी। यद्यपि उसको इस घटना की स्मृति नही थी परन्तु इस घटना के कारण उसे जल-भीति (Hydrophobia) उत्पन्न हो गयी थी।

व्यक्ति-वृत्त विधि की आलोचना
(Criticism of Case-History Method)

इस विधि के गुण व दोष दोनो है। इस विधि के निम्न दोष हैं :—

(1) कभी-कभी जव इस विधि के द्वारा सुव्यवस्थित सूचनायें नही प्राप्त होती हैं तो ऐसी दशा मे साधारण घटना को ही प्रमुख मान लिया जाता है जिससे प्रमुख घटना पर सही प्रकाश नही पडता है।

(2) कभी-कभी सूचनाएँ देने वाले कुछ घटनाओ, तथ्यो आदि की जानकारी नही देते, वे उन्हे छिपा लेना चाहते है जिनके परिणावस्वरूप सही तथ्यो की जानकारी नही हो पाती है।

(3) स्मरण रहे कि इस विधि की सफलता मुख्य रूप से असामान्य व्यक्ति के माता-पिता, सम्वन्धी, मित्रगण तथा आस-पास के व्यक्तियो पर होती है जो अपनी

स्मृतियों के आधार पर ही सूचनाएँ देते है। परन्तु यह भी सभव है कि कुछ घटनाओ की स्मृति इनमे से किसी को भी नही या बहुतो को नही हो। ऐसी दशा मे इस अध्ययन विधि मे कुछ दोष आ जाना स्वाभाविक ही है।

(4) सूचना देने वाले सूचनाएँ यथार्थ रूप से नही देते बल्कि अपनी अभिरुचि, अभिवृत्ति आदि के आधार पर तोड-मरोडकर पेश करते है जिससे यह विधि दोषयुक्त हो जाती है।

(5) इस विधि मे वैज्ञानिकता या वस्तुनिष्ठता (objectivity) का अभाव होता है।

इन दोषो के अतिरिक्त इस विधि की कुछ ऐसी विशेषताएँ भी है जिन्हे यहाँ वर्णन करना आवश्यक है —

(1) असामान्य व्यक्ति से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाओ की जानकारी प्राप्त होती है।

(2) गत जीवन का वर्तमान जीवन पर क्या प्रभाव पडता है—इसका अध्ययन इस विधि से ही सम्भव है।

(3) अनेक मानसिक रोगो का नैदानिक अध्ययन इस विधि से ही सम्भव है।

मनोविश्लेषण विधि
(Psychoanalysis Method)

असामान्य मनोविज्ञान मे मनोविश्लेषण विधि का काफी महत्त्व है। इस विधि का उपयोग फ्रायड (Freud) के द्वारा शुरू हुआ। असामान्यताओ का पूर्ण परिचय तब प्राप्त हो सकता है जबकि उसके मन की सुप्त या गुप्त इच्छाओ, भावो व धारणाओ का समुचित अध्ययन किया जाय। इन भावो या धारणाओ का सम्बन्ध अचेतन मन (unconscious mind) से होता है जिसका अध्ययन मनोविश्लेषण विधि के माध्यम से होता है। फ्रायड ने इस विधि को उपयोग करने से पूर्व ब्रूयर (Breuer) के साथ मानसिक रेचन (mental catharsis) विधि के द्वारा असामान्य व्यवहार का अध्ययन किया था, परन्तु उसे यह विधि असन्तोषजनक लगी। अत उसने मनोविश्लेषण विधि का विकास किया।

फ्रायड तथा उसके सहयोगियो का मत है कि व्यक्ति की छिपी हुई भावनाओ या वासनाओ को सुगमता से नही जाना जा सकता है। व्यक्ति की उन क्रियाओ मे वे बातें प्रकट होती है जिन्हे हम निरर्थक समझते है, जैसे—उँगलियाँ तोडना, नाखून काटना, भूलें करना आदि। मनोविश्लेषणवादियो का विश्वास है कि व्यक्ति की क्रियाएँ निरर्थक नही होती है जिन्हे हम निरर्थक समझते है, उनका एक अर्थ होना है और वह व्यक्ति की परिचायक होती है।

इस विधि मे मनोविश्लेषण असामान्य व्यक्ति के साथ इस प्रकार का आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करता है कि रोगी अपनी सभी गुप्त बातो को प्रकट कर देता है।

इस विधि का प्रयोग वे करते है जो प्रशिक्षित होते है। मनोविश्लेपण विधि मे मनोविश्लेपक को निम्न स्तरो को ध्यान मे रखना चाहिए —

(1) आत्मीयता स्थापित करने का स्तर (Stage of Establishing Rapport)

इस स्तर पर मनोविश्लेपक को असामान्य व्यक्ति के साथ मे सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। अन्य शब्दो मे, रोगी के साथ आत्मीयता या घनिष्ठता के सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए मनोविश्लेपक को इस प्रकार का व्यवहार प्रकट करना चाहिए कि रोगी उसे अपना साथी समझ ले और खुलकर बातचीत करे। ऐसा करने के लिए मनोविश्लेपक को रोगी को आराम के शान्त व आरामदेह स्थान पर बैठाकर अध्ययन प्रारम्भ करना चाहिए।

(2) मुक्त-साहचर्य स्तर (Free-Association Stage)

द्वितीय स्तर पर मनोविश्लेपक मुक्त साहचर्य स्तर पर रोगी से बात करता है तथा व्यक्त की गई इच्छाओ, विचारो, भावो आदि को लिखता जाता है। क्योकि रोगी की बातो मे अचेतन से सम्बन्धित विचार, भाव आदि प्रकट होते हैं, इस स्तर पर मुख्य रूप से दो कठिनाइयाँ आती है :—

(अ) प्रतिशोध (Resistances)—कभी-कभी रोगी बातो को कहते-कहते रुक-सा जाता है।

(ब) संक्रमण (Transference)—मुक्त साहचर्य स्तर मे कभी-कभी उस समय कठिनाई उपस्थित हो जाती है जब रोगी अपने सवेगो (प्रेम, घ्राण या क्रोध) की अभिव्यक्ति मनोविश्लेषक के प्रति करने लगता है।

मनोविश्लेषण विधि की आलोचना
(Criticism of Psychoanalysis Method)

असामान्य मनोविज्ञान की मनोविश्लेषण विधि एक प्रमुख विधि है। इस विधि की मुख्य विशेषताएँ निम्न है —

(1) अचेतन का अध्ययन करना सम्भव है।

(2) इसके माध्यम से स्वप्नो, दैनिक जीवन की भूलो, असामान्य समायोजनो, मानसिक रोगो आदि का अध्ययन सम्भव है।

(3) व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व, सवेगात्मक तनाव आदि को भी समझा जा सकता है।

मनोविश्लेषण विधि की कुछ सीमाएँ भी है, जिन्हे हम सक्षेप मे नीचे प्रस्तुत कर रहे है —

(1) इस विधि के अध्ययन करने में समय अधिक लगता है।

(2) इस विधि के लिए प्रशिक्षित व अनुभवी मनोविश्लेपक की आवश्यकता होती है।

(3) इसके उपयोग मे खर्च भी अधिक होता है।

5

प्रत्यक्षालाप विधि
(Interview Method)

इस विधि मे रोगी से बातचीत की जाती है तथा बातचीत के दौरान ही उसके व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। **मैक्कबी व मैक्कबी** (Maccoby and Maccoby) के अनुसार प्रत्यक्षालाप मे आमने-सामने बैठकर मौलिक रूप से विचार-विनिमय किया जाता है। इस मौखिक प्रत्यक्षालाप मे प्रत्यक्षालापक रोगी के विश्वास, भय, या भाव या अभिव्यक्ति आदि को जानने का प्रयास करता है। मनोवैज्ञानिक एक कमरे मे रोगी के आमने-सामने विचार-विनियम करता है। प्रत्यक्षलाप मुख्यत दो प्रकार का होता है —

(क) **निर्देशित प्रत्यक्षालाप** (Structured Interview)—प्रश्नो की सरचना पहले से कर ली जाती है।

(ख) **अनिर्देशित प्रत्यक्षालाप** (Unstructured Interview)—प्रश्नावली पहले से तैयार नही होती। प्रत्यक्षालापक स्वय ही सहज ढग से प्रश्न पूछता है।

इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतैक्य नही है कि प्रत्यक्षालाप विधि का कौन-सा प्रकार सर्वश्रेष्ठ है, उदाहरण के लिए, कैन्ट्रिल (Cantril) ने निर्देशित प्रत्यक्षालाप को जहाँ सर्वश्रेष्ठ विधि माना है वहाँ पियाजे व किनजे (Piaget and Kinsey) ने अनिर्देशित प्रत्यक्षालाप को सर्वश्रेष्ठ माना है।

प्रत्यक्षालाप विधि की आलोचना
(Criticism of Interview Method)

इस विधि मे निम्नाकित दोप है —

(1) इस विधि से प्राप्त निष्कर्षों की जाँच नही की जा सकती है, क्योंकि रोगी अपने ढग से ही प्रत्यक्षालाप करता है।

(2) व्यक्ति यथार्थ व्यवहार को प्रकट नही करता जिसके कारण उसके स्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन सम्भव नही होता है।

(3) अनेक मानसिक रोग ऐसे होते है जिनमे रोगी से प्रत्यक्षालाप करना सम्भव ही नही होता।

इस आलोचना से यह निष्कर्ष नही निकालना चाहिए कि इस विधि का असामान्य मनोविज्ञान मे उपयोग ही सम्भव नही है। वास्तविकता यह है कि मानसिक रोगो की चिकित्सा के पूर्व रोगियो से आत्मीयता या घनिष्ठता स्थापित करने के लिए प्रत्यक्षालाप आवश्यक है तथा इसके माध्यम से असामान्यता के प्रकार को भी समझा जा सकता है। अत असामान्य मनोविज्ञान मे प्रत्यक्षालाप विधि एक महत्त्वपूर्ण विधि है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण विधि
(Psychological Test Method)

मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के माध्यम से असामान्य व्यवहार को आसानी से

समझा जा सकता है। ये परीक्षण व्यवहार का वस्तुगत और प्रमाणीकृत मापन करता है। मुख्य रूप से मनोवैज्ञानिक परीक्षण निम्नलिखित हैं —

(i) **बुद्धि-परीक्षण** (Intelligence Test)

इन परीक्षणो के माध्यम से मानसिक न्यूनता का पता लगाया जाता है। बुद्धि-परीक्षणो को चार वर्गो में रखा जा सकता है :—

(क) व्यक्तिगत मौखिक बुद्धि-परीक्षण
(Individual Verbal Intelligence Test)।

(ख) व्यक्तिगत क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षण
(Individual Performance Intelligence Test)।

(ग) सामूहिक मौखिक बुद्धि-परीक्षण
(Group Verbal Intelligence Test)।

(घ) सामूहिक क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षण
(Group Performance Intelligence Test)।

(ii) **प्रतिक्रिया-काल परीक्षण** (Reaction-Time Tests)

प्रतिक्रिया-काल परीक्षणो के माध्यम से व्यक्तिगत भिन्नता का पता लगाया जाता है। दूसरे शब्दो मे, व्यक्तिगत भिन्नता से यह पता चलता है कि एक ही परि-स्थिति मे विभिन्न प्रकार के व्यक्ति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करते है। इसमे सामान्य व असामान्य व्यवहार के अन्तर को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

(iii) **प्रक्षेपण परीक्षण** (Projective Test)

ये परीक्षण व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र रूप से मापन करते हैं। इन परीक्षणो के माध्यम से व्यक्ति की आन्तरिक प्रवृत्तियो, दमित विचारो व इच्छाओ को जाना जा सकता है। इन परीक्षणो को नैदानिक परीक्षण की संज्ञा भी दी जाती है। इससे मुख्य रूप मे अचेतन का अध्ययन सम्भव है। यह एक प्रकार की मनोरचना (mental mechanism) भी है। मुख्य प्रक्षेपण परीक्षण निम्न हैं :—

(1) रोर्शा का स्याही-धब्बा परीक्षण (Rorschach's Ink Blot Test)
(2) मुर्रे का विषयक अभिबोध परीक्षण (Murray's TAT)
(3) डा० चौहान व डा० तिवारी का नैराश्य परीक्षण (Frustration Test)
(4) रोजेंजविग का 'चित्रकुण्ठा-अध्ययन' (Picture Frustation Study of Rosenzeweig)।
(5) शब्द-साहचर्य परीक्षण (Word Association Test)।

(iv) **व्यक्तित्व-परीक्षण** (Personality Test)

इन परीक्षणो के माध्यम से व्यक्ति के शीलगुणो (traits) का मापन होता है। इन शीलगुणो के आधार पर व्यक्ति के विभिन्न क्षेत्रो समायोजनो पर प्रकाश पड़ता है।

(v) नैराश्य-परीक्षण[1] (Frustration Test)

शाब्दिक रूप से नैराश्य मापन के क्षेत्र मे प्रथम परीक्षण का निर्माण आगरा के डा० नरेन्द्रसिंह चौहान व डा० गोविन्द तिवारी ने किया है। इस परीक्षण के माध्यम से यह ज्ञात हो जाता है कि व्यक्ति मे नैराश्य की मात्रा कितनी है। इसके अतिरिक्त इस परीक्षण के माध्यम से नैराश्य-प्रकारो (e g, Aggression, Regression, Fixation and Resignation) को भी मापित किया जा सकता है।

(vi) चिन्ता, अन्त र्मुखी-बहिर्मुखी परीक्षण
(Anxiety, Extroversion-Introversion Tests)

असामान्य व्यक्तियो मे अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से चिन्ता, अन्त र्मुखी-बहिर्मुखी आदि व्यक्तित्व लक्षण अवश्य विद्यमान होते है। चिन्ता मापन क्षेत्र में सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान राष्ट्रीय फैलोशिप प्राप्त प्रो० दुर्गानन्द सिन्हा ने दिया है। आगरा के डा० डी० एन० श्रीवास्तव व डा० गोविन्द तिवारी ने भी चिन्ता मापन हेतु एक परीक्षण का निर्माण किया है। सागर विश्वविद्यालय के डा० जयप्रकाश ने अन्त र्मुखी-बहिर्मुखी परीक्षण का निर्माण किया है।

मनोवैज्ञानिक विधि की आलोचना
(Criticism of Psychological Test Method)

असामान्य व्यवहार के अध्ययन मे मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का काफी महत्त्व है, विशेष रूप से प्रक्षेपण विधियो का। क्योकि इन परीक्षणो से विशेष रूप से अचेतन का अध्ययन करना सम्भव है। परन्तु इसके साथ ही साथ इन परीक्षणो के निर्माण मे समय व धन का व्यय अधिक होता है।

1. *Frustration Test*, Published by Agra Psychological Research Cell, Tiwari Kothi, Belanganj, Agra.

5

प्रेरणा एवं समायोजन

(MOTIVATION AND ADJUSTMENT)

मानव-व्यवहार को सचालित करने के लिए एक प्रकार की शक्ति की आवश्यकता होती है जिसे आन्तरिक आवश्यकता या इच्छा कहते है। व्यवहार को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जान लें कि कौनसी आवश्यकता या इच्छा इसे प्रेरित कर रही है। इन प्रेरित तत्वो के अनेक रूप हैं, जैसे—उद्देश्य, प्रवृत्तियाँ, इच्छाएँ, प्रयोजन, आकाक्षाओ मे, रुचियाँ, आदत आदि। समायोजन से तात्पर्य है कि व्यक्ति के व्यवहार को परिस्थितियो के अनुकूल बनाना, जिससे कि वह परिवर्तित सामाजिक अन्य व परिस्थितियो मे ठीक प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर सके। जब एक व्यक्ति समायोजित व्यवहार का प्रदर्शन करता है तो उसे सामान्य व्यक्ति कहा जाता है। इस प्रकार के व्यवहार की मुख्य विशेषता यह होती है कि व्यक्ति के विचार, इच्छाएँ, सवेग आदि अन्य व्यक्तियो के अनुकूल होते है। इसके विपरीत, जिस व्यक्ति का व्यवहार अन्य व्यक्तियो की तुलना से भिन्न होता है, जो अपनी प्रेरणाओ एवं विचारो मे समन्वय या समंजन स्थापित नही कर पाता, उसे असमयोजित या कुसमायोजित (Mal-adjusted) व्यक्ति की संज्ञा दी जाती है तथा उनके व्यवहार को असामान्य व्यवहार कहा जाता है। व्यक्ति कुछ प्रेरणाओ के अन्तर्गत या उसके अधीन कार्य करता है अतः समायोजन, असमायोजन आदि को समझने के लिए आवश्यक यह है कि हम प्रेरणा को समझें। इस अध्याय मे हम प्रेरणा व समायोजन के सम्बन्ध मे विस्तृत रूप से प्रकाश डालेंगे।

प्रेरणा का अर्थ

(Meaning of Motives)

मानव-व्यवहार के पीछे एक ऐसी आन्तरिक भावना कार्य करती है जिससे वह प्रेरित होकर क्रिया या व्यवहार को प्रकट करता है। यह प्रेरक-शक्ति मानव

को लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती रहती है। इस प्रकार प्रेरक प्रदत्त-शक्ति को ही प्रेरणा कहते है। समायोजन की प्रक्रिया का प्रारम्भ प्रेरणा से होता है, उदाहरणस्वरूप—भूख-प्रेरक (hunger motive) के द्वारा हमे भूख लगती है, जो एक आवश्यकता है। भूख की तृप्ति के लिए भोजन की आवश्यकता होती है, जिसको जुटाने के लिए हम प्रत्येक समस्या के साथ समायोजन स्थापित करते हैं।

फिशर (Fisher) के मतानुसार—"**प्रेरणा क्रिया की एक प्रवृत्ति या प्रणोदन है जिसमे कुछ अंश अभिस्थापन व निर्देशन का जुड़ा होता है।**"[1] फिशर की इस परिभाषा को हम एक उदाहरण के द्वारा समझा सकते है। भूखा व्यक्ति आराम से नही बैठता, उसके अन्दर कार्य करने की प्रवृत्ति होती है तथा उसके लिए यह बडा ही कठिन होता है कि वह चुपचाप आराम से बैठ जावे और अपना ध्यान अन्य वस्तुओ की ओर लगावे। प्रेरणा मे कुछ अश क्रिया को अभिस्थापन या निर्देशन (orientation or direction) करने के होते है। फिशर ने एक स्थान पर कहा है कि "**यह निश्चित है कि प्रेरणा स्वयं मे एक क्रिया है, परन्तु यह साधारण, आन्तरिक एवं अपूर्ण क्रिया है।**"[2] एक अपूर्ण क्रिया इसलिए है कि यह सदैव अग्रिम क्रिया के हेतु एक माँग (demand), प्रवृत्ति या प्रणोदन का कार्य करती है। वुडवर्थ ने भी प्रेरणा को इसी अर्थ मे उपयोग किया है।[3]

फिशर ने समस्त भावो, सवेगो, इच्छाओ, प्रवृत्तियो, उत्तेजनाओ (urges), झुकावो, चालनो, आवेगो, प्रयासो (strivings) आदि को प्रेरणा माना हैं।[4]

प्रेरणा के माध्यम से प्राणी को क्रियाशीलता मिलती है तथा एक वह दिशा मिलती है जिससे वह लक्ष्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। शेफर (Shaffer), गिलमर (Gilmer) व शयोन (Schoen) का इस सम्बन्ध मे निम्न मत है :—

"A motive may, now be defined as a tendency to activity, initiated by a drive and concluded by an adjustment."

इस परिभाषा से मुख्यत अग्रलिखित बातें स्पष्ट हो जाती है —

---

1. "A motive is an inclination or impulsion to action plus some degree of orientation or direction."—Fisher V B.: *An Introduction to Abnormal Psychology*, Revised Edition, 1947, p. 7.
2. "A motive, to be sure, is itself activity. But it is a peculiar, internal and incompleted activity."—Fisher *Ibid*, p. 9
3. See, for instance, Woodworth, R. S *Psychology*, Revised Edition, Chapter VI.
4. "All feelings, emotions, desires, tendencies, proclivities, inclinations, propensities, drives, impulses, urges, strivings are motives."—Fisher · *Ibid*

(1) यह एक विशेष आन्तरिक व्यवस्था है।

(2) इसके उत्पन्न होने पर एक विशेष प्रकार का मानसिक तनाव व असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न होती है।

(3) इस स्थिति से छुटकारा प्राप्त करने के लिए व्यक्ति क्रिया करता है।

(4) इस क्रिया का निर्देशन किसी लक्ष्य की ओर होता है।

(5) क्रिया निरन्तर लक्ष्य-प्राप्ति तक चलती है तथा लक्ष्य के अनुरूप ही क्रिया रूप भी परिवर्तित होता रहता है।

(6) लक्ष्य-प्राप्ति के बाद तनाव एवं मानसिक असन्तुलन समाप्त हो जाता है।

हिलगार्ड (Hilgard) ने प्रेरणा के लिए एक सूत्र का निर्माण किया है—

सूत्र = प्रेरणा—आवश्यकता—चालन—प्रोत्साहन

(Formula = Motive—Need—Drive—Incentives)

इस प्रकार आवश्यकता, प्रेरक व प्रोत्साहन तीनों ही प्रेरणा के मुख्य अंग हैं :—

(अ) आवश्यकता (Need)—वातावरण की उन वस्तुओं से जो प्राणी को जीवित व विकास करने मे सहायता प्रदान करती है, आवश्यकता कहते हैं; जैसे—पानी, भोजन, स्नेह आदि। आवश्यकता को दो भागों मे बाँटा जा सकता है :—

(i) शारीरिक आवश्यकताएँ (Physical Needs)—जैसे—भोजन (विटामिन, प्रोटीन आदि), जल, नींद आदि।

(ii) मानसिक आवश्यकताएँ (Mental Needs)—जैसे—रक्षा, प्रतिष्ठा, स्नेह आदि।

(ब) चलन (Drive)—इनका जन्म आवश्यकता से होता है। हिलगार्ड (Hilgard) के शब्दों में—"हम आवश्यकता के मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन को चलन कहते हैं।"[1] बोरिंग, लैंगफेल्ड व वेल्ड (Boring, Langfeld and Weld) ने चालन के एक विशेष प्रकार के व्यवहार को उद्दीपन प्रदान करने वाली शारीरिक क्रिया की अवस्था कहा है :—

"A drive is an intraorganic activity or condition of tissue supplying stimulation for particular type of behaviour."

चालन की तुलना मनोवैज्ञानिकों ने यन्त्र (मशीन) के चालन से की है। आवश्यकता के अनुसार चालन को भी दो भागों में बाँट सकते हैं :—

(1) शारीरिक चालन—(Physical Drive)—भूख, प्यास, नींद आदि।

(2) मानसिक चालन (Mental Drive)—प्यार, सम्मान, रक्षा आदि।

---

1. "The psychological consequence of a need we call a drive,"

—Hilgard.

(स) प्रोत्साहन (Incentives)—इसमे चालक की तृप्ति होती है। वातावरण की वह वस्तु जो चालक की सन्तुष्टि करे, प्रोत्साहन कहलाती है।

इस प्रकार हिलगार्ड का सूत्र सक्षेप मे यह बताता है कि आवश्यकता से चालन (drive) की उत्पत्ति होती है तथा इसकी तृप्ति प्रोत्साहन के माध्यम से होती है। हिलगार्ड ने इस सम्बन्ध मे निम्न मत व्यक्त किया है —

"Need gives rise to drive, drive is a state of heightened tension leading to restless activity and preparatory behaviour The incentive is something in the external environment that satisfies the need and thus reduces the drive through consummatory activity"

प्रेरणा व समायोजन का सम्बन्ध
(Relations of Motive and Adjustment)

समायोजन जीवन-पर्यन्त निरन्तर चलने वाली एक क्रिया है। समायोजन को ठीक से समझने के लिए आवश्यक है कि हम यह जान लें कि किन-किन प्रेरणाओ के अधीन मनुष्य कार्य करता है। मनुष्य की इच्छाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ आदि तुष्टि व पूर्ति चाहती है। व्यक्ति का समायोजन मुख्यत. तीन बातो पर निर्भर होता है —

(1) व्यक्ति की कामनाओ, वासनाओ, लक्ष्यो, आदर्शों आदि मे परस्पर कितना सामजस्य है और क्या ये सब मिलकर एक निश्चित दिशा प्रदान करती है या परस्पर विरोधी दिशाएँ निश्चित करती है? समायोजन मे ये प्रश्न बड़े ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योकि इन्ही क्रियाओ के फलस्वरूप व्यक्तित्व का समन्वय एव एकीकरण (integration) होता है।

(2) समायोजन पर इस बात का भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पडता है कि व्यक्ति की इच्छाएँ, कामनाएँ व वासनाएँ कहाँ तक पूर्ण हुई हैं? जो व्यक्ति अपनी प्रेरणाओ की तुष्टि करता रहता है, उसका दृष्टिकोण आशावान व स्वस्थ होता है लेकिन जो व्यक्ति अपनी प्रेरणाओ की तुष्टि मे असफल होता रहता है, वह अपनी परिस्थितियो व समाज से चिढने लगता है। उसे अपने-आप से भी सन्तोष नही होता।

(3) उसकी आकाक्षाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ कहाँ तक समाज की मान्यताओ, मर्यादाओ व आदर्शों से मेल खाती हैं? अगर उसके विचार समाज से मेल खाते हुए है तो वह सुखी रहेगा अन्यथा उसे सघर्ष का शिकार होना पडेगा।

प्रेरणाओ का वर्गीकरण
(Classification of Motives)

फिशर का वर्गीकरण (Classification of Fisher)

प्रेरणा कार्य को जन्म देती है तथा क्रिया को बनाये रखने मे सहायता प्रदान करती है। फिशर ने मुख्य प्रेरणाओ का वर्गीकरण मनोजैविकीय सार्थकता (psycho-

biological significance) के आधार पर की है। यह वर्गीकरण निम्न रूप मे प्रस्तुत है :—

1. दैहिक प्रेरणाएँ (Somato motives) : (शारीरिक आवश्यकताओं, यथा—भूख, प्यास, शारीरिक पीडा आदि मे सम्वन्धित प्रेरणाएँ)
2 ऐलो या जातीय प्रेरणाएँ (Allo or Racial Motives) (जातीय कल्याण से सम्वन्धित प्रेरणा, यथा—व्यक्ति की सुरक्षा, लिंग, पैतृक प्रवृत्तियाँ (अनुभाव), सहानुभूति आदि)
3 अहम् प्रेरणाएँ (Ego Motives) (इसमे आत्म-प्रदर्शन, आत्मग्राहिता आदि से सम्वन्धित प्रेरणाएँ आती हैं)

(1) **दैहिक प्रेरणाएँ** (Somato Motives)—दैहिक प्रेरणाओ के सम्वन्ध मे सामान्यत. हम सभी लोग परिचित है। इस प्रकार की प्रेरणाओ का सम्वन्ध आन्तरिक उद्दीपको से होता है तथा ये व्यक्ति का ध्यान जैविक आवश्यकताओ की पूर्ति की ओर आकर्षित करती है। व्यक्ति को जीवित रहने के लिए इन प्रेरणाओ की तृप्ति करना आवश्यक है। इस प्रकार की प्रेरणाओ के तीन प्रमुख कार्य है —

(i) मानव शरीर के अस्तित्व को वनाये रखने के लिए आंगिक आवश्यकताओ (organic needs) की तृप्ति।

(ii) अगो का क्षति होने पर चोट आदि लगने से बचाना।

(iii) ऐसी सहायक क्रियाओ को उद्दीप्त करना जिससे कि प्रजनन व शिशु-पालन कार्य सम्भव होता है।

इनका सम्बन्ध व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओ, जैसे—भूख, प्यास, शारीरिक पीड़ा आदि से होता है। व्यक्तित्व-विकृतियो की उत्पत्ति मे दैहिक प्रेरणाओ का अधिक सीमा तक हस्तक्षेप नही होता है बल्कि ये केवल अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रभाव डालती है।[1]

(2) **ऐलो या जातीय प्रेरणाएँ** (Allo or Racial Motives)—फिशर के अनुसार मुख्य रूप से मानसिक स्वस्थता या अस्वस्थता जातीय व अहम् प्रेरणाओ के

---

1. "These motives enter only indirectly into the genesis of personality disorders, and even then on great extent, we shall therefore dispense with any further discussion of them" —**Fisher** *Ibid*, p. 11.

विकास, निर्देशन व सघटन पर आधारित होता है।[1] लिग प्रेरणा के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतैक्य नही है। फ्रायड ने लैंगिक शक्ति (sexual energy) को 'लिबिडो' कहकर पुकारा तथा कार्य के समस्त आवेगो की सगठनकर्त्ता के रूप मे व्याख्या की। एडलर ने दूसरी तरफ बताया कि अहम् सम्बन्धी आकाक्षाओ से लिग का सदैव सम्बन्ध रहता है। व्यक्ति इनका उपयोग अहम् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करता है। फिशर लिग को जातीय प्रेरणा मानता है। जातीय प्रेरणाओ के अन्तर्गत फिशर लिग के अतिरिक्त पैतृक प्रवृत्तियो, सहानुभूति, सुझाव आदि को भी रखता है।

(3) अहम् प्रेरणाएँ (Ego Motives)—अहम् प्रेरणाएँ मनुष्य के व्यवहार प्रतिरूप के सभी भागो का नेतृत्व करना है। इस प्रकार इसमे फिशर ने अप्रत्यक्ष रूप मे मनुष्य की सभी क्रियाओ को सम्मिलित कर लिया है। खाना व लैंगिक क्रियाये भी अहम् प्रेरणाओ की अभिव्यक्ति हैं।[2] विशेष रूप से इन प्रेरणाओ के अन्तर्गत फिशर ने आत्मप्रदर्शन, आत्म-ग्राहिता आदि प्रेरणाओ को रखा है।

सामान्य वर्गीकरण
(General Classification)

प्रेरणाओं को सामान्य रूप से निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जाता है —
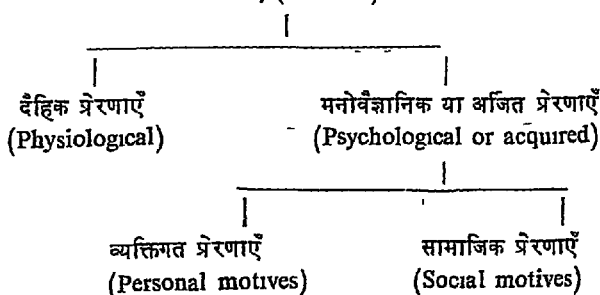
1. "It is primarily upon the development, direction, and organization of the racial. and ego-motives that mental health or mental ill health depends."—Fisher · *Ibid*,
2. "Egoistic motives may lead to almost any conceivable pattern of behaviour. Only obvious self-display and self-assertive activity are generally recognized as manifestation of egoism. But we can not judge the motive by the pattern of activity. Even eating may in a given instance be egoistically motivated as the country fair by eating the largest number of pies."—Fisher : *Ibid*, p. 15.

(1) दैहिक प्रेरणाएँ (Physiological Motives)—ये प्रेरणाएँ मनुष्य में जन्म से विद्यमान रहती है। इनमे मुख्यत. भूख, प्यास, काम, निद्रा आदि प्रेरणाएँ आती है।

(2) मनोवैज्ञानिक या उपार्जित प्रेरणाएँ (Psychological or Acquired Motives)—ये जन्मजात नही होती बल्कि व्यक्ति इन्हे धीरे-धीरे सीखता है। मनोवैज्ञानिक प्रेरणाओं का मानव जीवन मे अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व है। कभी-कभी मनोवैज्ञानिक प्रेरणाएँ दैहिक प्रेरणाओ का ही विस्तृत व विकसित रूप होती हैं। मानव तभी सुखपूर्वक रह सकता है जबकि उचित प्रकार से उसकी मानसिक या मनोवैज्ञानिक प्रेरणाओ की तुष्टि हो। आज मानव केवल वर्तमान की ही चिन्ता नही करता बल्कि भविष्य की चिन्ता करता है। मनोवैज्ञानिक प्रेरणाओं को दो भागो मे बाँटा जा सकता है :—

(i) व्यक्तिगत प्रेरणाएँ (Personal Motives)—ये प्रेरणाएँ इसके अन्तर्गत आती हैं जिन्हे व्यक्ति स्वय उपार्जित करता है। इस वर्ग के अन्तर्गत जीवन-लक्ष्य (life-goal), आदत (habit), अभिरुचि व अभिवृत्ति (Interest and attitudes), अचेतन प्रेरणाएँ, (unconscious motives) आदि प्रमुख है।

(ii) सामाजिक प्रेरणाएँ (Social Motives)—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जिसके कारण उसमे यह इच्छा विद्यमान होती है कि उसको समाज मे एक उच्च स्थान प्राप्त हो। वह चाहता है कि लोग उसे स्वीकार करें, उसका सम्मान करें। अन्य व्यक्तियों के भय से वह सामाजिक परम्पराओ, रीति-रिवाजों व आदर्शों का पालन करता है। सामाजिक प्रेरणाओ का जन्म समाज के साथ व्यक्ति की अन्तःक्रिया करते समय होता है। साधारणतया ये प्रेरणाएँ समाज के समस्त लोगो में समान रूप से पायी जाती हैं। यूथचारिता (gregariousness), संग्रहशीलता (acquisitiveness), स्व-ग्राहिता, (self-assertion), युयुत्सा (Pugnacity) आत्म-श्लाघा, आत्म-सम्मान का स्थायीभाव (sentiment of self-regared—McDougall), स्वप्रेम (narcissism) आदि प्रमुख सामाजिक प्रेरणाएँ हैं।

प्रेरणाओं का विकास एवं व्यवस्था
(Development and Organisation of Motives)

एक बालक एवं एक प्रौढ व्यक्ति की प्रेरणाओ को अगर तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाय तो बालक की प्रेरणाएँ आवेगपूर्ण एव अस्थायी होती हैं, जबकि प्रौढ़ की प्रेरणाएँ क्रमपूर्ण, विचारशील एवं स्थायी रहती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जैसे-जैसे बालक का विकास होता है वैसे-वैसे ही वह बुद्धि, अनुभव एवं विचारशीलता के माध्यम से अपेक्षाकृत अधिक स्थायी व प्रयोजनपूर्ण लक्ष्य बनाता है जिसमे कि उसकी प्रेरणाएँ अधिक स्थायी एवं निश्चित होती जाती है। बालक अभ्यास के माध्यम से स्थायी अभिवृत्ति व स्थायीभाव (sentiment) अर्जित करता है। जब

कोई प्रेरणा एक विशेष प्रकार की स्थिति व एक विशेष प्रकार की वस्तु के साथ बार-बार जाग्रत व व्यक्त होती है तो वह उस स्थिति व वस्तु के प्रति स्थायीभाव का जन्म हो जाता है। इस प्रकार स्थायीभाव एक प्रकार की अभिवृत्ति है जो किसी विशेष स्थिति या वस्तु से सम्बन्धित होती है।

स्थायीभाव प्रेरणाओ को व्यवस्थित एव स्थायी बनाते हैं, क्योकि बालक की अपेक्षा प्रौढ मे अधिक स्थायीभाव रहते हैं इसलिए प्रौढो की प्रेरणा अधिक सगठित होती है। स्थायीभावो मे भी प्रेरणाओ के समान ही सघर्ष चलता रहता है। सघर्ष के कारण एक स्थायीभाव दूसरे स्थायीभाव पर प्रभुत्व कायम रखता है। इस प्रकार धीरे-धीरे क्रिया-प्रतिक्रिया के माध्यम से प्रेरणाएँ संगठित होती हैं।

प्रेरणाओ का अति और अल्प विकास
(Over and Under Development of Motives)

प्रत्येक प्रेरक को जाग्रत करने के लिए मूलत समान प्रकार की शक्ति व्यक्ति मे होती है तथा इस बात ता निर्धारण कि कौन-सा प्रेरक प्रधान होगा, यह व्यक्ति के पर्यावरण एव व्यक्तिगत अनुभवो पर निर्भर होता है। प्रारम्भ मे कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी प्रेरणा-विशेष को व्यक्ति बार-बार अनुभव करता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति एक विशेप प्रेरणा के प्रति सवेदनशील हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह होता है कि व्यक्ति उस विशेप प्रेरक को जागृत करने की क्षमता रखने वाली सभी स्थितियो व उद्दीपको से विशेष परिचित हो जाता है तथा धीरे-धीरे यह प्रेरक उसके दैनिक जीवन मे एक अतिरजित मूल्य ग्रहण कर लेती हैं। प्रेरणाओ के अति विकास को एक उदाहरण के माध्यम से भी समझा सकते हैं। जैसे एक बालक मे अगर भय बार-बार जागृत किया जाय तो कुछ समय के उपरान्त वह ऐसी स्थितियो या बातो से घबडाने लगेगा जिनसे भयभीत होने का कोई कारण नहीं होता है, अगर इस प्रकार के बालक को एक छोटा बालक भी मार दे तो वह क्रोधित होने की अपेक्षा भयभीत होकर रोना प्रारम्भ कर देता है। इस प्रकार जिन स्थितियो मे प्रेरको का अति विकास हो जाता है, उनका व्यक्ति के जीवन मे एक असाधारण मूल्य होता है। वातावरण के प्रभाव के कारण प्रेम, सहानुभूति, लैंगिकता, अहम् भाव आदि प्रेरको का भी अति विकास सम्भव है। बेनडिक्ट (Benedict, 1934), **मार्गरेट मीड** (Mead, M 1935) आदि जाति-विज्ञानशास्त्रियो ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया कि विभिन्न प्रकार की संस्कृतियाँ विशेष प्रकार की प्रेरणाओ के विकास को प्रभावित या अप्रभावित करती हैं।

प्रेरणाओ के अतिविकास की भी मात्रा (degree) होती है। अगर इनकी मात्रा अत्यधिक बढ जाय तो यही मन स्नायुविकृति (psychoneurosis) का रूप ले लेती है। जैसे ऐसे बालको को जो अपने माँ-बाप या भाई-बहिनो मे अत्यधिक अनुराग करते हैं, उनके अन्दर अहम् भाव, आत्म-विश्वास व आत्म-निर्भरता आदि की

भावनाओ का पर्याप्त विकास नही हो पाता । इसी प्रकार के बालक बडे होकर अपने पर्यावरण या चेतन जीवन के अतिरंजित मूल्यो से दूर भागने का प्रयास करते है तथा उनमे शनै -शनै स्नायुविकृति के लक्षण उत्पन्न हो जाते है ।

जब प्रेरको का पर्याप्त विकास नही हो पाता या एक प्रेरक का अति विकास होने के कारण अन्य प्रेरणाओ पर व्यक्ति ध्यान नही दे पाता तो ऐसी स्थितियो मे प्रेरणाएँ अल्प-विकसित रूप ले लेती है । अन्य शब्दो मे कुछ प्रेरणाओ के अति विकास के परिणामस्वरूप अन्य प्रेरणाओ का अल्प-विकास (under-development) होना स्वाभाविक है, उदाहरणस्वरूप, जो व्यक्ति दिन-रात प्रत्येक व्यक्ति व वस्तु को आर्थिक दृष्टि से आँकने वाले होते है, वे अनेक प्रकार के कलात्मक एवं अन्य कोमल रुचियो से वचित रह जाते है । जब कुछ प्रेरको का अति विकास हो जाता है तो कुछ अन्य प्रेरको का विकास कम या अपर्याप्त होता है । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुछ प्रेरणाएँ दमित (repressed) हो जाती हैं तथा दमित हो जाने पर ये व्यक्ति के व्यवहार व रुचियो पर सामान्य व रचनात्मक प्रभाव नही डालती बल्कि विपरीत प्रभाव डालती हैं । जैसे भय को प्रेरणा दमित हो जाने पर व्यक्ति भय जैसी वस्तुओ का मजाक उड़ाता है तथा अगर लैंगिकता को प्रेरणा को दमित करने पर व्यक्ति लैंगिकता के प्रति घृणा प्रकट करते है, उसके परिणामो को सदैव अनुचित कहा करता है ।

प्रेरणाओं का अन्तर्द्वन्द्व
(Conflict of Motives)

समायोजन प्रक्रिया के मार्ग मे एक प्रमुख कठिनाई यह है कि व्यक्ति कभी-कभी अनिर्णय, हिचकिचाहट व अकर्मण्यता का शिकार हो जाता है । यही स्थिति उस समय विशेष रूप से उत्पन्न होती है जब दो परस्पर विरोधी प्रेरणाएँ व्यक्ति को परस्पर विपरीत दिशाओ मे खीचती है । ऐसी स्थिति मे व्यक्ति तनावपूर्ण अवस्था मे आ जाता है । इस प्रकार की स्थिति को प्रेरणाओ के द्वन्द्व की स्थिति कहते हैं । इस प्रकार अन्तर्द्वन्द्व के मुख्य कारण दो है —

(i) बाह्य बाधा (External Barrier)

इसका सम्बन्ध वातावरण से होता है । इसके दो रूप होते है :—

(अ) भौतिक बाधा (Physical barrier)—इनका सम्बन्ध भौतिक वातावरण से होता है, जैसे—आकस्मिक घटनाएँ, अतिवृष्टि आदि ।

(ब) सामाजिक बाधा (Social barrier)—जैसे—सामाजिक या धार्मिक नियम आदि ।

(ii) आन्तरिक बाधा (Internal Barrier)

ये बाधाएँ या तो वैयक्तिक दोष या मत के गत्यात्मक पक्ष के कारण उत्पन्न होती है, जैसे—शारीरिक दुर्बलता, उत्साह-हीनता, धैर्य-हीनता आदि ।

इस प्रकार अभियोजन की प्रमुख समस्याएँ वे परिस्थितियाँ होती है जो किसी प्रेरणा-पूर्ति मे बाधा उत्पन्न करती है। अगर एक आवश्यकता या इच्छा की पूर्ति मे किसी भी प्रकार की वातावरण से सम्बन्धित परिस्थिति बाधक न बने तो साधारण तथा आवश्यकताओ की सन्तुष्टि भी हो जाती है और समायोजन भी आसानी से हो जाता है तथा किसी भी प्रकार की समस्या भी उत्पन्न नही होतीं। लेकिन ऐसा सभी आवश्यकताओ मे नही होता और अगर किसी आवश्यकता या प्रेरणा की सन्तुष्टि मे कुछ कुण्ठित परिस्थितियाँ (thwarting conditions) उत्पन्न हो जाती है तो समायोजन की प्रक्रिया क्रियाशील हो जाती है। कुण्ठा के दो रूप प्रमुख है—(1) नैराश्य (frustration), (2) अन्तर्द्वन्द्व (conflict)। विफलता के अनेक कारण हो सकते है, जैसे—परिस्थितिजन्य, व्यक्तिगत आदि। सघर्ष की अवस्था व्यक्ति मे तब आती है जबकि अनेक प्रेरणाएँ एक साथ उपस्थित हो। ऐसी अवस्था मे व्यक्ति यह निश्चित नही कर पाता कि उसे क्या करना चाहिए। जैसे एक विद्यार्थी को खेलना भी है, सिनेमा भी देखना है और पढना भी है, ऐसी अवस्थाओ मे उसके मन मे अनेक विरोधात्मक प्रेरणाओ का जन्म हो जावेगा तथा उसे सघर्ष का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार विभिन्न कुण्ठित परिस्थितियाँ जब एक प्रेरणा की सन्तुष्टि मे बाधक बनती हैं तब ही मूल रूप से समायोजन की समस्या का जन्म होता है।

विविध अनुक्रियाएँ (Varied Response)—जब प्रेरणा की सन्तुष्टि मे बाधात्मक परिस्थितियाँ आ जाती है तब व्यक्ति इन बाधाओ को हटाने व इनसे बचने के लिए प्रयास करता है। वह अनेक प्रकार की क्रियाओ के माध्यम से समायोजन का प्रयास करता है तथा वातावरण के साथ एक समझौता करता है। इस प्रकार उसकी समायोजन की समस्या समाप्त हो जाती है।

समायोजन
(Adjustment)

आज का मानव विभिन्न प्रकार की समस्याओ से घिरा हुआ है। उसकी आवश्यकताएँ अनन्त है। वह अपने साधनो के माध्यम से इन आवश्यकताओ की पूर्ति मे प्रयत्नशील है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या यह सम्भव है कि आज का मानव उन सभी आवश्यकताओ की सन्तुष्टि कर सकता है, जिसको वह प्राप्त करना चाहता है। क्या वह इतना साधन-सम्पन्न है कि अनन्त आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है? आज की व्यवस्था मे यह असम्भव-सा ही प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति मे जब आवश्यकताओ की पूर्ति नही होती, व्यक्ति मानसिक स्तर पर अतृप्त बना रहता है। लेकिन फिर भी वह अपनी बुद्धि एव सामर्थ्य की सहायता से इन नई-नई समस्याओ, आवश्यकताओ एव परिस्थितियो से निपटने की कोशिश करता है। इस प्रकार के प्रयास को समायोजन की प्रक्रिया कह सकते हैं।

समायोजन का अर्थ (Meaning of Adjustment)

प्राणी विभिन्न प्रकार के पर्यावरण मे विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया करता है। पर्यावरण के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया, व्यवहार या अनुभव को समायोजन कहते हैं। शेफर (Shafier) के अनुसार—"समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक जीवित प्राणी अपनी आवश्यकताओं एवं इन आवश्यकताओ की सन्तुष्टि को प्रभावित करने वाली परिस्थितियो के साथ सन्तुलन बनाए रखता है।"[1]

शेफर की यह परिभाषा समायोजन के सम्बन्ध मे मुख्यत दो बातो को प्रस्तुत करती है —

(1) प्राणी की आवश्यकताएँ,

(2) आवश्यकताओ को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ, जिनके पीछे अनेक प्रेरणाएँ कार्य करती रहती है।

दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि प्राणी का व्यवहार विभिन्न-प्रकार की आन्तरिक आवश्यकताओ या इच्छाओ से सचालित होता रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि विभिन्न प्रकार का व्यवहार विभिन्न प्रकार की इच्छाओ व आवश्यकताओ की प्रेरणाओ की देन होता है। लेकिन इन आवश्यकताओ एवं इच्छाओ की प्रेरणा मात्र से ही मानव-व्यवहार नही बनता, क्योकि एक ओर जहाँ व्यवहार को प्रेरणा मिलती है तो दूसरी ओर उस प्रेरणा को प्रभावित करने वाली अनेक परिस्थितियाँ भी होती है। ये परिस्थितियाँ या तो वाह्य, जैसे—सामाजिक नियम, रीति-रिवाज आदि होती है, या स्वय व्यक्ति से सम्बन्धित, जैसे—शारीरिक एव मानसिक स्थितियाँ, सामर्थ्य, अभिरुचि, अभिवृत्ति आदि होती है। समायोजन प्रक्रिया मे व्यक्ति इन दो रास्तो के बीच मे गुजरता है।

एक उदाहरण के माध्यम से समायोजन को हम ठीक ढग से समझ सकते हैं। इतना हम जानते है कि समायोजन प्रक्रिया मे व्यक्ति को प्रेरक एव परिस्थिति दोनो के साथ सन्तुलन करना पड़ता है। जैसे एक विद्यार्थी की आकाक्षा (aspiration) प्रथम श्रेणी से एम० ए० पास करने की है। अपनी आकाक्षा की पूर्ति के लिए वह परिश्रम करता है, लेकिन फिर भी वह अपनी प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होने की आकाक्षा-पूर्ति नही कर पाता, क्योकि उसमे बुद्धि का अभाव है या आर्थिक कमी है या अन्य परिस्थितियाँ बाधक बनी हुई है। इसके फलस्वरूप वह अपनी आकाक्षा को प्रथम श्रेणी से द्वितीय श्रेणी मे बदल लेता है। इस प्रकार के परिवर्तन से वह अपनी इच्छा की सन्तुष्टि कर लेता है। अन्ततोगत्वा, वह आवश्यकता एवं परिस्थिति दोनो से सन्तुलन रखते हुए समायोजन की समस्या कर लेता है।

---

1. "Adjustment is the process by which a living organism maintains a balance between its needs and the circumstances that influence the satisfaction of these needs."

—Laurance F. Shaffer.

व्यक्तित्व समायोजन की कसौटियाँ
(Criterias of Personality Adjustment)

सरल शब्दो मे, समायोजन से तात्पर्य है—आवश्यकताओ या इच्छाओ की पूर्ति मे परिस्थितियों का सन्तुलन। इन समायोजन के आधार पर ही हम एक व्यक्ति के सम्बन्ध मे यह पता लगाते हैं कि इसका व्यक्तित्व समायोजित है या नहीं। अब यह प्रश्न उठता है कि किस कसौटी के माध्यम से यह पता चले कि व्यक्ति का समायोजन ठीक है या नही। नीचे हम व्यक्तित्व-समायोजन की जाँच की कुछ प्रमुख कसौटियों का उल्लेख करेंगे।

(1) **व्यक्तित्व का सन्तुलन** (Balance of Personality)—व्यक्तित्व अनेक गुणो या लक्षणो (traits) का योग है। व्यक्तित्व-समायोजन की प्रमुख कसौटी व्यक्तित्व का सकलन है। इनका तात्पर्य है कि एक समायोजित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की विभिन्न मानसिक प्रतिक्रियाएँ, यथा—सवेग, इच्छा, सकल्प आदि मे एकरूपता होती है, उनमे अव्यवस्था नही होती; सघर्ष का अभाव रहता है। मस्तिष्क की समस्त क्रियाएँ ठीक ढग से संगठित रूप में कार्य करती हैं। एक समायोजित व्यक्तित्व वाला व्यक्ति परेशानियो, असफलताओ आदि से घबड़ाता नही। उन्हें हल करने के लिए वह प्रयास करता है।

(2) **तनाव की कमी** (Decrease of Tension)—समायोजित व्यक्तित्व को जानने की एक कसौटी यह भी है कि व्यक्ति मे तनाव की कमी हो। जब व्यक्ति की कोई आवश्यकता या इच्छा की सन्तुष्टि नही होती तो उसमे एक प्रकार का मानसिक तनाव (Mental tension) उत्पन्न हो जाता है। यह तनाव तब समाप्त होता है जबकि आवश्यकता या इच्छा की भी पूर्ति हो जाय। समायोजन तब होता है जब तनाव कम या समाप्त हो जाता है। अत तनाव की कमी के आधार पर यह पता लग सकता है कि उसका व्यक्तित्व समायोजित है या नहीं।

(3) **आवश्यकताओं एवं वातावरण मे समन्वय** (Harmony between Need and Environment)—समायोजित व्यक्तित्व की एक प्रमुख कसौटी यह भी है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ एवं वातावरण के साथ एक समन्वय का सम्बन्ध स्थापित करें। जितना अधिक यह सम्बन्ध होगा उतना ही व्यक्तित्व समायोजित होगा तथा व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ एवं इच्छाओ की पूर्ति करते समय उनसे सम्बन्धित विभिन्न सहायक एव असहायक परिस्थितियो के सम्बन्ध मे सोचेगा। अगर बाधक परिस्थितियाँ अत्यन्त तीव्र होगी तो वह अपनी आवश्यकताओ एवं इच्छाओ में भी परिवर्तन करेगा। इसका तात्पर्य है कि वह आवश्यकताओ व प्रेरणाओ का वातावरण के आधार पर संशोधन करता है तथा दोनो के बीच सन्तुलन या परस्पर समन्वय करने का प्रयास करता है। एक व्यक्ति परिस्थितियों के प्रति समायोजित है या नही, यह अग्रांकित बातो पर निर्भर है :—

(अ) व्यक्ति की विभिन्न चालकों (drives), प्रेरणाओ (motives) आदि मे सन्तुलन की सीमा ।

(ब) व्यक्ति की इच्छाओं एवं प्रेरणाओ की किस सीमा तक पूर्ति हुई है ?

(स) उसकी इच्छाएँ, आवश्यकताएँ या व्यवहार मे किस सीमा तक सामाजिक नियमो एव परम्पराओ का पालन हुआ है ।

समायोजन प्रक्रिया
(Adjustment Process)

मानव एक बुद्धिमान प्राणी है । अत. वह अपनी आवश्यकताओ के प्रति स्वयं ही सचेत रहता है तथा वातावरण के साथ उचित सम्पर्क स्थापित करता है । समायोजन प्रक्रिया का अर्थ है—व्यक्ति व पर्यावरण के साथ प्रभावपूर्ण व उचित समायोजन बनाए
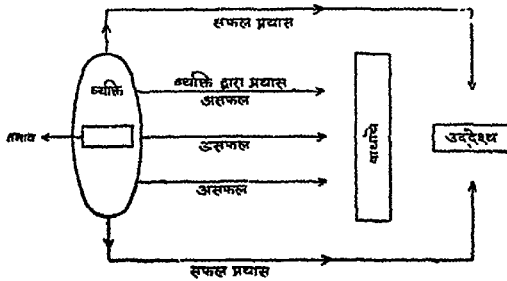
चित्र 9—समायोजन प्रक्रिया

रखना । प्रेरणा के जन्म के साथ ही व्यक्ति की मानसिक शान्ति प्रभावित होती है जिसके फलस्वरूप वह ऐसे कार्य करता है जिससे कि उस प्रेरणा की पूर्ति हो जावे । परन्तु प्रत्येक प्रकार की प्रेरणा की पूर्ति सम्भव नही है, क्योंकि अनेक वाह्य एवं आन्तरिक कठिनाइयो के कारण इन प्रेरणाओ की सन्तुष्टि मे बाधा उपस्थित होती है ।
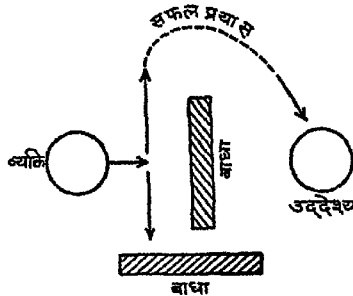
चित्र 10—समायोजन प्रक्रिया

व्यक्ति इन बाधाओं को दूर करने के लिए अन्य प्रकार के अप्रत्यक्ष साधनों का उपयोग करता है जिससे कि प्रेरणा या आवश्यकता की तृप्ति किसी न किसी प्रकार से हो जावे। जब उसकी प्रेरणा की तृप्ति हो जाती है या लक्ष्य सिद्ध हो जाता है तो उसे ऐसा अनुभव होता है कि मन का बोझ हल्का हो गया है। इस समायोजन प्रक्रिया से व्यक्ति के मानसिक जीवन को सन्तुष्टि प्राप्त होती है तथा वह वातावरण की तत्कालीन परिस्थितियों के बीच सामंजस्य अनुभव करने लगता है।

कठिनाइयों के प्रति प्रतिक्रिया के सामान्य रूप
(Common Modes of Reactions to Difficulties)

व्यक्ति की आवश्यकताएँ अनन्त हैं, उनकी तुष्टि विशिष्ट परिस्थितियों में होती है। जब अनुकूल परिस्थितियाँ होती हैं तो इन आवश्यकताओं की तुष्टि में कठिनाई नहीं होती, परन्तु जब अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं होतीं तब कठिनाई का अनुभव होता है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण से ही इन कठिनाइयों का समाधान करता है, परन्तु नीचे हम कुछ विधियों का उल्लेख कर रहे हैं जिनको सामान्यतया व्यक्ति अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए उपयोग करता है।

1. रचनात्मक समायोजन (Constructive Adjustment)

रचनात्मक समायोजन कठिनाइयों के प्रति प्रतिक्रिया करने की एक सामान्य विधि है जिसका उदाहरण हमें दैनिक जीवन में दिखाई पड़ता है। जैसे जो विद्यार्थी परीक्षा में असफल हो जाते हैं या जिन्हें शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, वे अधिकतर रचनात्मक कार्य करते हैं अर्थात् पढ़ाई में अधिक ध्यान देते हैं, अध्यापकों या पुस्तकों आदि से अधिक सहायता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वे अपनी शिक्षा सम्बन्धी असफलताओं के प्रति रचनात्मक समायोजन के रूप में कार्य या प्रतिक्रिया करते हैं। इस प्रकार के समायोजन में व्यक्ति परिस्थितियों से पलायन नहीं करता बल्कि ऐसे उपाय करते हैं कि कठिनाइयाँ दूर हो जायें।

2. स्थानापन्न समायोजन (Substitute Adjustment)

सभी व्यक्ति अपनी कठिनाइयों के प्रति रचनात्मक प्रतिक्रिया नहीं कर पाते, क्योंकि उनमें बुद्धि-बल या अन्य कमियाँ होती हैं अतः वे प्रायः स्थानापन्न समायोजन का सहारा लेते हैं; जैसे—परीक्षा में फेल हो जाने पर कुछ छात्र अपनी असफलताओं का दोष परीक्षक या अध्यापकों पर थोपने लगते हैं, वे रचनात्मक ढंग से पढ़ने तथा ध्यान लगाने की अपेक्षा दिवास्वप्नों में विचरण करने लगते हैं तथा यह कल्पना करने लगते हैं कि भविष्य में उन्हें अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। परन्तु स्थानापन्न समायोजन अस्थिर प्रकृति का होता है तथा इस प्रकार के समायोजन से वह सन्तोष प्राप्त नहीं होता जो कि रचनात्मक समायोजन से प्राप्त होता है। समाज में इस प्रकार के समायोजन करने वाले व्यक्तियों की प्रायः आलोचना ही हुआ करती है।

इस प्रकार के समायोजन से प्राय. व्यक्ति की प्रेरणाओ को निराशा ही प्राप्त होती है।

3. मनोरचनाएँ (Mental Mechanisms)

कठिनाइयो के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने का एक और सामान्य ढग मनोरचनाएँ हैं। मनोरचनाओ का उपयोग सामान्य व असामान्य—दोनो ही प्रकार के व्यक्ति करते है। सामान्य रूप से मनोरचनाओ के माध्यम से समायोजन करना व्यक्ति व समाज—दोनो के लिए उपयुक्त नही है परन्तु कुछ अशो तक इनका उपयोग प्रत्येक व्यक्ति करता है। अत्यधिक समायोजन अगर इस विधि के माध्यम से एक व्यक्ति करे तो उस व्यक्ति को असामान्य व्यक्ति कहा जाता है।

समायोजन की श्रेणियाँ
(Degrees of Adjustment)

यह कभी भी सम्भव नही है कि व्यक्ति की सभी इच्छाओ या आवश्यकताओ की पूर्ति हो, क्योकि अनेक ऐसी इच्छाएँ होती है जो पूर्णत समाज-विरोधी होती है या व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर होती है या कम अश मे ही पूर्ण होती है। अत समायोजन को जानते समय यह भी जानना आवश्यक है कि समायोजन का क्या-क्या रूप हो सकता है। कभी-कभी व्यक्ति अपनी इच्छाओ एवं वातावरण की अनेक परिस्थितियो के साथ समायोजन करने मे असफल रहता है या गलत ढग से समायोजन कर लेता है। अत यहाँ समायोजन के अन्य रूपों के सम्बन्ध मे भी जानना आवश्यक है। यहाँ यह बताना उल्लेखनीय है कि समायोजन की विभिन्न श्रेणियो मे किसी भी प्रकार की भेदक रेखा नही खीची जा सकती, क्योकि इन श्रेणियो मे प्रकार (kind) का अन्तर नही है बल्कि अश या तीव्रता (degree or intensity) का अन्तर है। नीचे हम उन्ही का क्रमबद्ध अध्ययन करेंगे :—

समायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ (Adjustive Reactions)—इस श्रेणी मे व्यक्ति की वे प्रतिक्रियाएँ आती है जो परिस्थितियो के साथ मिलकर व्यक्त होती है। जब व्यक्ति एक कार्य करना चाहता है और बाधक परिस्थितियाँ उस कार्य में बाधा पहुँचाती हैं तो सबसे सामान्य तरीका यही है कि वह और मेहनत एव बुद्धिमानी से कार्य करे। जैसे एक विद्यार्थी परीक्षा मे फेल होने की कुण्ठा से बचाव करने के लिए अधिक मेहनत करता है और सामान्यत ऐसा करने पर उसे सफलता भी मिलती है। इस प्रकार वह अपनी प्रेरणाओ मे सन्तुलन रखता है और कुण्ठा का शिकार नही होता है। इस प्रकार समायोजनात्मक प्रतिक्रियाओ मे मुख्यत व्यक्ति की रचनात्मक प्रतिक्रियाएँ आती हैं जिसमे व्यक्ति अपने वातावरण या सामाजिक नियमो या मान्यताओ को मानता है, एक रूढिवादी की तरह नही बल्कि एक सच्चे दृष्टिकोण के कारण; और अपनी प्रेरणाओ के साथ उनका सन्तुलन करने का प्रयास करता है। **सिमाण्ड्स** (Symonds) के मतानुसार इस प्रकार की उपयुक्त प्रतिक्रियाओ से व्यक्तित्व विकास या व्यक्ति मे परिपक्वता आती है। **सीशोर व कात्ज** (Seashore

and Katz) के अनुसार इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं की जाँच के लिए निम्न आधारभूत तत्त्व हैं :—

(i) वे प्रतिक्रियाएँ जिनसे व्यक्ति को इच्छित लक्ष्य प्राप्त हो या प्राप्ति में सहायक हो; (ii) जिनसे व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो तथा निरन्तर वृद्धि हो, (iii) जिनसे समाज को लाभ पहुँचे तथा साथ ही साथ किसी व्यक्ति को नुकसान भी नहीं पहुँचे। (iv) जिनसे व्यक्ति में इस प्रकार का आत्म-विश्वास का विकास होता है कि वह भविष्य की समस्याओं को साहस व दृढ़ता के साथ सुलझा सके।

अंशत. समायोजनात्मक या अर्द्ध-सन्तुलित प्रतिक्रियाएँ (Partially-adjustive Reactions)—जब व्यक्ति प्रेरणाओं को सिद्ध करने के लिए परिस्थितियों के साथ सन्तुलन करता है तो केवल यही सम्भव नहीं है कि उसकी प्रेरणा पूर्ण रूप से सन्तुष्ट ही हो जाए। दूसरे शब्दों में, सभी प्रेरणाएँ पूर्ण रूप से समायोजनात्मक सिद्ध नहीं होतीं। कुछ में आंशिक समायोजन ही होता है; उदाहरणस्वरूप, एक विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे नम्बर लाने के लिए मेहनत के स्थान पर यह दिवास्वप्न देखता है कि पेपर आउट हो जायगा, कापी जाँचने वाले निरीक्षक का पता चल जाएगा, आदि। ऐसी अवस्था में विद्यार्थी कल्पनाओं के माध्यम से आंशिक समायोजन स्थापित कर लेगा, परन्तु उसे पूर्ण सन्तोष प्राप्त नहीं होगा। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को ही अंशत. समायोजनात्मक या अर्द्ध-सन्तुलित प्रतिक्रियाएँ कहते हैं। किसर ने इसके अन्तर्गत क्षतिपूर्ति (compensation), आत्म-विश्लेषण (self-analysis), अति-क्षतिपूर्ति (over compensation) आदि क्रियाओं को रखा है।

असमायोजनात्मक क्रियाएँ (Non-adjustive Reactions)—जब व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं का परिस्थितियों के साथ समायोजन नहीं कर पाता तो उन्हें असमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ कहते हैं। व्यक्ति सामाजिक व बौद्धिक प्राणी होने के फलस्वरूप अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है। उसके सम्मुख विभिन्न प्रेरकों की सन्तुष्टि करने की समस्या रहती है। जब व्यक्ति ऐसे कार्यों को निरन्तर करता रहता है जिससे कि समायोजन में बाधा पहुँचती है तो इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को असमायोजित प्रतिक्रियाएँ कहते हैं; जैसे—मद्यपान की आदत डालना जिससे कि वह स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सके। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को करने वाला व्यक्ति परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया करने से इन्कार कर देता है। वह यह निश्चय कर लेता है कि उसे परिस्थितियों के प्रति निषेधात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करनी है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं के अन्तर्गत प्रतिगमन (regression) तथा शैशवकालीन (infantile) व्यवहार से सम्बन्धित क्रियाएँ भी आती हैं। व्यक्ति कभी-कभी एक विशेष प्रेरणा या आवश्यकता पर ध्यान नहीं देता तथा अन्य क्रियाओं को करने में लगा रहता है। ऐसी अवस्था में वह प्रेरणा कुण्ठित हो जाती है तथा उस कुण्ठित प्रेरणा का दमन होना शुरू हो जाता है। दमन के प्रयास को ही असमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ कहते हैं।

विषमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ (Mal-adjustive Reactions)—इस प्रकार की प्रतिक्रियाओ मे वे प्रतिक्रियाएँ आती हैं जिनका गलत ढग से समायोजन होता है। इस प्रकार का समायोजन क्योकि व्यक्ति एव समाज—दोनो के लिए हानिकारक है, अत. इसे विषमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ कहते है। इस प्रकार की क्रियाएँ करने वाले व्यक्तियो की समाज मे आलोचना होती है तथा धीरे-धीरे इनका व्यवहार सामान्य व्यवहार से भिन्न होने लगता है। इस प्रकार के व्यक्ति न तो स्वयं ही उन्नति कर पाते है और न ही इनके द्वारा समाज व देश की ही उन्नति होती है। उसका सामाजिक सम्बन्ध धीरे-धीरे बिगडता जाता है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओ से अनेक असामान्य व्यवहार व मानसिक विकृतियो का जन्म होता है। इस प्रकार से इन प्रतिक्रियाओ के कारण व्यक्ति को न तो इच्छित लक्ष्य की ही प्राप्ति होती है और न ही इनकी सहायता से भावी समस्याओ के समाधान मे ही सहायता प्राप्त होती है। ये व्यक्ति व्यर्थ मे ही दिवास्वप्नो मे लीन होकर अपना समय बरबाद करते हैं। विफलताओ से बचाव के लिए वह प्रेरणाओ को अधिक दमित करना सीख लेता है तथा अत्यधिक दमन के कारण व्यक्ति दैनिक जीवन की अनेक भूलो, असामान्य व्यवहारो व मानसिक व्याधियो से ग्रस्त होता जाता है। उसके अन्दर सदैव एक हलचल बनी रहती है जिससे उसमे आत्मविश्वास व उत्साह की असमर्थता आ जाती है। सीशोर व कात्ज (Seashore and Katz) के अनुसार असमायोजित प्रतिक्रियाओं में निम्न तत्व निहित रहते है .

(i) जो व्यक्ति को इच्छित एव प्रारम्भिक लक्ष्य या उसके उपयुक्त स्थानापन्न लक्ष्य की प्राप्ति से दूर ले जावें। (ii) जो व्यक्ति को केवल अस्थायी सात्वना प्रदान करे तथा वास्तव मे हानिकारक हो। (iii) जिसके कारण व्यक्ति समाज का बोझ समझा जावे। वह अन्य व्यक्तियों से तो सहायता ले परन्तु दूसरों की सहायता न कर सके। (iv) जिनसे व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य को हानि पहुँचे, उसकी कार्यक्षमता मे ह्रास हो या आत्म-विश्वास की कमी हो।

फिशर (Fisher) ने इन प्रतिक्रियाओ के अन्तर्गत अवदमन (repression), आरोपण (projection), बाध्यतामूलक (compulsive) आदि क्रियाओ को रखा है।

6
नैराश्य, अन्तर्द्वन्द्व एवं प्रतिबल
(FRUSTRATION, CONFLICT AND STRESS)

मानव-व्यवहार के पीछे एक ऐसी आन्तरिक भावना कार्य करती है जिससे प्रेरित होकर वह क्रिया या व्यवहार को प्रकट करता है तथा इसी प्रेरक शक्ति के फलस्वरूप व्यक्ति सदैव लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील व क्रियाशील रहता है। परन्तु मानव सदैव लक्ष्य को प्राप्त नही कर पाता है क्योकि पर्यावरण की अनेक बाधाएँ उसे लक्ष्य मार्ग तक पहुँचने मे कठिनाई उत्पन्न करती हैं। इसके साथ ही साथ मनुष्य की एक प्रेरणा तो होती नही बल्कि अनेक प्रेरणाएँ होती हैं जो क्रिया या कार्य के रूप मे परिणत होना चाहती है, परन्तु मनुष्य एक साथ उन सब प्रेरणाओ की तृप्ति नही कर पाता जिसके फलस्वरूप प्रेरणाओ मे भी सघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। सामान्य व असामान्य दोनो प्रकार के व्यक्तियो को इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व का सामना करना पडता है। कभी-कभी व्यक्ति को स्थायी या अस्थायी रूप से प्रेरणाओ की तृप्ति मे बाधाओ का सामना करना पडता है जिसके फलस्वरूप उसे नैराश्य (frustration) की स्थिति का सामना करना पडता है। व्यक्ति को जब अनेक कठिनाइयो का सामना एक साथ करना पडता है तो वह असामान्यता का रूप ले लेता है, जिसे प्रतिबल (stress) कहते है। इस अध्याय मे हम नैराश्य, अन्तर्द्वन्द्व व प्रतिबल के सम्बन्ध मे विस्तृत विवेचना करेंगे।

नैराश्य का अर्थ
(Meaning of Frustration)

जब दो या दो से अधिक परस्पर-विरोधी प्रेरणाएँ एक साथ व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित हो जाती हैं तो वह यह निश्चय नही कर पाता कि उनमे से किसको सन्तुष्ट करे, किसको नही। क्योकि वह एक साथ सभी को सन्तुष्ट नही कर पाता। अत वह विवशता या विफलता का अनुभव करने लगता है। कभी-कभी यह भी

होता है कि जब व्यक्ति अपनी इच्छाओ या प्रेरणाओं की तुष्टि करने का प्रयत्न करता है तो अनेक ऐसी बाधाएँ उत्पन्न हो जाती है जो कि उस प्रेरणा की सन्तुष्टि मे सहायक होती है तथा ऐसी अवस्था मे व्यक्ति निराशा का अनुभव करता है। इस क्रिया के कारण एक तनाव उत्पन्न हो जाता है, उसे निराशा हो जाती है। विफलता एक प्रकार की वह मानसिक अवस्था है जो प्रेरणा की असन्तुष्टि के कारण होती है। एक उदाहरण के माध्यम मे हम नैराश्य की व्याख्या कर सकते है। एक व्यक्ति की यह प्रेरणा है कि वह काफी धन प्राप्त करे। वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। लेकिन इस प्रयत्न के फलस्वरूप भी वह अपने प्रेरक को सन्तुष्टि नही कर पाता क्योकि अनेक बाधाएँ, जैसे—इस कार्य को करने मे धन तो प्राप्त हो सकता है लेकिन यह असामाजिक कार्य है इससे उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचेगी, आदि प्रेरक की सन्तुष्टि मे हस्तक्षेप करती है। इसके फलस्वरूप भी वह और अधिक प्रयत्नो से धन कमाने का प्रयास करता है। जब इन प्रयत्नो के माध्यम से भी वह अपने अभीष्ट पर नही पहुँच पाता तो उसे निराशा होती है।

कोलमैन[1] (Coleman) के अनुसार निराशा या नैराश्य प्रेरणा के कुण्ठित होने से उत्पन्न आघात (thwarting) परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। मुख्यत इस प्रकार की स्थिति दो प्रकार से उत्पन्न होती है —(1) निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति की प्रगति मे बाधाएँ आ जाने से, या (2) निश्चित व उचित वस्तु-उद्देश्य (goal object) के न होने से। स्मरण रहे कि जब प्रेरको की तुष्टि नही होती तो उसमे सघर्ष होता है जिसके परिणामस्वरूप निराशा के भाव व्यक्ति मे उत्पन्न होते है। कभी नैराश्य से प्रेरणा मिलती है तो कभी हानिकारक प्रभाव भी व्यक्ति पर पड़ता है। यह नैराश्य तीव्रता पर निर्भर होता है। वैसे साधारण रूप से निराशापूर्ण व्यवहार मे कम या अधिक निरर्थकता के भाव निहित होते है। यह व्यवहार एक भिन्न प्रकार के व्यवहार विन्यासो द्वारा सचालित होता है। डा० चौहान व डा० तिवारी के शब्दो मे—

"Frustration behaviour lacks goal orientation and appears more or less senseless. Intensity of feeling is there. It is the end of need deprivation, In frustration, a different set of behaviour mechanism is put into operation."[2]

---

1. "Frustration is the result of the thwarting or a motive either by some obstacle that blocks or impedes progress toward a desired goal, or by the absence of an appropriate goal object......Frustrations may be minor and inconsequential, or they may represent serious threats to our welfare or even survival.'—Coleman, J C. *Psychology and Effective Behaviour*, 1971, p 276.
2. Chauhan, N. S. and Tiwari, G. P. . *Guide to Using Nairashya Maapa*, Agra Psychological Research Cell, Tiwari Kothi, Belanganj, Agra—4, 1972, p. 1.

ही कार्य को दो व्यक्तियों के सामने रखा जाए तथा एक व्यक्ति साधन-सम्पन्न हो तथा दूसरा व्यक्ति साधन-सम्पन्न न हो तो ऐसी अवस्था में साधन-सम्पन्न वाले व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता व सफलता से अभीष्ट की प्राप्ति कर लेंगे। अतः नैराश्यता का एक कारण प्रतिस्पर्द्धा भी है।

(3) सामाजिक बाधाएँ (Social obstacles)—मानव एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे अपने व्यवहार को समाज के अनुकूल बनाना है। वह किसी भी इच्छा या प्रेरणा के अभीष्ट तक पहुँचने के लिए इस बात का ध्यान रखता है कि इस अभीष्ट का सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक पक्ष क्या है: जैसे—आर्थिक सुरक्षा के लिए व्यक्ति चोरी आदि का कार्य नहीं करता।

(4) प्राकृतिक पर्यावरण (Natural environment)—नैराश्यता के लिए एक सीमा तक प्राकृतिक पर्यावरण भी जिम्मेदार होता है। इसके अन्तर्गत महामारी, अतिवृष्टि व अनावृष्टि, अग्निप्रकोप, बाढ़ आदि आते हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नैराश्य का स्रोत बनते हैं; जैसे—अगर किसी व्यक्ति का अच्छा मकान पानी में बह जावे और उसकी आर्थिक स्थिति इस प्रकार की नहीं है कि वह नया मकान बनवावे तो उसे निराशा होती है।

(5) दैहिक सीमाएँ (Biological limitations)—अनेक प्रकार की दैहिक सीमाएँ भी नैराश्य के स्रोत होते हैं। व्यक्ति में संरचनात्मक दोष (constitutional defect) रहने पर उसका प्रभाव शारीरिक व मानसिक विकास पर पड़ता है जो कि नैराश्य के मुख्य कारण बन जाते हैं। जैसे व्यक्तियों के इन्द्रियों में दोष उत्पन्न हो जाने से उसके ज्ञान की वृद्धि नहीं हो पाती तथा उसके संवेगात्मक क्षेत्र में भी अनेक बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

(6) राजनैतिक कारण (Political causes)—व्यक्ति की अनेक प्रेरणाओं पर राज्य का अंकुश होता है जिसके फलस्वरूप अनेक प्रेरणाएँ राज्य के नियन्त्रण के कारण विफलता का रूप ले लेती हैं।

(7) प्रयत्नों की कमी (Lack of trials)—कभी व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं की सन्तुष्टि में अधिक प्रयत्न नहीं करता। वह एक बाधक परिस्थिति का सामना करते ही घबड़ा जाता है, अपनी कार्यविधि में परिवर्तन नहीं करता या आगे यह मानकर प्रयत्न करना बन्द कर देता है कि यह कार्य तो सम्भव ही नहीं है, तो अन्त में विफलता का शिकार हो जाता है।

नैराश्यता के प्रति प्रतिक्रियाएँ
(Reactions to Frustration)

किसी कार्य की असफलता से व्यक्ति में एक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस मानसिक तनाव के फलस्वरूप उसमें अनुविधाजनक मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। वह इस संवेगात्मक अस्थिरता या तनाव को दूर करने का प्रयास

करता है। इस प्रकार वह विफलता के प्रति अनेक रूपो मे प्रतिक्रिया करता है। मुख्यत: विफलता के प्रति प्रतिक्रियाओं का स्वरूप निम्न प्रकार का होता है —

(1) नैराश्य के प्रति सीधी या प्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएँ
(Direct Reactions toward Frustration)

जब किसी अभीप्ट पर पहुँचने मे एक व्यक्ति असफलता का अनुभव करता है जो साधारणतया उन वाधाओ को दूर करने के लिए मुख्यत दो विधियो का उपयोग करता है —

(अ) प्रयत्नो मे वृद्धि तथा विधियों में परिवर्तन (Increase in trials and change in method)—जब व्यक्ति को विफलता प्राप्त होती है तो उस विफलता पर विजय प्राप्त करने के लिए वह अपने प्रयत्नो मे वृद्धि करता है या अन्य विधियो को अपनाता है। जैसे, एक विद्यार्थी प्रथम श्रेणी मे पास होने के लिए उपयुक्त विधि को नही जानता जिसके फलस्वरूप उसे विफलता प्राप्त होती है लेकिन नैराश्य स्थिति उपस्थित होने पर वह अपनी पुरानी विधियो मे परिवर्तन करता है तथा अधिक प्रयत्नो एवं नवीन विधियो की सहायता से प्रथम श्रेणी प्राप्त करने का प्रयास करता है। ऐसा प्राय सभी बुद्धिमान व्यक्ति करते हैं। दूसरे रूप मे, इसे प्रयत्न व भूल (trial and error) विधि भी कह सकते हैं।

(ब) लक्ष्य में परिवर्तन (Change in goal)—अगर उसे प्रयासो एव अन्य विधियो के उपयोग से भी नैराश्यता प्राप्त होती है तो वह अपने अभीष्ट या लक्ष्य मे परिवर्तन कर लेता है। लक्ष्य मे परिवर्तन दो प्रकार का हो सकता है या तो लक्ष्य की तीव्रता का कम कर लेना (जैसे—प्रथम श्रेणी या द्वितीय श्रेणी) य एक लक्ष्य को छोडकर दूसरा लक्ष्य ग्रहण कर लेना (जैसे—विज्ञान के विद्यार्थी का ला के विद्यार्थी के रूप मे परिवर्तन)। उदाहरणस्वरूप—सभी विद्यार्थी प्रथम श्रेणो मे पास नहीं हो सकते अत. वे अपने लक्ष्यो मे परिवर्तन कर लेते हैं। लेकिन एक विद्यार्थी अगर विफलता के फलस्वरूप या अन्य किसी कारण से पढ़ाई से ही अरुचि करने लगे तो वह अपने पढने के लक्ष्य को छोडकर व्यापार आदि का कार्य प्रारम्भ कर देता है।

(2) नैराश्य के प्रति अप्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएँ
(Indirect Reactions toward Frustration)

उपर्युक्त प्रतिक्रियाएँ नैराश्यता की सामान्य या सीधी प्रतिक्रियाएँ हैं लेकिन कुछ असामान्य या अप्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएँ भी है जो विफलता के प्रति की जाती हैं। जब व्यक्ति अपने प्रयासो मे वृद्धि एव विधियो के परिवर्तन के फलस्वरूप भी अभीप्ट को प्राप्त नही कर पाता तो उसमें हीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है।

(1) हीनता ग्रन्थि (Inferiority complex)—हीनता की ग्रन्थि उन्हीं व्यक्तियो मे वहुधा विकसित होती है जो यह समझने लगते हैं कि उनमे व्यक्तिगत दोष विद्यमान हैं जिसके फलस्वरूप उन्हे अभीप्ट की प्राप्ति नही हो रही है। उनमे

एक ही प्रकार का भय बना रहता है। वह सन्देही, चिन्ताशीलता, अन्तर्मुखी आदि गुणो से युक्त हो जाता है। उसमे हमेशा प्रतिस्पर्द्धा का भय बना रहता है।

हीन-भावना एव योग्यता में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। हीनता की भावना उच्च योग्यता वाले व्यक्तियो मे भी देखी जाती है। यह देखा गया है कि बुद्धिहीन व्यक्ति कभी-कभी हीन-भावना के शिकार नही होते, वे असफलता के प्रति सामान्य व्यवहार प्रदर्शित करते है तथा भविष्य के सम्बन्ध मे योजनाओ का निर्माण करते है। इसके विपरीत, अधिक बुद्धि वाले व्यक्ति थोडी-सी विफलता का भी सामना नही कर पाते और हीन-भावना के शिकार हो जाते है।

हीन-भावना का उपचार भी सम्भव है। मुख्यत इसके उपचार की दो विधियाँ है—(1) व्यक्ति की क्षमता सीमा के आधार पर अभीष्ट का निर्धारण हो, या (2) व्यक्तिगत दोषो या अक्षमताओ को दूर करके अधिक प्रयास करवाये जायँ।

हीन-भावना का महत्त्व भी है। कभी-कभी व्यक्ति हीन-भावना के कारण अधिक प्रयत्न करता है तथा उसे सफलता भी प्राप्त होती है। जैसे बाल्यावस्था मे रूजवेल्ट शारीरिक दृष्टिकोण से काफी कमजोर थे तथा इस शारीरिक हीनता के कारण वे अत्यन्त चिन्तित रहते थे लेकिन बाद मे अथक् प्रयत्नो के माध्यम से इस शारीरिक हीनता की पूर्ति कर ली। लेकिन कभी-कभी हीन-भावग्रन्थि के कारण व्यक्ति अनेक मानसिक रोगो का भी शिकार हो जाता है।

(2) आक्रामक व्यवहार (Aggressive behaviour)—विफलता के प्रति प्रतिक्रिया का एक रूप यह भी होता है कि व्यक्ति बार-बार बाधाओ या विफलताओ के कारण आक्रामक या ध्वसात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करने लगते है। आक्रामक व्यवहार के प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष—दोनो ही रूप हो सकते है। कभी-कभी अक्रामक व्यवहार का लक्ष्य स्वय व्यक्ति ही बन जाता है; जैसे—अपने सिर को पीटना, दीवार को फोड़ना आदि। लेकिन बहुधा आक्रामक व्यवहार का लक्ष्य अन्य व्यक्ति ही होता है। कभी-कभी व्यक्ति मे अपराध की भावना या आत्महत्या की भावना का भी जन्म हो जाता है जो आक्रामक व्यवहार का ही एक रूप है। दैनिक जीवन मे हमे आक्रामक व्यवहार के कई उदाहरण मिलते हैं, जैसे—बालक की इच्छापूर्ति न होने पर वह कभी तो प्रत्यक्ष रूप से अपने आक्रामक व्यवहार को प्रकट करता है और कभी-कभी वह उपेक्षापूर्ण एव अवाछित कार्यो द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से रोष प्रकट करते हैं।

आक्रामक व्यवहार सम्बन्धी प्रतिक्रियाएँ स्वय के लिए हानिकारक तो होती ही है परन्तु कभी-कभी दूसरो के लिए भी दु खदायी हो जाती है, जैसे—एक व्यक्ति पत्र लिखने के बाद आत्महत्या करता है तो कोई विशेष परेशानी दूसरो के लिए नही होती, लेकिन अगर पत्र आदि बिना कुछ छोडे कोई व्यक्ति आत्महत्या कर ले तो उसके परिवार एव आस-पास के अन्य लोगो को व्यर्थ मे परेशानी उठानी पडती है।

(3) मनोरचनाएँ (Mental mechanism)—कभी-कभी द्वन्द्वों (conflicts), विफलताओं या हीन भावनाओं की प्रतिक्रिया मनोरचनाओं के रूप में होती है। वास्तव में मनोरचनाएँ विफलताओं आदि का एक उत्तम समाधान है। विफलता या विषम अभियोजन में व्यक्ति स्थायी या अस्थायी रूप में तनावपूर्ण स्थिति या अपर्याप्तता की भावना का शिकार हो जाता है तथा मनोरचनाओं के माध्यम से उसे आंशिक रूप में सन्तोष मिलता है। कुछ प्रमुख मनोरचनाएँ ये हैं :—कल्पना तरंग (fantasy), क्षतिपूर्ण (compensation), तादात्म्य (indentification), प्रक्षेपण (projection), युक्तिकरण (rationalization) तथा उन्नयन (sublimation)। मनोरचनाओं की विस्तृत व्याख्या हम आगे के अध्यायों में प्रस्तुत करेंगे।

नैराश्य का प्रभाव
(Effects of Frustration)

निराशा के कारण व्यक्ति में अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हो जाती हैं :—

(1) हीन-ग्रन्थि का जन्म (Origin of inferiority complex)
(2) आक्रामक व्यवहार (Aggressive behaviour)
(3) तनाव की अनुभूति (Feeling of tension)
(4) मानसिक लक्षण (Mental symptoms)

जब व्यक्ति अपनी इच्छित प्रेरक की सन्तुष्टि व्यक्तिगत या सामाजिक बन्धन के कारण नहीं कर पाता तो इससे उसमें नैराश्य के भाव उत्पन्न होते हैं तथा शनैः-शनैः उसमें हीनता के भाव (feeling of inferiority) उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी नैराश्य के कारण व्यक्ति विद्रोहात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करता है या एक प्रकार के तनाव की अनुभूति करता है। इन प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप उसमें अनेक प्रकार के मानसिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ व्यक्तियों में ऐसी सूझ-बूझ होती है कि वह इन निराशाओं को दूर करने का प्रयत्न करता है जबकि कुछ व्यक्ति निराश हो जाने पर कुंठित हो जाते हैं तथा ऐसी प्रतिक्रियाएँ करना प्रारम्भ कर देते हैं, जो असमायोजित या असामान्य व्यवहार की परिचायक होती हैं।

अन्तर्द्वन्द्व का अर्थ
(Meaning of Conflict)

फ्रायड के अनुसार—"जीवन अन्तर्द्वन्द्वों की शृंखला से मिलकर बना है।"[1] यही कारण है कि फ्रायड ने सभी शक्तियों (polarities) का आधारभूत स्रोत अन्तर्द्वन्द्व को ही माना है। संघर्ष के कारण ही व्यक्ति का विकास होता है, उसमें गतिशीलता आती है। यही कारण है कि आज प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में

---

1 "According to Freud, life is made up of a series of conflict situations."—Brown

सघर्ष का शिकार है । सघर्ष के माध्यम से व्यक्ति मे 'अहम्' (ego) एव 'परम अहम्' (super ego) या 'वास्तविकता' (reality) तथा 'नैतिक आदर्शों' (moral ideals) आदि से सम्बन्धित गुणो का जन्म एव विकास होता है । सघर्ष के माध्यम से ही व्यक्ति 'यह अच्छा है', 'यह बुरा है' का अनुभव करता है ।

जब दो या दो से अधिक (परस्पर विरोधी प्रकृति) इच्छाएँ या आवश्यकताएँ व्यक्ति मे उत्पन्न हो, तथा एक की पूर्ति दूसरे की पूर्ति मे बाधा डाले तो ऐसी अवस्था को अन्तर्द्वन्द्व कहते हैं । मनोविश्लेषकों ने अन्तर्द्वन्द्व की विवेचना इस प्रकार की है :— "अन्तर्द्वन्द्व वह अवस्था है जब दो इच्छाएँ इतनी विरोधी होती हैं कि एक-दूसरे की तृप्ति मे बाधा उत्पन्न करती हैं ।"[1] बोरिंग, लैंगफील्ड एव वेल्ड के अनुसार, "अन्तर्द्वन्द्व एक ऐसी अवस्था है, जिसमें दो या दो से अधिक विरोधी प्रेरणाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनकी एक साथ तृप्ति होना सम्भव नहीं है ।"[2]

इन परिभाषाओ पर ध्यान देने से हमे मुख्यत अन्तर्द्वन्द्व के सम्बन्ध मे तीन बातें मिलती है —

(1) अन्तर्द्वन्द्व एक तनावपूर्ण स्थिति है ।
(2) अन्तर्द्वन्द्व का जन्म तब होता है जबकि दो या दो से अधिक इच्छाएँ एक साथ ही उत्पन्न हो ।
(3) ये इच्छाएँ परस्पर एक-दूसरे की विरोधी होती है । विरोधात्मक प्रवृत्ति होने के कारण दोनो इच्छाओ की तृप्ति एक साथ सम्भव नही है ।

अन्तर्द्वन्द्व मे विफलता की आशका एव व्यक्ति की निश्चयहीनता विद्यमान रहती है । फ्रायड का विचार है कि शुरू-शुरू मे बच्चा अपनी माता पर पूर्ण रूप से आश्रित रहता है तथा वह हमेशा इसी निष्क्रिय (passive) अवस्था मे रहना चाहता है । लेकिन माँ धीरे-धीरे उसका दूध छुडाने (weaning) का प्रयत्न करती है और छुडा भी देती है । इससे बच्चे मे निराशा उत्पन्न होती है तथा बच्चा परिवार के अन्य सदस्यो के ऊपर आश्रित रहने का प्रयत्न करता है । वहाँ से भी विफलता प्राप्त होने पर वह परिवार से बाहर के लोगो मे सम्पर्क बढाता है । इस प्रकार इन विभिन्न सघर्षो के आधार पर उसके व्यक्तित्व का विकास होता है । अत. अन्तर्द्वन्द्व ही व्यक्तित्व-विकास का आधार है । अन्तर्द्वन्द्व को हम एक उदाहरण के माध्यम से भी समझते है ।

---

1. "By conflict the psychoanalyst mean a situation in which two wishes are so incompatible that the fulfilment of one would preclude the fulfilment of the other"—**Brown :** *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour*, p. 162.
2. "Conflict is a state of affairs in which two or more incompatible behaviour trends are evoked that can not be satisfied at the same time."—**Boring :** *et. al., Ibid*, p. 162.

मान लीजिए कि एक लड़की अपनी पढ़ाई मे काफी मेहनत करती है लेकिन इसी बीच उसका एक लड़के से प्रेम हो जाता है। अब उसकी इच्छा पढ़ने के स्थान पर यह होती है कि वह उस लड़के से विवाह कर ले और अपनी काम-वासना की तृप्ति करे लेकिन उसी समय यह भावना जागृत होती है कि उसे शादी नहीं करनी चाहिए, पढ़ाई पर ही ध्यान देना चाहिए। क्योंकि अगर उसने उस लड़के से विवाह कर लिया तो समाज के अन्य लोग क्या कहेंगे, माँ-बाप की क्या राय होगी ? इस प्रकार वह लड़की दो इच्छाओ के बीच फँस जाती है। वह इस अवस्था मे हो जाती है कि क्या करे, क्या न करे। इसी स्थिति को अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था कहते हैं।

अन्तर्द्वन्द्व के सामान्य स्रोत
(Common Sources of Conflict)

हमारी संस्कृति युवा व्यक्तियो के सम्मुख अनेक अन्तर्द्वन्द्वो को प्रस्तुत करती है। सरल व प्रारम्भिक समाज मे व्यक्तियो के सम्मुख कुछ कम व निश्चित उद्देश्य या लक्ष्य होते थे तथा व्यक्ति उनकी पूर्ति करने के साधनो को जानता था। माँ-बाप व संरक्षक इस बात को भली-भाँति समझते थे कि युवा लड़के व लड़कियाँ किस प्रकार की क्रिया करेंगे। वे प्रत्यक्ष रूप से अपने विश्वासो का हस्तान्तरण युवा पीढ़ी को कर देते थे। इस प्रकार यहाँ किसी भी प्रकार के तीव्र अन्तर्द्वन्द्व के उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

परन्तु आधुनिक समाज अधिक विकसित व जटिल हो गया है। आज अमरीका जैसे सम्पन्न देश में कुछ प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व सामान्य रूप से विकसित हैं। अगर एक चिकित्सक 'व्यक्तित्व-निदान' के लिए इस वाक्य को पढ़े कि—'आपने अपने लैंगिक समायोजन से सम्बन्ध में अधिक कठिनाइयो का अनुभव किया है' (You have experienced considerable difficulties with your sexual adjustment.') तो 95 प्रतिशत कॉलेज-विद्यार्थी इस निदान (diagnosis) से सहमत होते हैं। इसी प्रकार 70 प्रतिशत व्यक्ति इस बात को स्वीकार करते हैं कि वे हीनता के भावो से पीड़ित हैं। जैविक प्रेरको के मध्य कम ही अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं परन्तु प्राय जैविक प्रेरको और संवेगो या सामाजिक प्रेरकों के मध्य अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। लिङ्ग (sex) का अन्य सामाजिक प्रेरको के साथ अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्तर्द्वन्द्व के अन्य सामान्य स्रोत हैं—अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध प्रेरको की शक्ति या प्रभाव, किस का समूह के साथ तादात्म्य (identification) सम्बन्ध का होना आदि।

अन्तर्द्वन्द्व का आधार
(Bases of Conflict)

फ्रायड ने अन्तर्द्वन्द्व का आधार मूलप्रवृत्ति (instinct) माना है। मूलप्रवृत्ति

एक प्रकार की जन्मजात मनोशक्ति (Psychic energy) है। ब्राउन[1] ने फ्रायड के मूलप्रवृत्ति सम्बन्धी विचारों को निम्न शब्दो में व्यक्त किया है :—

"Freud's instincts are not synonymous with the specific instincts of the animal psychologists in that they are not connected with specific environmental goals. They are rather postulated basic psychic energies which are innate and unlearned "

फ्रायड ने मूलप्रवृत्तियों को व्यक्ति की सभी रचनात्मक एव विध्वंसात्मक क्रियाओ को आधार माना है। फ्रायड ने दो मूलप्रवृत्तियाँ बताई—(1) जीवन-मूल-प्रवृत्ति या प्यार मूल-प्रवृत्ति (Life instinct or *Eros* love instinct), (2) मृत्यु मूल-प्रवृत्ति या घृणामूल-प्रवृत्ति (Death instinct or *Thantos* or hate instinct)। ये दोनो मूलप्रवृत्तियाँ विरोधी स्वरूप की है। व्यक्ति की रचनात्मक क्रियाओ के मूल मे जीवन-मूल-प्रवृत्ति है तथा विध्वसात्मक क्रियाओं के मूल में मृत्यु-मूल-प्रवृत्ति है। फ्रायड इन सभी को अन्तर्द्वन्द्व का आधार मानता है :—

"Passivity versus activity, the pleasure-principle versus the reality principle, love versus hate are all involved in this conflict."[2]

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व चेतन एव अचेतन दोनो स्तरों पर होता है। चेतन-अवस्था पर सघर्ष कम तीव्र होता है लेकिन अचेतन अवस्था में अपेक्षाकृत जटिल एव प्रभावशाली अन्तर्द्वन्द्व होते है।

अन्तर्द्वन्द्व के रूप
(Types of Conflict)

कुर्ट लेविन (Kurt Lewin) ने सर्वप्रथम मनोविज्ञान के अन्तर्गत आकारीय चित्रो (topological diagrams) का उपयोग किया। विशेष रूप से इन चित्रो के माध्यम से अन्तर्द्वन्द्वो को स्पष्ट व पूर्ण रूप से समझाया जा सकता है। व्यक्ति को एक उद्देश्य (goal) आप्त करने की इच्छा या प्रेरणा जागृत होती है जिसके परिणाम-स्वरूप वह उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करता है। परन्तु वह सरलता के साथ उस उद्देश्य की प्राप्ति नही कर पाता क्योंकि अनेक प्रकार के रोधक (barrier) उसे उद्देश्य तक पहुँचने मे बाधा उपस्थित करते हैं। ये रोधक धनात्मक व ऋणात्मक (positive and negative) दोनो प्रकार का हो सकता है। अन्तर्द्वन्द्व के 3 प्रमुख रूप हैं, यथा —

1. Brown, J F.: *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour*, p. 152.
2. Brown, J. F.: *Ibid*, p 162.
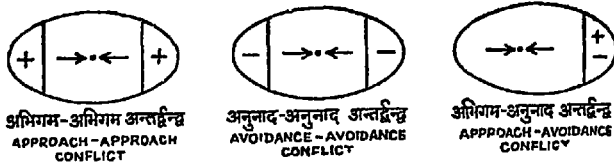
चित्र—12 अन्तर्द्वन्द्व के तीन रूप

(1) **अभिगम-अभिगम अन्तर्द्वन्द्व** (Approach-Approach Conflict)—इस प्रकार के संघर्ष मे दो इच्छाएँ होती है। व्यक्ति को दोनो ही अपनी ओर आकर्षित करती है क्योकि दोनो ही इच्छाओ मे बराबर-बराबर तथा धनात्मक शक्ति रहती है। अगर इनमे से एक को चयन किया जाय तो एक अतृप्त रह जावेगी। जैसे दो समान रूप से आकर्षक चलचित्रो मे से एक की चयन समस्या। इस प्रकार के संघर्ष मे टॉस (toss) का प्रयोग किया जा सकता है। व्यक्ति अपने जीवन-देश (life-space) मे थोडा-सा परिवर्तन करके इस प्रकार के संघर्ष से बच सकता है। यह भी सम्भव है कि दोनो इच्छाओ मे जिसके सदिश (vector) अधिक शक्तिशाली होगे उसी तरफ व्यक्ति बढने लगता है। इसमे व्यक्ति बहुत कम असामान्य होते हैं। अभिगम-अभिगम अन्तर्द्वन्द्व का सामान्यता शीघ्रता के साथ समाधान किया जा सकता है तथा इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व से व्यक्तित्व को बहुत कम नुकसान पहुँचता है।[1]
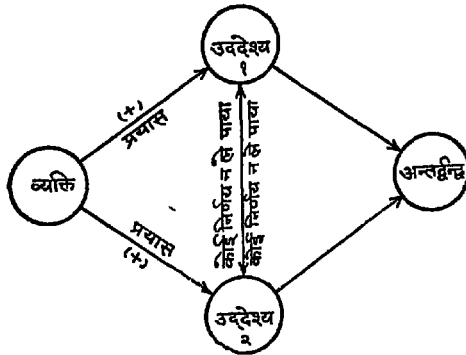
चित्र 13—अभिगम-अभिगम अन्तर्द्वन्द्व

---

1. "Approach-approach, or type conflicts, then, are usually solved quickly and with little evidence of damage to the personality."—Stagner, R. and Karwoski, T. F., *Psychology*, 1952.

(2) अनुनाद-अनुनाद अन्तर्द्वन्द्व (Avoidance-Avoidance Conflict)—इस प्रकार के संघर्ष मे व्यक्ति के सामने दो अनाकर्षक लक्ष्य उत्पन्न हो जाते हैं, दोनो मे ही एक समान विरोधी सदिश (vector) रहते है अर्थात् व्यक्ति तो दोनो को नही करना चाहता परन्तु परिस्थिति ऐसी आ जाती है कि उसे उनमें से एक को चुनना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति मे अगर व्यक्ति प्रथम लक्ष्य की ओर आकर्षित होता है तो उसके सम्मुख भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है और अगर दूसरे लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है तो भी उसे ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़ता है, जैसे—एक व्यक्ति मेहनत भी नही करना चाहता तथा परीक्षा में अनुत्तीर्ण (fail) भी नही होना चाहता। इस प्रकार का संघर्ष बहुत भयानक होता है। व्यक्ति दो कठिनाइयो के बीच मे फँस जाता है तथा उनमे से एक को उसे पूर्ण करना होता है। कभी-कभी व्यक्ति इस संघर्ष से छुटकारा पाने के लिए बीमार पड जाता है। इस प्रकार के व्यक्तियो मे इद्म् (Id) काफी शक्तिशाली होता है। एक सैनिक युद्ध-क्षेत्र में अगर लडे तो मरने का डर; और न लड़े तो कायरता की भावना से पीडित रहता है, वह मरना भी नही चाहता तथा कायरता भी नही दिखाना चाहता। यह अनुनाद-अनुनाद संघर्ष की स्थिति होगी। इस प्रकार के संघर्ष मे यह भी सम्भव हो सकता है कि उसकी स्मृति समाप्त हो जाय व पक्षाघात या लकवा (paralysis) का शिकार हो जाय। क्योंकि इसमें एक प्रकार का परिवर्तन (conversion) होने की सम्भावना होती है जिसके अनुसार व्यक्ति की मानसिक शक्ति (psychical energy) शारीरिक शक्ति मे परिवर्तित हो जाती है। यह संघर्ष से बचने का एक असामान्य रास्ता है। अगर इस प्रकार के रोगी को ठीक करना है तो उसकी परिस्थितियो को सुधारना पड़ेगा।

जब इस प्रकार का 'ऋणात्मक-ऋणात्मक (minus-minus) अन्तर्द्वन्द्व अधिक तीव्र हो जाता है तो इससे अनेक महत्त्वपूर्ण समायोजन समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनकी पूर्ति हो जाने पर व्यक्ति मे आराम के स्थान पर नैराश्य (frustration) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।[1] इस बात के अनेक परिणाम मौजूद हैं कि इस प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व बाल-अपराधी व अपराधी व्यवहार से अधिक सम्बन्धित होता है। हार से भागने का सम्बन्ध 'क्षेत्र से बाहर जाना' ('going out of the field') या आन्तरिक प्रक्रिया व्यवस्था मे गडबड़ी का परिचायक है।

(3) अभिगम-अनुनाद अन्तर्द्वन्द्व (Approach-Avoidance Conflict)—अन्तर्द्वन्द्व की इस स्थिति मे व्यक्ति के सम्मुख एक ही लक्ष्य होता है, जिसे वह

1. "When such 'minus-minus' conflicts are severe, they can bring about serious adjustment problems because even resolution of the conflict will bring frustration rather than reflect."—Coleman J. C. : *Psychology and Effective Behavionr*, 1971, p. 180.

प्राप्त भी करना चाहता है तथा उसी समय उससे दूर भी भागना चाहता है। दूसरे शब्दो मे एक ही लक्ष्य के प्रति व्यक्ति के दो विरोधात्मक भाव होते हैं, वह उसे प्राप्त भी करना चाहता है तथा नही भी चाहता है, उदाहरणस्वरूप—35-वर्षीय एक
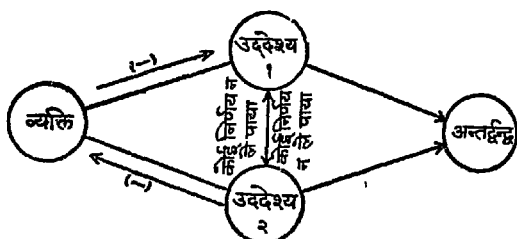
चित्र 14—अनुनाद-अनुनाद अन्तर्द्वन्द्व

आदमी शादी करना चाहता है क्योकि शादी से उसकी काम-तृप्ति (sexual satisfaction), सामाजिक प्रतिष्ठा एव सुरक्षा आदि की पूर्ति होती है परन्तु साथ ही साथ शादी नही भी करना चाहता है क्योकि अगर वह शादी कर लेगा तो उसकी स्वय की स्वतन्त्रता समाप्त हो जावेगी। यह बहुत ही खतरनाक प्रकार का सघर्ष होता है तथा व्यक्तित्व की महानतम् समस्याओ के बनने का कारण होता है।

चित्र—15

अन्तर्द्वन्द्व समायोजन के विन्यास
(Mechanisms of Conflict Adjustment)

वह व्यक्ति जो अन्तर्द्वन्द्व परिस्थितियो के मध्य होता है, सदैव यह अनुभव करता है कि उसके सम्मुख एक असमान परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। समस्थित (homeostasis) के सामान्य सिद्धान्त के आधार पर वह या तो इस परिस्थिति से पूर्व स्थित अवस्था मे पहुँचना चाहता है या नवीन प्रकार से समायोजन करना चाहता है। इस स्थिति पर पहुँचने के लिए प्राणी अपने समस्त स्रोतो को इस कार्य के लिए उपयोग करता है।

अन्तर्द्वन्द्व समायोजन को विस्तृत रूप से दो वर्गों मे वर्गीकृत करना सम्भव है। प्रथम वर्ग मे वे प्रविधियाँ आ जाती हैं, जिनका विकास प्राणी मुख्यत. उद्दीपक को सशोधित करने के आधार पर करता है। अगर हम किसी वस्तु को अन्य दृष्टिकोणो से देखे तो शायद अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो जावे। अन्य शब्दो मे, प्रथम प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व

समायोजन मे व्यक्ति मौलिक अन्तर्द्वन्द्व परिस्थिति को पुन नवीन व निश्चयात्मक दृष्टिकोण से व्याख्या करके उद्दीपक मे संशोधित करता है—
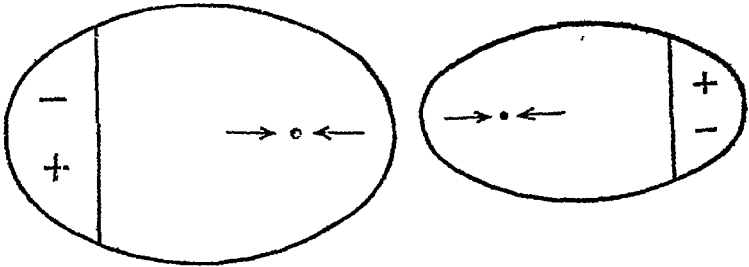
मौलिक अन्तर्द्वन्द्व परिस्थिति (Original Conflict Situation) | अन्तर्द्वन्द्व समाधान (Conflict Solution)

चित्र—16

दूसरे प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व समायोजन मे प्रतिक्रिया मे संशोधन (modification of the response) किया जाता है। निम्न चित्र को देखने से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि अगर एक प्रकार की क्रिया (A) जिसे सरलता के साथ शुरू
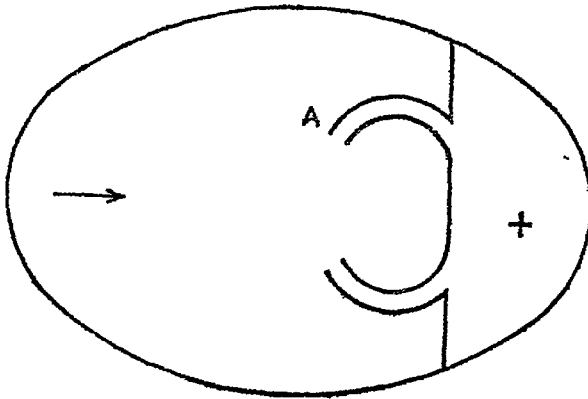
चित्र—17

किया जा सकता है परन्तु उसे पीडा या दण्ड का अनुभव व्यक्ति को प्राप्त होता है तो व्यक्ति अन्य प्रकार की क्रिया (B) के माध्यम से इस अन्तर्द्वन्द्व की तीव्रता को कम या दूर कर सकता है।

प्रतिबल व अन्तर्द्वन्द्व
(Stress and Conflicts)

अन्तर्द्वन्द्व प्रतिबल का ही एक रूप है। फ्रायड के अनुसार असामान्यता का स्रोत प्रतिबल (stress) है। कठिनाइयाँ मानव के लिए मुश्किल तो हैं लेकिन अगर मानव जीवन में कठिनाइयाँ न हों तो जीवन स्थिर (static) हो जायेगा। क्योंकि कठिनाइयों के कारण हमारे अन्दर जीवित रहने की इच्छा पैदा होती है लेकिन अगर कठिनाइयाँ बहुत अधिक हो जायें तो वही असामान्यता (abnormality) का रूप ले लेती हैं तथा इसी को प्रतिबल कहते हैं। जिस समय तक हम खाना नहीं खा लेते या अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर लेते तब तक हमें अपने अन्दर प्रतिबल की भावना का अनुभव होता रहता है। प्रतिबल उत्पन्न होने के तीन कारण हैं :—(1) विफलता या नैराश्य (frustration), (2) अन्तर्द्वन्द्व (conflict), (3) कष्ट भार या दबाव (pressure)।

मान लीजिए कि एक बच्चे की माँ सेब लाती है। बच्चे के अन्दर उस सेब को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है। मगर माँ उस सेब को छिपाकर ऐसे स्थान पर रख देती है जहाँ बच्चा नहीं पहुँच पाता। बच्चा सेब को किस प्रकार प्राप्त करे? क्योंकि उसके सामने यह समस्या है कि वह रखे हुए सेब तक नहीं पहुँच सकता। ऐसी अवस्था में वह तीन प्रकार का व्यवहार करेगा : (i) या तो वह आक्रामक प्रकार का व्यवहार करेगा, या (ii) अपने को परिस्थिति से प्रत्याहरण (withdrawal) करेगा, या (iii) परिस्थिति के साथ किसी प्रकार का समझौता करेगा। परिस्थिति की आक्रामकता (aggression of situation) में वह बच्चा प्रयास व त्रुटि विधि (trial and error method) का सहारा लेगा तथा सेब को प्राप्त करने का प्रयास करेगा। प्रत्याहरण (withdrawal) में वह प्रयास करना बन्द करके रोना शुरू कर देगा। लेकिन समझौते में वह अपनी माँ से यह कहेगा कि अच्छा सेब दीदी को दे दो, मुझे कुछ और चीज दे दो। एक परिस्थिति के साथ इस तीन प्रकार का जो व्यवहार होगा, वह व्यक्ति के आकांक्षा स्तर (level of aspiration) पर निर्भर होगा। सामान्य रूप से प्रतिबल अधिक हानिकारक होता है। इसमें व्यक्ति के अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेरक अवरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार की परिस्थिति काफी समय तक व्यक्ति के सम्मुख बनी रहती है, जिससे कि व्यक्ति के सम्मुख अपरिचित व असम्भावित समस्याओं की उपस्थिति हो जाती है। व्यक्ति इन समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता और वह अपने को इन समस्याओं पर नियन्त्रण करने में असमर्थ पाता है। कोलमैन (Coleman) के शब्दों में :—

"Stress, like a motive, may be partly or wholly unconscious, though the presence of uneasiness or anxiety may be a clue that stress is present...... ......stress is inevitable and sometimes chosen

voluntarily, mental health results not from lack of stress but from ability to cope with it satisfactorily."[1]

प्रतिवल दो प्रकार का होता है (1) शारीरिक, व (2) मानसिक, उदाहरणार्थ—जव व्यक्ति को ज्वर आता है तव उसके शरीर का प्रत्येक अग व प्रत्येक तन्तु तापक्रम से प्रभावित हो जाता है। अन्य शब्दो मे, शरीर एक विशेप प्रकार के नियन्त्रण मे आ जाता है। यह स्थिति शारीरिक प्रतिवल का ही एक रूप है। द्वितीय रूप मे जव व्यक्ति अधिक परिश्रम करता है और तव भी अपनी आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर पाता तो तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार अनेक मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ, यथा—क्लेश, व्यक्तित्व असफलताएँ आदि भी प्रतिवल का कारण होती है। प्रतिवल का सामूहिक रूप भी है, जैसे—युद्ध आदि।

मानव एक बुद्धिमान प्राणी है। उसके सामने अनेक विरोधी प्रेरणाएँ एक साथ उपस्थित हो जाती है जिसके कारण वह यह निश्चय नही कर पाता कि किसे सन्तुष्ट करे, किसे नही। जव वह सामर्थ्य से उच्च अभीष्ट का निर्माण करे या इच्छाओ मे स्पर्द्धात्मक भाव उत्पन्न हो जावे या अन्य सामाजिक, भौतिक, राजनैतिक कारण उत्पन्न हो जावे तो व्यक्ति निराश हो जाता है जिसकी तीव्रता उसे असामान्यता की ओर ले जाती है। अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था तव उत्पन्न होती है जवकि दो विरोधी इच्छाएँ एक साथ उठ खडी होती है, यह एक तनावपूर्ण स्थिति को जन्म देती है। प्रतिवल सामान्य रूप से अधिक हानिकारक स्थिति है क्योकि इसमे व्यक्ति के अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेरक अवरुद्ध हो जाते है। प्रतिवल के कारण व्यक्ति के सम्मुख अनेक जटिल समस्याएँ उपस्थित हो जाती है।

---

1. **Coleman J C** *Psychology and Effective Behaviour*, 1971, p 197

7

असामान्य व्यवहार के सामान्य कारण
[GENERAL CAUSES OF ABNORMAL BEHAVIOUR]

वैज्ञानिक व आधुनिक असामान्यता सम्बन्धी दृष्टिकोण से यह बात पूर्णत सिद्ध हो गई है कि सामान्य व असामान्य मे प्रकार का अन्तर नही है, वल्कि गुण या तीव्रता के कारण ही इसमे अन्तर है। असामान्य व्यवहार जटिल प्रकृति होने के कारण हम पूर्ण रूप से यह नहीं कह सकते हैं कि एक विशिष्ट परिस्थिति ही एक विशिष्ट असामान्य व्यवहार का कारण है। यही कारण है कि असामान्य व्यवहार के कारणो की व्याख्या करना कठिन है। लेकिन हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि वे परिस्थितियाँ जो व्यक्तित्व-विकास मे असहायक या अवरोध उत्पन्न करती हैं तथा व्यक्ति के सम्मुख ऐसी दबावपूर्ण स्थिति पैदा कर देती हैं कि व्यक्ति उनका सामना नहीं कर पाता, वे सब परिस्थितियाँ असामान्य व्यवहार का कारण वनती है। असामान्य व्यवहारो के कारणो की विवेचना करने से पूर्व हम उन कठिनाइयो पर प्रकाश डालेंगे जो कि प्राय असामान्य व्यवहार के विभिन्न कारणात्मक तत्त्वो को अलग-अलग करने तथा मूल्यांकन करने मे असहायक होती हैं। ये तत्त्व निम्न हैं —

(1) प्रत्येक विकृति (disorder) के एक समान कारण नही होते, जैसे—मानसिक दुर्वलता, मनोस्नायुविकृति आदि। इसी प्रकार समाज विरोधी व्यक्तियो के अनेक प्रकार होने के कारण उनके कारणो के अध्ययन मे असुविधा होती है।

(2) विकृतियो के उत्पन्न होने का मुख्य कारण दो या दो से अधिक तत्त्वो मे सघर्ष का होना होता है तथा इन दोनो तत्त्वो मे विभिन्न सयोजक तत्त्वो का अध्ययन करना वास्तव मे एक कठिन कार्य है, उदाहरणस्वरूप—प्रत्येक वशानुगत रोगो मे वातावरण का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य होता है। अत असामान्य व्यवहार

के कारणों को जानने मे यह तत्त्व भी एक प्रकार का अवरोध उत्पन्न करता है कि वास्तविक रूप मे विकृति के तत्त्वो के विभिन्न सयोजक कारको का तुलनात्मक महत्त्व क्या है ?

(3) एक प्रकार का लक्षण (symptom) अनेक प्रकार के कारणो के माध्यम से उत्पन्न किया जा सकता है, उदाहरण के लिए—अगर हम यह जान लें कि इस विशेष मानसिक व्यतिक्रम के लिए यह विशेष तत्त्व उत्तरदायी है, तो इसका अर्थ यह नही है कि सभी रोगियो से, जिनमे ये लक्षण हैं, केवल सामान्य मात्रा में ही उपस्थित होगे।

(4) कुछ ऐसे भी कारण होते है जिनमे उत्पन्न लक्षण एक विशेष प्रकार के रोग के लिए एक प्रामाणिक रूप प्रकट करते है। अत उनका या तो निश्चित निदान (diagnosis) करना ही कठिन होता है या उनके निदान मे स्वाभाविक रूप से कुछ त्रुटियाँ आ जाती है। इस प्रकार ये विभिन्न कारक रोगो के कारणो के मूल्याकन मे एक जटिल परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं।

उपयुक्त कठिनाइयो के वावजूद भी मनोवैज्ञानिको ने असामान्य व्यवहार के कारणो को जानने का प्रयास किया है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने अपने अध्ययनो के आधार पर व्यक्तित्व के दोषपूर्ण विकास तथा अत्यधिक दवाव डालने वाले कारको को प्रमुखत दो भागो मे विभाजित किया है —

(अ) आगिक कारण (Organic Causes),

(व) कार्यात्मक कारण (Functional Causes)।

कुछ अन्य मनोवैज्ञानिको ने असामान्यता को उत्पन्न करने वाली विभिन्न परिस्थितियो को एक अन्य ढग से भी वर्गीकरण का प्रयास किया है जो कि सापेक्षिक रूप से अधिक वैज्ञानिक है। इस दृष्टिकोण के अनुसार—

(अ) पूर्वनिहित कारण (Predisposing Causes),

(व) तात्कालिक कारण (Precipitating Causes)।

पूर्वनिहित असामान्यता सम्वन्धी कारण वे है जिनमे माध्यम से व्यक्तित्व-विकास दोषपूर्ण हो जाता है तथा भविष्य मे भी ऐसे व्यक्ति की असामान्य वनने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। पूर्वनिहित कारणो से व्यक्ति की समायोजनशीलता कम हो जाती है तथा भविष्य मे जटिल सघर्ष व विफलताओ के साथ वह समायोजन नही कर पाता।

तात्कालिक कारणो का सम्वन्ध उन विशिष्ट दशाओ से होता है जो कमजोर व्यक्तित्व वाले व्यक्तियो के लिए एक ऐसी दवावपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर देती हैं जिनसे कि व्यक्ति समायोजन नही कर पाता। वह लडखडा जाता है, उसमे सहन-शक्ति कम हो जाती है तथा धीरे-धीरे वह असामान्यता का शिकार हो जाता है।

सुविधा के दृष्टिकोण से हम असामान्य व्यवहार के कारणो को दो मुख्य भागों मे बाँट सकते है :—

(अ) सामान्य कारक,

(ब) तीव्र दवावपूर्ण कारक ।

इन दोनो कारको को भी तीन-तीन उपवर्गो मे विभाजित किया जा सकता है —

(i) सामान्य जैविक विकास से सम्बन्धित कारक,

(ii) सामान्य मनोवैज्ञानिक कारक,

(iii) सामान्य सामाजिक कारक ।

इसी प्रकार—

(i) तीव्र जैविक दशाएँ (Severe Biological Stress),

(ii) तीव्र मनोवैज्ञानिक दशाएँ (Severe Psychological Stress),

(iii) तीव्र सामाजिक दशाएँ (Severe Sociological Stress) ।

सामान्य कारको का सम्बन्ध उन परिस्थितियो से होता है जो व्यक्तित्व-विकास मे बाधा उत्पन्न करती है तथा जिसके फलस्वरूप व्यक्तित्व का विकास दोषपूर्ण ढग से होने लगता है । तीव्र दवावपूर्ण कारणो का सम्बन्ध उन परिस्थितियो से होता है जो दोषयुक्त व्यक्तित्व से सम्बन्धित व्यक्ति को असामान्यता की ओर ले जाती है । सापेक्षिक दृष्टिकोण से इन कारको के फलस्वरूप भविष्य मे असामान्यता उत्पन्न होने की सम्भावना होती है । आगे हम इनका विस्तृत रूप से विवेचन प्रस्तुत करेंगे ।
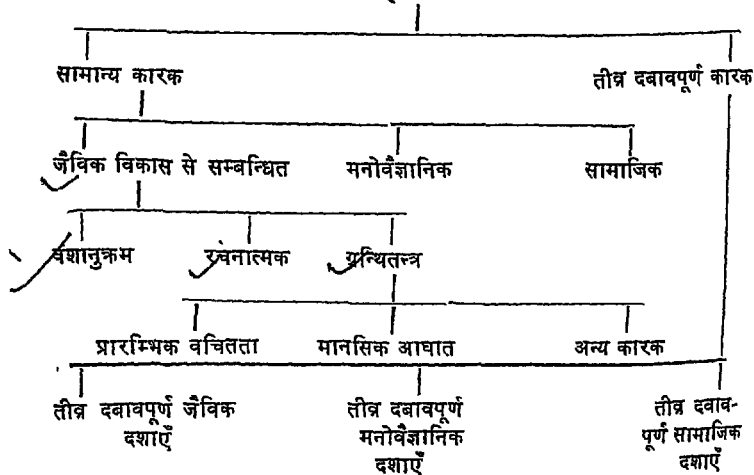
सामान्य कारक
(Normal Causes)

जैविक विकास से सम्बन्धित कारक या आंगिक कारक
(Factors Related to Biological Development or Organic Causes)

व्यक्ति के आंगिक संगठन का प्रभाव उसके व्यवहार पर भी पडता है। यदि कुछ परिस्थितियाँ या दशायें उसकी आंगिक वृद्धि एवं जैविक विकास मे बाधा उत्पन्न करती है तो ये परिस्थितियाँ असामान्यता की द्योतक होती हैं। दूसरे शब्दो में, सामान्य जैविक विकास सामान्य व्यवहार को उत्पन्न करता है, तो असामान्य जैविक विकास असामान्य व्यवहार का उत्पादन करता है। यहाँ हम सर्वप्रथम ऐसे दोषपूर्ण जैविक कारणो को बतायेंगे जिनसे असामान्य व्यवहार का निर्माण होता है।

1. वंशानुक्रम (Heredity)—मनोविकृतिविज्ञान मे वशानुक्रम एक महत्त्वपूर्ण कारक है, लेकिन इसके महत्त्व के सम्बन्ध मे कोई निश्चित मत नही है। क्योकि कुछ मनोवैज्ञानिको ने इसको बहुत ही कम महत्त्व दिया है, तो कुछ मनोवैज्ञानिको ने बहुत अधिक। वशानुक्रम मे वे सब शारीरिक एव मानसिक विशेषताएँ आ जाती है जो पित्र्यैको (Genes) के माध्यम से एक व्यक्ति को अपने माँ-बाप से वश-परम्परा के आधार पर प्राप्त होते है। मुख्यत वशानुक्रम के प्रभाव मे शरीर का रग, बालो का रग, बनावट—कद, नाक-नक्शा, नासिका सूची (Nasal index) और कपाल सूचिका आदि निश्चित होते है। वशानुक्रम से सम्बन्धित प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर हम यह कह सकते है कि लगभग $\frac{8}{4}$ मानसिक दुर्बलता एव $\frac{1}{3}$ मनोविकृति रोगों का कारण मुख्यत. दूषित वशानुक्रम होता है। इसके अतिरिक्त लगभग 15% मनोविकृतियाँ, लगभग अधिकांश स्नायुविकृतियाँ तथा समाज-विरोधी या अपराधी व्यवहारों मे वंशानुक्रम एक सहायक रोग होता है।

प्रत्यक्ष रूप से किसी भी व्यक्ति को वशानुक्रम के माध्यम से असामान्यता के लक्षण प्राप्त नही होते बल्कि अप्रत्यक्ष या अज्ञात रूप से स्नायुमण्डल शरीर की बनावट तथा उसके विकास मे निर्धारक होते है। यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि जो पित्र्यैक वशानुक्रम के माध्यम से एक व्यक्ति को मिलते हैं तथा मनोवैज्ञानिक असामान्य मे सहायक होते हैं, उन पर अन्य पित्र्यैको की अन्त.क्रिया एव बाह्य वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है, उदाहरणार्थ—यक्ष्मा (Tuberculosis) एक वशानुक्रम से सम्बन्धित रोग है क्योकि वशानुक्रम के माध्यम से ऐसे पित्र्यैक रोगी प्राप्त करता है जो अनुकूल शरीर-रासायनिक (physic-chemical) आधार का निर्माण करते है जिनके फलस्वरूप यक्ष्मा के कीटाणुओ के सम्पर्क मे आते है, इस रोग मे फँस जाते हैं। इस सम्बन्ध मे मुख्यत हमे उत्पत्तिमूलक व मैण्डल के सिद्धान्तो को जानना आवश्यक है।

(अ) उत्पत्तिमूलक-सिद्धान्त (Genetic Principles)—गर्भाधान के समय ही बच्चे को वशानुक्रम तत्त्व प्राप्त हो जाते है। सन्तान की रचना माँ-बाप के शरीर-अगो

से होती है, जिन्हे बीज-कोष (Germ cells) कहते हैं। माँ के बीज-कोष को अण्ड-कोष (Egg-cells) तथा बाप के बीज-कोष को शुक्र-कोष (Sperm-cells) कहते है। इन प्रत्येक प्रकार के बीज-कोषो के तरल पदार्थ (Protoplasm) मे 24 (या 12 जोडे) क्रोमोसोम (chromosome) पाए जाते हैं। इस प्रकार शुक्र व डिम्ब (sperm and ovum) के मिलने से 24 जोडे क्रोमोसोम के बन जाते है जो बाद मे अनेक कोषो का निर्माण करते रहते है। इन्ही कोषो के माध्यम से वशानुक्रम के तत्त्व शरीर के प्रत्येक भाग मे सक्रिय हो जाते है।

(ब) मैण्डल-सिद्धान्त (Mendal's Principle)—उत्पत्तिमूलक सिद्धान्त एक मुख्य प्रश्न का सही उत्तर नही दे पाता। यह मुख्य प्रश्न है कि अगर एक बालक अपनी माँ से एक भिन्न प्रकार का पित्र्यैक तथा पिता से भी एक भिन्न प्रकार का पित्र्यैक प्राप्त करता है तो ऐसी अवस्था मे बच्चे का रग, आँख, लम्बाई आदि का निर्धारण किस पर होगा ? मैण्डल ने अपने इस सिद्धान्त के आधार पर इस प्रश्न का हल निकाल दिया है। उसने इस समस्या के समाधान के लिए प्रमुख एव अपगामी (dominent and recessive) तत्त्वो का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उसने एक अस्ट्रियन बगीचे मे मटर की फलियो पर प्रयोग किया तथा यह देखा कि जब पीली मटर को हरी मटर से गर्भित कराकर बोया गया तो उससे प्रथम पीढी से पीली मटर उत्पन्न हुई। जब इस प्रथम प्रकार की मटरो को आपस मे गर्भित कराकर बोया गया तो दूसरी पीढी मे एक हरी व तीन पीली मटर के अनुपात मे उत्पादन हुआ। इसी तरह से ही एक बालक को अनेक शारीरिक गुण मिलते हैं।

इस सिद्धान्त के आधार पर अनेक मनोवैज्ञानिको ने यह निष्कर्ष ज्ञात किया कि किसी भी मानसिक रोग के लक्षण वशानुक्रम के माध्यम से प्राप्त होते हैं। अगर व्यक्ति ऐसे वातावरण मे रहता है जो अभियोजनपूर्ण एव सुरक्षित हो, तो उसमे रोग के प्रत्यक्ष लक्षण विकसित नही होते। वशानुक्रम से प्रभावित रोग की चिकित्सा तब ही सम्भव है जबकि उसके निर्धारको का पता लग जाय, अन्यथा रोग के लक्षणो को समाप्त करना असम्भव है। इस सम्बन्ध मे अनेक अनुसन्धान हुए है, जिनका आधार मुख्यत पारिवारिक शोध व समान यमज (identical twins) है। यमजो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है —

(1) एक समान यमज (Identical twins),

(2) भ्रातृ-यमज (Fraternal twins)।

एक समान यमज की उत्पत्ति एक ही डिम्ब (ovum) एव शुक्र (sperm) के फलस्वरूप होती है। इस प्रकार गर्भित होकर जो एक कोष बनता है उसी का जब दो भागो मे विभाजन हो जाता है तो दो भ्रूण का निर्माण हो जाता है तथा इसके ही विकसित हो जाने पर दो शिशुओं का जन्म होता है। इन शिशुओ का एक ही लिंग होता है तथा दोनो मे ही शारीरिक व मानसिक गुण एक समान होते है।

भ्रातृ-यमजो की उत्पत्ति दो डिम्ब व दो शुक्र के अलग-अलग गर्भित होने के फलस्वरूप होती है । इसके फलस्वरूप ऐसे दो भाई या भाई-बहिन का जन्म होता है जिनको मानसिक एव शारीरिक गुणो मे पर्याप्त अन्तर होता है ।

वंशानुक्रम के सम्बन्ध मे कुछ मनोवैज्ञानिको की राय
(Opinion of Some Psychologists Regarding Heredity)

कालमैन (Kallman . 1953, 1958) ने वशानुक्रम का शिजोफ्रेनिया (Schizophrenia) की उत्पत्ति पर पडने वाले प्रभावो के सम्बन्ध मे एक अध्ययन किया तथा निम्नलिखित निष्कर्ष ज्ञात किए[1] ·—

Degree of Relationship to Schizophrenic	Per cent who develop Schizophrenia
एक समान यमज (Identical twins)	86·2
भ्रातृ यमज (Fraternal twins)	14·5
सहोदर (भाई-बहन) (siblings)	14 2
अर्द्ध-सहोदर (Half-Siblings)	7 1
सामान्य जनसख्या (General population)	0 85

यह परिणाम पूर्ण रूप से इस बात का समर्थन करते है कि सामान्य जनसख्या की अपेक्षा शिजोफ्रेनिया अन्य रक्त-सम्बन्धो से अधिक अशो मे घटित होता है । जैक्सन (Jackson)[2] ने 1960 मे किए गए एक शोध-परिणाम के आधार पर बताया कि वशानुक्रम के अभाव मे भी अनेक रोग (शारीरिक) पीढी-दर-पीढी चलते रहते है । इस प्रकार के पीढी-दर-पीढी रोग के चलने का मुख्य कारण यह होता है कि हम वशानुक्रम पर प्रारम्भिक वातावरण के प्रभाव को सम्मिलित नही करते । वैसे इसका मुख्य आधार वशानुक्रम ही होता है । ज्यूक परिवार (Juke's Family) पर किए गए एक अध्ययन के आधार पर हम स्पष्टत वशानुक्रम के प्रभाव की महत्ता स्वीकार कर सकते है । पाँच पीढी के करीब 1,200 लोगो पर अध्ययन के उपरान्त यह पता चला कि 300 की शैशवावस्था मे मृत्यु हो गई, 310 व्यक्तियो ने करीब 2,500 वर्ष जेलो मे विताये, 400 की रोगग्रस्त होने के उपरान्त मृत्यु हो गई, 400 अपने गलत कर्मो के शिकार हुए, 70 खूनी व चोर बने तथा केवल 20 ने ही

1. Source . Coleman · *Abnormal Psychology and Modern Life*, p 121
2. " . ...Jackson (1960) has pointed out that even physical disease may run in families without necessarily having a genetic basis. Beribei, a vitamin deficiency disease, tends to do so." —Coleman (1964), *Ibid.*

काम करना सीखा। गोडार्ड (Goddard) ने मार्टिन कालीकाक (Martin Kalikak) का उदाहरण दिया है जिसने दो विवाह किए—एक मन्दबुद्धि वाली लडकी से और एक पादरी की लडकी से। मन्दबुद्धि लडकी से उत्पन्न सन्तान मन्दबुद्धि, शरावी, पागल व कुचरित्र वनी तथा पादरी की लडकी से उत्पन्न सन्तान अच्छी नागरिक वनी। इसके आधार पर गोडार्ड ने यह निष्कर्ष ज्ञात किया कि वशानुक्रम असामान्य व्यवहार का मुख्य कारण है।

वशानुक्रम का जीवशास्त्रीय अध्ययन मुख्यत मैण्डल (Mendal), मॉर्गन (Morgan) व रेमण्ड पर्ल (Raymond Pearl) ने किया। मनोवैज्ञानिक अध्ययनो की परम्परा मे उल्लेखनीय कार्य गाल्टन (Galton) व गोडार्ड (Goddard) का है। 1869 मे गाल्टन ने अपनी पुस्तक "*Hereditary Genius*" मे वताया कि योग्य व्यक्ति के सम्वन्धी भी योग्य होते है।' इसका मुख्य कारण रक्त या वश-परम्परा का प्रभाव है। उसने 30 माँ-वाप कलाकार के परिवारो के अध्ययन से यह ज्ञात किया कि इन परिवारो मे 64% वालक कलाकार थे जवकि सामान्य जनसख्या के 150 परिवार मे केवल 21% ही कलाकार थे। डॅ० कॅण्डोल (De Candolle) ने सन् 1873 मे गाल्टन के इन निष्कर्षो का विरोध किया। डा० जीन इटार्ड (Dr Jean Itard) को एक ऐसा वालक मिला, जिसे पाँच वर्ष लगातार शिक्षित करने के वाद सामान्य व्यवहार को भी नही सिखलाया जा सका।

(2) रचनात्मक कारक (Constitutional Factors)

(1) शारीरिक गठन (Physical Constitution)—प्राचीन समय से ही शारीरिक वनावट (physical constitution) के आधार पर व्यक्तियो को वर्गीकरण किया गया है। मानसोपचारशास्त्र के दृष्टिकोण से रचनात्मक तत्त्वो से तात्पर्य है—वे जैविक गुण या दोष (जन्मदाता हो, या अर्जित) जो रोग उत्पन्न करने मे सहायक होते है। रचनात्मक तत्त्वो के अन्तर्गत हम मुख्यत निम्न तीन विद्वानो के विचारो की विवेचना करेंगे —

(1) क्रेश्मर का वर्गीकरण (Kretschmer's Classification)
(2) शेल्डन का वर्गीकरण (Sheldon's Classification)
(3) मनोवैज्ञानिक प्रकार (Psychological Type)

(1) क्रेश्मर का वर्गीकरण (Kretschmer's Classification)—आधुनिक युग मे क्रेश्मर का नाम वहुत उल्लेखनीय है क्योकि इन्होने विशेष प्रकार की शारीरिक वनावट के साथ विशेष प्रकार के मानसिक रोग का उल्लेख किया है। क्रेश्मर के अनुसार शारीरिक वनावट के आधार पर व्यक्तियो को चार प्रकारो मे वाँटा जा सकता है —

(अ) पिकनिक प्रकार (Pyknic Type)—इस प्रकार के व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट, नाटे, छाती भरी हुई, कन्धे चौडे, गर्दन छोटी व मोटी, चिकना व भरा हुआ चेहरा

होता है। इस प्रकार व्यक्ति अगर मनोविकृत होगा तो उत्साह-विषाद मनोविकृत से पीडित होगा।

(ब) एस्थेनिक प्रकार (Aesthenic Type)—इस प्रकार के व्यक्ति शेल्डन के अनुसार दुर्बल, चपटे, लम्बे, नाजुक स्वास्थ्य के होते है। ये गम्भीर एकान्तप्रिय तथा रूखे स्वभाव वाले होते है। इस प्रकार के व्यक्ति को मनोविदलता (Schizophrenia) अधिक होता है।

(स) एथलेटिक प्रकार (Athletic Type)—इस प्रकार के लोगो का शरीर बलिष्ट व सुगठित होता है। इनके स्वभाव मे लचीलापन व व्यवहार-कुशलता विद्यमान होती है।

(द) डिस्प्लैस्टिक प्रकार (Dysplastic Type)—इस प्रकार के व्यक्तियो की शरीर की बनावट तीनो प्रकार से भिन्न होती है। मनोचिकित्सा की दृष्टि से इस प्रकार के व्यक्तियो का काफी महत्त्व है क्योंकि इस प्रकार के लोगो का शारीरिक विकास बडा असामान्य व असम होता है।

(2) शेल्डन का वर्गीकरण (Sheldon's Classification)—क्रेश्मर के विचारो को परिमार्जित रूप देने का श्रेय शेल्डन को है। शेल्डन के अनुसार शारीरिक बनावट व स्वभाव के आधार पर व्यक्तित्व के निम्न प्रकार हो सकते है :—

(i) गोलाकृतिक (Endomorphic)—इस प्रकार के व्यक्ति मोटे व लम्बे होते है तथा इनकी खाद्य पदार्थो मे अधिक रुचि होती है। शेल्डन ने इनके स्वभाव को आन्तराग-प्रधान (viscerotonic) कहा है।

(ii) आयताकृतिक (Mesomorphic)—इस प्रकार के व्यक्तियो की माँस-पेशियाँ व हड्डियाँ अधिक विकसित होती है। वे दुर्बल नही होते तथा इनमे धैर्य व साहस का गुण अधिक रहता है। दूसरे व्यक्तियो पर अधिकार जमाने की प्रवृत्ति इन इन व्यक्तियो मे अधिक देखी जाती है। इनके मूल स्वभाव को शेल्डन ने कार्यप्रधान (somatotonic) के नाम की सज्ञा दी है।

(iii) लम्बाकृतिक (Ectomorphic)—इस वर्ग मे आने वाले व्यक्तियो का शरीर कमजोर हुआ करता है। ये व्यक्ति एकान्त मे अधिक रहना पसन्द करते है। इनके मूल स्वभाव को शेल्डन ने प्रमस्तिष्क-प्रधान (cerebrotonic) कहा है।

यदि इनमे से कभी मानसिक रोगो का जन्म होता है तो गोलाकृतिक व आयातकृतिक प्रकार के व्यक्तियो को उत्साह-विषाद मनोकृति तथा लम्बाकृतिक प्रकार को मनोविदलता उत्पन्न होती है।

(3) मनोवैज्ञानिक प्रकार (Psychological Type)—शारीरिक प्रकार के समान कुछ मनोवैज्ञानिको ने व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या के लिए मनोवैज्ञानिक प्रकारो की व्याख्या की है।

विलियम जेम्स (William James) के अनुसार—विलियम जेम्स ने दो अग्रलिखित मनोवैज्ञानिक प्रकार बताये है :—

(1) कोमल हृदय (Tender Hearted)—ये व्यक्ति अमूर्त (abstract) सिद्धान्तों को बहुत मानते हैं तथा इसी सिद्धान्त के ही आधार पर उनका व्यवहार निर्देशित होता है। ये व्यक्ति बुद्धिजीवी, आदर्शवादी, आशावादी, आस्तिक व पूर्वाग्राही होते हैं।

(2) कठोर हृदय (Tough Hearted)—ये व्यक्ति सत्यप्रिय होते हैं तथा तथ्यों (facts) के आधार पर निर्देशित होते हैं। इनका प्रमुख झुकाव भौतिकवाद, निराशावाद, आध्यात्मिकतावाद व संशयवाद (scepticism) की ओर होता है।

2. युंग (Jung) के अनुसार—युग ने निम्न दो मनोवैज्ञानिक प्रकार बताये हैं —

(1) अन्तर्मुखी (Introversion)—इनमें निम्न विशेषताएँ होती हैं —

(क) इनमें एकान्तप्रियता, सकोचता, भावुकता व आत्म-तत्त्व की प्रधानता होती है।

(ख) इनका व्यवहार मन के भावों या आन्तरिक बातों से अधिक प्रभावित होता है।

(ग) मन में ही अपने भाव, विचार आदि रखे रहता है।

(घ) विचारों व सिद्धान्तों को अधिक महत्त्व प्रदान करता है।

(2) बहिर्मुखी (Extroversion)—इनमें निम्न विशेषताएँ होती हैं —

(क) ये व्यक्ति सामाजिक होते हैं।

(ख) इनमें बाह्य वस्तुओं व बाह्य क्रियाओं के प्रति अधिक रुचि पायी जाती है।

(ग) ये व्यावहारिक तथा परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित होते रहते हैं।

(घ) ये प्राय लोगों की उपेक्षा करते हैं।

युग ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि सभी व्यक्तियों को इन दोनों वर्गों में विभाजित करना कठिन है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्मुखिता व बहिर्मुखिता के गुण पाये जाते हैं। अत प्राय सभी व्यक्ति उभयमुखी होते हैं। अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में मनोविदलता का रोग हो सकता है।

3. ग्रन्थितन्त्र (Glandular System)—व्यक्ति के समायोजन या असमायोजन पर ग्रन्थितन्त्रों का काफी प्रभाव पड़ता है। अगर शरीर की विभिन्न अन्त स्रावी ग्रन्थियाँ सन्तुलित ढग से कार्य करती है, तो व्यवहार नियमित रहता है। अगर इन ग्रन्थियों से निकलने वाले अन्त स्राव (hormones) में अतिरंजना (अत्यधिक कमी या वृद्धि) उत्पन्न हो जावे तो व्यक्ति में असामान्यता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। मुख्य रूप से नलिका-विहिन ग्रन्थियाँ निम्न हैं —

नलिका-विहीन प्रमुख ग्रन्थियाँ
↓
- गल ग्रन्थि
- पीयूष ग्रन्थि
- अधिवृक्क ग्रन्थि
- लिङ्ग ग्रन्थि
- पीनियल ग्रन्थि
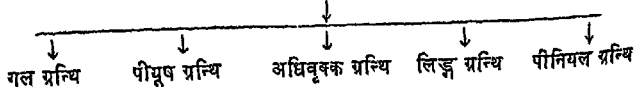
(अ) गल ग्रन्थि (Thyroid Gland)—इस ग्रन्थि की अत्यधिक क्रियाशीलता के कारण माँसपेशियो मे तनाव आ जाता है। इससे जिस रस का स्राव होता है, उसे थाइरोक्सीन (Thyroxin) कहते है, जिसमे 65% आयोडिन (Iodine) होती है। अत्यधिक रस स्राव होने के परिणामस्वरूप व्यक्ति मे चिन्ता, चिडचिडापन व घबराहट उत्पन्न होती है तथा कम स्राव होने से व्यक्ति सुस्त व निकम्मा होता है।

(ब) पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)—इस ग्रन्थि का आकार अगूर के समान होता है तथा यह ग्रन्थि मस्तिष्क के नीचे की नली से लटकती रहती है। इस ग्रन्थि की अत्यधिक क्रियाशीलता के कारण शरीर की लम्बाई मे वृद्धि हो जाती है तथा त्वचा भी अधिक मोटी होती जाती है। लेकिन इस ग्रन्थि के शिथिल हो जाने पर शारीरिक विकास मन्द हो जाता है, उनकी माँसपेशियाँ दुर्बल हा जाती है। वह नाटा कद का व्यक्ति हो जाता है। इस ग्रन्थि के स्राव मे अतिरजिता होने के कारण व्यक्ति का व्यवहार भी प्रभावित होता है। व्यक्ति आक्रामक, झगडालू व कामुक प्रकृति का हो जाता है। व्यक्ति समय से पूर्व ही वूढा दिखाई देने लगता है।

(स) अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Gland)—इस ग्रन्थि के अन्त स्राव का प्रभाव सवेगो पर पडता है। इसके वाह्य भाग से जिस रस का स्राव होता है, उसे कॉर्टिन (cortin) कहते हैं, जिसके नष्ट हो जाने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। अधिक स्राव की स्थिति मे व्यक्ति सवेगात्मक परिस्थितियो मे सन्तुलित व्यवहार करता है तथा कम होने की स्थिति मे उसका सवेगात्मक सन्तुलन विगड जाता है।

(द) लिङ्ग ग्रन्थियाँ (Sex Glands or Gonads)—इस ग्रन्थि के स्राव के फलस्वरूप काम-विकास होता है। इसी के प्रभाव के फलस्वरूप पुरुषो मे पुसत्व व नारियो मे नारीत्व उत्पन्न होता है। अगर इन ग्रन्थियो के कार्य मे असन्तुलन उत्पन्न हो जावे, तो व्यक्ति का कार्य करना वडा ही मुश्किल हो जाता है तथा वह सुखी जीवन व्यतीत नही कर पाता।

(य) पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland)—इस ग्रन्थि का सम्वन्ध मस्तिष्क से होता है तथा यह ग्रन्थि मस्तिष्क के पीछे स्थित होती है। इस ग्रन्थि का कार्य निश्चित नही है। विद्वानो का मत है कि इस ग्रन्थि से शारीरिक गति व काम सम्वन्धी क्रियाएँ सचालित होती है।

(4) स्नायु-मण्डल एव मस्तिष्क (Nervous System and Brain)—स्नायु-मण्डल के द्वारा व्यक्ति का व्यवहार व अनुभवो का नियन्त्रण होता है। अत स्नायु-मण्डल का समायोजन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। स्नायु-मण्डल ही प्राणी व पर्या-वरण के मध्य सम्वन्ध स्थापित करता है। स्नायु-मण्डल के दो भाग है :—

(i) केन्द्रीय स्नायु-मण्डल (Central Nervous System),

(ii) परिधीय स्नायु-मण्डल (Peripheral Nervous System)।

केन्द्रीय स्नायु-मण्डल का निर्माण मस्तिष्क व सुषुम्ना के द्वारा होता है। परिधीय स्नायु-मण्डल के पुन दो भेद किए जा सकते है —

(अ) दैहिक (somatic) स्नायु-मण्डल,

(ब) स्वायत्त (autonomic) स्नायु-मण्डल ।

व्यक्ति के समायोजन पर केन्द्रीय व परिधीय, दोनो स्नायु-मण्डलो का प्रभाव पडता है । क्योकि दोनो का ही क्रियाओ व सघटन से घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

दैहिक स्नायु-मण्डल मे मेरु-रज्जु (spinal cord) एव मस्तिष्क (brain) सम्मिलित होते है । मेरु-रज्जु, श्वेत व मुलायम होती है तथा अगर इसके एक खण्ड को काट दिया जावे तो इसकी आन्तरिक रचना दिखाई पडती है । इसके बाहर की ओर श्वेत द्रव्य (white matter) व अन्दर की ओर घूसर द्रव्य (grey matter) दिखाई पडता है । मस्तिष्क को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है—(i) अग्र-मस्तिष्क (forebrain), (ii) मध्य-मस्तिष्क (midbrain), व (iii) पश्च-मस्तिष्क (hindbrain) ।

स्वायत्त स्नायु-मण्डल को भी दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है —

(i) वक्ष-कटितन्त्र या अनुकम्पी तन्त्र (Thoracico-lumbar System),

(ii) कपाल-सेक्रमी यन्त्र या सहानुकम्पी तन्त्र (Caranio-searal System)।

स्वायत्त स्नायु-मण्डल का विशेष सम्बन्ध व्यक्ति के आन्तरिक पर्यावरण से होता है । इसी के द्वारा पेशियो व ग्रन्थियो को क्रियाशीलता प्राप्त होती है । अगो व ग्रन्थियो को समझने के लिए इसका अध्ययन करना आवश्यक है । सवेगात्मक अवस्था मे होने वाले परिवर्तनो की शुरुआत स्वायत्त स्नायु-मण्डल के द्वारा होती है। मानसिक विकारो मे क्योकि सवेगो का बहुत अधिक महत्त्व होता है, अत अनेक प्रकारो से इसका महत्त्व मानसिक विकारो मे है ।

अनेक अध्ययनो के द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि अगर मस्तिष्क की ऊतक हानि (tissue damage) हो जावे तो इसके परिणामस्वरूप अनेक व्यक्तित्व-विक्षोभ उत्पन्न हो जाते है या होने की सम्भावना होती है ।

3 **पोषण** (Nutrition)

पोषण कभी भी अनेक मानसिक बीमारियो का कारण होती है । इस दिशा मे प्राय दो प्रकार की कमियाँ दृष्टिगोचर होती है —

(i) **पोषणिक कमी** (Lack of Nutrition)—यह जानते हुए भी कि मानसिक एव शारीरिक रूप से सतुलित स्वास्थ्य के लिए पोषण का अत्यधिक महत्त्व है, फिर भी इस दिशा मे कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नही किया गया कि पोषणिक कमियो का मानसिक विकारो व व्यक्तित्व विक्षोभो मे वास्तविक कार्य क्या है ? चिकित्सा की दृष्टि से यह सत्य है कि भोजन मे लोहे की कमी के कारण रक्ताभाव (anaemia) हो जाता है जिसका प्रभाव मानसिक क्रियाओ पर पडता है और उनमे मन्दता आ जाती है । इसी प्रकार कैलशियम की कमी के कारण चिडचिड़ापन, सोडियम

के कारण प्रलाप (delirium) व मनोविक्षिप्तता उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार शर्करा (sugar) की कमी के कारण व्यक्ति मे चिडचिडापन, अनिश्चितता व उत्साह-हीनता आ जाती है तथा इसमे अधिकता आ जाने से जडिमा (stupor), निश्चेतना (coma) व आक्षेप (convulsion) आने लगते है।

(ii) **विटामिन की कमी** (Lack of Vitamins)—सन्तुलित भोजन का अभाव, दोषपूर्ण विटामिन सचयन, प्रतिबल (stress) के कारण विटामिनो का अधिक व्यय आदि ऐसे कारण है जिनके फलस्वरूप शरीर मे विटामिन की कमी हो जाती है। व्यवहार विकारो (behaviour disorders) मे B-समूह के विटामिनो का सर्वाधिक उपयोग होता है। B_1 या थियासिन की कमी हो जाने से तात्रिकी परिवर्तन व परिवहन लक्षण (circulatory systems) उत्पन्न हो जाते है। थियासिन की कमी के कारण व्यक्ति मे ऐसे लक्षण उत्पन्न हो जाते है जो मनस्तापी प्रतिक्रिया मे सम्बन्धित लक्षणो से मिलते-जुलते है।

विटामिन B_2 या रिबोफ्लेविन (riboflavin) की कमी से व्यक्ति के शरीर मे पीडा, सिर-दर्द, चक्कर आना, विस्मरण, अनिद्रा, निराशा आदि लक्षण विकसित हो जाते है। इस विटामिन की अत्यधिक न्यूनता से स्मृति-शक्ति ह्रास होती है। विटामिन B_6 ग्रुप का तन्त्रिकातन्त्र (Nervous system) मे काफी उपयोग है। इसकी कमी से मस्तिष्क मे सैरोटोनिन (serotonin) की मात्रा कम हो जाती है। B-समूह मे एक पदार्थ नियासिन (nicotinamide nicotine acid) भी सम्मिलित होता है जिसकी कमी से त्वचाविकार, जिह्वा की सूजन व जठरान्त्र (gastro-intestinal) आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है। इसकी कमी होने के फलस्वरूप व्यक्ति मे भय, निराशा, अनिद्रा, चिड़चिडापन, चिन्ता, सिर-पीडा आदि लक्षण उत्पन्न होते है।

विटामिन C (ascorbic acid) का सम्वन्ध अन्त स्रावी ग्रन्थियो से होता है, जिसका अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार व व्यक्तित्व पर पडता है। विटामिन E का प्रभाव व्यक्ति की गति-क्रिया (motor function) व मनोवैज्ञानिक क्रिया पर पडता है। इस प्रकार विटामिनो की कमी से अनेक शारीरिक व मनोवैज्ञानिक लक्षण उत्पन्न होते हैं, जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानसिक विकारो को प्रभावित करते है।

4. मस्तिष्क हानि (Brain Damage)

अगर किसी भी प्रकार से मस्तिष्क को हानि पहुँच जावे तो यह क्षति अनेक प्रकार के व्यक्तित्व विक्षोभ के कारण वन जाते हैं। मस्तिष्क को भौतिक हानि अनेक कारणो से होती है —

(1) **संक्रमण** (Infection)—मस्तिष्क को सक्रमण का प्रभाव दो प्रकार से होता है—मुख्य व गौण रूप से। जव तन्त्रिकातन्त्र (nervous system) मे प्रत्यक्ष रूप से रोग के सूक्ष्म जीव कार्य करने लगते हैं। गौण सक्रमण उत्पन्न होने के प्रमुख

कारण, शरीर ताप की वृद्धि, जल सन्तुलन बिगडना, ऑक्सीजन का त्रुटिपूर्ण व्यय आदि। इन दोनो प्रकार के सक्रमण का प्रभाव मस्तिष्क पर पडता है, जिसके कारण अनेक आंगिक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं, फलत तन्त्रिकातन्त्र प्रभावित होता है तथा इसी के फलस्वरूप अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। सक्रमण के कार्य का स्पष्ट उदाहरण मनोविकृतविज्ञान मे उस समय मिलता है जिस समय हम उपदंश (syphilis) के सम्बन्ध मे विचार करते हैं।

(2) विषैली स्थितियाँ (Toxic Conditions)—विषैली स्थितियो मे तात्पर्य उन स्थितियो से है, जिनका कारण नशीले पेय व विषैले पदार्थों के सेवन से होता है। इनका प्रभाव व्यक्ति के नाडी-सस्थान पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त इनमे कुछ उद्दीपक मनोवैज्ञानिक होते है, जिसके कारण अनेक मनोवैज्ञानिक लक्षण उत्पन्न हो जाते है, जैसे—कोमल भावनाओ मे मन्दता आना, जीवन की चिन्ताएँ कम हो जाना, जिह्वा का शिथिल होना। क्योकि विषैले पदार्थों का प्रभाव चेतक व अधश्चेतक (thalamus and hypothalamus) पर पडता है। अत सवेगात्मक व्यवहार व निद्रा भी प्रभावित होती है।

(3) मस्तिष्क-क्षति (Brains Injury)—सिर या मस्तिष्क मे क्षति पहुँचने पर व्यक्ति की अनेक मानसिक क्रियाएँ एव तन्त्रिकातन्त्र प्रभावित होता है। उसकी चेतना शक्ति दुर्बल हो जाती है, मस्तिष्क के अधिक क्षतिग्रस्त होने से रोगी को भ्रमो, दृष्टि तथा श्रवण सम्बन्धी विकृतियाँ, विभिन्न प्रकार की वाणी असगतिता (speech disorders) उत्पन्न हो जाती है।

(4) मस्तिष्क-रसौलियाँ (Brain-tumors)—प्राय मस्तिष्क रसौलियाँ चालीस या पचास वर्ष की उम्र मे अधिक होती हैं। यह शरीर मे एक प्रकार की नवीन वृद्धि होती है तथा व्यक्ति मे इसके फलस्वरूप अनेक मनोवैज्ञानिक लक्षण, यथा—आक्षेप, स्मृति-ह्रास, भ्रम तथा प्रलाप (delirium) आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

शारीरिक प्रतिबल
(Physical Stress)

शारीरिक प्रतिबल का मानसिक बीमारी व व्यक्तित्व विक्षोभ मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण कार्य मॉन्ट्रियल विश्वविद्यालय के हंस सैले (Hans Selye, 1907) ने किया। सैले ने प्रतिबल सिद्धान्त पर विशेष जोर दिया तथा एक नए प्रत्यय की खोज की, जिसका नाम था—सामान्य अभ्यनुकूलन संलक्षण (General Adaptation Syndrome, *GAS*)। इस प्रत्यय का अर्थ है कि अभिघात (trauma), संक्रमणो, विषैले पदार्थों, भोजन आदि कारकों के रूप में ही बाह्य व आन्तरिक प्रतिबल होते हैं जिनके परिणामस्वरूप अनिश्चित दैहिक प्रतिक्रियाओ के योग को सामान्य अभ्यनुकूल सलक्षण कहते हैं।

इसकी (GAS) 3 अवस्थाएँ होती हैं—

(1) चेतावनी प्रतिक्रिया (Alarm Reaction)

(2) प्रतिरोध की अवस्था (Resistance Stage)
(3) परिश्रान्ति की अवस्था (Exhaustion Stage)

सैले ने यह भी बताया कि किस प्रकार अनेक प्रकार की प्रतिबल स्थितियाँ व्यक्तित्व विघटित लक्षणो मे परिवर्तित हो जाती है।

मनोवैज्ञानिक विकास से सम्बन्धित कारक
(Factors Relating to Psychological Developments)

व्यक्तित्व विकास शनै-शनै होता है। जीवन के प्रारम्भिक काल मे व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अगर व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक विकास दोषपूर्ण हो तो इसके फलस्वरूप अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही है। दोषपूर्ण मनोवैज्ञानिक विकास के फलस्वरूप व्यक्ति मे अपेक्षित परिपक्वता का अभाव तो होता ही है, साथ ही साथ उसमे इस प्रकार की मनोवृत्तियो का भी विकास हो जाता है जो उसके समायोजन पर विशेष प्रभाव डालती है। कोलमैन (Coleman)[1] ने उन कारको का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है जिनसे दोषपूर्ण मनोवैज्ञानिक विकास उत्पन्न होता है —

(i) **प्रारम्भिक वंचितता** (Early Deprivation)—अगर बच्चे को प्रारम्भिक महीनो मे (जन्म के) जैविक या मनोवैज्ञानिक तृप्ति से वचित रखा जावे, तो इसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पडता है। क्योंकि इससे वचित होने के कारण प्राणी के विकास मे बाधा उत्पन्न हो जाती है। प्रारम्भिक वचितता मे निम्न प्रमुख बातें आती है :— (अ) मातृत्व प्रेम से वचित करना, (ब) सामान्य पर्यावरण से वचित करना।

(ii) **विकृत पारिवारिक स्थिति** (Pathogenic Family Situations)— शिशु जैसे-जैसे बाल्यावस्था की ओर अग्रसर होता है वैसे-वैसे ही उसके सम्मुख शारीरिक, सामाजिक, सास्कृतिक पर्यावरण सम्बन्धी परिस्थितियाँ उपस्थित होती है। उसका सम्पर्क क्षेत्र बढता है तथा उसके व्यक्तित्व के विकास पर परिवार के अलावा अन्य लोगो का भी प्रभाव पडने लगता है। इस समय अगर बालक के ऊपर माँ-बाप ने ठीक प्रकार से नियन्त्रित व सन्तुलित देखभाल न रक्खी तो उसका स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो जावेगा। निम्न पारिवारिक स्थितियाँ ऐसी होती है जो दोषपूर्ण होती हैं तथा उनसे बालक के विकास पर काफी महत्त्वपूर्ण व प्रभावकारी ढग से प्रभाव पडता है :—

(अ) माँ-बाप या सरक्षक द्वारा तिरस्कार (Rejection),
(ब) बच्चे का अतिसरक्षण (Over-protection),
(स) दोषपूर्ण अनुशासन (Faulty discipline),
(द) अत्यधिक उच्च नैतिक स्तर (High moral standard),
(य) माँ-बाप की बच्चे के प्रति पूर्णतावादी चाह (Perfectionistic demands towards the child),

1. Coleman · *Abnormal Psychology and Modern Life*, p. 129.

(र) माँ-बाप के मध्य पारस्परिक प्रेम का अभाव,
(ल) भग्न परिवार (Broken homes),
(व) अनैतिक आदर्श (Immoral Standard),
(स) भाई-बहिनो के मध्य प्रतिद्वन्द्विता (Sibling rivalry)।

(iii) **प्रारम्भिक मानसिक आघात (Early Psychic Traumas)**—कभी-कभी बाल्यावस्था मे व्यक्ति के जीवन मे ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं जिनसे उत्पन्न आघात को वह सम्पूर्ण जीवन तक भुला नही पाता। इस प्रकार के आघातो से तात्कालिक व्यवहार तो प्रभावित होता ही है परन्तु साथ ही भावी जीवन पर भी प्रभाव पडता है। इन आघातो के फलस्वरूप व्यक्ति का पर्यावरण या आत्म-मूल्याकन दोषपूर्ण हो जाता है। वह इनके प्रभावो के अनुरूप ही व्यवहार करता है।

(iv) **किशोरावस्था के लिए अनुपयुक्त तैयारी (Inadequate Preparation for Adolescence)**—बाल्यावस्था मे बालक के सामने किसी भी प्रकार का सामाजिक बन्धन नही होता है, परन्तु किशोरावस्था के आगमन के साथ ही साथ उन पर अनेक बन्धन लगा दिये जाते हैं। एक तरफ तो उनके अन्दर शारीरिक विकास द्रुत गति से होता है और दूसरी ओर उन पर नियन्त्रण लगाया जाता है, विशेष रूपसे लड़कियो पर, जिसके फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक रूप से उसका झुकाव गलत प्रवृत्तियो की ओर उन्मुख हो जाता है। भारत मे यौन-शिक्षा (sex-education) का कोई प्रबन्ध न होने के कारण विशेष रूप से अनेक मानसिक रोगो का जन्म हो जाता है। अक्सर यह देखा गया है कि इस अवस्था मे व्यक्तियो का समायोजन असन्तुलित हो जाता है।

(v) **चिन्ता (Anxiety)**—चिन्ता, प्राय सभी मानसिक बीमारियो के जड मे होती है। साधारण मानसिक रोगो के जन्म मे तो यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अनेक ऐसे कारण हैं जो मानव को चिन्तित बनाते है, जैसे—आर्थिक परेशानी, निष्फल प्रेम, नौकरी का न मिलना या छूट जाना, प्रियजनो की मृत्यु, पारिवारिक क्लेश, सवेगात्मक आघात आदि। चिन्ता व्यक्ति को मानसिक एव शारीरिक रूप से निर्बल बनाती है तथा शनै -शनै ऐसे लक्षणो का जन्म व विकास होने लगता है जिससे व्यक्तित्व के विघटन को रोका जा सके। उसमे चिन्ता के कारण विभिन्न प्रकार की शक्तियो मे ह्रास हो जाता है जिससे कि पर्यावरण के साथ किन्ही कारणो से समायोजन स्थापित नही कर पाता। धीरे-धीरे सामान्य चिन्ता असामान्य चिन्ता का रूप ले लेती है अर्थात बिना किसी कारण से वह चिन्तित रहता है तथा विभिन्न प्रकार के आवेगात्मक व्यवहार प्रकट करता है।

(vi) **सवेगात्मक स्थिति (Emotional Stage)**—मानव की इच्छाएँ या आवश्यकताएँ अनन्त होती हैं परन्तु इन सबकी पूर्ति मे उसे विविध प्रकार की बाधाओ का सामना करना पडता है जिससे उसे कभी-कभी असफलता का अनुभव होता है। इस प्रकार की विफलताओ से आगे चलकर अनेक प्रकार की कुण्ठाओ का जन्म होता है। कुण्ठित मन मे ही हीनताभाव, असन्तोष तनाव और सवेगात्मक सन्तुलन के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं तथा ये सब लक्षण व्यक्ति की असामान्यता को ओर ले जाते हैं।

(vii) अन्य कारक (Other Causes)—मनोवैज्ञानिक विकास मे सम्बन्धित निम्न कारण और भी हो सकते है —(अ) प्रौढावस्था के लिए अपेक्षित योग्यताओ का अभाव, तथा (ब) दोषपूर्ण जीवन-दर्शन ।

सामाजिक विकास से सम्बन्धित कारक
(Factors Relating to Social Development)

व्यक्ति के समायोजन पर वंशानुक्रम के प्रभाव के अतिरिक्त पर्यावरण का भी प्रभाव पडता है । पर्यावरण से सम्बन्धित कारको के एक भाग को हम मनोवैज्ञानिक विकास से सम्बन्धित कारको के अन्तर्गत वर्णन करेगे । अन्य पर्यावरणगत कारको का सम्बन्ध सामाजिक कारको से होता है ।

अनेक अध्ययनो से यह सिद्ध हो गया है कि सास्कृतिक सरचना (cultural structure) का व्यक्तित्व-विकास पर काफी प्रभाव पडता है । प्रमुख समाजशास्त्री अरनेस्ट वर्गीज (1955) का मत है कि दोषपूर्ण सामाजिक कार्य-प्रणाली ही मानसिक रोगो की जननी है । सामाजिक विघटन जितना अधिक होगा उतना अधिक मानसिक रोगो का प्रसार होगा । मीड (Mead) के अनुसार व्यवहार के स्वरूप-निर्धारण में समाजीकरण की प्रक्रिया प्रमुख रूप से सहायक होती है । अगर यह प्रक्रिया ही दोष-पूर्ण है तो व्यवहार विकृत होना स्वाभाविक ही है । भिन्न-भिन्न प्रकार के सास्कृतिक प्रतिमान (cultural patterns) भिन्न-भिन्न प्रकार के मानसिक रोगो को जन्म देते है—ऐसा समाजशास्त्रियो का विचार है । कारोदर्स (Carothers), डेमेरेथ (Demerath), मीड (Mead) आदि विद्वानो का मत है कि सास्कृतिक भिन्नताएँ भी मानसिक विकारो के उत्पन्न होने मे सहायक होती है । मुख्य रूप से सामाजिक कारक निम्न होते है —

(i) पास-पडौस (neighbourhood), (ii) विद्यालय (school), (iii) समुदाय (community), (iv) सस्कृति (culture), (v) सामाजिक तनाव (social tension), (vi) युद्ध (war), (vii) प्रजाति (race), (viii) राष्ट्रीयता (nationality) आदि ।

तीव्र दबावपूर्ण कारक
(Severe Stress Factors)

व्यक्ति के सामने कुछ ऐसी स्थितियाँ आ जाती है जो व्यक्तित्व को असा-मान्यता की ओर ले जाती है । कभी-कभी सगठित व समायोजितपूर्ण व्यक्तित्व वाला व्यक्ति भी इन तीव्र सामाजिक दशाओ को झेल नही पाता तथा भविष्य के लिए असामान्यता की सम्भावना बना लेता है । इन कारको को हम सक्षेप मे निम्न तीन उप-वर्गो मे रखकर अध्ययन करेगे —

(अ) तीव्र दबावपूर्ण जैविक दशाएँ (Severe Biological Stress)

कुछ ऐसी जैविक दशाएँ होती है जो व्यक्ति को असामान्य बनाने का पूर्ण प्रयास करती है । ये मुख्य दशाएँ शारीरिक दीर्घकालिक रोग, खाद्य सामग्री या पोषक तत्त्वो का अभाव, अत्यधिक मद्यपान, अत्यधिक सवेगात्मक तनाव आदि है ।

कभी-कभी व्यक्ति के मस्तिष्क के कोषो को क्षति हो जाने पर भी तीव्र प्रभाव उत्पन्न हो जाता है।

व्यक्ति को जीवित रहने एव विभिन्न समस्याओ के समाधान के लिए आराम व पौष्टिक तत्वो की आवश्यकता होती है क्योकि प्रत्येक क्रिया मे कुछ शक्ति खर्च हो जाती है जिसे इनके माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। अगर व्यक्ति को दीर्घकाल तक विश्राम व पोषक तत्त्व प्राप्त न हो तो व्यक्ति मे विभिन्न प्रकार की असामान्यताओ का जन्म हो जाता है। निरन्तर यही दशा रहने पर व्यक्ति साधारण कठिनाइयो का भी सामना नही कर पाता।

(ब) तीव्र दबावपूर्ण मनोवैज्ञानिक दशाएँ (Severe Psychological Stress)

जीवन का समय सफलता या सुखद अनुभूतियो के साथ ही व्यतीत नही होता बल्कि उसे जीवन मे अनेक नैराश्यो व अन्तर्द्वन्द्वो का भी सामना करना पड़ता है। तीव्र दबावपूर्ण मनोवैज्ञानिक दशाओ मे वे स्थितियाँ आती है जिनसे दोषपूर्ण व्यक्तित्व वाले व्यक्ति असामान्यता के शिकार हो जाते हैं या सापेक्षिक रूप से सगठित व्यक्ति भावी जीवन मे असामान्यता की आशका से ग्रस्त हो जाता है।

व्यक्ति की प्रमुख मनोवैज्ञानिक आवश्यकता उपयुक्तता (adequacy) व आत्म-सम्मान (self-esteem) है। व्यक्ति का अहम् (ego) इनकी पूर्ति करने का यथासम्भव प्रयास करता है। परन्तु असफलताएँ, हानियाँ, अपराध-भाव (guilt-feeling) उत्पन्न करने वाली ऐसी प्रमुख स्थितियाँ जो व्यक्ति की इन प्रमुख मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ को प्रभावित करती है तथा उसमे आत्म-अवमूल्यन उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त प्रमुख अन्तर्द्वन्द्व, प्रमुख सामाजिक, राजनैतिक व व्यक्तिगत दबाव आदि भी ऐसी तीव्र मनोवैज्ञानिक दशाएँ है जो असामान्यता उत्पन्न होने का कारण बन जाती है।

(स) तीव्र दबावपूर्ण सामाजिक दशाएँ (Severe Sociological Stress)

प्रत्येक समाज मे कुछ ऐसी प्रथाएँ सामाजिक या सास्कृतिक मान्यताएँ विद्यमान या उत्पन्न हो जाती है जिनका सामना प्रत्येक व्यक्ति नही कर पाता क्योकि उनको सहन करने के लिए पर्याप्त रूप से समायोजित व सगठित व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। ये सामाजिक स्थितियाँ मुख्य रूप से युद्ध या युद्ध की आशका, तीव्र आर्थिक परिवर्तन, बेरोजगारी, पक्षपात, तीव्र आपसी भेदभाव आदि स्थितियाँ हैं। भारत की स्थिति आज अधिक भयावह हो गई है। पाकिस्तान व चीन उसके स्थायी रूप से शत्रु बने हैं। आर्थिक स्तर निम्न होता जा रहा है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण व्याप्त बेकारी व बेरोजगारी है। यद्यपि आज भारत मे अन्य देशो की अपेक्षा मानसिक विकृतियाँ कम हैं परन्तु अगर नागरिको ने इन प्रमुख सामाजिक कुरीतियो व समस्याओ का समाधान नही निकाला तो सम्भावना है कि भारत भी मानसिक विकृतियो का एक केन्द्र बन जायेगा।

8

असामान्य व्यवहार के लक्षण-ज्ञान
[SYMPTOMATOLOGY OF ABNORMAL BEHAVIOUR]

लक्षण व संलक्षण
(Symptoms and Syndroms)

आधुनिक अध्ययनो से यह पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुका है कि व्यवहार विकृतियाँ, चाहे वे पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक ही हो, उनका आधार मनोवैज्ञानिक व शारीरिक (Physical) होता है । अन्य शब्दो मे, मानसिक व शारीरिक रोग आपस मे सम्बद्ध होते है । चिकित्सा-विज्ञान के परिणामो से यह बात और भी सिद्ध हो जाती है कि शारीरिक बीमारियो का कारण कभी शारीरिक न होकर मनोवैज्ञानिक भी होता है तथा कभी-कभी मनोवैज्ञानिक बीमारियो का कारण शारीरिक होता है । व्यवहार इस प्रकार मनोदैहिक है क्योकि मन व शरीर (mind and body), दोनो आपस मे सम्बद्ध है । व्यवहार के इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने से लक्षण के नये स्वरूप पर प्रकाश पडता है ।

"लक्षण बीमारी का आधार है । स्वयं मे ही यह असमायोजित व्यवहार है ।"[1] पेट या अन्य दर्द, ऑख का दर्द, स्नायुविक क्रियाओ मे किसी प्रकार की क्षति, श्रवण दृष्टि आदि मे क्षति, पाचन दोष, नीद आदि की कमी लक्षण (symptoms) कहलाते है । इसी प्रकार अतार्किक विश्वास, भय, सवेगात्मक सन्तुलन आदि भी लक्षण है । दैनिक जीवन मे हमे लक्षणो के सम्बन्ध मे अनेक उदाहरण दिखाई पड़ते है, जिनका उपयोग मुख्यत हम यह लगाते हैं कि लक्षण बीमारी है, इनका हमे उपचार करना चाहिए, जैसे—बुखार आने पर हम दवा का उपयोग इस उद्देश्य से करते है कि

1. "A symptom is a surface sickness It is the maladjusted behaviour itself."—**Brown, J F.** *Ibid*, p 71.

बुखार कम हो जावे । प्राचीन समय मे लक्षणो को ही रोग मान लिया जाता था। आज भी हम इसका उपयोग कभी-कभी इसी अर्थ मे करते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि मे इस प्रकार की प्रारम्भिक मनश्चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को इतना शक्तिशाली बनाना है कि वह अतार्किक भय, गलत विश्वासो व अनुपयुक्त सवेगात्मक प्रतिक्रियाओ को ठीक प्रकार से समझ सके। आज भी चिकित्सा की अनेक शाखाओ का मुख्य उद्देश्य केवल लक्षणो का ही उपचार करना होता है। क्योकि कभी-कभी व्यक्ति लक्षणो को ठीक प्रकार से पहचान नही पाता तथा रोगी न होते हुए भी रोगी बन जाता है। यही कारण है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लक्षणो का अध्ययन करने का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को लक्षणो से परिचय कराना होता है। इससे केवल अनेक शारीरिक विकृतियो को ही दूर करना सम्भव नही बल्कि मानसिक विकृतियो मे भी बिना मनो-गतिक प्रक्रियाओ को प्रभावित किये अतार्किक भयो, मिथ्या-विश्वासो और अनुपयुक्त सवेगात्मक प्रतिक्रियाओ को सुझावो (suggestions) व सम्मोहन (hypnosis) के द्वारा दूर किया जा सकता है।[1]

शाब्दिक रूप से लक्षणो का अर्थ चिह्न (sign) होता है। आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र मे लक्षण को एक 'बीमार व्यक्तित्व' (*Sick Personality*) के रूप मे देखा जाता है तथा उसको दूर करने का प्रयास किया जाता है। परन्तु वास्तविक उद्देश्य तो उसका गतिक चिकित्सा (dynamic or casual cure) करने का होता है। स्मरण रहे कि लक्षणगत चिकित्सा मे चिकित्सा का उद्देश्य लक्षण को दूर करना मात्र ही होता है जबकि गतिक चिकित्सा मे रोग के मूल असमायोजन को दूर करने का उद्देश्य निहित होता है।

प्रो० रोजेन व ग्रेगरी के अनुसार, **"एक लक्षण प्रकृति की आत्मगत या वस्तु-गत अभिव्यक्ति है। आत्मगत लक्षण रोगी द्वारा की गई शिकायतें ... वस्तुगत लक्षण प्रायः रोगी के व्यवहार के रूप मे व्यक्त होती हैं।"**[2] आत्मगत लक्षण के प्रमुख उदाहरण थकान, डरावने स्वप्न आदि हैं तथा वस्तुगत लक्षण जो रोगी के व्यवहार मे दिखाई पड़ते हैं, उसके प्रमुख उदाहरण स्मृति का दोषपूर्ण हो जाना,

---

1. "Even in the sphere of the mental disorders many unreasoned fears and false beliefs and inappropriate emotional reactions may be helped by deep suggestion and hypnosis without really influencing the underlying psychodynamic processes."
—Brown, J. F. *Ibid*, p 72.

2. "A symptom is a subjective or objective manifestation of a disorder : Subjective symptoms are complaints... ..objective symptoms are usually revealed in the patient's behaviour... .."
—Rosen, E and Gregory I. . *Abnormal Psychology*, p 35

सवेगो मे असामान्यता, हाथ या पैर में लकवा मार जाना । इस प्रकार के लक्षण रोग की अन्तर्निहित कारणो की साकेतिक अभिव्यक्ति है ।

थार्प व कैट्ज (Thorpe and Katz) के अनुसार, "मानसिक लक्षण, विकृति व कुसमायोजन के चिह्न होते है । इनका अध्ययन किया जाना चाहिए जिससे कि उनकी उपस्थिति के कारणो का पता लग जावे । वे विकार नही होते जिनका नाम रखा जावे तथा उपचार किया जावे ।"

हट व गिब्बी (Hutt and Gibby) ने अपनी पुस्तक '*Patterns of Abnormal Behaviour*' मे बताया कि लक्षण इस प्रकृति की ओर सकेत करते है कि व्यक्ति किसी न किसी प्रकार से विक्षुब्ध है । यह सम्भव है कि दो व्यक्तियो मे एक समान प्रकार के लक्षण हो परन्तु उनके कारणो मे अन्तर हो सकता है । इसी प्रकार दो व्यक्ति भिन्न प्रकार के लक्षणो को बता सकते है परन्तु उन लक्षणो का एक ही कारण हो सकता है । इसका तात्पर्य यह है कि अध स्थ व्यक्तित्व विक्षोभो को ठीक किये बिना ही लक्षणो को दूर किया जा सकता है किन्तु इस प्रकार के लक्षणो को दूर करने से व्यक्ति को लाभ नही पहुँचता ।

हेण्डरसन व बैचेलर (Handerson and Batchelor) के अनुसार, अगर मनोरोगचिकित्सक लक्षणो का ध्यान न रखकर रोगो का अध्ययन करता है या वह यह नही जानता कि लक्षण रोगी के लिए कितने अर्थपूर्ण है, तो वह उपस्थित लक्षणो को दूर करने मे असमर्थ रहेगा ।

किसी भी बीमारी का कोई अकेला चिह्न प्रकट होने को लक्षण कहते है, परन्तु प्राय कोई लक्षण अकेला प्रकट होता नही है । लक्षण अच्छी तरह से सगठित समूह मे प्रकट होते है । कुछ लक्षण प्रकट हो जाते है तो कुछ लक्षण अप्रकट ही रह जाते है । लक्षण ग्रन्थियो को ही सलक्षण (syndroms) या लक्षण समिष्ट कहते है ।[1] इस प्रकार किसी भी असामान्यता का केवल एक लक्षण ही दृष्टिगोचर नही होता है बल्कि अनेक लक्षण एक साथ व्यवस्थित रूप मे विकसित या दृष्टिगोचर होते है । जैसा कि हम बता चुके है कि प्रारम्भ मे लक्षण को ही रोग मान लिया जाता था, चिह्न नही माना जाता है । दूसरे शब्दो मे, प्रारम्भ मे रोग के गतिक पक्षो (dynamic aspects) पर ध्यान नही दिया जाता था । लेकिन आज प्रत्येक लक्षण के गतिक पक्ष की खोज की जाती है । आधुनिक मनोविकृति-विज्ञान स्वय लक्षण का अध्ययन न करके उसके अन्तर्निहित (underlying) गतिक परिस्थितियो का अध्ययन करता है ।

दृश्य रूप बनाम आनुवंशिक रूप
(Phenotype *Vs.* Genotype)

विज्ञान की विधियो के सम्बन्ध मे जो नवीन शोधे हुई है, उनसे यह पता चलता है कि विज्ञान प्रकृति (nature) की दो भिन्न स्तरो पर व्याख्या करता है ।

---

1. "Symptoms complexes which hang together are known as disease entities or syndroms." —**Brown, J F.** *Ibid*, p. 74.

पहला स्तर—व्याख्यात्मक वर्गीकरण (Descriptive classification) का है जिनमे घटनाओ की उसी रूप मे व्याख्या की जाती है जिस रूप मे वे घटित होती हैं। इस प्रकार के स्तर से प्राप्त प्रदत्तो को दृश्य रूप (phenotype) प्रकृति का प्रदत्त कहते हे। अन्य शब्दो मे, दृश्य रूप प्रकार मे घटनाओ या वस्तुओ को व्याख्यात्मक रूप से अध्ययन करके प्रदत्त एकत्रित करते हैं।

दूसरा स्तर—गतिक व्यवस्थापन (Dynamic systematization) का है जिसमे सैद्धान्तिक रचनाओ का उपयोग करके घटनाओ मे अन्तर्निहित सामयिक शृखलाओ की खोज की जाती है। व्याख्या के इस स्तर को आनुवशिकीय भापा (genotypical language) कहकर पुकारा जाता है। आनुवशिकीय भाषा से विज्ञान की व्याख्या करने से एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह होता है कि एक आनुवशिक से अनेक दृश्य रूपो की व्याख्या की जा सकती है। आधुनिक मनोविकृति विज्ञान भी लक्षणो को इसी रूप मे देखता है। इस दृष्टि मे "लक्षण अन्तर्निहित आनुवशिक या समजातीय प्रक्रियाओ मे व्यक्त दृश्य रूपीय या गुरुलोप लक्षण चिन्ह है।"[1]

इस प्रकार लक्षणो के सम्वन्ध मे आधुनिक विचार अधिक गतिशील दिखाई पडते है। इस सम्वन्ध मे आधुनिक सिद्धान्त से पूर्व ग्रीक व लैटिन के शब्दो मे व्यक्त हुआ था। आज भी हम लक्षणो के नामकरण को ग्रीक व लैटिन उपसर्गो व सज्ञाओ के अनुसार अध्ययन करते है।

विज्ञान के कुछ उदाहरणो के माध्यम से हम दृश्य-रूप (phenotype) व आनुवशिक रूप (gentyope) के अर्थ को समझा सकते है। विज्ञान के अन्तर्गत वे प्रत्येक वस्तु जो ऊपर से नीचे की ओर गिरती है, उन्हे वर्णनात्मक वर्गीकरण के अन्तर्गत रखा जाता है क्योकि इनका सचालन एक ही सिद्धान्त के द्वारा होता है। इस प्रकार की वस्तुओ को दृश्य रूप या समलक्षणी (phenotype) कहते हैं। इस सिद्धान्त की एक समीकरण के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

$$S=gt^2/2$$

आनुवशिक या गत्यात्मक रूप मे गुरुत्वाकर्पण से सम्वन्धित क्षेत्र आता है। सरल शब्दो मे, भौतिकशास्त्र के अन्तर्गत ऊपर से नीचे गिरने वाली वस्तुएँ आती हैं जवकि गुरुत्वाकर्पण की शक्ति को दृश्य रूप या गतिशील स्तर मे रखा जाता है।

मनोविकृतविज्ञान के अन्तर्गत लक्षणात्मक वर्णन (symptomatic description) को दृश्यरूपी तथा मौलिक मनोगत्यात्मक-विज्ञान (underlying psychodynamics) के वर्णन को आनुवशिकी या गतिशील या समजीवी मे रखा जाता है। अन्य शब्दो के, किसी मानसिक वीमारी के लक्षण को दृश्यरूपी (phenotype) तथा

1 "The symptom is the phenotypical sign of an underlying genotypical process."—Brown, J F. : *Ibid*, p 82.

उसके कारणो को आनुवशिकी के अध्ययन-क्षेत्र मे रखा जाता है अर्थात् दोनो का ही मानसिक बीमारियो मे महत्त्व व अस्तित्व है।

इस प्रकार सक्षेप मे हम कह सकते है कि दृश्यरूप (phenotype) का सम्बन्ध विज्ञान के उस स्तर से है जहाँ एक समान लक्षणो के आधार पर वस्तुओ या घटनाओ का वर्गीकरण किया जाता है तथा आनुवशिक रूप (genotype) से तात्पर्य है—एक समान गतिशीलता व कारणो के आधार पर वस्तुओ व घटनयो का वर्गीकरण करना।

लक्षणों के कारण, सार्थकता व मितव्ययता

(Cause Meaning and Economy of Symptoms)

प्रत्येक लक्षण मे एक कारण, सार्थकता व मितव्ययता निहित रहती है। दूसरे शब्दो मे, देखने मे कोई लक्षण असगत, अतार्किक या निरर्थक प्रतीत क्यो न हो, विश्लेषण करने पर यह पूर्णत सिद्ध हो जाता है कि लक्षण सकारण, अर्थयुक्त तथा रोगी के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। जब लक्षण को केवल 'चिह्न' के रूप मे न देखकर बीमारी की दृष्टि से देखा जाता है तो उसमे अन्तर्निहित गतिक पक्षो का पता लगता है। आज प्रत्येक लक्षण के अन्तर्निहित गतिक पक्ष की अवश्य ही खोज की जाती है। लक्षणो की केवल व्याख्या करने से कभी भी उसकी सार्थकता व मितव्ययता का पता नही चल सकता। जब लक्षण मे अन्तर्निहित कारणो का अध्ययन किया जाता है तब यह ज्ञात होता है कि लक्षण सदैव अर्थपूर्ण होते है, रोगी को सदैव उससे लाभ पहुँचता है। अन्य शब्दो मे, जब रोगी किसी लक्षण से ग्रस्त होता है तो उसका कोई न कोई विशेष कारण अवश्य होता है। उसके जीवन मे उन लक्षणो की सार्थकता व महत्त्व अवश्य होता है, वह इनके माध्यम से जीवन-धारण करने तथा समायोजन या सन्तुलन करने मे सहायता प्राप्त करता है। क्योकि लक्षण अचेतन आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने मे समर्थ होते है। अत इनका और भी महत्त्व रोगी के जीवन मे होता है। सक्षेप मे, ब्राउन के शब्दो मे—

"All symptoms have a cause (in psychic conflict), a significance or meaning (in that they satisfy some unconscious need), and an economy (in that they cause such resolution of the conflict as the total situation allows.)"

लक्षण के कारण, सार्थकता व मितव्ययता को पूर्ण रूप से समझने के लिए हम दो उदाहरणो का सहारा लेंगे। उदाहरण देने से पूर्व हम यह बताना आवश्यक समझते है कि मनोविज्ञान मे दृश्य रूप व आनुवशिक रूप (phenotype and genotype) के विचारो का विकास लेविन (Lewin 1935-36) ने किया तथा इस विचार को कि लक्षण के कारण, सार्थकता व मितव्ययता अन्तर्निहित होती है, विकास व प्रारम्भ करने मे फ्रायड (Freud) का मुख्य योगदान रहा है।

रूपान्तरित क्षोभोन्माद का एक उदाहरण
(An Example of Conversion Hysteria)

एक युवती ने अपने चिकित्सक को बताया कि उसकी दाहिनी जाँघ शून्य हो गई है अर्थात् उसकी जाँघ में अनुभव शक्ति समाप्त हो गई है। तांत्रिक परीक्षा (neurological examination) से यह ज्ञात हुआ कि उसकी इस शून्यता में कोई शारीरिक कारणों का हाथ नहीं था। यह केस रूपान्तरित क्षोभोन्माद (conversion hysteria) का था। जब उस युवती से प्रथम बार साक्षात्कार किया गया तो उसने यह बताया कि एक माह पूर्व अपने पिताजी की मृत्यु के कारण उसने स्नायुविक आघात (nervous shock) का अनुभव किया था। उसने यह भी बताया कि वह अपने पिता से बहुत अधिक प्यार करती थी। पारिवारिक आर्थिक कठिनाइयों के कारण अन्तिम दिनों में उसने स्वयं ही पिता की सेवा की थी। उसके लिए पिता की मृत्यु एक बहुत बड़ी दुःखपूर्ण घटना थी। उसने यह भी बताया कि पिता के दाह-संस्कार के बाद वह बहुत ही दुखित थी तथा उसी समय ही शून्य-संवेदनशीलता (loss of sensitivity) का अनुभव हुआ था। जब उससे पिता की चिकित्सा के समय की बातों के बारे में पूछा गया तो वह विशेष बातों का स्मरण करने में असमर्थ रही।

सम्मोहन (hypnosis) के द्वारा पिता के अन्तिम दिनों में घटित घटनाक्रम को जानने का प्रयास किया गया। इससे ज्ञात हुआ कि पिता की चिकित्सा के दौरान एक युवक डाक्टर को, जो उसके पिता की चिकित्सा कर रहा था, वह प्रेम करने लगी थी। उसमें उस डाक्टर के साथ लैंगिक इच्छाएँ (sexual desires) स्थापित करने की इच्छा भी जागरूक हो उठी थी। एक दिन जब पिता को रोग-शैय्या पर चिकित्सा के लिए दोनों झुक रहे थे तो उस युवती की दाहिनी जाँघ डाक्टर के शरीर से स्पर्श हो गई जिससे कि उसकी यौन-इच्छा और भी प्रबल हो गई। इस घटना से वह बहुत ही चिन्तित-सी रहने लगी तथा उसके मन में तीव्र संघर्ष होने लगा। अन्त में उस युवती ने यह संकल्प किया कि भविष्य में वह ऐसा न सोचेगी तथा पिता की सेवा में ध्यान लगावेगी। सम्मोहन अवस्था में उस युवती ने यह भी बताया कि इस प्रकार की बात पुनः नहीं होनी चाहिए।

इस ज्ञान के आधार पर आधुनिक मनोविकृति-विज्ञान लक्षण के कारण, सार्थकता व मितव्ययता की आसानी से व्याख्या कर सकता है। युवती के सम्मुख अन्तर्द्वन्द्व परिस्थिति यह थी कि वह पिता के प्रति प्रेम व कर्तव्य का पालन करे या डाक्टर के प्रति प्रेम सम्बन्ध स्थापित करे। उसकी ये दोनों इच्छाएँ एक-दूसरे के विपरीत थीं जिसके परिणामस्वरूप द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। युवती की आंगिक शून्यता सम्बन्धी लक्षण का कारण द्वन्द्व परिस्थिति थी। द्वन्द्व की स्थिति में वह चिन्तित रहने लगी। उसकी चिन्ता दुःखद थी जिससे मुक्त होने के लिए उसने डाक्टर को भुला दिया। परन्तु उसने जो दमन (repression) डाक्टर के प्रेम का किया था, वह समाप्त नहीं हुआ बल्कि दूसरे रूप में रूपान्तरित हो गया। इस

रूपान्तरित रूप का उसके व्यक्तित्व के लिए बहुत अधिक महत्त्व व सार्थकता थी। अगर ऐसा नहीं होता तो वह सदैव चिन्तित तथा दोषाभाव से पीड़ित रहती तथा जीवन-धारण करना मुश्किल हो जाता। अत यहाँ यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि युवती की जाँघ की शून्यता के लक्षण मे कारण, सार्थकता व मितव्ययता निहित थे। सार्थकता के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि अगर युवती की जाँघ पहले शून्य होती तो डाक्टर के स्पर्श से कामोत्तेजित नहीं होती। अतः उसकी वर्तमान जाँघ-शून्यता संघर्षात्मक परिस्थिति की अस्वीकृति का बोध कराती है तथा पिता की मृत्यु से उत्पन्न उदासी के अनुरूप भी है। इसी प्रकार इस लक्षण के विकसित होने से सामाजिक महत्त्व भी बढ़ जाता है तथा उसे मानसिक चिन्ता से भी छुटकारा प्राप्त हो जाता है। अचेतन रूप से इस मानसिक संघर्ष से छुटकारा पाने के लिए उसने शारीरिक लक्षण को विकसित किया। इस प्रकार यह पूर्णत. स्पष्ट हो जाता है कि लक्षण का कारण, अर्थ व महत्त्व होता है।

जलधारा दुर्भीत का एक उदाहरण
(An Example of a Phobia for Running Water)

ब्राउन (Brown) ने अपनी पुस्तक मे इस सम्बन्ध में एक युवती का उदाहरण दिया है, जो एक अच्छे परिवार से सम्बन्धित थी तथा शैशवावस्था में जलधारा दुर्भीत (phobia for running water) विकृति से ग्रस्त हो गयी थी। वह अपनी इस विकृति के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बता पाती थी। वह पानी के प्रवाह की आवाज को सुनकर डर जाती थी, जैसे—जब वह छोटी थी तब यह आवश्यक होता था कि जब घर से दूर हो तब नहाने के टब को भरा जाय तथा उसे सन्तोषजनक रूप से नहलाने के लिए घर के तीन सदस्यो की आवश्यकता होती थी क्योंकि वह सदैव नहाने से घबड़ाती थी तथा स्नान करते समय बड़े ही आक्रोशपूर्ण व्यवहार का प्रदर्शन करती थी। इसी प्रकार जब वह ट्रेन में सफर करती थी तो यह आवश्यक था कि सभी खिडकियो को बन्द कर दिया जाय जिससे कि जब ट्रेन पुल से गुजरे तो जल-धारा की आवाज उसके कानों तक न पहुँच पावे। इस प्रकार वह इस विकृति मे अत्यन्त दु:खित रहती थी।

जब वह 20 वर्ष की युवती हो गई तब एक दिन उसकी मौसी घर आई। मौसी ने 13 वर्ष की अवधि से (जब से वह दुर्भीतिग्रस्त हुई) उसको (केस) नहीं देखा था। स्टेशन पर उसे यह ज्ञात हो गया था कि बेटी को कौन-सी विकृति है। घर पहुँचते ही मौसी के सामने जब युवती मिली तो उसने शीघ्रता के साथ कहा, "मैंने कभी भी नहीं बताया था।" इस वाक्य से युवती को उस पूर्व दशा के प्रत्यावाहन करने मे काफी सफलता प्राप्त हुई जिससे कि उसकी जलधारा दुर्भीत भय सर्वप्रथम स्थापित हुआ था। युवती ने अपने स्मरण के आधार पर उस घटना-विशेष का जिक्र किया जिसके कारण वह जलधारा दुर्भीत विकृति से ग्रस्त हुई थी।

जब वह छोटी लडकी थी तब वह अपनी माँ व मौसी के साथ पिकनिक पर गई। दोपहर के समय उसकी माँ ने घर वापस लौटने का निर्णय लिया परन्तु लडकी ने यह अनुमति प्राप्त कर ली कि जब तक उसकी मौसी यहाँ रहे तब तक वह भी वहाँ रहे। माँ ने उसे अनुमति इस शर्त पर दे दी कि वह मौसी की आज्ञाओ का पालन करेगी। परन्तु माँ के जाने के बाद उसने इस समझौते को भंग कर दिया तथा अकेले घूमने चली गई। बाद मे जब उसे ढूँढा गया तो वह एक छोटे से झरने मे गिरी मिली। वह बुरी तरह काँप रही थी। उसे शीघ्र ही एक किसान के घर ले जाया गया जहाँ उसके कपड़े सुखाये गये। परन्तु इसके बाद भी वह चुप नही हुई। क्योंकि उसको डर था कि उसने माँ की आज्ञा का उल्लघन किया है। बाद मे मौसी ने उसे यह सात्वना दे दी कि वह इस बात को कभी भी किसी से नही कहेगी। इस वायदे के करने के बाद ही वह घर लौट पाई। उसकी मौसी घर से दूसरे दिन सुबह उस शहर से दूर चली गई। लडकी ने इस दुर्घटना को दमित कर लिया तथा 13 वर्ष की अवधि तक वह उस घटना के बारे मे प्रत्यावाहन नही कर पाई।

जलधारा दुर्भीत के इस केस मे लक्षण के कारण लडकी के अन्तर्द्वन्द्व थे। सार्थकता इस बात मे थी कि वह पुन मौलिक घटना को चेतना मे नही ला पाती थी। मितव्ययता यह थी कि उसने अपने द्वन्द्व को समाप्त कर लिया था।

असामान्य व्यवहार के प्रमुख लक्षण
(Important Symptoms of Abnormal Behaviour)

(i) भ्रान्ति (Delusion)

भ्रान्ति वह विश्वास है जो अतार्किक, असत्य तथा औचित्यहीन होते हैं। अन्य शब्दो मे, वे असभावित विश्वास होते हैं जो विरोधी प्रमाणो को रहते हुए भी बने रहते है। व्हाइट (White)[1] के अनुसार भ्रान्ति की तीन विशेषताएँ होती है —

(1) भ्रान्ति एक प्रकार के वे विचित्र विश्वास होते है जो असत्य व असम्भव होते है।

(2) इनका प्रारम्भ वास्तविक अनुभवो से नही होता है तथा तर्क, औचित्य विवेक, तथ्य आदि के आधार पर इन्हे ठीक या परिवर्तित नही किया जा सकता है।

(3) इनका व्यक्ति की शिक्षा व वातावरण के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नही होता है।

इस प्रकार भ्रान्ति का निर्धारण अनुभव पर आधारित विश्वास नही है, बल्कि विषयगत (subjective) निर्धारण विश्वास है जिसे तथ्य या तर्क के माध्यम से दूर नही किया जा सकता है। अचेतन से सम्बन्धित इच्छाएँ भ्रान्ति के माध्यम से प्रकट

---

1. White, W. A *The Language of Schizophrenia* Arch. Neurol. Psycholo, Chicago, 1926, 16 395-313.

होनी है, अत कुछ मनोवैज्ञानिक भ्रान्ति को एक प्रकार की रक्षायुक्ति (defence mechanism) मानते है। भ्रान्तियो का वर्गीकरण भी किया गया है। वैसे तो भ्रान्तियो का ठीक अर्थ रोगी की सम्पूर्ण मानसिक पृष्ठभूमि को समझने के बाद ही समझा जा सकता है। फिर भी विषय के आधार पर भ्रान्ति को निम्न चार प्रकारो मे बाँटा जा सकता है —

(अ) **वैभव भ्रान्ति** (Delusion of Grandeur)—वैभव भ्रान्ति मे व्यक्ति अपनी अपर्याप्तता व असुरक्षा-भावना की अतिपूर्ति महानता के रूप करता है। वह अपने को करोडपति, सर्वसुन्दर, सम्राट या ससार का स्वामी, महापुरुष, प्रसिद्ध अभिनेता या अभिनेत्री आदि समझता है। इस प्रकार सोचकर वह अपने को हीन-भावना ग्रन्थि से बचाता है। रोगी अपने वैभव के सम्बन्ध मे विचित्र विचार प्रकट करता है, जैसे—एक रोगी मरने से इसलिए डरता था क्योकि वह यह समझता था कि उसके मर जाने से सारा ससार ही मर जाता है।

(ब) **दण्ड भ्रान्ति** (Delusion of Persecution)—इस प्रकार की भ्रान्ति मे रोगी को यह विश्वास हो जाता है कि उसके अनेक शत्रु है जो सदैव उसका पीछा करते है। ये शत्रु मिथ्या प्रचार करते फिरते है। उन्होने भोजन मे विष मिला दिया है तथा वे किसी प्रकार से उसे दण्डित करने या जान से मारने की साजिश कर रहे है।

किसी भी प्रसग को देखते ही उसे दण्ड भ्रान्ति-स्थिति प्रकट हो जाती है। अन्य शब्दो मे, दण्ड भ्रान्ति का एक पूरक प्रकार सन्दर्भ भ्रान्ति (delusion of reference) है जिसमे रोगी किसी भी आकस्मिक घटना या प्रसग मे व्यक्तिगत रहस्य या गुप्त रहस्य का आभास करता है, जैसे—कुछ व्यक्तियो को आपस मे बात-चीत करते देखकर मानसिक रोगी यह सोचता है कि वे व्यक्ति मेरे सम्बन्ध मे ही बातें कर रहे है। अगर कोई उसकी ओर देख ले, तो वह यह समझता है कि इसमे भी कोई न कोई रहस्य छिपा है, कोई अनजाने मे खाँस दे या बोल दे तो रोगी उसे अपने प्रति व्यग ही समझता है।

दण्ड-भ्रान्ति प्रक्षेपण (projection) का ही एक अतिशय रूप है। क्योकि यहाँ भी रोगी अपनी इच्छाओ को दूसरो पर आरोपित करता है, जैसे—रोगी स्वय तो दूसरो की निन्दा करता है और दूसरो के द्वारा बातचीत करने को अपनी निन्दा समझता है।

(स) **आत्म-निन्दा भ्रान्ति** (Delusion of Self-Condemnation)—इस प्रकार की भ्रान्ति मे रोगी यह समझता है कि उसने कोई पाप किया है जिसका दण्ड उसे मिलना ही चाहिए। वह स्वय ही अपनी इस भ्रान्ति की निन्दा व भर्त्सना करता है। कभी-कभी वह यह भी सोचता है कि वह एक बुद्धिहीन व्यक्ति है तथा इसी योग्य है कि ईश्वर व मनुष्य दोनो ही उसका बहिष्कार करें। इस भ्रान्ति के कारण कभी-कभी भगवान् से ही नही वरन् अपने मित्रो व परिवारजनो से दण्डित करने या जान से

मारने का निवेदन करता है। कभी-कभी रोगी इसी भ्रान्ति के कारण आत्महत्या करने का भी प्रयास करता है।

(ब) रोगभ्रम भ्रान्ति (Delusion Hypochondrical)—इस प्रकार की भ्रान्ति मे रोगी अपने को किसी शारीरिक या मानसिक रोग से पीडित समझने लगता है। अनेक विपरीत प्रमाणो को वह अस्वीकार कर देता है तथा यह सोचने लगता है कि उसे कैन्सर, यक्ष्मा (T B) आदि हो गई है। वह कभी-कभी यह सोचने लगता है कि उसका मस्तिष्क सडता या गलता जा रहा है, शरीर का रक्त पानी मे परिवर्तित हो गया है, शरीर मे पेट ही नही है, हड्डियाँ क्षीण या पतली होती जा रही है। कभी-कभी इस भ्रान्ति के कारण व्यक्ति यह सोचने लगता है कि वह पागल हो रहा है, उसके व्यक्तित्व मे तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। इस प्रकार की भ्रान्तियो मे व्यक्ति जीवन की अनेक कठिनाइयो, असफलताओ, अति चिन्तात्मक बातो का गलत कारण उपस्थित करके युक्ति ढूँढ लेता है। यह 'परिवर्तन या रोग की ओर पलायन' का ही एक अतिशय रूप है।

विभ्रम (Hallucination)

जब बाह्य उद्दीपक के अभाव मे भी उससे सम्बन्धित सवेगात्मक प्रत्यक्षीकरण का बोध हो तो उसे विभ्रम कहते है। भ्रम (illusion) और विभ्रम मे अन्तर है। भ्रम मे बाह्य उद्दीपक का अभाव नही रहता है बल्कि बाह्य उद्दीपक की गलत सवेदना के कारण भ्रम उत्पन्न होता है, जैसे—रस्सी के टुकड़े को साँप समझना भ्रम है। विभ्रम मे बाह्य उद्दीपक रहता ही नही तथा व्यक्ति को अस्तित्वहीन वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं। सामान्य विभ्रम को मानसिक रोग का लक्षण नही माना जा सकता। सामान्य रूप से इससे सम्बन्धित दैनिक जीवन मे अनेक उदाहरण दिखाई पडते है। जैसे कभी-कभी धार्मिक सस्कारो के कारण सामान्य व्यक्ति को देवी-देवताओ की आवाज सुनाई पडती है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि टेलीफोन की घण्टी बज रही है परन्तु वास्तव मे घण्टी नही बजती है। मानसिक रोगियो मे पाये जाने वाले विभ्रमो का रूप विचित्र हुआ करता है। इन्हे तर्क की कसौटी पर कसा नही जा सकता। अगर रोगी को इन विभागो के सम्बन्ध मे समझाया जाये तो वे इसे स्वीकार नही करते। इनके मूल मे किसी न किसी दमित इच्छा की पूर्ति छिपी रहती है। जब कोई इच्छा अहम् द्वारा अस्वीकृत हो जाती है तो दमन के द्वारा अचेतन मन म चली जाती है। अचेतन मे जाकर ये इच्छाएँ सक्रिय रहती है तथा चेतन मे आने का बराबर प्रयास करती रहती हैं। परन्तु चेतन मे आने के लिए ये छद्मवेश का सहारा लेती हैं। विभ्रम भी एक प्रकार का प्रक्षेपण प्रयास है जिसके माध्यम से अचेतन मन की इच्छाएँ, प्रच्छन्न रूप से चेतन जगत् मे आती है। विभ्रम का कारण मनोजन्य (psychogenic) व दैहिक दोनो है। दैहिक कारणो से उत्पन्न विभ्रम का मुख्य उदाहरण यह है कि अगर मस्तिष्क के पिछले खण्ड (occipital lobe) मे यान्त्रिक उत्तेजना दी जावे तो व्यक्ति की आँख के सम्मुख प्रकाश की चमक जैसे विभ्रम उत्पन्न हो जाते हैं।

इसी प्रकार विषज अवस्थाओं (toxic states) व मस्तिष्क-शोथ (brain-tumor) के कारण भी अनेक प्रकार के विभ्रम उत्पन्न हो जाते हैं।

विभ्रम के प्रकार (Types of Hallucination)—भिन्न-भिन्न ज्ञानेन्द्रियो के गलत प्रत्यक्षीकरण से भिन्न-भिन्न प्रकार के विभ्रम उत्पन्न होते है। अत: विभ्रम के प्रकार निम्न हैं —

(i) **श्रवण सम्बन्धी विभ्रम**—इस प्रकार के विभ्रम मे व्यक्ति को अनेक प्रकार की आवाजें सुनाई पडती हैं। अधिकतर इस प्रकार के विभ्रम अप्रिय होते है। रोगी कभी-कभी आवाजो की आज्ञाओ का पालन करता है और कभी-कभी सघर्ष व तर्क-वितर्क भी करता है; जैसे—स्थिर संभ्रान्तिवत् (paranoid state) रोग मे रोगी को ऐसा प्रतीत होता है कि कोई शत्रु उसे हत्या करने की धमकी दे रहा है। रोसनॉफ (Rosanoff · 1338) के अनुसार पूर्ण बहरे व्यक्ति की आवाजें सुनाई पड़ने से विभ्रम होते है।

(ii) **दृष्टि सम्बन्धी विभ्रम**—इस प्रकार के विभ्रम का सरलतम रूप प्रकाश या रंग का विभ्रम होता है तथा अधिक जटिल हो जाने पर रोगी भयानक दृश्य देखने लगता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि खिड़की से विचित्र व्यक्ति झाँक रहा है या कोई मृत व्यक्ति उसके सामने खड़ा है।

(iii) **स्वाद सम्बन्धी विभ्रम**—इस प्रकार के विभ्रम मे रोगी को अपने भोजन मे विचित्र विष का स्वाद मिलता है।

(iv) **गन्ध विभ्रम**—अधिकतर मनोविक्षिप्त प्रकार के रोगियो मे इस प्रकार के विभ्रम दिखाई पड़ते है। इसका मुख्य कारण हस्तमैथुन होता है। इस प्रकार के विभ्रम मे रोगी को ऐसा लगता है कि उसके कमरे मे कोई विषैली गन्ध छोड़ दी गई है।

(v) **त्वचीय या स्पर्शीय विभ्रम**—इस प्रकार के विभ्रम मे रोगी ऐसा अनुभव करता है कि उसकी त्वचा पर कुछ रेंग रहा है। कभी-कभी उसे ऐसा अनुभव होता है कि उसे विद्युतीय आघात दिया जा रहा है। इस प्रकार की संवेदना के अनुभव का मुख्य कारण रोगी की लैंगिक भावना से सम्बन्धित होता है परन्तु रोगी इसे समझ नही पाता।

प्रतिगमन (Regression)

यह सामान्य अनुभव की बात है, जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु मे वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे उसे पिछले जीवन के अच्छे दिनो की याद आती जाती है। इस प्रकार पिछले जीवन की सुखद, कौतूहलपूर्ण घटनाओ को याद करके मनुष्य कुछ समय के लिए वर्तमान को भूल जाता है। इस प्रकार की विगत कल्पनाओ से उसे हानि के स्थान पर लाभ ही प्राप्त होता है। परन्तु जब विगत जीवन को बार-बार याद किया जाय तथा वर्तमान को भुला दिया जाय तो इस प्रकार का प्रतिगमनात्मक अभियोजन ठीक

नहीं होता बल्कि हानिकारक होता है तथा इनका सम्बन्ध असामान्यता से होता है। प्रतिगमन का उपयोग रोगी अन्तर्द्वन्द्व मे बचने के लिए करता है। वह इस लक्षण की स्थिति उत्पन्न करके बच्चों के समान व्यवहार करने लगता है। क्योंकि बच्चों को किसी प्रकार की चिन्ता या जिम्मेदारी नहीं होती। अत. रोगी अन्तर्द्वन्द्व मे बचने के लिए बच्चों के समान व्यवहार करने लगता है। रोगी को इस प्रकार के प्रतिगमन व्यवहार की चेतना नहीं होती, उसे तो प्रतिगमन व्यवहार ही वास्तविक लगता है। कभी-कभी वह ऐसा अनुभव करता है कि वह बड़ा नहीं हो सकता। वास्तव मे उसकी क्रिया-शक्ति नष्ट नहीं होती बल्कि कुछ समय के लिए अर्थहीन हो जाती है। प्रतिगमन के लक्षण को सरल शब्दों में 'बचपन की ओर पलायन' (*flight into childhood*) कहा जा सकता है। फिशर (Fisher) के शब्दों में :—

"Regression : A mode of reaction to a difficulty in which the individual relinquishes or discards the higher level response-patterns which he has acquired and reverts to or readopts those of his childhood."[1]

(iv) परिवर्तन (Conversion)

परिवर्तन मानसिक रोग का वह लक्षण जिसमें रोगी अन्तर्द्वन्द्व से छुटकारा प्राप्त करने के लिए शारीरिक रोग के लक्षण उत्पन्न कर लेता है। इस प्रकार मे वह अन्तर्द्वन्द्व को कुछ समय के लिए समाप्त कर लेता है। शारीरिक रोग मे ग्रस्त हो जाने के उपरान्त वह अपनी जिम्मेदारियों से बच जाता है। अन्य व्यक्तियों की सहानुभूति प्राप्त होती है जिससे कि वह वर्तमान जिम्मेदारियो से मुक्त हो जाता है। इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं; जैसे—एक सिपाही को युद्ध में न जाने के लिए लकवा के लक्षण उत्पन्न हो जाने मे सहायता मिलती है। क्योंकि लकवा हो जाने की स्थिति मे उसे युद्ध में नहीं भेजा जाता है। इस प्रकार जहाँ एक तरफ व्यक्ति अपनी कठिनाइयों मे बचता है तो दूसरी तरफ अन्य व्यक्तियों का भी ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता है जिससे कि वह सहानुभूति प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। अत: परिवर्तन एक प्रकार की पलायनात्मक मानसिक रचना है जिसमे व्यक्ति 'बीमारी की ओर पलायन' (*flight into sickness*) करता है।

(v) स्मृति विकृतियाँ (Memory Disorders)

स्मृति सम्बन्धी विकृतियाँ प्रमुख रूप से तीन प्रकार की होती हैं :—

(अ) स्मृतिलोप (Amnesia)—स्मृतिलोप दो प्रकार का होता है :—

(1) आंगिक स्मृतिलोप (Organic Amnesia)—मस्तिष्क मे आघात आने के कारण जब स्मृति में अव्यवस्था या विकृति आ जाती है तो उसे ऐन्द्रिय स्मृतिलोप

1. Fisher, V. E : *An Introduction to Abnormal Psychology*, p 518.

कहते हैं। अन्य शब्दो मे, ऐन्द्रिय स्मृतिलोप तब होता है जबकि सिर मे चोट लग जावे या विषज (toxic) अवस्थाओ के फलस्वरूप मस्तिकीय क्षति हो जाय। कभी-कभी अधिक आयु का हो जाने से भी स्मृतिलोप हो जाता है। इन कारणो के फलस्वरूप या तो पूर्व स्मृतियाँ समाप्त हो जाती हैं या मन्द हो जाती है। नशीली वस्तुओं के उपयोग व वृद्धावस्था के कारण मस्तिष्क की धारणाशक्ति दुर्बल हो जाती है जिसके फलस्वरूप अतीत की स्मृतियाँ भुला दी जाती है तथा नये अनुभवो की धारणा-शक्ति कम हो जाती है।

(2) **मनोजात स्मृतिलोप** (Psychogenic Amnesia)—मनोजात स्मृतिलोप तीव्र सवेगात्मक अनुभव या आघातो के कारणो से होता है। इस प्रकार का स्मृतिलोप चुनावपूर्ण होता है। घनिष्ठ सम्बन्धी या प्रियजन की मृत्यु, आर्थिक क्षति, भयानक या लज्जाजनक घटना आदि के कारण अक्सर मनोजात स्मृतिलोप होता है। इस प्रकार के स्मृतिलोप का उद्देश्य कष्टदायक या अपराध-भावात्मक स्मृतियो को चेतना से हटा देना है। व्यक्ति अन्य बातो को तो याद रखता है, परन्तु अपनी असफलता, नैराश्यता, अपमान, निन्दा आदि की बातों को भूल जाता है। वास्तव मे ये स्मृतियाँ नष्ट नही होती, क्योकि अनेक मनोवैज्ञानिक विधियो (यथा—मुक्त-साहचर्य, सम्मोहन आदि) के माध्यम से पुन स्मरण (recall) किया जा सकता है। इस प्रकार के स्मृतिलोप से मुख्यत अहम् की सुरक्षा होती है तथा अप्रिय स्मृतियो को चेतना मे नही आने देती, जिससे कि मानसिक सन्तुलन ठीक बना रहता है।

स्मृतिलोप के ही दो और भाग भी किये गये है —

(i) **अग्रगामी स्मृतिलोप** (Anterograde Amnesia)—इस प्रकार के स्मृतिलोप मे मस्तिष्क आघात या सवेगात्मक तनाव की घटना के पश्चात् की बातो को पुनः स्मरण नही किया जा सकता है।

(ii) **अधोगामी स्मृतिलोप** (Retrograde Amnesia)—इस प्रकार के स्मृतिलोप मे पूर्व प्रसग का स्मरण सम्भव नही हो पाता है।

(ब) **मिथ्यास्मृति** (Paramnesia)—इस प्रकार की स्मृति मे व्यक्ति अस्तित्वहीन बातो या घटनाओ की याद बनाए रखता है। सरल शब्दो मे, व्यक्ति को मिथ्या व अस्तित्वहीन बातो का स्मरण रहता है। वह बड़े ही विश्वासपूर्वक इन बातो के बारे मे वर्णन करता है। मिथ्यास्मृति दो प्रकार की होती है —

(i) **मिथ्यारचना** (Confabulation)—जो घटनाएँ कभी भी घटित नही हुई है, उन्हे रोगी अपनी स्मृति मे स्थान प्रदान करता है।

(ii) **अनुनिरीक्षणात्मक अयथार्थीकरण** (Retrospective Falsification)—इस प्रकार की स्मृति मे पहले घटित हुई बातो को अयथार्थ रूप मे प्रस्तुत किया जाता है।

(स) **अतिस्मृति** (Hypermnesia)—अतिस्मृति मे रोगी को असाधारण रूप के पुन स्मरण व पहचानने (recognition) की क्रियाएँ दिखाई पड़ती हैं।

(vi) संवेगात्मक विकृतियाँ (Emotional Disorders)

इनसे सम्बन्धित लक्षण मुख्यत. अन्तर्द्वन्द्व, नैराश्य व असफल समायोजन से सम्बद्ध होते हैं। वैसे तो ये लक्षण सामान्य व्यक्तियों में भी पाये जाते हैं, परन्तु मानसिक रोगियों के भावात्मक जीवन का विश्लेषण करना बड़ा कठिन कार्य होता है क्योंकि उनसे सम्बद्ध प्रेरणाएँ अचेतन मन में दबी होती हैं। मानसिक रोगियों में मुख्यत. संवेगात्मक विकृतियों से सम्बन्धित निम्न लक्षण पाये जाते हैं :—

(1) आकुलता (Anxiety)—आकुलता की दशा मे रोगी में न्यूनाधिक आशंका या घबराहट दिखलाई पड़ती है। व्यक्ति आकुलता की स्थिति मे तब आता है जबकि उसे अपनी क्षमता से अधिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना पड़ता है। आकुलता की दशा मे प्रमुख मनोशारीरिक लक्षण, तनाव, व्यग्रता स्पन्दन (tremor) तीव्र नाड़ी व हृदय गति, तेज दिल की धड़कन, अत्यधिक पसीना का आना आदि दिखाई पड़ते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आकुलता की स्थिति के द्वारा व्यक्ति को समायोजन में सुविधा होती है तथा इसकी पृष्ठभूमि मे दुर्बलता व असुरक्षा की भावना रहती है। इसके अतिरिक्त दमित अनैतिक व असामाजिक संवेग भी आकुलता के कारण हो सकते हैं। इस प्रकार की स्थिति में रोगी सदैव किसी सकट की आशंका से घिरा होता है।

(2) विषाद या अवसाद (Depression)—अवसाद या विषाद की स्थिति मे रोगी को दुःख की भावना पीड़ित करती रहती है तथा वह दूर से दुःखपूर्ण दशाओं का वर्णन करता रहता है। इसके वर्णन की अभिव्यक्ति उसकी मनोदशा: जैसे—बैठने का ढंग, मुखाकृति आदि के माध्यम से होता है।

(3) विरक्ति (Apathy)—इस प्रकार की स्थिति में रोगी में भावात्मक (affective) भावना का सर्वथा अभाव रहता है। रोगी के ऊपर ऐसी घटनाओं का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता, जिनका सम्बन्ध प्रसन्नता, दुःख, लज्जा या सहानुभूति की भावना से होता है। विरक्ति से रोगी संसार से प्रायः अलग-सा हो जाता है, उसे संसार नीरस-सा लगता है।

(4) उल्लासोन्माद (Euphoria)—इस प्रकार की स्थिति में रोगी को अत्यधिक आनन्द की भावना का अनुभव होता है।

(vii) विषज-आंगिक प्रतिक्रियाएँ (Toxic-Organic Reactions)

विष के समान जहरीले पदार्थों के सेवन करने या मस्तिष्क के तन्तुओं को आघात पहुँचने से विषज-आंगिक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं का केवल स्थानीय रूप से मनोगत्यात्मक महत्त्व ही होता है। इनसे सम्बन्धित मुख्य प्रतिक्रियाएँ चेतना का धूमिल होना, व्यग्रता, संवेगात्मक रूप में अस्थिरता, सूझ का अभाव (lack of insight), विमूढ़ता (stupor) आदि हैं।

ब्राउन द्वारा लक्षणों का वर्गीकरण
(Classification of Symptoms According to Brown)

असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास पर दृष्टिपात करने से हमे यह ज्ञात होता है कि 19वी शताब्दी मे परमाणुवादी मनोविज्ञान (Atomistic Psychology) ने मानसिक प्रक्रियाओ को छोटे-छोटे वर्गों मे विभाजित किया, जिसका आधार था—लक्षणो की शब्दावली। इस प्रकार के वर्गीकरण ने अनेक जटिलताएँ उत्पन्न की, जिनका प्रमुख प्रभाव अध्ययन-सामग्री व रोग सम्बन्धी लक्षणो पर पडा। इन्ही जटिलताओ के कारण इसी शब्दावली के अन्त मे परमाणुवादी मनोविज्ञान का स्थान सर्वांगिक मनोविज्ञान (Organismic Psychology) ने ले लिया। ब्राउन[1] (Brown) के अनुसार सर्वांगिक मनोविज्ञान ने सर्वांगिक मनोविकृतविज्ञान के रूप मे कार्य किया अर्थात् इससे सम्पूर्ण जीव के सगठित व्यवहार पर अध्ययन करने की परम्परा आरम्भ हुई। इस परम्परा से मनोविकृतविज्ञान को नया रूप प्राप्त हुआ।

प्रो० ब्राउन ने मानसिक विकृतियो के विभिन्न लक्षणो को तीन वर्गों मे रखकर अध्ययन प्रस्तुत किया है :—

ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं से सम्बन्धित विकृत लक्षण
(Symptoms related to Abnormalities of the Cognitive Process)

ब्राउन ने इस वर्ग मे सवेदना, प्रत्यक्षीकरण, साहचर्य, स्मृति व विचार की प्रक्रियाओ से सम्बन्धित असामान्य लक्षणो को रखा है। ब्राउन ने प्रत्येक प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रक्रिया की अनुपस्थिति (Absence-function), न्यूनता (Hyper-function), अधिकतम (Hyper-function) व विचित्र व विकृत (Para-function) की दृष्टि के लक्षणो का वर्णन किया है। नीचे हम प्रमुख वर्गों के लक्षणों का सक्षेप मे वर्णन प्रस्तुत करेंगे —

संवेदना को विकृतियाँ
(Disorders of Sensation)

सवेदना व प्रत्यक्षीकरण का सामान्य व्यवहार मे विशेष महत्त्व है। यही कारण है कि इसका असामान्य व्यवहार मे भी काफी महत्त्व है। सवेदना उद्दीपक के सम्बन्ध मे सरल जानकारी है, यह चेतना का तत्त्व है। अगर इस पर आधारित वाह्य वस्तुओ की जानकारी हो जावे तो उसे प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। **लैण्डिस व बौल्स** (Landis and Bolles) ने सवेदना व प्रत्यक्षीकरण के अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया है :—

"By sensation is meant that form of experience from outside the nervous system, which cannot be further analyzed by introspec-

---

1. "The organismic psychology just as organismic psychopathology stresses the total integrated behaviours of the whole organism."
—**Brown**, *Ibid.*

(*Hyperesthesia*) कहते है । इस दोष के कारण आँखो मे दर्द की अनुभूति होती है । जब व्यक्ति को प्रकाश या उसकी तीव्रता से भय लगने लगता है, तो उसे प्रकाश-भय (*Photophobia*) कहते है ।

दृष्टि मे जब भ्रमपूर्ण क्रियाएँ (para-function) होने लगती हैं तो व्यक्ति को कभी वस्तु या प्रतिभा के न होने पर भी उनकी उपस्थिति का आभास होता है तो कभी यथार्थ मे वस्तु या प्रतिमा के होने पर भी उसमे अस्तित्व का कोई आभास नही होता । इसे दृष्टि-भ्रम (*Photomata*) कहते है ।

(2) **श्रवण या श्रव्य विकृतियाँ** (Auditory Disorders)

श्रवण सम्बन्धी दोषो का असामान्य मनोविज्ञान मे काफी महत्त्व है क्योकि इन दोषो के कारण व्यक्ति के समायोजन मे काफी अन्तर आ जाता है । इस प्रकार के दोषो का आधार चिकित्साशास्त्रीय न होकर मनोवैज्ञानिक होता है । जब व्यक्तियो की श्रवण शक्ति मन्द हो जाती है तो उन्हे ऐसा आभास होने लगता है कि लोग उनके सम्बन्ध मे कानाफूसी कर रहे हैं तथा धीरे-धीरे यही भ्रम उत्पीड़न की भ्रान्ति (delusion of Persecution) का आधार बन जाती है । जब व्यक्ति को पूर्ण रूप से सुनाई नही पडता तो उसे श्रवण सवेदनशून्यता (*Auditory Anesthesia or anacusia*) कहते हैं । इसके **अल्पक्रियाशीलता** (hypofunctions) की स्थिति में रोगी को ध्वनि व उसकी तीव्रता का ज्ञान नही होता तथा इस दोष को स्वरक-बधिरता (*Tonal deafness*) कहते हैं । **अतिक्रियाशीलता** (hyperfunction) की स्थिति मे रोगी की सवेदनशीलता ध्वनि के सम्बन्ध में अत्यधिक बढ जाती है । भ्रमपूर्ण क्रियाशीलता (para-function) की स्थिति मे व्यक्ति को विभिन्न व विभिन्न प्रकार की आवाजें सुनाई पड़ती है ।

(3) **त्वचीय या त्वक विकृतियाँ** (Tactual Disorders)

त्वचीय विकृतियो का प्रभाव सम्पूर्ण आंगिक प्रक्रियाओ पर पड़ता है अत. इन्हे एक विशेष महत्त्व प्राप्त है । जब स्पर्श (touch) की संवेदना पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है तो उसे एक सवेदनशून्यता (*Cutaneous Anesthesia*) कहते है । वेदना की सवेदनशून्यता (*Analgesia*) मे रोगी का दर्द या वेदना का अनुभव नहीं होता, जब व्यक्ति को ठण्ड या गर्मी की अनुभूति न हो, तो उसे तापक्रम सवेदनशून्यता (*Thermoanesthesia*) कहते हैं । त्वक सवेदना की **अल्प व अति-क्रियाशीलता** (hypo- and hyper- function) की स्थिति मे व्यक्ति को कभी कम व कभी अधिक त्वचीय सवेदना की अनुभूति होती है । इसकी **भ्रमपूर्ण क्रियाशीलता** (para-functions) मे उद्दीपक के न रहने पर भी स्पर्श, दबाव, वेदना व तापक्रम की सवेदनात्मक अनुभूति बनी रहती है ।

(4) **स्वाद विकृतियाँ** (Gustatory Disorders)

जब स्वाद की अनुभूति पूर्णतः या कुछ कम-अधिक हो जावे तो इससे जो विकृति उत्पन्न होती है, उसे स्वाद सवेदनशून्यता (*Aguesia*) कहते है । भ्रमपूर्ण स्थिति

रोगी का सन्देहपूर्ण या भ्रान्ति की अवस्था मे रहने के कारण उसके प्रत्यक्षीकरण मे अस्पष्टता होती है। सवेगात्मक असन्तुलन या मस्तिष्क को क्षति पहुँचने से वह अपने निकट के वातावरण की वस्तुओ के प्रति जागरूक नही होता। उसकी चेतना विक्षिप्त-सी हो जाती है। इस प्रकार की विकृतियो के भ्रम मे अत्यधिक अतिरंजना पायी जाती है। विभ्रम या अवस्तुबोधन प्राय मनोविक्षिप्त रोगियो मे विद्यमान होते है। रोगी बिना किसी उद्दीपक के विभिन्न पदार्थो एव दृश्यो को देख सकता है। मस्तिष्क-आघात या विकृति रोगियो मे दृष्टि सम्बन्धी विभ्रमो की अधिक प्रधानता होती है। जैसे मनोविदलता (Schizophrenia) का रोगी विचित्र-विचित्र दृश्यों को देखता है। उसे विचित्र आवाजें सुनाई पडती है जिसमे कोई उससे गाली-गलौज कर रहा होता है या निन्दा कर रहा होता है। कभी-कभी उसे आवाजो की दिशा व स्रोत का आभास रहता है तो कभी नही। उसे विचित्र प्रकार के स्पर्शो का अनुभव होता है तथा कभी-कभी विचित्र गन्धो व स्वादो की भी अनुभूति होती है।

बुद्धि व विचार सम्बन्धी विकृतियाँ
(Disorders of Intelligence and Thought)

इससे सम्बन्धित अनेक लक्षण है। जब व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि (I. Q) 70 से कम हो तो वे मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति कहलाते है। इस प्रकार के लोगो मे सोचने-समझने व क्रिया को ठीक प्रकार से करने की योग्यता बहुत हो न्यून होती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी बौद्धिक योग्यता का ह्रास, स्मृति व चिन्तन सम्बन्धी विकृतियाँ आदि के लक्षण भी उत्पन्न हो जाते है, जिन्हे इसी वर्ग मे रखा जाता है।

बौद्धिक असामान्यता के अन्तर्गत प्राय चार प्रकार की असामान्यता आती है—(i) जन्मजात निम्न बौद्धिक क्षमता (low native intellectual capability), (ii) जीवन के उत्तरकालीन वर्षो मे बौद्धिक योग्यता का ह्रास, (iii) योग्यता से अधिक निम्न स्तर के बौद्धिक कार्य, व (iv) स्मृति व विचारने से सम्बन्धित विकृतियाँ।

जब बुद्धि-लब्धि 70 या इससे कम होती है तब इस बौद्धिक असामान्यता को अनेक नामो की सज्ञा दी जाती है, यथा—मानसिक अवसामान्यता (mental subnormality), मानसिक न्यूनता (mental deficiency), मानसिक मन्दन (mental retardation), बुद्धि-दुर्बलता (amentia), अल्पमनोवृत्ति (hypophrenia) व लघु मनोवृत्ति (oligophrenia)।

स्मृति विकारो के अन्तर्गत स्मृतिलोप (*amnesia*), अपस्मृति (*paramnesia*) व अतिस्मृति (*hypermnesia*) आती है। स्मृतिलोप दो प्रकार का होता है—(1) अग्रवर्तीश्रेणी (anterograde) व पूर्वलक्षी श्रेणी (retrograde)।

विचारो की विकृतियो के अन्तर्गत प्राय 10 विकार आते है—(1) विचारो की उड़ान, (2) विचारो का मन्दन, (3) अवरोध, (4) विचारो की कमी,

(5) विवरणात्मकता, (6) मूर्त विचारना, (7) स्वलीन विचारना, (8) मनोग्रस्ति, (9) दुर्भीति, तथा (10) भ्रान्ति या व्यामोह ।

गतिवाही प्रक्रियाओं से सम्बन्धित लक्षण
(Symptoms related to Motor Processes)

ब्राउन (Brown) ने लक्षणो के इस वर्ग के अन्तर्गत माँसपेशीय क्रिया (muscular activity), सहज विकृतियाँ (reflex disorders), आदत-विकृतियाँ (habit disorders) तथा ऐच्छिक क्रियाओ से सम्बन्धित असामान्य लक्षण का विवेचन किया है ।

गतिवाही व्यवहार का एक रूप मौखिक व्यवहार (Verbal behaviour) भी होता है । मौखिक व्यवहार के अन्तर्गत अन्तर्वस्तु (Content) व रीति (manner) विकृतियाँ आती हैं । प्राय हम देखते हैं कि सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा मनस्तापी व्यक्तियो मे हकलाहट व तुतलाहट (stammering and stuttering) अधिक पायी जाती है । मनोविदलता (*schizophrenia*) के रोगी मे अनेक मौखिक विलक्षणताएँ आती हैं । गति व्यवहार से सम्बन्धित मुख्यत 10 विकृतियाँ आती हैं—(1) वाक्यता, (2) टिक, (3) लास्य (Chorea), (4) कम्पन, (5) जडता, (6) बेचैनी, (7) पेशी प्रतिष्टम्भ (catalepsy), (8) स्वचलता (automatism), (9) रूढ व्यवहार-वैचित्र्य (stereotyped mannerisms), व (10) निषेधवृति (negatism) ।

संवेगात्मक प्रक्रियाओ से सम्बन्धित लक्षण
(Symptoms related to Emotional Process)

ब्राउन ने इसके अन्तर्गत सुखद व दु खद अनुभूतियो से सम्बन्धित लक्षणो का विवेचन किया है । मुख्य रूप से इसके अन्तर्गत ब्राउन ने उदासीनता (apathy), अत्यधिक हर्ष व विषाद (hyperpathy), स्वपीडन तथा परपीडन आदि लक्षणो का विवेचन किया है । सामान्य रूप मे इससे सम्बन्धित मुख्य लक्षण निम्न हैं

(अ) अत्यधिक विकृत रूप मे सवेगो की अभिव्यक्ति,

(ब) सवेगो मे उभयात्मकता अर्थात् एक ही पदार्थ के प्रति विरोधी भाव,

(स) संवेगो मे शीघ्रता के साथ परिवर्तन,

(द) परिस्थिति के अनुरूप सवेगो की अभिव्यक्ति न होना ।

9

मनोगतिकी सिद्धान्त के रीतिवैधानिक आधार
(METHODOLOGICAL BASIS OF PSYCHODYNAMIC THEORY)

क्षेत्र सिद्धान्त
(Field Theory)

जैसा कि हम पिछले अध्यायो मे बता चुके है कि प्रत्येक लक्षण बीमारी का पृष्ठ है, जिनका सम्बन्ध अन्तर्निहित गत्यात्मक कारको से होता है। लक्षण व अन्तर्निहित गत्यात्मक स्थिति के अन्तर को हम विज्ञान के दृश्यरूप व आनुवंशिकरूप (Phenotype and Genotype) की व्याख्या के सन्दर्भ मे समझा चुके है । लक्षणो की इस नवीन व्याख्या से आधुनिक मनोविकृतिविज्ञान को बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। इसको हम अगले अध्यायो मे विस्तृत रूप से समझावेंगे। परन्तु इससे समझने से पूर्व यहाँ यह बताना अति आवश्यक प्रतीत होता है कि समस्त विज्ञान अन्तर्निहित गत्यात्मक स्थिति (आनुवशिकरूप) को समझने के लिए तथ्यो (facts) का व्याख्यात्मक वर्गीकरण करता है (दृश्यरूप)। इसके माध्यम से नवीन खोजो की प्रकृति व महत्त्व को आसानी के साथ समझा जा सकता है।

विज्ञान की शुरूआत तथ्यो की व्याख्या व वर्गीकरण के माध्यम से होती है। जिन तथ्यों की व्याख्या व वर्गीकरण किया जाता है, उनका सैद्धान्तिक विश्लेपण किया जाता है तथा तब प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार विज्ञान व्यवस्थित होता है। हम वैज्ञानिक को एक वर्गीकरण करने वाला (classifer) या एक व्यवस्थित करने वाला (systematizer) नही कह सकते हैं। विज्ञान की यह प्रकृति उसे काफी समय के बाद प्राप्त हुई क्योकि समस्त ग्रीक विज्ञान वर्गीकरण (classification) से सम्बन्धित थे। मध्य युग (middle age) का विज्ञान भी तथ्यो की वर्गीकृत व्याख्या करता था। विज्ञान के इतिहास मे प्रथम बार न्यूटन (Newton) व गैलीलियो

(Galileo) ने व्यवस्थित रूप से व गत्यात्मक आधारो से विज्ञान के विकास मे सहयोग दिया। ध्यान रहे कि ग्रीक काल से लेकर मध्यकाल तक विज्ञान का प्रमुख कार्य व्याख्या करना, वर्गीकृत करना या स्थिर नियमो को ज्ञात करना ही था। परन्तु गैलीलियो के तीन सौ वर्ष पूर्व समस्त भौतिक विज्ञान का आधार तथ्यो के व्यवस्थित गत्यात्मक रूप को जानना था। इससे यह तात्पर्य नही है कि भौतिक विज्ञानो के लिए व्याख्यात्मक वर्गीकरण अनावश्यक है। क्योकि आज भी कुछ विज्ञान ऐसे हैं जो अन्य विज्ञानो से अधिक व्यवस्थित है। उदाहरणस्वरूप, भौतिक-शास्त्र जिसकी विषय-सामग्री दैहिक विज्ञान (Physiology) के अनुरूप है, करीब-करीब पूर्ण रूप से व्यवस्थित है जबकि रसायन-शास्त्र आज भी वर्गीकरण (classification) से अधिक सम्बन्धित है। जैविक विज्ञानो मे जिसके अन्तर्गत मनोविज्ञान व समाज-शास्त्र आते हैं, अभी हाल मे ही व्यवस्थित गत्यात्मक विज्ञान की स्थापना हुई है। जीव-विज्ञान (Biology) मे व्यवस्थित गत्यात्मक विज्ञान की सर्वप्रथम शुरूआत डार्विन (Darwin) के द्वारा हुई। मनोविज्ञान के क्षेत्र मे सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) ने मानव-व्यवहार के सम्बन्ध मे व्यवस्थित गत्यात्मक सिद्धान्त की शुरूआत की।

इस प्रकार ऐतिहासिक रूप से आधुनिक मनोवैज्ञानिक विचार पर आधुनिक भौतिक विज्ञान के विज्ञान का प्रभाव पडा। मनोविज्ञान, आधुनिक युग मे भौतिक विज्ञान के विकास से प्रभावित होकर विज्ञान की ओर अग्रसर हुआ। इसी के फलस्वरूप अब व्यक्तित्व (personality) 'जीव बनाम पर्यावरण' न होकर 'पर्यावरण मे जीव' माना जाने लगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जैविक प्राणी (biological organism) पर्यावरण की शक्तियो के द्वारा सशोधित होता रहता है जिससे कि उसके व्यक्तित्व के अनेक शीलगुल (traits) गत्यात्मक स्वरूप को प्राप्त कर लेते है। इसे एक सूत्र मे भी व्यक्त किया जा सकता है :—

$$B = f(P, E),$$

अर्थात् B = व्यवहार (Behaviour)
F = कार्य (Function)
P = व्यक्ति (Person)
E = पर्यावरण (Environment)

इस सूत्र का तात्पर्य है कि "व्यवहार सदैव व्यक्ति की संरचना व पर्यावरण का कार्य है।"[1] ब्राउन (Brown) ने व्यक्ति की सरचना व पर्यावरण के सम्बन्ध को मनोजैविक क्षेत्र (psychobiological field) के माध्यम से समझाया है। उन्होने इस सम्बन्ध मे एक चित्र भी दिया है।

---

1. ". ....behaviour is always a function of the structure of the person and the environment."—Brown . *Ibid*, p. 20.

नीचे के पूर्व कथित चित्र से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि व्यक्ति के चारो ओर एक पर्यावरण होता है। पर्यावरण की अनेक सदिशो (Vectors) का
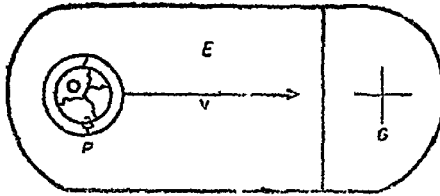
P=व्यक्ति (PERSON) V=सदिश (VECTOR)
B=रोधक (BARRIER) G=लक्ष्य (GOAL)
E=पर्यावरण (ENVIRONMENT)

चित्र—18

व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति की स्वय की भी कुछ विशेषताएँ होती है जो उसे अपनी वश-परम्परा के आधार पर प्राप्त होती है। इस प्रकार जो व्यवहार प्रकट होना है वह उसके शील गुण (hereditary traits) व पर्यावरण की विभिन्न शक्तियों के सम्वन्धो के आधार पर होता है। इस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान मे सम्वन्धित विषय-सामग्री का गतिक व्यवस्थापन (dynamic systematization) किया जाता है। इससे तात्पर्य है कि सैद्धान्तिक रचनाओ के माध्यम से घटनाओ मे अन्तर्निहित सामयिक शृखलाओ की खोज की जाती है। सरल शब्दो मे, आधुनिक मनोविकृति-विज्ञान क्षेत्र सैद्धान्तिक (field theoretical) होती जा रही है। ब्राउन ने इस प्रत्यय की निम्न प्रकार से व्याख्या प्रस्तुत की है —

"Classificatory science based on phenotypical descriptions tends to grow into systematic science based on genotypical descriptions Systematic science is field-theoretical. Modern psychopathology tends to be field-theoretical."[1]

सरल शब्दो मे, 'वर्ग सिद्धान्त' (*Class Theoretical*) विज्ञान का सरल व प्राचीन प्रकार है, जवकि 'क्षेत्र सिद्धान्त' (*Field Theoretical*) विज्ञान का जटिल व व्यवस्थित प्रकार है। जव प्रत्येक विज्ञान व्यवस्थित होता है तो अनेक विरोधी सिद्धान्तो का उद्भव होता है। मनोविकृतिविज्ञान मे भी दो प्रतिद्वन्द्वी सिद्धान्तो का उद्भव हुआ, एक को वर्ग सिद्धान्त (Class theory) व दूसरे को क्षेत्र सिद्धान्त कहा जाता है। यहाँ इन दोनो सिद्धान्तो के अन्तर को समझना आवश्यक है क्योकि प्राचीन मनोविकृतिविज्ञान वर्ग सिद्धान्त से सम्वन्धित था, जवकि आधुनिक मनोविकृतिविज्ञान शुद्ध रूप से क्षेत्र सिद्धान्त मे विश्वास रखता है।

1. **Brown** : *Ibid*, p. 150.

वर्ग सिद्धान्त बनाम क्षेत्र सिद्धान्त
(Class Theory *Vs* Field Theory)

ब्राउन (Brown) ने 1936 मे वर्ग सिद्धान्त व क्षेत्र सिद्धान्त की कसौटी (Criteria) का निर्धारण किया है, जिसका यहाँ वर्णन करना आवश्यक है[1] —

वर्ग सिद्धान्त की कसौटी (Criteria for Class Theory)	क्षेत्र सिद्धान्त की कसौटी (Criteria for Field Theory)
1. जिस 'वर्ग' के वे होते हैं उसी के द्वारा ही व्यवहार का निर्धारण होता है। ("The behaviour of objects is determined by the 'class' to which they belong ")	1. व्यवहार का निर्धारण 'क्षेत्र' संरचना के आधार पर होता है जिसके कि वे एक भाग होते हैं। ("The behaviour of object is determined by the structure of the 'field' of which they are past ")

'वर्ग' सिद्धान्त मे सामान्य व्यवहार विशेषताएँ पायी जाती है। अगर किसी व्यक्ति के व्यवहार मे इन विशेषताओ का प्रदर्शन होता है तो उसे वर्ग मे सम्मिलित कर लिया जाता है। 'क्षेत्र' सिद्धान्त मे क्षेत्र सरचना की कुछ विशेषताएँ होती है जिन्हे नियम या कानून (laws) कहा जाता है, उन्हे तार्किक आधार पर बनाया जाता है। व्यक्ति का व्यवहार इन नियमो को स्वीकार करता है। अन्य शब्दो मे, इन नियमो की अभिव्यक्ति व्यवहार के रूप मे होती है। स्मरण रहे कि वर्ग सिद्धान्त का प्रतिपादन अरस्तू (Aristotle) ने किया था तथा क्षेत्र सिद्धान्त को लेविन (Lewin) ने। अत हम प्रथम कसौटी को अरस्तू व लेविन द्वारा किये गये कार्यों के आधार पर समझाने का प्रयास करेंगे। अरस्तू का गतिज (Aristotle's kinetics) उसके रसायन-शास्त्र (Chemistry) पर निर्भर था। उसके अनुसार पृथ्वी, जल, हवा, आग व ईथर (Ether) की बाह्य ब्रह्माण्ड के केन्द्र के क्रम से एक उचित (rightful) स्थिति होती है। अगर एक वस्तु (object) अपनी उचित स्थिति से ऊपर या नीचे की ओर हटती है तो उसके हटने का निर्धारण उस उचित स्थिति पर निर्भर होगा जहाँ वास्तव मे वह स्थित था। अगर आग पृथ्वी पर फैलती है तो आग का फैलना विस्थापन (Displacement) का प्रतिनिधित्व करेगा। इसी प्रकार अगर एक पत्थर को हवा मे फेंका जावेगा तो वह पृथ्वी पर लौट आवेगा क्योकि उसका उचित स्थान पृथ्वी है। परन्तु क्षेत्र सिद्धान्त के अनुसार शरीर का किसी दिशा मे गिरना तथा किस गति से गिरना, निर्धारण ब्रह्माण्ड (Cosmos) मे शरीर के क्षेत्रीय-कालिक वितरण (Spatial-Temporal Distribution) या देश-काल के अनेक रूप (space-time manifold) की रचना के अन्तिम विश्लेषण के द्वारा निश्चित होगा।

---

1. Source ; Brown, *Ibid*, p. 141-144.

2. व्यवहार को निर्देशित करने वाली शक्ति एक शक्ति प्रकाशन की पूर्व निर्धारित योजना (entelechy) के गुण-धर्मो को प्रदर्शित करती है।
("The force directing behaviour shows the properties of an entelechy.")

2. व्यवहार को निर्देशित करने वाली शक्ति एक सदिश के गुण-धर्मों को प्रदर्शित करती है।
("The force directing behaviour shows the properties of a vector.")

अरस्तू के अनुसार शरीर इसलिए गतिशील होता है क्योकि एक शक्ति प्रकाशन की पूर्व निर्धारित योजना (Entelechy) का प्रत्येक हार्वरस (Harbors) शरीर में ठीक स्थान पर पहुँचना चाहता है। लेविन का मत है कि इसका निर्धारण तो 'वर्ग' से होता है जिसमे कि वह वस्तु (Object) रहती है। क्षेत्र सिद्धान्त के अनुसार पत्थर बिना क्षेत्र के एक समान दिशा मे नही गिरेगा जबकि वर्ग सिद्धान्त के अनुसार वह पत्थर (Stone) अन्य पत्थरो का अनुसरण करेगा।

3. यहाँ स्थानीय निर्धारण होता है।
("There is local determination.")

3. यहाँ स्थानीय निर्धारण नहीं होता है।
("There is no local determination.")

अरस्तू के अनुसार पत्थर पृथ्वी पर लौटेगा, इसके निर्धारक तत्व पत्थर में ही होगे। परन्तु क्षेत्र सिद्धान्त की कसौटी है कि निर्धारण स्थानीय नही होता है।

4. वर्ग सिद्धान्त में उपयोग होने वाले प्रत्यय प्रधानतः सारवान होते हैं।
("The concepts used in class theory are primarily substantial.")

4. क्षेत्र सिद्धान्त में उपयोग होने वाले प्रत्यय प्रधानतः कृत्यात्मक होते हैं।
("The concepts used in field theory are primarily functional.")

अरस्तू ने अपने विश्लेषण का आधार या सम्बन्ध वस्तु के निर्माण करने वाले सारभूत तत्वो को बनाया जबकि क्षेत्र सिद्धान्त वस्तु के कार्यो (Functions) के आधारो पर विश्लेषण करता है।

5. वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रमुख विधि सरचनात्मक होती है।
("The method of scientific analysis primarily structural.")

5. वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रमुख विधि कृत्यात्मक होती है।
("The method of scientific analysis primarily functional, relational.")

क्षेत्र सिद्धान्त वैज्ञानिक विश्लेषण सम्बन्धो की शृखला के आधार पर करता है जबकि वर्ग सिद्धान्त वस्तु की सरचना के आधार पर करता है।

6. सम्बद्ध नियमितताओं को ऐतिहासिक व भौगोलिक पद के रूप मे विश्लेषण करता है।
("The analysis is in terms of historically and geographically conditioned regularities")

6 एक ऐतिहासिक-प्रारूपिक नियमों के रूप में विश्लेषण होता है।
("The analysis is in terms of a historical-typical laws")

वर्ग सिद्धान्त विश्लेषण करते समय इस तथ्य को प्रमुख आधार बनाता है कि जिस विषय का विश्लेषण होता है, उसे सम्बद्ध नियमितताओ का ऐतिहासिक व भौगोलिक रूप क्या है ? क्षेत्र सिद्धान्त विश्लेषण करते समय अन्तर्निहित गत्यात्मक तत्वो व आनुवंशिक रूप सम्बन्धी नियमो को आधार बनाता है।

7. विधियाँ प्रमुख रूप से आनुभाविक होती है।
("The method is primarily empirical")

7. विधियाँ प्रमुख रूप से प्राक्कल्पिक निगमनात्मक होती हैं।
("The method is primarily hypothetic-deductive.")

वर्ग सिद्धान्त मे तथ्यो के सकलन के लिए प्रमुख रूप मे आनुभाविक विधियो का आश्रय लेना पडता है (अर्थात् बिना नियन्त्रण व प्रयोगात्मक विधियो का उपयोग किये तथ्य सकलन) जबकि क्षेत्र सिद्धान्त मे समस्त प्रयोगो को नियन्त्रण व उपकल्पनाओ के निर्माण के उपरान्त उनकी निगमनात्मक वैधता ज्ञात करने के बाद तथ्य सकलन या अध्ययन सामग्री का निर्माण किया जाता है।

8 विश्लेषण मे द्विधात्वो के उपयोग की स्वीकृति देता हैं।
("The analysis allows dichotomics")

8 विश्लेषण मे द्विधात्वो के उपयोग की स्वीकृति नही होती हैं।
("The analysis allows no dichotomics")

अरस्तू के अनुसार ईथर (*Ether*) से सम्बन्धित नियम ही नियमित (regular) होते है। दूसरी तरफ गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र (*Gravitational field*) के सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की घटनाओ व चन्द्रमा की घटनाओ मे आवश्यक रूप से अन्तर नही होता है।

9 वर्ग सिद्धान्त मूल्यात्मक प्रत्ययों को उपयोग में लाता है।
("Class theory tends to use valuative concepts")

9 क्षेत्र सिद्धान्त अमूल्यात्मक प्रत्ययो पर अधिक ध्यान देता है।
("Field theory insists on non-valuative concepts")

वर्ग सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि वह केवल उन प्रत्ययो को उपयोग मे लाता है या अध्ययन का विषय बनाता है जो मूल्यात्मक होते हैं जबकि

क्षेत्र सिद्धान्त मे समय पर अधिक जोर दिया जाता है जिसका सम्बन्ध न तो अच्छे या बुरे से होता है और न ही सुन्दरता व कुरूपता से होता है।

10 वर्ग सिद्धान्त 'क्यों' का तात्विक रूप से उत्तर देने का प्रयास करता है।
(Class theory attempts to answer a metaphysical "why.)

10. क्षेत्र सिद्धान्त "कैसे" का वैज्ञानिकता के रूप में उत्तर देता है।
(Field theory attempts to answer a scientific "how"?)

अरस्तू ने वर्ग सिद्धान्त मे इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है कि "शरीर क्यो गतिमान है ?" (*"Why do bodies move ?"*) जबकि गैलीलियो जो कि क्षेत्र सिद्धान्त परम्परा का प्रथम चिन्तनकार था, ने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया—"शरीर गतिमान कैसे होता है ?" (*"How do bodies move ?"*) अन्य शब्दो मे, जहाँ वर्ग सिद्धान्त "क्यो" का उत्तर देने पर अधिक जोर देता है वहाँ क्षेत्र सिद्धान्त क्यो का उत्तर तो देता है परन्तु साथ ही साथ "कैसे" ("How") पर भी ध्यान देता है तथा व्यवस्थित रूप से इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करता है।

आधुनिक गत्यात्मक सिद्धान्तों के समान पक्ष
(The Common Aspects of Modern Dynamics Theory)

जैसा कि हम पहले वता चुके है कि जव समस्त विज्ञान व्यवस्थित होने की प्रकृति रखते है तो अनेक विरोधी सिद्धान्तो का उद्भव होता है। परन्तु उन सिद्धान्तों मे कुछ समानता भी होती है अर्थात् सभी सिद्धान्त आधारभूत वातो को स्वीकार करते है। मनोविकृतिविज्ञान के सम्बन्ध मे भी अनेक विरोधी सिद्धान्तो का उद्भव हुआ परन्तु वे सव निम्न मुख्य आधारभूत वातो पर सहमत है :—

(1) व्यक्तित्व, व्यक्तित्व शीलगुणों के एक प्रतिरूप के रूप में
(Personality as a pattern of personality traits)

समस्त मुख्य आधुनिक सिद्धान्त इस वात पर सहमत हैं कि व्यक्तित्व को, व्यक्तित्व शीलगुण या गेस्टॉल्ट के प्रतिरूप मे समझना चाहिए। अन्य शब्दो मे, समस्त सिद्धान्त इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि व्यक्तित्व 'प्राणी बनाम पर्यावरण' (*Organism Vs Environment*) या 'प्राणी और पर्यावरण' के रूप मे नहीं समझा जा सकता वल्कि व्यक्तित्व को 'पर्यावरण मे प्राणी' (*Organism in environment*) के रूप मे समझा जा सकता है। उसके व्यक्तित्व का निर्माण व विकास मनोजैविक क्षेत्र मे उपस्थित विभिन्न सदिशो (vectors) के माध्यम से होता है। वैसे इस सम्बन्ध मे असहमति है कि व्यक्तित्व के परिवर्तन मे पर्यावरण के परिवर्तनों का कितना प्रभाव पडता है। परन्तु समस्त आधुनिक सिद्धान्त इस तथ्य पर

सहमति प्रकट करते है कि यह समस्या सामाजिक-मनोजैविक (socio-psycho-biological) तथ्यो से सम्बन्धित है ।

(2) प्राणी परम संकलित समग्र के रूप में
(Organism as a supersummative whole)

समस्त आधुनिक गत्यात्मक सिद्धान्त इस तथ्य पर सहमत है कि प्राणी परम संकलित समग्र है अर्थात् प्राणी मे एक प्रकार की सगठित पूर्णता (organized-totality) होती है जिसके किसी भाग मे परिवर्तन होने से उसका प्रभाव समस्त भागो पर पडता है । इस प्रकार जो मनोवैज्ञानिक इस तथ्य पर अध्ययन करना चाहते हैं कि पूर्ण व्यवहार की समस्याएँ क्या हैं, उन्हे व्यक्तित्व-सरचना की समस्या पर अध्ययन करना चाहिए, क्योकि यही एक प्रमुख समस्या है ।

(3) प्रत्येक प्राणी जन्म से मृत्यु तक पूर्ण संरचित है
(Every organism from birth to death is a structured whole)

समस्त आधुनिक सिद्धान्त इस बात पर सहमत हैं कि केवल सामान्य वयस्क व्यक्ति ही पूर्ण सरचित नही है बल्कि प्रत्येक प्राणी जन्म से मृत्यु तक पूर्ण सरचित है । इस प्रकार यह विचार मनश्चिकित्सा (psychotherapy) के लिए व्यावहारिक रूप से उपयोगी है तथा सैद्धान्तिक रूप से मनोगतिकी सिद्धान्त (psychodynamic theory) के लिए उपयोगी है ।

(4) एक व्यवस्थित विज्ञान के लिए सैद्धान्तिक रचना आवश्यक है ।
(Theoretical construct is necessary for a systematized science)

समस्त आधुनिक सिद्धान्त इस बात पर सहमत हैं कि एक व्यवस्थित विज्ञान के लिए सैद्धान्तिक रचना (theoretical construct) की खोज करना आवश्यक है। इन सैद्धान्तिक रचनाओ का समस्त विज्ञानो मे काफी महत्त्व है, चाहे वह मनोविज्ञान हो या गणित । परन्तु इन सैद्धान्तिक रचनाओ मे तार्किक व रीतिवैधानिक पूर्णता की दृष्टि से अन्तर हो सकता है ।

(5) क्रिया के लिए कुछ गत्यात्मक शक्तियों का होना आवश्यक है
(There is some dynamic force to account for activity)

इससे तात्पर्य है कि सभी सिद्धान्त प्रेरणा की समस्या (problem of motivation) के महत्त्व को स्वीकार करते हैं । कुछ सिद्धान्त जैविक आधारो पर प्रेरणा के महत्त्व को और कुछ सिद्धान्त मनो-सामाजिक आधारो पर प्रेरणा के महत्त्व को स्वीकार करते हैं ।

(6) प्रेरणात्मक शक्तियो पर सामाजिक या शारीरिक रोधक रोक लगाती है
(The motivating forces become blocked by social or physical barriers)

समस्त सिद्धान्त इस बात पर सहमत है कि कुछ प्रेरणात्मक शक्तियो पर सामाजिक या शारीरिक रोधक (barriers) रोक लगाते है या बाधा उत्पन्न करते हैं जिसके

परिणामस्वरूप नैराश्यता (Frustration) का जन्म होता है। इन नैराश्यों के प्रति प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करता है।

(7) लक्षणों में कारण, सार्थकता व मितव्ययता विद्यमान होती है
(Symptoms have cause, a significance and an economy)

समस्त सिद्धान्त इस बात से सहमत है कि प्रत्येक लक्षण (चाहे वे मानसिक हो या शारीरिक) मे कारण, सार्थकता व मितव्ययता निहित रहती है।

(8) प्रेरणा के कुछ स्रोत अज्ञात होते हैं।
(Some sources of motivation are unknown)

समस्त आधुनिक सिद्धान्त इस तथ्य पर सहमत है कि प्रेरणा के कुछ स्रोतो के बारे मे कोई जानकारी नही होती, क्योकि इसका सम्बन्ध अचेतन से होता है।

असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र मे फ्रायड ने सर्वप्रथम ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसमे ये सभी बाते दिखाई पडती है। अगले अध्याय मे हम उसके सिद्धान्त पर प्रकाश डालेंगे।

10

असामान्य व्यवहार की मनोगतिकी
(PSYCHODYNAMICS OF ABNORMAL BEHAVIOUR)

असामान्य व्यवहार के गतिक उपागम
(Dynamic Approaches of Abnormal Behaviour)

गतिक उपागमो के आधार पर हम व्यक्तित्व का अर्थ यह लगाते है कि व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक शीलगुणो (traits) का गतिक या गत्यात्मक सगठन है। इन मनोदैहिक शीलगुणो का विकास पर्यावरण मे होता है। इस प्रकार गतिक उपागमो के अनुसार व्यक्तित्व 'जीव बनाम पर्यावरण' न होकर 'पर्यावरण मे जीव' (*Organism in environment*) है। व्यक्ति पर्यावरण के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करता है तथा इन्ही के आधार पर उसके व्यक्तित्व के मनोदैहिक शीलगुणो का विकास होता है। सक्षेप मे, व्यक्तित्व के गतिक उपागमो के आधार पर हम व्यक्तित्व शीलगुणो को समग्र रूप से समझते हैं तथा इसकी व्याख्या मनो-सामाजिक-जैव (Psycho-socio-biological) के आधार पर करते है। असामान्य व्यवहार को इन्ही आधार पर समझा जा सकता है तथा असामान्य व्यवहारो के गतिक उपागम की शुरूआत करने का श्रेय फ्रायड (Freud) के मनोविश्लेषणवाद को है। कोलमैन[1]

---

1 "The first steps toward an understanding of psychodynamics, came about through the astounding contributions of one man—Sigmund Freud (1856-1939)... ..Freud's path was not an easy one, and for many years he worked alone in the face of great opposition. . ..Freud theories met opposition, criticism and sometimes violent condemnation because of their conflict with religious ideas and because of Freud's overemphasis of sexual factors in mental illness, his failure to adequate consideration to cultural differences in personality development and the lack of rigorous experimental verification of his clinical concepts."

—Coleman ; *Ibid*, p 48-50

ने इस सम्बन्ध मे कहा है कि व्यवहार की मनोगतिकी को समझने के लिए फ्रायड के योगदानो को समझना आवश्यक है। परन्तु फ्रायड को समझना सरल कार्य नही है। क्योकि फ्रायड ने एक लम्बी अवधि तक इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय शोध-कार्य किया है तथा उसे अनेक आलोचनाओं व विरोध का सामना करना पडा है, क्योकि फ्रायड के विचारो एवं प्रचलित धार्मिक विचारो में काफी विरोध था। इस विरोध का मुख्य कारण फ्रायड का अत्यधिक लैंगिक तत्त्वो को महत्त्व देना था। इस अध्याय मे विस्तृत रूप से हम असामान्य व्यवहार की मनोगतिकी पर प्रकाश डालेंगे।

फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद
(Freud's Psychoanalysis)

सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud · 1856-1939) का स्थान केवल असामान्य मनोविज्ञान के लिए ही महत्त्वपूर्ण नही है वल्कि सम्पूर्ण मनोविज्ञान के लिए भी गौरव की वात है। मनोविज्ञान का इतिहास इस वात का साक्षी है कि फ्रायड की विचारधारा से मनोविज्ञान को नवीन वैज्ञानिक रूप मिला तथा उसमे वैज्ञानिक गतिशीलता का प्रवेश हुआ। असामान्यता के प्राचीन मत को अव्यवस्थित एव अवैज्ञानिक सिद्ध करने का प्रमुख श्रेय फ्रायड को ही है। फ्रायड ने असामान्यता से पीड़ित रोगियो का व्यवस्थित रूप से अध्ययन करने के वाद इस क्षेत्र मे नयी राह दिखाई तथा इस प्रकार के रोगियो के मानसिक उपचार के लिए नए तरीके निकाले।

मनोविश्लेषण का इतिहास
(History of Psychoanalysis)

फ्रायड के जन्म (1856) से लेकर मृत्यु (1929) तक के समय के प्रमुख कार्य निम्न है :—

1856—फ्रायड का **फेरीबर्ग, मोरावीआ** (Fariberg, Moravia) मे जन्म हुआ। 1860 मे उनका परिवार **वियाना** (Vienna) चला गया जहाँ फ्रायड ने अपना अधिकाश जीवन व्यतीत किया।

1873—फ्रायड ने वियाना विश्वविद्यालय मे प्रवेश लिया·जहाँ चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन किया तथा प्रसिद्ध दैहिकशास्त्री ब्रुके (Brucke) के सहायक के रूप मे कार्य किया।

1881—फ्रायड ने विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट की डिग्री प्राप्त की तथा वियाना के अस्पताल मे प्रवेश किया जहाँ मुख्यत तन्त्रिका-विज्ञान (Neurology) पर कार्य किया है।

1885—फ्रायड ने पेरिस मे **शार्को** (Charcot) के साथ तन्त्रिका-विज्ञान (Neurology) का अध्ययन किया तथा 1886 मे लौटकर वियाना मे प्रेक्टिस शुरू की।

1893—फ्रायड ने जोसफ ब्रुयर (Joseph Breuer) के साथ एक किताव प्रकाशित की, जिसका नाम *"Psychic Mechanisms of Historical Phenomena"* था।

अनुसार जब जीवन मूल-प्रवृत्ति से सम्बन्धित शक्ति मृत्यु मूल-प्रवृत्ति शक्ति से कम हो जाती है तो व्यक्ति कम रचनात्मक कार्य कर पाता है जबकि विनाशकारी कार्य अधिक कर सकता है। वृद्धावस्था मे ऐसा ही होता है। उनके अनुसार मृत्यु तब होती है जबकि मृत्यु मूल-प्रवृत्ति तो अधिक प्रबल हो और जीवन मूल-प्रवृत्ति शक्ति अत्यधिक क्षीण हो। ब्राउन ने व्यवहार की व्याख्या के लिए निम्न सूत्रों का सहारा लिया है—

B=f (L×D)

B=व्यवहार (Behaviour)

L=जीवन मूल-प्रवृत्ति (Life instinct)

D=मृत्यु मूल-प्रवृत्ति (Death instinct)

उसके अनुसार जीवन-शक्ति मृत्यु-शक्ति से सबल है तो व्यक्ति रचनात्मक कार्य करता है। (L>D)

जब जीवन-शक्ति मृत्यु-शक्ति से कम हो तो व्यक्ति प्रमुख रूप से विनाशकारी कार्य करता है। (L<D)

जब जीवन-शक्ति मृत्यु-शक्ति से अत्यधिक कम हो जावे तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। (L< <D)

जीवन-मूल-प्रवृत्ति (Life instinct) को कामशक्ति (Libido) से शक्ति मिलती है जिसके कारण व्यक्ति भौतिक लोगो के सम्पर्क मे आता है। कामशक्ति मे जीवन मूल-प्रवृत्ति का एक अश मात्र रहता है। इन दोनो शक्तियो का जीवन मे कभी भी पूर्णत पृथक्करण नही दिखाई पडता। ध्वसात्मक शक्तियाँ अगर रचनात्मक शक्तियो से अधिक शक्तिशाली हो जाती है तो व्यक्ति मानसिक व्याधियो से ग्रस्त हो जाता है या उसका व्यवहार विसमायोजन (mal-adjustment) से सम्बन्धित हो जाता है।

यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि इन दोनो प्रकार की प्रेरक शक्तियो को पूर्णत विरोधी या सर्वथा एक-दूसरे से स्वतन्त्र शक्ति के रूप मे मानना गलत होगा। क्योकि रचनात्मक शक्ति से प्रेरित व्यवहार मे ध्वसात्मक शक्ति के लक्षण एव ध्वंसात्मक शक्ति द्वारा प्रेरित व्यवहार मे रचनात्मक शक्ति के स्पष्ट लक्षण दृष्टिगोचर होते है। इसीलिए फ्रायड ने 'उभयभाव' (ambivalence) के सिद्धान्त का निर्माण किया, उदाहरणस्वरूप—स्त्री के प्रति प्रबल प्रेम को जब पुरुष प्रदर्शित करता है तब उसमे भी घृणा एव आक्रामकता का कुछ अश निहित रहता है; जैसे—प्रगाढ आलिंगन, लैङ्गिक कार्य एव चुम्बन आदि से प्रेम की अभिव्यक्ति तो होती है परन्तु कुछ निर्दयतापूर्ण वेदना उत्पन्न करने की भी इच्छा होती है। जब जीवन मूल-प्रवृत्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है और मृत्यु मूल-प्रवृत्ति का समाधान नही कर पाती तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

कुछ अन्य शक्तियाँ (Some Other Polarities)—फ्रायड ने जीवन एव मृत्यु मूल-प्रवृत्तियो की उपर्युक्त शक्तियो के अतिरिक्त कुछ अन्य विरोधी शक्तियो का भी विवेचन किया है। वे विरोधी शक्तियाँ निम्न है —

(1) सक्रियता-निष्क्रियता (Activity Passivity)—ये दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ है जिन्हे लैगिक सम्बन्ध (sexual relation) मे स्पष्टत देखा जा सकता है। फ्रायड के अनुसार समस्त पुरुषो मे कुछ स्त्रीत्व की भावना रहती है तथा समस्त स्त्रियो मे पुरुषत्व की भावना रहती है। फ्रायड के अनुसार पुंस्पत्व सदैव सक्रिय (active) रहता है जबकि स्त्रीत्व सदैव निष्क्रिय (passive) रहता है। इस प्रकार सभी व्यक्तियो मे पुरुषत्व (masculinity) एव स्त्रीत्व (faminınity) दोनो ही प्रवृत्तियाँ विद्यमान होती है तथा उसके स्वभाव मे जिसकी प्रधानता होती है उसी के आधार पर उसके मनोवैज्ञानिक लिंग (psychological sex) का निश्चय किया जाता है।

(2) वास्तविकता सिद्धान्त व आनन्द-सिद्धान्त (Reality Principle and Pleasure Principle)—फ्रायड ने दो अन्य शक्तियाँ बताईं जो विरोधी प्रवृत्ति की होती है। वास्तविकता का सिद्धान्त 'अहम्' (*Ego*) से सम्बोधित है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपनी इच्छाओ की पूर्ति करते समय नैतिकता एव सामाजिकता के दृष्टिकोण को देखता है तथा इच्छा की पूर्ति वास्तविक समय पर करता है। इसमे तात्कालिक सुख को प्रधानता नही दी जाती, जबकि आनन्द सिद्धान्त (pleasure principle) मे व्यक्ति अपनी इच्छाओ की पूर्ति के समय कपट एव भावी परिणाम की परवाह न करते हुए आनन्द या सुख प्राप्त करने की कोशिश करता है। इसमे लैंगिक भावनाओ की प्रधानता होती है।

फ्रायड ने इन विरोधी प्रवृत्तियो के अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियो का भी वर्णन किया है, जैसे—विषयात्मक-वस्तुगतात्मक (subjective-objective), आनन्द-वेदना (pleasure-pain), प्रेम-घृणा (love-hate) आदि प्रमुख हैं।

व्यक्तित्व-संरचना
(Personality Structure)

मन का अर्थ (Meaning of Mind)—मन (mind) को कई अर्थो मे प्रयुक्त किया जाता है। *यहाँ मन का अर्थ आत्मा (psyche) या* व्यक्तित्व (personality) से है। प्रारम्भ मे मन को *अपरिवर्तनशील माना जाता था तथा* यह कहा जाता था कि जन्म से लेकर मृत्यु तक यह स्थिर (constant) रहता है। धार्मिक लोगो का भी यही विश्वास था कि शरीर नष्ट हो जाता है लेकिन मन या आत्मा की सत्ता विद्यमान रखती है, वह उसी रूप मे वर्तमान मे रहता है। लेकिन यह धारणा बहुत दिनो तक मान्य नही रही। दार्शनिको ने भी इस प्रकार की व्याख्या को स्वीकार नही किया। अरस्तू एवं प्लेटो (Aristotle and Plato) ने भी काफी अध्ययन के बाद यह बताया कि मन या व्यक्तित्व के कई पक्ष है। लेकिन फ्रायड

(Freud) प्रथम व्यक्ति था, जिसने सर्वप्रथम मन या व्यवहार के भागो की व्याख्या की तथा उनकी वैज्ञानिक ढग से व्याख्या प्रस्तुत की। फ्रायड ने मन के स्वरूप को गत्यात्मक (dynamic) माना तथा यह बताया कि व्यवहार के समस्त प्रकारो के व्यवस्थित सिद्धान्त को जानने के लिए मन को विभाजित करना चाहिए।

फ्रायड के अनुसार मन हमारे मस्तिष्क एव शरीर की क्रियाओ का नाम है। उसे शरीर के एक विशेष हिस्से मे अङ्कित नही कर सकते हैं। जिस प्रकार बिजली क्या है, या गुरुत्वाकर्षण (gravitation) क्यो है—आदि को हम नही देख सकते उसी प्रकार मन क्या है, हम नही देख सकते। मन एक अमूर्त वस्तु (abstract thing) है। मन के विभिन्न पहलुओ का ज्ञान सम्भव है। जब व्यक्ति के सम्मुख एक से अधिक विरोधी प्रेरक उपस्थित होते हैं तो मन के विभिन्न पहलुओ का ज्ञान स्पष्ट रूप के होने लगता है। फ्रायड के अनुसार मुख्यत मन या व्यक्तित्व के दो पहलू है :—

(1) गत्यात्मक पहलू (Dynamic Aspect),
(2) स्थलरूपरेखीय पहलू (Topographical Aspect)।
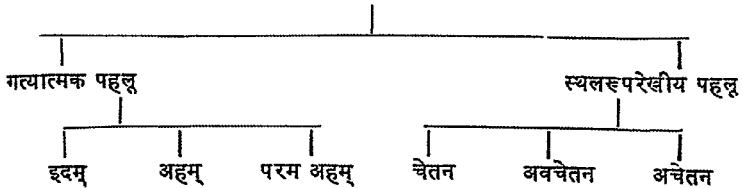
(1) **मन या व्यक्तित्व का गत्यात्मक पहलू** (Dynamic Aspect of Mind or Personality)—ब्राउन (Brown) के शब्दो मे, "व्यक्तित्व के गत्यात्मक पहलू का अर्थ फ्रायड के अनुसार वह साधन है जिसके द्वारा मूल-प्रवृत्तियो से उत्पन्न सघर्षो का समाधान होता है।"[1] फ्रायड ही प्रथम व्यक्ति था जिसने व्यक्तित्व के गत्यात्मक स्वरूप का वैज्ञानिक तथा विस्तारपूर्वक अध्ययन प्रस्तुत किया। गत्यात्मक पहलू को उसने तीन भागो मे बाँटा है—(1) इदम् (Id), (2) अहम् (Ego) एव (3) परम अहम् (Super Ego)। नीचे हम इन तीनो का अलग-अलग अध्ययन प्रस्तुत करेंगे :—

(1) **इदम्** (Id)—फ्रायड ने अपने व्यक्तित्व-सिद्धान्त मे इदम् शक्ति को अधिक महत्त्व प्रदान किया है। यह जीवन व मृत्यु-मूलप्रवृत्ति (Life and Death Instinct), दोनो का ही केन्द्र है तथा समस्त मनोजैविक (psycho-biological) शक्ति का मूल स्रोत्र है। हॉल व लिन्डजे (Hall and Lindzey) ने इदम् को व्यक्तित्व का अत्यन्त

1. "...by the dynamic aspects of the self, Freud means the agents through which conflict arising in the instincts are worked out." —Brown, *Ibid*, p. 165.

अस्पष्ट, अगम्य व व्यवस्थित भाग की सज्ञा दी है। फ्रायड इसे एक जैविक प्रत्यय न मानकर मनोवैज्ञानिक प्रत्यय मानता है। अन्य शब्दो मे, वह इदम् को 'सही मानसिक सत्यता' (*True Psychic Reality*) मानता है क्योकि इसका सम्बन्ध वाह्य वास्तविकता से न होकर आन्तरिक जगत् से होता है। इदम् की उत्पत्ति बच्चे के जन्म के साथ ही हो जाती है। इदम् मे ही जन्मजात व वशानुगत तत्त्व निहित होते हैं। यही आने वाली पीढियो के लिए वशानुक्रम का कार्य करती है। इस प्रकार फ्रायड के अनुसार जन्म के समय बच्चा पूर्ण रूप से इदम् (Id) होता है। इसकी प्रमुख विषय-सामग्री वे इच्छाएँ है जो कामशक्ति (Libido) से सम्बन्धित है तथा तात्कालिक सन्तुष्टि चाहती है। इसके सम्बन्ध केवल आत्मगत वास्तविकता (subjective reality) से होता है। इसकी विषयवस्तु (content) अमूर्त्त है जिन पर समय का प्रभाव नही पड़ता। इसके लिए भूतकाल या विस्मृति का कोई महत्त्व नही है।[1]

रिचार्ड डब्ल्यू० नाइस (Richard W Nice) के शब्दो मे—"The Id is the differented, primitive portion of the mind which contains innate urges, instincts, desires, and wishes, unfettered by civilized demands and controls In simpler words, the Id is the "beast" in us, the savage, uninhibited urges."[2]

इदम् इच्छाओ की जननी है। इसे मनोजैविक (psychobiological) शक्तियो का मूल कहा जाता है। इसे समय, स्थान, उचित-अनुचित का कुछ ज्ञान नही होता क्योकि यह आनन्द सिद्धान्त को मानता है जिसके कारण इसका मुख्य उद्देश्य केवल आनन्द प्राप्त करना होता है। बच्चा जन्म के समय पूर्णत इदम् (Id) होता है, उसे अपनी इच्छाओ की पूर्ति चाहिए। लेकिन जब बच्चे की इच्छाएँ पूरी नही होती हैं तब उसे एक प्रकार की निराशा होती है। अत उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है।

इदम् की प्रमुख विशेषताएँ (Chief Characteristics of Id)—इदम् की मुख्य विशेषताएँ निम्न है :—

(1) इदम् मे जीवन एव मृत्यु मूलप्रवृत्तियो—दोनो का समावेश रहता है। इदम् के कारण ही व्यक्ति रचनात्मक एव विध्वसात्मक (Constructive and destructive) दोनो प्रकार की क्रियाएँ करता है लेकिन इनका उद्देश्य सुख की प्राप्ति होती है। यही कारण है कि इदम् को इच्छाओ की जननी कहा जाता है।

---

1. "The contents of the Id are immortal, for they do not alter with the passage of time. Nothing in the Id is past or forgotten"—Hall and Lindzey . *Handbook of Social Psychology*, p. 149
2. Nice Richard, W. . "*A Hand book of Abnormal Psychology*". p. 7.

(2) इदम् को समय, उचित-अनुचित या वास्तविक-अवास्तविक का ज्ञान नही होता। इसे तो केवल सुख या आनन्द प्राप्त करने की चाह होती है, इसे परिणाम की कोई चिन्ता नही होती।

(3) इदम् का निवास-स्थान अचेतन (unconscious) होता है। दूसरे शब्दों मे, इसमे चेतना का अभाव होता है।

(4) इदम् की क्रियाओ मे तार्किक दोष पाया जाता है क्योकि इसमे इच्छा के पक्ष या विपक्ष की ओर ध्यान न देकर सुख-प्राप्ति का ही उद्देश्य निहित होता है।

(5) इदम् को आनन्द या सुख का सिद्धान्त (Pleasure principle) निर्देशन करता है। यही कारण है कि इसे नैतिकता, सामाजिकता, अनुकूलता आदि की कोई परवाह नही होती। इसे तो अपनी इच्छाओ की तृप्ति चाहिए।

(6) जन्म के समय बच्चा पूर्णत इदम् होता है। लेकिन सामाजिक, नैतिक एव धार्मिक नियमो या मान्यताओं के कारण बच्चो की अनेक इच्छाओं की पूर्ति नही हो पाती। अत उन्हे निराशा का अनुभव होता है जिसके फलस्वरूप उन्हें वास्तविकता का ज्ञान होता है। फ्रायड के अनुसार, बच्चा सर्वप्रथम पूर्णतः इदम् होता है लेकिन निराशा के कारण उसमे चेतना आती है तथा अहम् (Ego) का विकास होता है तथा सबसे बाद मे परम अहम् (Super Ego) का विकास होता है।

(2) अहम् (Ego)—रिचार्ड डब्ल्यू॰ नाइस के अनुसार—

"The Ego is that portion of the psyche which is in contact with the outside world on the one hand and the Id on the other. It attempts to keep thoughts, jugements, interpretations, and behaviour practical and efficient, in accordance with realistic living."[1]

फ्रायड ने अहम् की व्याख्या स्व-चेतन-बुद्धि (self-conscious intelligence) के रूप मे की है। अहम् वह एकमात्र साधन है जो बाह्य वातावरण के साथ सम्पर्क स्थापित करता है। इसकी उत्पत्ति भी बाह्य वातावरण के फलस्वरूप होती है। इसकी विषय-सामग्री भी बाह्य जगत् के ज्ञान को एकत्रित करना है। इसका प्रमुख कार्य का सम्बन्ध भी बाह्य जगत् ही है क्योकि यह व्यक्ति को बाह्य वातावरण के खतरो का सकेत ही नही करता बल्कि उनसे रक्षा भी करता है। यह वास्तविकता के नियम का पालन करता परन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि यह सुख के नियम का विरोधी हो। अहम् तो सुख की इच्छा की तृप्ति इस प्रकार कराता है कि व्यक्ति को भविष्य मे कम से कम खतरो का सामना करना पड़े। यह चेतन होता है तथा इसके विकास का कारण विफलता या निराशा है। इसका वास्तविकता से गहरा सम्बन्ध है। इसी के माध्यम से व्यवहार का नियन्त्रण होता है। इसका मुख्य सम्बन्ध

1. Richard, W. Nice : "*A Hand-book of Abnormal Psychology*", p. 7.

बाह्य वातावरण से होता है। यह इदम् की इच्छाओ तथा वास्तविकता के बीच एक सन्तुलन कायम रखता है एव समझौता करता है।[1] यही कारण है कि इसे 'मन का मुख्य शासक' (*Chief Administrator of the Soul*) कहा गया है। निम्न चित्र देखिए—

चित्र—19

अहम् की मुख्य विशेषताएँ (Main Characteristics of Ego)—अहम् की मुख्य-मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है —

(1) अहम् क्योकि वास्तविकता के सिद्धान्त से निर्देशित होता है अत. इसे समय एवं स्थान का पूर्णत ध्यान होता है।

(2) अहम् मे तार्किक दोष नही होता है, क्योकि वह क्रियाओ को करने से पूर्व उसके परिणामो के सम्बन्ध मे सोचता है।

(3) अहम् चेतन व अचेतन दोनो होता है जिसके फलस्वरूप एक ओर तो इदम् (Id) की इच्छाओ के सम्बन्ध मे जानकारी रखता है तथा दूसरी ओर चेतन होने के कारण उनके वास्तविक रूप की जानकारी रखता है।

(4) अहम् की एक मुख्य विशेषता यह होती है कि यह एक अभियोजक (adjuster) के रूप मे कार्य करता है। क्योकि एक ओर तो जीव की इच्छा को समझता है, उनके परिणाम को गम्भीरतापूर्वक सोचता है तो दूसरी ओर उस इच्छा के वास्तविक समय एव स्थान पर ध्यान देता है तथा अनुकूल अवस्था आने पर उन इच्छाओ की तृप्ति भी होने देता है।

(5) अहम् का नैतिक-अनैतिक से सम्बन्ध नही होता बल्कि वह केवल इतना जानता है कि कार्य करने का यह उपयुक्त अवसर है या नही, अगर नही, तो अवसर मिलने पर उन अनैतिक एव सामाजिक कार्यो को भी कर लेता है।

(3) **परम अहम्** (Super Ego)—व्यक्तित्व के नैतिक पक्ष का प्रतिनिधित्व परम अहम् के माध्यम से होता है। इसका विकास इदम् व अहम् की अपेक्षा सबसे

---

1. "The ego directs behaviour toward a maximal satisfaction of the individual's urges consistent with its knowledge of social and physical reality. It is thus the adjuster between the wishes of the Id and the demands of reality. It realizes the consequences of its own activity and when able establishes balance between the environment and the organism." —Brown, *Ibid*. p. 164.

देर में होता है। बाल्यावस्था में इसका विकास अहम् के माध्यम से होता है। बच्चा माँ-बाप द्वारा दिये गये उपदेशों, भले-बुरे सम्बन्धी उपदेशों आदि को अहम् में आत्मसात् कर लेता है तथा बाद में यही परम अहम् का रूप ले लेता है। इसका प्रमुख कार्य मूल-प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि में वास्तविकता के नियम के आधार पर नहीं बल्कि उच्च आदर्शों व प्रमापों के आधार पर रोक लगाना होता है। इस प्रकार यह एक तरफ इदम् की कामुक व आक्रामक आवेशों पर रोक लगाती है तो दूसरी तरफ अहम् की यथार्थ लक्ष्यों के स्थान पर नैतिक लक्ष्यों की ओर ले जाती है। रिचार्ड डब्ल्यू० नाइस के अनुसार—

"The Super Ego is that part of the psyche which has been termed the conscience. Its primary function is make us behave like civilized human being. Thus it tries to hold the unreasonable outbursts of the Id in check."

फ्रायड ने परम अहम् को आदर्श अहम् (ego ideal) कहा है। इसका सभ्यता, संस्कृति, धर्म व नैतिकता आदि से अटूट सम्बन्ध है। यह मुख्यतः चेतन होने के कारण वास्तविकता का पूर्ण ज्ञान रखता है। इसमें अनेक आदर्श एकत्रित रहते हैं। इसका मुख्य सम्बन्ध जीवन के उन आदर्शों व आचरणों से होता है जिनका निर्माण समाज के द्वारा होता है। इसके कारण ही व्यक्ति में पछतावा आदि की भावना जन्म लेती है।
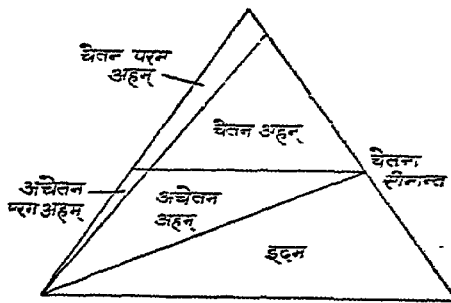
चित्र—20

(व्यक्तित्व-संरचना का एक और चित्र। देखिए, इदम् पूर्ण रूप से अचेतन है तथा परम अहम् चेतन व अचेतन दोनों होता है।)

इदम्, अहम् व परम अहम् में सम्बन्ध (Relation between Id, Ego and Super Ego)—ब्राउन ने इन तीनों के पारस्परिक सम्बन्ध को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है :—

"The Id is primarily biologically conditioned, the Ego primarily conditioned by the physical environment but the Super Ego is primarily sociologically or culturally, conditioned."

इदम् की सभी इच्छाएँ समाज द्वारा स्वीकृत नही होती तथा व्यक्ति इनसे परम अहम् के आदर्शों की पूर्ति नही कर पाता। इसके फलस्वरूप व्यक्ति का सन्तुलन
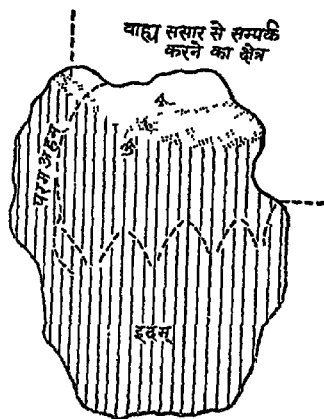
चित्र—21

(balance) बिगड जाता है। अहम् (Ego) व्यक्ति मे सन्तुलन कायम करने के लिए तथा इस सघर्ष से दोनो के बचाव के लिए समझौता कराता है। ब्राउन (Brown) इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण देते हुए कहता है कि इदम् (Id) की यह पुकार होती है कि 'इस लडकी के ओठ को चूम लो'। ठीक इसके विपरीत परम अहम् (Super ego) यह कहता है कि 'ऐसा हर्गिज नही होना चाहिए, क्योकि यह अनैतिक कार्य है।' अहम् कहता है कि 'अभी ऐसा करना ठीक नही है, क्योकि पकडे जाने का भय है।' इस प्रकार अहम् ने इदम् एव परम अहम् मे एक सन्तुलन कायम रक्खा।

एक दूसरे उदाहरण के माध्यम से भी हम इनके पारस्परिक सम्बन्ध को समझ सकते है। मान लीजिए, एक टैक्सी पर कोई मुसाफिर एक निश्चित स्थान पर जा रहा है। इसमे इदम् वह टैक्सी इजन (engine) है जिसमे जैविक आवश्यकता (biological needs) रूपी पैट्रोल (petrol) डला है। यहाँ अहम् ड्राइवर (driver) है तथा परम अहम् वह गन्तव्य स्थान है जहाँ प्राणी रूपी मुसाफिर जाना चाहता है। इदम् व्यक्तित्व का जैविक पक्ष है, अहम् मनोवैज्ञानिक पक्ष है तथा परम अहम् सामाजिक पक्ष है। इस प्रकार इन्ही तीनो के माध्यम से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

हैन्ड्रिक (Hendric) के मतानुसार शिशुओ (infants) मे परम अहम् नही होता है तथा अहम् ही इदम् की समस्त इच्छाओ की पूर्ति करता है तथा यह कार्य वह तब तक करता है जब तक कि पर्यावरण अपना प्रभाव न डालें। सामान्य वयस्क व्यक्ति का परम अहम् कुछ क्रियाओ व विचारो को निषेध मानता है परन्तु उसमे कुछ

स्थान ख़ाली रहता है जिससे कि शैशवकालीन प्रतिक्रियाएँ कभी-कभी क्रियान्वित हो सकें। परम अहम् मे यह खाली (gap) स्थान मनस्तप्त वयस्क व्यक्तियो मे काफी
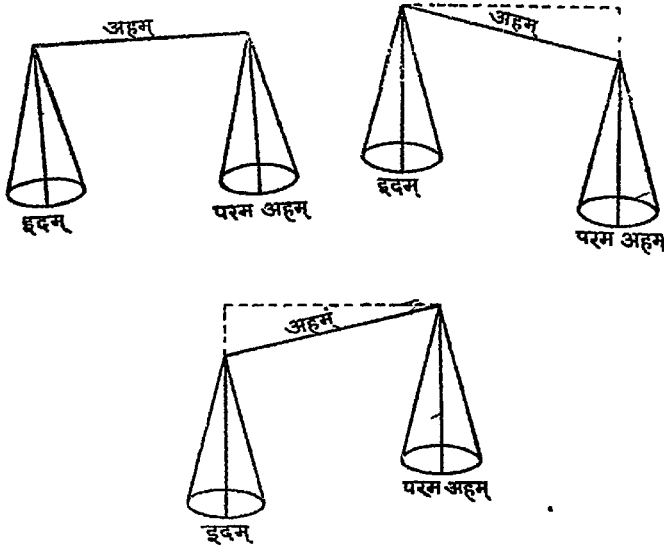
चित्र 22—समायोजन पर इदम्, अहम् तथा परम् अहम् का प्रभाव

विस्तृत होता है। मनोविक्षिप्त वयस्क व्यक्ति मे परम अहम् तो खण्डित (fragmentary) होता है, अहम् का विकास ठीक प्रकार से नही हो पाता है, अत इदम् महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यही कारण है कि मनोविक्षिप्त प्रकार के रोगियो के भ्रान्ति, विभ्रम आदि विशेषताएँ अधिक पायी जाती है।

मन या व्यक्तित्व का स्थल रूपरेखीय पहलू (Topographical Aspect of Mind or Personality)—इदम्, अहम् परम् अहम् का सघर्ष मन के चेतन, अचेतन या अवचेतन (conscious, unconscious or foreconscious) स्तर पर हो सकता है। फ्रायड ने अचेतन (unconscious), अवचेतन व चेतन (foreconscious and unconscious) को मन का स्थल रूपरेखीय पहलू कहा है।[1] इसे चेतना स्तर (level of consciousness) भी कहते हैं। फ्रायड ने इन तीनो स्तरो मे

1. "Conflict between the ego, super ego, and id may occur in the conscious, foreconscious, or unconscious levels of the psyche, Freud refers to the unconscious, the foreconscious, the conscious as the topographical aspects of the self."—**Brown, J. F.**: *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour*, p. 165.

से अचेतन की अधिक विस्तृत खोज की है। नीचे हम इन तीनो की समुचित व्याख्या प्रस्तुत करेंगे —

(1) चेतन (Conscious)—चेतना का सम्बन्ध वर्तमान से होता है। यह मन का वह स्तर होता है जहाँ से हम अपने अतीत के अनुभव, नाम, तिथियाँ, परिस्थितियाँ, घटनाएँ आदि स्मरण मे लाते है। जे० एफ० ब्राउन के शब्दो मे—'फ्रायड के अर्थ मे चेतन मन का वह भाग है जो कि तात्कालिक ज्ञान से सम्बन्धित है।" चेतन मन के कई उदाहरण हमारे दैनिक जीवन मे मिलते है, जैसे—परीक्षा-भवन में विद्यार्थी प्रश्न का उत्तर लिखता रहता है क्योकि उसे उत्तर सामग्री का ज्ञान होता है।

(2) अवचेतन (Foreconscious)—19वी शताब्दी तक मानसिक प्रतिक्रियाओ के समझने के लिए ज्ञान मन को ही जानने का प्रयास किया जाता था। परन्तु 20वी शताब्दी मे लोगो का ध्यान अवचेतन व चेतन प्रत्ययो की ओर गया। अवचेतन के सम्बन्ध मे आधुनिक दृष्टिकोण मुख्यत निम्न सिद्धान्तो के परिणामस्वरूप प्राप्त हुआ —

(अ) द्वि-मन सिद्धान्त (Dual Mind Theory)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन टी० आई० हडसन ने किया। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति मे दो मन होते है—(i) बाह्य मन (objective mind), (ii) विषयगत मन (subjective mind)। इन दोनो मन की प्रकृति, गुण व प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती है परन्तु इनका एक-दूसरे पर प्रभाव अवश्य पडता है। बाह्य मन का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा होता है जबकि विषयगत मन की जानकारी अन्तर्ज्ञान (intuition) के द्वारा सम्भव है। बाह्य मन मे सामान्य तर्क (inductive reasoning) होती है जबकि विषयगत मन मे एक विशेष प्रकार का तर्क (deductive reasoning) होता है। वास्तव मे हडसन का द्वि-मन सिद्धान्त वैज्ञानिक नही है क्योकि मन का विभाजन नही किया जा सकता बल्कि उसके अनेक पक्ष हो सकते हैं।

(ब) परा सीमान्तर दृष्टिकोण (Ultra Marginal View)—इस दृष्टिकोण के अनुसार अवचेतन व्यक्तिगत चेतन मन (personal conscious mind) से पृथक् है। सामान्यतया चेतन को दो भागो मे बाँटा जाता है—केन्द्रीय भाग (Central or Focal Region) तथा सीमान्त भाग (Marginal Region)। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जेम्स (James) का कहना है कि सीमात भाग 'चेतना का कोर' (*Fringe of*

---

1. " .... ..by the conscious Freud means that segment of the mind which is concerned with immediate awareness "—Brown · *Ibid.*

2 "That segment of the mind where the readily recallable is to be located is called by Freud the foreconscious."—Brown, J. F. *Psych ology and the Social Disorder*, p. 166.

Consciousness) है । अवचेतना भी इसी 'चेतना के कोर' का विस्तार है जिसके विचार स्थिर नही हैं तथा इसी कारण ये किसी भी समय चेतन मन मे प्रवेश कर सकते हैं ।

अवचेतन के सम्बन्ध में उपर्युक्त दृष्टिकोण वास्तव में पूर्ण रूप से वैज्ञानिक नहीं है । इस सम्बन्ध मे पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करने का श्रेय फ्रायड को ही है ।

अवचेतन स्थल रूपरेखीय पहलू का दूसरा भाग है जिसमें ऐसी इच्छाएँ एवं विचार आते हैं जिनका तात्कालिक ज्ञान (immediate awareness) व्यक्ति को नही होता परन्तु अन्तर्निरीक्षण (introspection) की क्रिया से उनका ज्ञान सम्भव है । जे० एफ० ब्राउन के शब्दो मे—**"अवचेतन मन का वह भाग है, जिसमें ऐसी इच्छाएँ या विचार निहित रहते हैं जिसका प्रत्यावाहन किया जा सकता है ।"**

अचेतन (Unconscious)—फ्रायड ने मन की तुलना वर्फ के एक टुकड़े से की है, जिस प्रकार वर्फ के टुकड़े का वहुत वड़ा भाग पानी मे डूवा रहता है तथा डूवे रहने के कारण हम उस डूवे हुए वर्फ के भाग को नहीं देख पाते । इसी तरह अचेतन को भी हम देख नही सकते क्योंकि यह मन का एक वडा भाग होते हुए भी छुपा रहता है ।
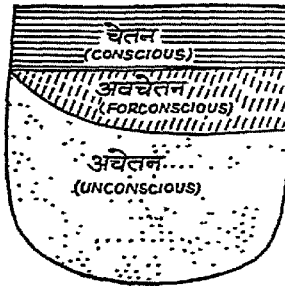
चित्र—23

(फ्रायड के अनुसार मन का सबसे वड़ा भाग अचेतन है । क्योंकि समुद्र में तैरते हुए वर्फ का दसवाँ हिस्सा ही वाहर रहता है, शेष भाग अन्दर रहता है । यह अन्दर का भाग अचेतन है तथा वाहर का अंश चेतन है ।)

अचेतन मन की खोज (Investigation of Unconscious Mind)—फ्रायड से पूर्व भी अचेतन का अस्तित्व था । पश्चिम में अचेतन मन के इतिहास को मुख्यत दो भागो मे वाँटा जा सकता है : एक भाग लीवनिज़ (Liebnitz) से लेकर मॉर्टन प्रिन्स (Morton Prince) तक, दूसरा भाग मॉर्डन प्रिन्स से लेकर फ्रायड एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिको तक । यूनानी विद्वान अफलातून एवं अरस्तू, तथा हार्टमैन

(Hartman), शोपेनहायर (Schopenhauer) व हरबार्ट (Herbart) ने भी अचेतन की चर्चा एव व्याख्या प्रस्तुत की। लेकिन फ्रायड ने अचेतन की सर्वप्रथम वैज्ञानिक रूप से विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है।

अचेतन का अर्थ (Meaning of Unconscious)—अचेतन की प्राथमिक व्याख्या मे ऐसा कहा जाता था कि अचेतन एक निष्क्रिय मानसिक क्रिया है जिसका जीवन मे कोई महत्व नही है, परन्तु फ्रायड ने इस मत को अस्वीकार कर दिया तथा यह बताया कि अचेतन क्रियाओ का व्यक्ति के जीवन मे काफी महत्त्व है। यह एक सक्रिय मानसिक क्रिया है जिसका प्रभाव मानव व्यवहार पर पडता है।

मुन्स्टेरबर्ग (Munsterberg) ने अचेतन के सम्बन्ध मे कहा है कि प्रत्येक मानसिक कार्य मे चेतना रहती है। अत अचेतन शब्द अमानसिक कार्यो से सम्बन्धित रहता है। पर वास्तव मे यह परिभाषा एकागी है। क्योकि "अचेतन वह है जिसके बारे मे व्यक्ति को जानकारी नहीं होती है। यह मन का वह भाग है जो अवरोध के कारण चेतन से भिन्न रहता है।[1] ब्राउन (Brown) के अनुसार—"अचेतन मन का वह भाग है जिसमे ऐसी अनुभवी सामग्री रहती है जिनका स्वेच्छा से व्यक्ति प्रत्याहन नहीं कर पाता, वह या तो स्वतः प्रकट होती है या उन्हें सम्मोहन और दूसरी प्रयोगात्मक प्रविधियों के माध्यम से जाना जा सकता है।"[2]

अचेतन की मुख्य बातें—अचेतन की निम्न महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ है —

(1) अचेतन मन का सबसे बडा भाग है।

(2) अचेतन मे मुख्यत दो प्रकार की इच्छाएँ रहती हैं। प्रथम वे इच्छाएँ जो किसी समय चेतन मे थी लेकिन बाद मे अचेतन मे चली गई होती हैं। दूसरी इच्छाएँ वे होती है जो इतनी कमजोर होती हैं कि चेतन मन तक आ ही नही पाती।

(3) अचेतन मन मे निहित विचार या इच्छाओ आदि को व्यक्ति अपनी इच्छानुसार व्यक्त नही कर सकता।

(4) ये इच्छाएँ स्वत ही प्रकट होती है।

---

1. "That of which the individual is unware In psychoanalysis it is spoken of as the unconscious (*written Unc*), and denotes a part of the mind cut off from consciousness by a resistance." —**R. Macdonald Ladell** : *Dictionary of Psychological Terms*

2. "Unconscious is that segment of the mind which contains such experienced materials which we cannot recall at will, but which may occur automatically and which we know is present in our minds through hypnosis and other experimental procedures"—**Brown, J F**, *Ibid.*

(5) इन इच्छाओं की प्रकृति आदिम एवं शैशविक (primitive and infantile) होती है।

(6) ये गत्यात्मक स्वभाव (dynamic nature) की होती है।

अचेतन के अस्तित्व के प्रमाण

(Proofs for the Existence of Unconscious)

फ्रायड (Freud) ने अचेतन के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए अनेक आधारो (bases) का सहारा लिया, जिनका हम सक्षेप मे नीचे वर्णन कर रहे हैं :—

(1) **दैनिक जीवन की मनोविकृतियाँ** (Psychopathology of Everyday Life)—दैनिक जीवन मे हम अनेक भूलें, गलतियाँ या अकारण व्यर्थ के कार्य करते हैं, जैसे—चाभी का गुच्छा हाथ मे घुमाना, तिनके तोडना, पैर हिलाना, दाढी पर हाथ फेरना आदि। हम इन्हे निरर्थक क्रियाएँ या 'यूँ ही' (*by chance*) कहकर ध्यान तक नही देते। फ्रायड के अनुसार ये क्रियाएँ निरर्थक नही है वल्कि अचेतन की उपज है तथा इन क्रियाओ के पीछे कोई-न-कोई इच्छा या दमित भावना रहती है।

(2) **सम्मोहनावस्था** (State of Hypnotism)—फ्रायड ने सम्मोहन की अवस्था के माध्यम से अचेतन के अस्तित्व को सिद्ध करने की कोशिश की है। सम्मोहन की अवस्था मे व्यक्ति जो कुछ कहता या करता है, उसे वापम जाग्रतावस्था मे कुछ भी याद नही रह पाता। इस स्मृतिलोप (Amnesia) का मुख्य कारण यह है कि सम्मोहन की अवस्था मे व्यक्ति अचेतन स्तर पर निर्देशो को स्वीकार करके कुछ कहता या करता है, लेकिन चेतन स्तर पर वह उसे भूल जाता है।

(3) **स्वप्न** (Dream)—सोते समय भी अनेक क्रियाओ एव दृश्यो को स्वप्न के रूप मे देखते हैं। यह चेतन-स्तर पर नही होते क्योकि सोते समय हम चेतन स्तर पर नही होते। फ्रायड व अन्य मनोविश्लेषणवादियो ने अनेक स्वप्नो के विश्लेषण करने के बाद अचेतन के अस्तित्व के सम्बन्ध मे यह बताया कि स्वप्न अचेतन से ही सम्भव है।

(4) **जाग्रतावस्था** (Awakening)—व्यक्ति रात्रि मे सो जाता है तथा सुबह उठ जाता है। इस बीच या तो वह जागता नही है या बहुत कम जागता है। लेकिन जब उसे कभी 1 बजे रात को किमी कार्यवश जागना होता है तो ठीक 1 बजे उसकी नीद खुल जाती है। ऐसा क्यो? इस 'क्यो' का उत्तर चेतन नही दे सकता क्योकि नीद आने की दशा मे चेतना भी सो जाती है। इसका उत्तर अचेतन के माध्यम से ही सम्भव है। क्योकि नीद के समय अचेतन क्रियाशील हो जाता है और जाग जाने वाली वात भी याद रहती है अत वह 1 बजे जग जाता है।

(5) **निद्रा-भ्रमण या स्वप्नचारिता** (Somnambulism)—कुछ ऐसे लोग भी होते है, जो सोने की अवस्था मे उठ जाते हैं तथा अनेक आवश्यक कार्य करते हैं। कपड़े पहन कर घूम भी आते हैं तथा लौटकर पुनः अपने कमरे मे जाकर सो

जाते है। सुवह उन्हे उन सव क्रियाओ का कोई ध्यान नही होता। प्रश्न यह है कि जव ये व्यक्ति चेतन या अचेतन द्वारा सचालित नही होते तो ये क्रियाएँ कैसे सम्भव है ? ये सव कार्य अचेतन के माध्यम से होता है।

(6) **नामों का अचानक याद आना** (Sudden Remembrance of Names)—कभी-कभी काफी समय की विस्मृतियाँ अचानक ही चेतना मे आ जाती हैं जवकि इससे पूर्व अनेक कोशिशो के वाद भी हम इन्हे याद नही कर पाये थे। ऐसा क्यो होता है ? इसका उत्तर फ्रायड देता है—अचेतन।

(7) **चेतन-विहीन अवस्था से व्यक्त विचार** (Thoughts Expressed after the Use of Anaesthesia)—जव व्यक्ति को क्लोरोफॉर्म, मर्फीया या अन्य सुलाने सम्वन्धी दवा दी जाती है तो व्यक्ति चेतना-विहीन हो जाता है। लेकिन इस हालत मे भी व्यक्ति कुछ न कुछ वडवडाता रहता है। इसका कारण अचेतन ही होता है।

(8) **घवराहट** (Awareness)—जव व्यक्ति घवराहट की अवस्था मे होता है तव वह ऐसी आश्चर्यजनक वातें वोलने लगता है कि व्यक्ति-विशेप को यह आश्चर्य होता है कि ऐसा इसने कैसे कहा ? इसका कारण अचेतन मन ही होता है।

(9) **स्वतन्त्र साहचर्य** (Free Association)—फ्रायड ने अचेतन के अस्तित्व को स्वतन्त्र साहचर्य के आधार पर भी देखा। स्वतन्त्र साहचर्य विधि से रोगी जव कहना शुरू करता है तो वह अनेक ऐसी वातें कह देता है जिनका सम्वन्ध चेतन से न होकर अचेतन से होता है।

(10) **मानसिक रोगो के उपचार** (Treatment of Mental Disorder)—फ्रायड ने मानसिक रोगो का उपचार करते समय रोगियो की अनेक वातो मे अचेतन के अस्तित्व को देखा।

फ्रायड के मनोविश्लेषण के अन्य प्रत्यय
(Other Concepts of Freud's Psychoanalysis)

फ्रायड ने कुछ अन्य वातो का भी वर्णन किया है जिनको समझे विना फ्रायड के विचारो को पूर्ण रूप से समझना मुश्किल है। नीचे हम फ्रायड के सिद्धान्त के कुछ और प्रमुख प्रत्ययो (concepts) का वर्णन करेंगे —

(1) **मनोनियतिवाद** (Psychic Determination)—इसका अर्थ है कि प्रत्येक घटना का कुछ न कुछ कारण अवश्य होता है। जिस प्रकार भौतिक जगत् मे विना पर्याप्त कारण के कुछ भी घटित नही हो सकता, इसी प्रकार मानसिक जगत् (mental life) मे भी कार्य-कारण के सम्वन्ध को फ्रायड ने सत्य पाया। मनोनियतिवाद फ्रायड के सिद्धान्त का आधार है जो इस वात को मानता है कि हमारे व्यवहार के प्रत्येक पक्ष का कोई कारण अवश्य आता है।

(2) **ऑडिपस भाव-ग्रन्थि** (Oedipus Complex)—फ्रायड ने काम (sex) की व्याख्या एक नये ढग से की है। काम-भावना का जन्म फ्रायड के अनुसार वालक के जन्म से ही शुरू हो जाता है। फ्रायड काम-शक्ति (Libido) के सम्वन्ध मे यह

कहता है कि शिशु सबसे पहले आत्म-कामुक (autocratic) होता है लेकिन धीरे-धीरे यही काम-शक्ति अन्य लोगो की ओर उन्मुख हो जाती है। फ्रायड के अनुसार प्राय मानव विरोधी-लिंग (opposite sex) वाले व्यक्तियो की तरफ विशेष आकर्षित होता है। दूसरे शब्दो मे, लडका अपनी काम-शक्ति माँ के प्रति तथा लड़की अपनी काम-शक्ति का सम्बन्ध पिता से स्थापित करती है। फ्रायड के अनुसार इसी विपरीत-लिंग (hetro-sexuality) के कारण ही माँ, पुत्र को तथा पिता, पुत्री को अधिक चाहता है। क्योकि लडका अपनी माँ से प्रेम करता है तथा वह यह चाहता है कि माँ के ऊपर उसका ही एकमात्र शासन रहे, माँ अन्य किसी को प्यार न करे। लेकिन जब वह यह देखता है कि माँ को पिता भी चाहता है तो उसके अन्दर पिता के प्रति प्रतिद्वन्द्विता (rivalary) की भावना जागृत हो जाती है। इसको फ्रायड ने ऑडिपस भावना-ग्रन्थि की सज्ञा दी है। इसी प्रकार लड़की के साथ भी होता है।

जब लड़के या लड़की के अन्दर प्रतिद्वन्द्विता का भाव जागृत हो जाता है तो उसके फलस्वरूप उनके मन मे भयंकर सघर्ष उत्पन्न हो जाता है तथा इसका समाधान वह मनोरचनाओ के माध्यम से करता है तथा उसकी यह भावना अचेतन में चली जाती है तथा इसी कारण व्यक्ति को अपनी बचपन की स्मृतियाँ याद नही होती।

(3) **आत्म-प्रेम या आत्म-शक्ति (Narcissism)**—इससे प्रेरित होकर व्यक्ति *अपने आपको प्रेम करता है। यह ग्रीक के उस उपाख्यान पर आधारित है जिससे कि* नार्सिसस नामक युवक पानी में अपनी परछाई देखकर उसको ही प्रेम करता है। फ्रायड ने आत्म-प्रेम के सम्बन्ध में बताया है कि बच्चो को भौतिक पदार्थो का ज्ञान नही होता। अत. उनकी काम-शक्ति बाहर न जाकर स्वयं मे ही एकत्रित रहती है। लेकिन धीरे-धीरे उसका सम्पर्क भौतिक जगत् से होता है तथा उसका आत्म-प्रेम (self-love) भी बाह्य पदार्थ की तरफ मुड़ जाता है तथा उसकी इस काम-शक्ति को फ्रायड ने 'पदार्थ लिबिडो' (object libido) कहा है।

आत्म-प्रेम सभी व्यक्तियो मे पाया जाता है लेकिन जब यह आत्म-शक्ति (*Narcissism*) अधिक मात्रा में बाह्य जगत् से खिचकर अपने आप में केन्द्रित हो जाती है तो असामान्यता का प्रतीक है, जैसे—मनोविदलता (Schizophrenia) मे रोगी की समस्त शक्ति अपनी ओर ही खिचकर आ जाती है तथा उसका बाह्य जगत् से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।

मनोविज्ञान मे फ्रायड के सिद्धान्त पर सर्वाधिक आलोचना हुई है परन्तु फिर भी उसके सिद्धान्त को लोग गम्भीरता से क्यो ग्रहण करते हैं? क्यो फ्रायड का सिद्धान्त आज भी अनेक मनोवैज्ञानिक तथ्यो का पूर्ण विश्लेषण करता है? ये ऐसे प्रश्न है जो उनके सिद्धान्त की महत्ता की ओर सकेत करते हैं। दूसरे शब्दों में, त्रुटियाँ निहित होने के बावजूद भी फ्रायड के व्यक्तित्व-सिद्धान्त मे महत्त्वपूर्ण सत्य निहित है।

आज तक व्यक्तित्व को समझने के लिए एक विशद् सिद्धान्त की स्थापना अगर किसी ने की है, तो फ्रायड ने ही। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से सर्वाधिक उपयुक्त

सिद्धान्त फ्रायड का ही है। यह ठीक है कि फ्रायड के सिद्धान्त मे अनेक गलतियाँ है। लेकिन प्रश्न यह है कि अन्य सिद्धान्त त्रुटि-विहीन हैं ? ये त्रुटियाँ तो स्वाभाविक है क्योकि मनोविज्ञान का अध्ययन-विषय प्राणी का व्यवहार है जिसमे स्वय ही जटिलता विद्यमान है।

अनेक ऐसे तथ्य फ्रायड के सिद्धान्त मे है जिनकी सत्यता का पता उस समय चलता है जब मानसिक रोगियो की विस्तृत चिकित्सा की जाती है। वास्तव मे फ्रायड ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए गहन अध्ययन किया है। वे व्यक्तित्व की गहराइयो मे घुसे है, जिनको केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से देखने पर तो अतार्किक व असत्यता नजर आती है लेकिन अगर व्यावहारिक व गहनता से अध्ययन किया जाय तो वे ही निष्कर्ष सत्य प्रतीत होते हैं। फ्रायड की प्रसिद्धि का प्रमुख रहस्य यह है कि उसने गहनता के साथ तथा प्रत्येक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व से सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। अत यहाँ यह कहना निर्विवाद सत्य होगा कि कमियो के वावजूद भी फ्रायड का सिद्धान्त व्यापक, गहन एव वैज्ञानिक है तथा व्यवहार के प्रत्येक पक्ष का ठीक वर्णन करता है।

11
मनोलैंगिक विकास
(PSYCHOSEXUAL DEVELOPMENT)

लिंग का अर्थ
(Meaning of Sex)

सामान्य व्यवहार की उपेक्षा असामान्य व्यवहार मे लिंग का महत्त्व अधिक है। लिंग सम्बन्धी विस्तृत जानकारी के बाद ही असमानता को ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। फ्रायड के मतानुसार लिंग सम्बन्धी इच्छाओं का केवल जैवकीय महत्त्व ही नही, वल्कि मनोवैज्ञानिक महत्त्व भी है। लिंग सम्बन्धी इच्छाएँ अत्यधिक प्रबल होती है जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होता है। व्यक्तित्व-विकास मे लिंग को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। फ्रायड ने लिंग के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन लिंग के माध्यम से ही संचालित एव निर्धारित होता है। फ्रायड ने सामान्यत लिंग सम्बन्धी विचार को (लिंग का युवावस्था में आगमन होता है) अस्वीकार कर दिया तथा शैशवकालीन कामुकता (Infantile Sexuality) पर प्रकाश डाला है। शैशवकालीन कामुकता से तात्पर्य है कि लिंग का कार्य बच्चे के स्तनपान से प्रारम्भ होता है। मनोलैंगिक विकास स्तर की विवेचना करने से पूर्व यहाँ लिंग का अर्थ बताना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। प्राय. लिंग (Sex) पद का प्रयोग तीन अर्थो मे होता है :—

(1) लिंग पद प्राणी की उन विशेषताओं के लिए प्रयुक्त होता है जिससे नर-मादा, या पुरुष-स्त्री की दो श्रेणियाँ विभाजित होती है। ध्यान रहे कि कुछ ऐसी भी जातियाँ होती है जिनमे दोनो प्रकार की लिंग विशेषताएँ विद्यमान होती हैं जिन्हें उभयलिंग (Hermaphrodite) कहते है। स्त्री व पुरुष दोनो मे लिंग सम्बन्धी भिन्न-भिन्न लिंग ग्रन्थियाँ (Gonads) होती हैं। इन ग्रन्थियो के स्राव से केवल मैथुन

ही सम्भव नही होता है बल्कि स्त्री व पुरुष के शरीर मे भी कुछ विशेषताएँ उत्पन्न होती हैं जिनकी वजह से पुरुष, पुरुष कहलाते हैं व स्त्री, स्त्री कहलाती है।

(2) द्वितीय अर्थ मे लिंग को जननेन्द्रियो की प्रक्रियाओ के अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है। इससे तात्पर्य यह होता है कि व्यक्ति जीवन के कुछ समय तक लिंग या जननेन्द्रिय प्रक्रियाओ के बिना ही जीवित रहता है।

(3) तृतीय अर्थ मे लिंग को रागात्मक आकर्षण के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि लिंग मे रागात्मक आकर्षण होता है। जिसकी वजह से ही लोग एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते है, प्रेम-लीला आदि करते है। इन रागात्मक आकर्षण से ही मानव के विचार, इच्छा या अनुभव मे रागात्मक उत्तेजना उत्पन्न होती है तथा शरीर के कुछ भाग अत्यधिक सवेदनशील हो जाते है।

कामशक्ति या लिबिडो का विकास
(Development of Libido)

फ्रायड का मत था कि अगर व्यक्ति का मनोलैंगिक विकास साधारण रूप से होता है तो उसके व्यवहार व व्यक्तित्व का रूप भी सामान्य होगा। परन्तु अगर इसका विकास असाधारण रूप से हो तो उसका व्यवहार व्यक्तित्व भी विकृत हो जावेगा। यही कारण है कि विकृत मनोविज्ञान मे काम-विकास का अध्ययन आवश्यक है। यहाँ हम मनोलैंगिक विकास के विभिन्न स्तरो पर प्रकाश डालने से पूर्व कामशक्ति (libido) के विकास की अवस्थाओ पर प्रकाश डालेंगे :—

(i) स्वत: पूर्ण कामावस्था (Auto Erotic Stage)

यह मनोलैंगिक विकास के मौखिक व गुदा अवस्था (oral and anal stage) से सम्बन्धित है। इस अवस्था मे काम-शक्ति शरीर के विभिन्न अवयवो व प्रारम्भिक सवेदनाओं तथा आवश्यकताओ से सम्बन्धित होता है। इसी अवस्था पर काम-शक्ति केन्द्रित हो जाने पर व्यक्ति का लिंग विकास अवरुद्ध हो जाता है जो लिंग-विकृतियो (sexual perversions) का एक बहुत बडा कारण बन जाता है।

(ii) स्वपूर्ण कामावस्था (Narcissistic Stage)

यह वह अवस्था है जिसमे बालक के आकर्षण व प्रेम की वस्तु केवल अपना शरीर व अहम् होता है। इस अवस्था मे बालक को बाह्य वस्तुओ से कोई आनन्द प्राप्त नही होता। जब इस स्तर पर काम-शक्ति का विकास सीमित या केन्द्रित हो जाता है तब उसमे असाधारण अवस्था का जन्म हो जाता है। इसका प्रमाण 'सभ्रान्ति या पैरानोइया' (*Paranoia*) मे मिलता है। इसी प्रकार 'असामयिक मनोह्रास' (*Dementia Praecox*) मानसिक रोग मे रोगी को अनेक प्रकार के विभ्रम (hallucinations) होते है। रोगी इसमे अपनी सम्पूर्ण काम-शक्ति को अपने मे ही सीमित व केन्द्रित कर लेता है। अन्तर्मुखी (introvert) प्रकार के प्रकृति वाले व्यक्तियो मे भी काम-शक्ति का विकास प्राय इस अवस्था तक आकर रुक जाता है।

(3) **बाह्य वस्तु-प्रेम (Allo Erotism)**—इस अवस्था मे पहुँचने पर मनुष्य की काम-शक्ति वाह्य वस्तुओं की ओर उन्मुख हो जाती है। वह अपने लिंग या विरोधी लिंग (same or opposite sex) की ओर आकृष्ट हो जाता है। इस अवस्था पर काम-शक्ति अगर स्थिर हो जावे तो व्यक्ति का वैवाहिक जीवन सुखी व आदर्शमय नही हो पाता। अनेक वैवाहिक जीवन की समस्याएँ स्थिर हो जाती है, उत्तरदायित्व की भावना विकसित नही हो पाती तथा वयस्क होने पर भी उसमें बचपन बना रहता है। साधारण रूप से काम-शक्ति का इस अवस्था मे विकास होने पर व्यक्ति मे सवेगात्मक परिपक्वता (emotional maturity) आती है। व्यक्तित्व-विकास की दृष्टि से भी यह अवस्था काफी महत्त्वपूर्ण है।

मनोलैंगिक विकास का स्तर
(Stage of Psychosexual Development)

फ्रायड के मतानुसार मनोलैंगिक विकास की पाँच अवस्थाएँ है —

(1) मौखिक अवस्था (Oral Stage)
  (अ) मौखिक चूसना (Oral Sucking)
  (ब) मौखिक काटना (Oral Biting)
(2) गुदा अवस्था (Anal Stage)
  (अ) गुदा परित्यागात्मक (Anal Expulsive)
  (ब) गुदा धारणात्मक (Anal Retentive)
(3) शैश्नावस्था (Phallic Stage)
(4) अव्यक्तता अवस्था (Latency Stage)
(5) जनन अवस्था (Genital Stage)

उपर्युक्त 5 अवस्थाओ मे प्रथम तीन को शैशवकालीन कामुकता (infantile sexuality) का काल कहा जाता है। नीचे हम इन अवस्थाओ के सम्बन्ध मे विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

मौखिक अवस्था
(Oral Stage)

फ्रायड के मतानुसार मनोलैंगिक विकास की प्रथम अवस्था मौखिक है। इस अवस्था के दो रूप होते है—**चूषण स्तर** (Sucking stage) तथा **काटना स्तर** (Biting stage)। सम्पूर्ण मौखिक अवस्था जन्म से लेकर 18 माह तक की आयु तक चलती है।

चूषण स्तर जन्म से लेकर करीब 8 माह की आयु तक चलता है। इस अवस्था मे शिशु को स्तनपान के माध्यम से लैंगिक आनन्द प्राप्त होता है। स्मरण रहे कि शिशु का इस अवस्था मे स्तनपान ही एकमात्र पोषण साधन होता है। कभी-कभी जब उसे स्तन चूसने को नही मिलता तो वह अपने अँगूठे को ही चूसने लगता है। फ्रायड का मत है कि इस चूषण-क्रिया से ही लैंगिक आनन्द प्राप्त होता है क्योकि बच्चे की

लैंगिक सम्भोग पद्धति चूमना है। बालक कभी-कभी अपने विशेष अंग को बार-बार स्पर्श करके काम-सुख की प्राप्ति करते हैं। इस सम्बन्ध में लेवी (Levy) ने अपने एक परीक्षण मे देखा कि अगर बच्चे को बोतल से दूध पिलाया जाय और बोतल की चुसनी मे बड़ा छेद हो तो शिशु अपने अँगूठे को चूसने लगता है लेकिन जब यही छेद छोटा कर दिया गया तो वह चूसने की भूख पूर्ण हो जाने के उपरान्त अँगूठा नही चूसता। फ्रायड के मतानुसार शिशु की बार-बार अपने अंग-विशेष को छूने की आदत आगे चलकर हस्तमैथुन (masturbation) के रूप मे विकसित हो जाती है। इस अवस्था मे शिशु अपने व माता मे किसी प्रकार के अन्तर का अनुभव नही, करता। उसे तो अपने शरीर के माध्यम से ही सुख का अनुभव होता है। उसे इस सुख की चेतना नही रहती, इसी करण इसे आत्म-प्रेम या स्वरत्यात्मक तुष्टि (self-love or autoerotic satisfaction) कहा जाता है।

इस अवस्था मे शिशु का सम्पूर्ण शरीर अत्यधिक सवेदनशील होता है जिसके फलस्वरूप उसे कही पर छूने पर सुखद व प्रिय अनुभूति होती है। सक्षेप मे इस अवस्था मे लैंगिक आनन्द जननेन्द्रियो से सम्बन्धित न होकर शरीर से होता है।

करीब 8 माह के उपरान्त इस अवस्था की समाप्ति हो जाती है तथा दाँत निकलने प्रारम्भ हो जाते है। इसी के साथ ही साथ मौखिक अवस्था के द्वितीय चरण दर्शन स्तर का प्रारम्भ हो जाता है। इस स्तर पर शिशु को आनन्द दाँतो से काटकर प्राप्त होता है। दाँत काटने की क्रिया से एक तरफ तो शिशु को सुख प्राप्त होता है और दूसरी तरफ तोड-फोड करने की आक्रामक इच्छा की भी पूर्ति होती है। अन्य शब्दो मे, मौखिक दाँत काटने से बच्चे के अन्दर तोड-फोड या छिन्न-भिन्न करने की आक्रामक प्रवृत्ति (aggressive tendency) का जन्म हो जाता है। इस अवस्था मे बच्चे मे माँ के प्रति घृणा व प्रेम—दोनो प्रकार के भावो का प्रादुर्भाव हो जाता है। ध्यान रहे कि प्रारम्भ मे बच्चो मे स्व-रति या आत्म-कामुक (autoerotic) की प्रधानता होती है लेकिन इसके उपरान्त उसमे आत्म-सम्मोह (narcissism) का प्रवेश हो जाता है। इस समय उसमे अहम् (ego) का भी प्रादुर्भाव हो जाता है जिससे कि उसे अपने व दूसरो के अस्तित्व का ज्ञान हो जाता है। बच्चा अपने आपको प्यार करने लगता है तथा अपनी आक्रामक प्रवृत्ति का भी प्रदर्शन करता है।

मौखिक अवस्था के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको का मत
(Opinion of Psychologists in regard to Oral Stage)

मनोलैंगिक विकास के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतैक्य नही है। युग (Jung) का मत है कि मौखिक अवस्था के सम्बन्ध मे फ्रायड की मनोलैंगिक व्याख्या उपयुक्त नही है, क्योकि काम शक्ति ही जीवन का सब कुछ नही है। चूसना व काटना तो शिशु की वे क्रियाएँ हैं जिनका सम्बन्ध पोषण व शारीरिक वृद्धि व विकास की प्रक्रियाओ से होता है। अत चूसने व काटने को लैंगिक सतृप्ति की प्रक्रिया कहना

उचित नही है । मेलानी क्लाइन (Melanie Klein) का मत है कि मनोलैंगिक विकास के अधिक अश 5 माह के बालक मे देखे जा सकते है । बच्चे को मौखिक नैराश्य (oral frustration) का अनुभव 5 वर्ष उपरान्त होता है । मेलानी क्लाइन व ग्लोवर (Glover) का मत है कि इस काल मे परम अहम् (Super Ego) का भी विकास शुरू हो जाता है ।

नव्य-फ्रायडवादियो (Neo-Freudians) ने भी इस प्रारम्भिक मनोलैंगिक विकास की व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया है । नव्य-फ्रायडवादी बचपन के महत्त्व को स्वीकार करते हैं परन्तु उसके अनुसार चूसना व काटना काम-वासना की क्रियाएँ नहीं है, बल्कि शारीरिक विकास की क्रियाएँ है । अन्य शब्दो मे, इन क्रियाओ से बच्चे के शारीरिक विकास को सहायता मिलती हैं । इनके अनुसार लैंगिक क्रियाएँ गौण होती है तथा प्राथमिक क्रियाएँ तो पोषण से सम्बन्धित होती हैं क्योंकि शिशु मे मुख प्रधानता होती है अत वह मुख द्वारा बाह्य जगत् से सम्पर्क स्थापित करता है । इस प्रकार नव्य-फ्रायडवादियो ने मौखिक अवस्था मे काम-शक्ति (Libido) की अपेक्षा संस्कृति व विकास पर अत्यधिक जोर किया है । कैरेन हॉर्नें (Karen Horney), सलिवन (Sullivan), फ्रॉम (Fromm) आदि इसी मत को स्वीकार करते है । थॉम्पसन (Thompson) का मत है कि मौखिक अवस्था का निर्धारण प्रमुखत. जैविक विकास के द्वारा होता है । अत. हम कह सकते है कि मौखिक अवस्था के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतभेद है । परन्तु अन्य मनोवैज्ञानिको के विचारो के द्वारा फ्रायड-वादी विचार का परिमार्जन अवश्य हुआ है ।

गुदा अवस्था
(Anal Stage)

मनोलैंगिक विकास का द्वितीय स्तर गुदा अवस्था है । फ्रायड के अनुसार इस अवस्था मे लैंगिक आनन्द मुख से हटकर गुदा मे आ जाता है । गुदा प्रक्रियाएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती है—(अ) **गुदा परित्यागात्मक** (Anal Expulsive); तथा (ब) **गुदा धारणात्मक** (Anal Retentive) । गुदा की परित्यागात्मक अवस्था मे शिशु मल-मूत्र त्यागने मे लैंगिक आनन्द का अनुभव करता है क्योकि ऐसा करने से उसका शारीरिक तनाव दूर होता है और उसे आराम प्राप्त होता है । इस अवस्था का आरम्भ सामान्यत छठे महीने मे होता है । इस अवस्था मे बच्चे की काम-वासना की तृप्ति मल या मूत्र को त्याग करने से होती है । जब तक वह मल-मूत्र का त्याग नही करता तब तक उसे एक शारीरिक तनाव का अनुभव होता है जिसे वह मल-मूत्र त्याग करने से दूर करता है । इस प्रकार मल-मूत्र त्याग करने मे उसकी श्लेष्मल झिल्ली (mucous membrane) उत्तेजित होती है तथा बच्चे की मौखिक अवस्था के समान ही लैंगिक आनन्द का अनुभव होता है । इस सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है कि माँ-बाप बच्चे को मल-मूत्र निष्कासन के लिए बाध्य करते है । इससे शिशु यह मम-झने लगता है कि इस क्रिया का काफी महत्त्व भी है । इसके फलस्वरूप वह कभी-कभी

मल-मूत्र को अधिक देर तक धारण करने की क्रिया की भी शुरूआत कर देता है। देर तक मल-मूत्र रोकने के बाद निष्कासन करने पर बच्चे को अधिक सुख की अनुभूति होती है। बिस्तर पर मल-मूत्र करने की क्रिया से उसकी आक्रामक भावना की तुष्टि होती है। कभी-कभी माताएँ बच्चे की खुशामद करती हैं, पुचकारती हैं या सीटी बजाती हैं कि वह मल-मूत्र त्याग करे, इससे उसकी आक्रामक प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहन मिलता है।

अहम् इस अवस्था तक विकसित हो जाता है। इसी के कारण उसके व्यवहार का निर्धारण वास्तविकता के सिद्धान्त से होता है, परन्तु फिर भी उसके व्यवहार मे सुख के सिद्धान्त (Pleasure principle) की ही प्रधानता रहती है। इस अवस्था मे परम अहम् (Super Ego) का भी विकास होने लगता है। उसे लिंग-भिन्नता का भी ज्ञान होना प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु फ्रायड का मत है कि इस अवस्था मे बालक मुँह, गुदा व योनि (vagina) मे अन्तर नही समझता है। अचेतन रूप से बालक लिंग (penis), स्तन, (nipples) व मल (beces) को समान समझता है।

व्यक्तित्व-विकास पर इस अवस्था का काफी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है। क्योकि समाज मे मल-मूत्र त्यागने पर अति कठोर प्रतिबन्ध होते हैं। यही कारण है कि माताएँ शुरू से ही बच्चे को इस सम्बन्ध मे समय व स्थान के बारे मे नियन्त्रण व सफाई की शिक्षा (toilet training) देती हैं। परन्तु अगर यह शिक्षा अत्यधिक कठोर हो तो बालक के व्यक्तित्व पर विपरीत प्रभाव पडता है। क्योकि वह पूर्ण रूप से परिपक्व नहीं होता। अत वह माँ-बाप की इस शिक्षा का पालन नही कर पाता जिसके फलस्वरूप उसमे नैराश्यता (frustration) की भावना उत्पन्न होती है जो सीमित हो जाने पर व्यक्तित्व-विकास मे बाधा उत्पन्न करती है। गुदा अवस्था 8 माह से लेकर 4 वर्ष तक की आयु की अवस्था है। गुदा परित्यागात्मक की अवस्था 8 माह से 3 वर्ष व गुदा धारणात्मक 12 माह से 4 वर्ष तक की आयु की अवस्था होती है।

नव्य-फ्रायडवादियो के अनुसार इस अवस्था मे भी सस्कृति व परम्परा का प्रभाव पड़ता है। मल-मूत्र के निष्कासन या धारण करने मे जो आनन्द बच्चे को प्राप्त होता है, उसका सम्बन्ध काम-शक्ति से न होकर दमित अन्तर्द्वन्द्व (माँ के प्रति) से होता है। सुलिवन (Sullivan) का मत है कि बालक की गुदात्मक क्रियाओ का निर्धारण, शक्ति एव सुरक्षा की इच्छाओ के द्वारा होता है। जिस प्रकार बालक चिल्लाकर अपनी शक्ति को प्रदर्शित करता है उसी प्रकार मल-मूत्र को धारण या निष्कासन करने को भी वह अपनी शक्ति-प्रदर्शन का साधन बनाता है। क्योकि वह जानता है कि जब वह मल-मूत्र त्यागना बन्द कर देगा तो लोग उसकी ओर अधिक ध्यान देंगे, खुशामद करेंगे व पुचकारेंगे। अत बालक इसे दूसरो का ध्यान आकर्षित करने का एक साधन बनाता है।

शैश्नावस्था
(Phallic Stage)

शैश्नावस्था का प्रारम्भ प्राय. 3 या 4 वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होता है तथा यह 7 वर्ष तक चलती है। इस अवस्था मे बच्चे की रुचि का केन्द्र उसकी जननेन्द्रियाँ होती हैं। इस अवस्था मे उसे सुख-प्राप्ति गुदा से न होकर जननेन्द्रिय से होती है। इस अवस्था मे जननेन्द्रियाँ अत्यधिक सवेदनशील होती है। कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि जननेन्द्रिय सम्बन्धी कुछ प्रक्रियाएँ, जैसे—दृढीकरण (crection) स्पर्श, बाह्य उद्दीपक से आनन्द आदि अल्पावस्था मे भी दिखाई पडती है। इस अवस्था मे बालक अपनी जननेन्द्रियो को स्पर्श करने मे अधिक रुचि लेता है। इस अवस्था मे बच्चो के अन्दर प्रदर्शन प्रवृत्ति (*Exhibitionistic Tendency*) की प्रधानता रहती है। बच्चे, भाई-बहिन या माँ-बाप को नगा देखने का अवसर ढूँढते है क्योकि उन्हे लिग-भेद का ज्ञान होता है। जब बच्चो को कमरे से बाहर जाने या दूसरे कमरे मे सोने को कहा जाता है तो उन्हे इस बात का आभास हो जाता है कि माँ-बाप के बीच कोई विशेष क्रिया होती है।

इस अवस्था मे बालिका बालक को यह देखकर ईर्ष्या करती है कि उसके शिश्न (Penis) नही है। वह समझती है कि उसका शिश्न तो था परन्तु खो गया है। इससे उसके अन्दर हीनता-भावना (inferiority complex) उत्पन्न हो जाती है। लेकिन वह यह सोचकर सन्तोष कर लेती है कि बडी हो जाने पर उसके भी माँ के समान स्तन होगे।

इस अवस्था मे बच्चा यौन-क्रिया को समझने लगता है तथा हस्तमैथुन की क्रिया शुरू कर देता है। बालक व बालिका प्राय मिलकर हस्तमैथुन भी करते है। इस अवस्था की प्रमुख निराशा माँ-बाप या बूढो के द्वारा बालक के लिंग काटने (castration) के भय के कारण उत्पन्न होती है। अगर उसे बार-बार जननेन्द्रियो से खेलने के लिए मना किया जावे या इसे गन्दा कहा जावे तो इससे उसकी अपराध भावना दमित हो जाती है जो आगे चलकर अनेक विकृतियो, यथा—चिन्ता-मनस्ताप क्षोभोन्माद आदि का रूप ले लेती है।

इस अवस्था मे लडका माता की ओर अधिक आकर्षित होता है जिसके कारण उसमे मातृ-मनोग्रन्थि (*oedipus complex*) का विकास हो जाता है। हस्तमैथुन के समय मे बालक माँ को ही लैंगिक सगिनी के रूप मे स्वीकार करता है। परन्तु बालक को उचित मैथुन क्रिया का ज्ञान नही होता है। माँ-बाप हस्तमैथुन करने से रोकते हैं। कभी उन्हे जननेन्द्रियाँ काट लेने का भय दिखाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप लडके मे मातृ-मनोग्रन्थि का विकास हो जाता है। दूसरे शब्दो मे, इस अवस्था मे काम-प्रवृत्ति आत्म-कामुक (autoerotic) न होकर अन्य व्यक्तियो के उन्मुख होती है। लड़का माँ से प्रेम करने के साथ ही साथ यह भी कल्पना करता है कि वह पिता के समान बनेगा तथा उसके भी पुरुष जननेन्द्रिय होगी। इस प्रकार से उसमे

पिता के गुणो का अन्त क्षेपण (introjection) भी होने लगता है। उसमे परम अहम् (Super Ego) का विकास होना प्रारम्भ हो जाता है।

जिस प्रकार लडके की काम-शक्ति माँ की ओर उन्मुख हो जाती है उसी प्रकार लडकी की काम-शक्ति पिता की ओर उन्मुख हो जाती है। लडकी पिता को अपना प्रेमपात्र समझती है। माँ को लडकी अपनी प्रतिद्वन्द्वी समझती है। इस प्रकार लडकी मे पितृ-मनोग्रन्थि (*Electra Complex*) का विकास हो जाता है।

इस मनोग्रन्थि के कारण लडके व लड़कियो—दोनो मे प्रतिद्वन्द्विता (rivalry) उत्पन्न हो जाती है। क्योकि लडका माँ से प्रेम करता है अत वह उस पर अपना एक मात्र अधिकार जमाना चाहता है लेकिन जब वह पिता की माँ के साथ घनिष्ठता को देखता है तो वह पिता का प्रतिद्वन्द्वी बन जाता है। इस प्रकार, "**पुत्र का माँ के प्रति प्रेम व उससे शादी करने की इच्छा, पिता के प्रति घृणा तथा उसके मरने की इच्छा को मातृ मनोग्रन्थि कहते हैं।**"[1] ध्यान रहे कि फ्रायड ने 'इडिपस' (oedipus) शब्द यूनानी भाषा से लिया है। यूनानी व्याख्या के अनुसार 'इडिपस' नामक युवक ने भाग्यदेवी के आदेश पर अपने पिता को मारकर माता से विवाह कर लिया था। परन्तु उसे यह ज्ञात नही था कि जिससे वह विवाह करने जा रहा है, वह उसकी माँ है और जब उसे इस तथ्य की सत्यता ज्ञात हुई तो उसे अनेक पापो का सामना करना पडा। पाप का पश्चात्ताप करने हेतु उसने अपनी आँखें निकाल लीं तथा अँधा हो गया।

फ्रायड का मत है कि शुरू-शुरू मे तो लडकी अपनी माँ से ही प्यार करती है परन्तु जब उसे माँ से निराशा प्राप्त होती है तो पिता की ओर आकर्षित हो जाती है। माँ उसके लिए प्रतिस्पर्द्धा होती है। लडकियो मे लडको की अपेक्षा यह स्तर अधिक जटिल होता है। इस प्रकार, "**पुत्री का पिता के प्रति प्रेम प्रवृत्ति तथा उससे विवाह करने की इच्छा, माता के प्रति घृणा के भाव एवं उसके मरने की कामना को पितृ मनोग्रंथि (*Electra Complex*) कहते हैं।**"

मातृ मनोग्रन्थि व पितृ मनोग्रथि के सम्बन्ध मे विभिन्न मनोविश्लेषको ने पर अन्य प्रभावको को भी बताया है। जैसे फेनिकल[3] का कहना है कि मातृ मनोग्रथि पर पारिवारिक, सामाजिक व सास्कृतिक पर्यावरण का प्रभाव पडता है, क्योंकि पर्यावरण मे परिवर्तन होता है। इसीलिए इस ग्रन्थि के स्वरूप मे भी परिवर्तन होता है। अत.

---

1. "Son's tendency to fall in love with his mother and wish to marry her and to hate his father and wish to kill him is called Oedipus Complex."
2. "Daughter's tendency to fall in love with her father and wish to marry him and hate her mother and wish to kill her is called Electra Complex"
3. **Fenichel, O** : *The Psycho-analytic Theory of Neurosis.*

मातृ मनोग्रथि की तीव्रता व स्वरूप दोनो पर पर्यावरण का प्रभाव अनिवार्य रूप से पडता है।

युंग (Jung)[1] के अनुसार मातृ मनोग्रन्थि एक प्रकार की अधिकार ग्रन्थि (possessive complex) है, जिसमे लडका पिता से तो छुटकारा प्राप्त करना चाहता है और माँ पर अधिकार जमाना चाहता है। यह तथ्य और भी अधिक सहायक होता है कि माँ ही बालक का भरण-पोषण करती है। एलफ्रेड एडलर (Alfred Adler)[2] का मत है कि मातृ मनोग्रन्थि को भरण-पोषण के दृष्टिकोण से समझना चाहिए। क्योकि माँ ही बालक की सर्वाधिक देखभाल करती है, उसके भरण-पोषण पर ध्यान देती है, अत इन्ही कारणो के फलस्वरूप मातृ मनोग्रन्थि का जन्म व विकास होता है। थॉम्पसन (Thompson) के अनुसार, आन्तरिक पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर ही मातृ मनोग्रन्थि को समझना चाहिए। जब बालक की किसी इच्छा या रुचि की पूर्ति मे माँ-बाप बाधक के रूप मे आते है तो वे तग आकर उन पर अधिकार जमाना चाहते हैं। इस प्रकार मातृ मनोग्रन्थि के महत्त्व को स्वीकार तो सभी लोग करते है परन्तु इसकी व्याख्या मे मतभेद है।

अव्यक्तता अवस्था
(Latency Period)

मनोलैंगिक विकास के क्रम मे यह अवस्था 5 से 7 वर्ष तक की आयु मे आती है। इस अवस्था मे शैशव-कामुकता सामाजिक अकुश के डर से दमित हो जाती है तथा बालक का बौद्धिक व नैतिक विकास तीव्र गति से होता है। इस अवस्था मे बालक बाह्य वस्तुओ मे अधिक रुचि लेने लगता है। उसमे प्रत्येक नवीन वस्तु व घटना के प्रति जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा विद्यमान रहती है। अन्य शब्दो मे, उनमे बहिर्मुखी रुचि पायी जाती है जिसके कारण वे अपने जीवन का प्रमुख व्यापार—भागना, दौडना, खेलना, हम-उम्र साथी दल का निर्माण करना—बना लेते है। वह सामाजिक आदर्शो को सीखना प्रारम्भ कर देता है। उसे यह भय रहता है कि 'अन्य व्यक्ति क्या कहेगे'। अत. यह भय उसे लैंगिक अनुभवों मे भाग लेने की अनुमति नही देता। लेकिन बिना प्रदर्शन के माँ-बाप व मित्रो से उसका लैंगिक सम्बन्ध बना रहता है। काम-वासना का उदात्तीकरण हो जाता है, क्योकि इस काल मे शैशव-कालीन लैंगिकता दमित होकर शिक्षा के रूप मे प्रकट होती है। इस अवस्था मे बच्चे द्रुत गति से शिक्षा-कार्यो मे रुचि लेते है तथा विद्यालय के पर्यावरण के समायोजन हेतु वे विभिन्न प्रकार के व्यवहार को सीखते है। उचित व्यक्तित्व-विकास के लिए यह अच्छा होगा कि बालक को शिल्पकला व सगीत ऐसे रुचिकर व रचनात्मक कार्य करने की शिक्षा व प्रेरणा प्रदान करें।

---

1. **Jung** *Psychology of Unconscious*
2. **Adler Alfred** : *The Theory and Practice of Individual Psychology.*

वैसे तो इस काल मे यौन-इच्छा दमित हो जाती है परन्तु कुछ लडके-लडकियों मे इस अवस्था मे भी जागृत रहती है। दमित इच्छाएँ अचेतन मे चली जाती हैं। क्योकि अचेतन इच्छाएँ पुन चेतना मे आने का प्रयास करती रहती हैं अत इस काल मे लडके व लडकियाँ प्रतिक्रिया-निर्माण (reaction formation) नामक रक्षात्मक युक्ति का सहारा लेती है। बच्चे अच्छे व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं। इस प्रकार इस काल मे यौन या काम-इच्छा दमित होकर अचेतन मे चली जाती है तथा प्रतिक्रिया-निर्माण के माध्यम से उनकी तुष्टि (gratification) होती है। इस काल मे परम अहम् का विकास तेजी से होता है तथा 'काम-शक्ति' या 'लिबिडो' (*libido*) की शक्ति शिक्षा की ओर मुख्य रूप से केन्द्रित हो जाती है।

जनन अवस्था
(Genital Stage)

अव्यक्तता अवस्था के उपरात जनन अवस्था आती है जो बारह वर्ष से लेकर बीस वर्ष की आयु तक बनी रहती है। लैंगिकता, जो कि अव्यक्तता काल मे दमित रहती है, पुन इस अवस्था मे जागृत हो जाती है। इस अवस्था मे तरुण अवस्था (puberty stage) का आगमन होता है। लिंग को लडके व लडकियाँ जननेन्द्रिय के रूप मे देखते है। इस अवस्था की मुख्य विशेषताएँ—हस्तमैथुन, समलिंगी बच्चो से प्रेम, मनगढत कहानियो मे विशेष रुचि आदि है। लडके व लडकियो को अपने लिंग का ज्ञान हो जाता है तथा उनमे यौन-क्रिया सम्बन्धी रुचि स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस अवस्था मे मुख कामुकता व गुदा कामुकता भी प्रकट होती है। हस्तमैथुन क्रिया पर लडके व लडकियाँ अधिक जोर देते है तथा कभी-कभी बच्चे सामूहिक रूप से भी हस्तमैथुन करते व कराते है। सामाजिक रूप से लडके व लड़कियो को अलग-अलग रखा जाता है अत समलिंगी प्रेम अधिक क्रियाशील होता है। इसे समलैंगिकता या समजाति मैथुन (homosexuality) कहते है। इस अवस्था मे किशोर व किशोरी गन्दे मजाक आदि अधिक करते है। चुम्बन, आलिंगन, स्पर्श आदि के व्यवहार भी प्रकट होने लगते है। इस अवस्था के प्रारम्भ मे तो लिंग प्रधान प्रेम-व्यवहार होता है लेकिन कुछ समय के बाद वास्तविक जननिक अवस्था मे प्रेम-पात्र के प्रति प्रेम-व्यवहार होता है। लड़कियो को यह पता चल जाता है कि योनि (vagina) से ही वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है। जब उन्हे प्रथम बार मासिक धर्म होता है तो वे सतानोत्पत्ति व गर्भाधान की कल्पना करने लगती हैं। अन्य शब्दो मे, उन्हे अपने स्त्रीत्व का ज्ञान हो जाता है। इस अवस्था मे उन्हे उचित पथ-प्रदर्शन मिलना आवश्यक है। अगर उन्हे उचित पथ-प्रदर्शन नही प्राप्त होता है तो उनमे दोष-भाव (guilt feeling) उत्पन्न हो जाता है।

इस अवस्था की मुख्य विशेषता यह होती है कि व्यक्ति अपनी काम इच्छा की तुष्टि अधिक से अधिक चाहता है। लडका अपने को पुरुष व लड़की अपने को नारी या स्त्री प्रमाणित करना चाहती है। इस अवस्था मे समाज काम-सम्बन्ध की अनुमति दे देता है तथा व्यक्ति विवाह के माध्यम से गृहस्थ जीवन प्रारम्भ करता है।

मूल्यांकन (Evaluation)

यह पूर्णत. सत्य है कि फ्रायड से असामान्य मनोविज्ञान को ही नही अपितु सम्पूर्ण मनोविज्ञान को एक नई दिशा मिली, जिसके फलस्वरूप मनोविज्ञान का रूप और अधिक गत्यात्मक व वैज्ञानिक हो गया है। लेकिन फिर भी फ्रायड की काफी आलोचनाएँ हुईं। अनेक दृष्टिकोणों से फ्रायड पर तीव्र प्रहार हुए हैं। फ्रायड के सिद्धान्त पर मुख्यत: निम्न आरोप लगाये गये हैं :—

(1) कुछ आलोचक फ्रायड पर सकीर्णता, अनैतिकता व असामाजिकता का आरोप लगाते है। उनका कहना है कि फ्रायड ने काम (sex) का गलत एव गन्दे रूप मे वर्णन किया है। कुछ आलोचको का यह मत है कि फ्रायड ने अपने सिद्धान्त मे (मुख्य रूप से व्यक्तित्व-सिद्धान्त) जैविक, सामाजिक एव वशानुक्रम कारको को कोई महत्त्व नही दिया है।

वास्तव मे ये आलोचनाएँ भ्रमपूर्ण है। क्योकि फ्रायड द्वारा वर्णित काम को अगर विस्तृत दृष्टिकोण से देखा जाय तो फ्रायड पूर्णत ठीक था। ब्राउन (Brown) ने इस सम्बन्ध मे कहा है :—

"Such a misunderstanding could only arise in the minds of individuals, who have never read Freud.. ....The Theory is thus actually a socio-psycho-biological one "[1]

(2) फ्रायड के व्यक्तित्व पर दूसरा महत्त्वपूर्ण आरोप यह लगाया जाता है कि अनुसन्धानात्मक दृष्टिकोण से यह सिद्धान्त ठीक नही है। दूसरे शब्दो मे, फ्रायड ने निरीक्षण नियन्त्रित परिस्थितियो मे नही किया है। इस आरोप को फ्रायड ने स्वय भी स्वीकार किया है। उसने रोगियो द्वारा कही हुई वार्ता को उसी समय नही लिखा वल्कि कुछ घण्टों के वाद लिखा। लेकिन यह आरोप निराधार है क्योकि एक तो यह कहना कि कई घण्टे के वाद रोगी की वातो को लिखने मे यथार्थता नही आती, गलत है। क्योकि अनेक स्मरण सम्वन्धी शोध इस बात को सिद्ध करते है कि कुछ वातो मे अन्तर हो सकता है लेकिन मुख्य विचारो मे परिवर्तन नही होता है।

(3) फ्रायड पर एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि उसने बिना किसी वाह्य प्रमाण के रोगियो की कही वातो को स्वीकार कर लिया है जो अनुसन्धान पद्धति के दृष्टिकोण से सर्वथा दोषपूर्ण है। इस सम्वन्ध में आलोचको का यह मत भी है कि फ्रायड को रोगियो द्वारा कही गई बातो को उनके सम्वन्धियो, परिचितों, परीक्षणो व डाक्टरी रिपोर्ट आदि स्रोतो से परखना चाहिए था।

इस सम्बन्ध मे फ्रायड की मुख्य दलील यह है कि वह तो रोगियो के अचेतन को समझना चाहता था। अचेतन का ज्ञान मुख्यत स्वतन्त्र साहचर्य एव स्वप्न

1 Brown, J. F.: *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour*, p. 241.

विश्लेषण के आधार पर सम्भव है। अत: दूसरे व्यक्तियो से जानकारी प्राप्त करना ठीक नही था।

(4) एक और महत्त्वपूर्ण आरोप फ्रायड पर यह लगाया जाता है कि उसने बिना तर्क या प्रमाण के आधार पर अनुमान (inference) लगाकर निष्कर्ष ज्ञात किये हैं। केवल चिन्तन के आधार पर ही फ्रायड ने सम्पूर्ण सिद्धान्त की सामग्री प्रस्तुत की है क्योकि फ्रायड ने वास्तविक तथ्यो को कही भी प्रस्तुत नही किया है। उसने कोई विशेष उपयुक्त विश्लेषण प्रणाली भी प्रस्तुत नही की है।

(5) एक अन्य पद्धति सम्बन्धी आरोप फ्रायड पर यह है कि उसने केवल गुणात्मक (qualitative) तथ्यो को प्रस्तुत किया है। उसने कही भी उन्हे मात्रात्मक (quantitative) रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास नही किया है जिससे न तो सांख्यिकीय विश्लेषण ही सम्भव है और न ही उनकी विश्वसनीयता का पता लगाया जा सकता है। इस कमी के कारण फ्रायड के द्वारा प्रस्तुत निष्कर्षो का वैज्ञानिक महत्त्व कम या नगण्य हो गया है।

(6) मूलभूत प्रदत्तो को प्रस्तुत न करने के कारण फ्रायड ने अनेक सन्देहो को जन्म दिया है। कुछ ऐसे प्रश्न है जो फ्रायड के सिद्धान्त की वैज्ञानिकता पर सन्देह प्रस्तुत करते हैं, जैसे—क्या फ्रायड ने वास्तव मे रोगियो का निरीक्षण किया है? उसके निष्कर्ष पक्षपात पर अधिक आधारित है या वस्तुगत तथ्यो पर। फ्रायड ने आत्मगतता (subjectivity) को नियन्त्रित करने के लिए कौन-कौन-सी विधियो का उपयोग किया है? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जो फ्रायड के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे सशय उत्पन्न करते है।

(7) एक और महत्त्वपूर्ण आरोप फ्रायड के सिद्धान्त पर लगाया जाता है कि सिद्धान्त के अनेक अशो की पुष्टि वाह्य तथ्यो से सम्भव नही है, उदाहरणस्वरूप, यह ठीक है कि मृत्यु की इच्छा के आधार पर आत्महत्या, दुर्घटना आदि की व्याख्या की जा सकती है लेकिन यह कदापि सम्भव नही है कि मृत्यु-इच्छा के सम्बन्ध मे कोई अनुभवजन्य (empirical) कथन प्रस्तुत किया जा सके। फ्रायड के सिद्धान्त के आधार पर भावी व्यवहार का पूर्वकथन सम्भव नही है।

12

मनोरचनाएँ या रक्षा-युक्तियाँ
(MENTAL OR DEFENCE-MECHANISMS)

प्रेरणाओं मे सदैव सघर्ष चलता रहता है। इस सघर्ष के कारण मन की प्रवृत्तियो का प्रकाशन सम्भव नही होता जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का सन्तुलन बिगड़ जाता है। चाहे सामान्य व्यक्ति हो या असामान्य, संघर्ष का सामना दोनो को ही करना पडता है। जब सामान्य व्यक्ति इन संघर्षों से परेशान हो जाता है तो उसे अनेक व्याधियों का शिकार हो जाना पडता है। सघर्ष के समाधान या सुलझाव मे मनोरचनाएँ एक प्रभावशाली भूमिका निर्वाह करती हैं। अन्य शब्दो मे, इनसे समस्या का समाधान होता है। सरल शब्दो में, जिन विधियो से अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न समस्याओ का समाधान होता हो या समाधान से सहायता प्राप्त होती हो, उन्हे मनोरचनाएँ कहते है।

मनोरचनाओं का अर्थ
(Meaning of Mental Mechanism)

मैकडॉनल्ड लैडिल (Macdonald Ladell) के अनुसार, मनोरचनाएँ "वे बाधाएँ हैं, जो अचेतन समाज-विरोधी प्रवृत्तियों को अचेतना मे जाने के रोकती हैं"।[1] ब्राउन (Brown)[2] के अनुसार, इनके माध्यम से चेतन या अचेतन मे होने वाले

---

1. "The resistance which prevents unconscious anti-social trends from becoming conscious, and which can lead to the over-display of opposite tendencies."—**Ladell Macdonald** : *A Dictionary of Psychological Terms*, Psychological Magazine, London, 1955, p. 11.
2. "Conflicts between ego, super ego and id in the conscious or unconscious are resolved in an economical fashion in various manners through the so-called 'mechanism'."—**Brown, J. F.** : *Ibid*, p. 168.

अहम्, परम अहम् व इदम् के संघर्षों को अनेक तरह से आर्थिक फैशन के रूप मे निराकरण या न्यूनीकरण करती है अर्थात् मनोरचनाओ मे चेतन या अचेतन होने वाले सघर्षों को लाभप्रद तरीको से दूर किया जाता है। ये तरीके लाभप्रद तो होते ही है साथ ही समाज द्वारा मान्य भी होते है।

विफलता या सघर्ष चाहे उसका सम्बन्ध चेतन स्तर से हो या अचेतन स्तर से, उसके उत्पन्न होने पर व्यक्ति मे एक मानसिक तनाव या चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। चेतन सघर्ष अचेतन सघर्ष की अपेक्षा कम चिन्ता उत्पन्न करता है और उसके समाधान के लिए व्यक्ति को अधिक परेशानी नही उठानी पडती। जब व्यक्ति के अन्दर तनाव या चिन्ता उत्पन्न होती है तो वह ऐसे कार्य करता है जिसके कि उनका यह तनाव दूर हो। वह प्रत्यक्ष तरीको को अपनाकर चिन्तात्मक तनावपूर्ण स्थिति का समाधान करता है। जब व्यक्ति सघर्ष की अवस्था मे पड़ जाता है तो उसके विकल्पो (alternatives) पर तर्क करके एक विशेष निर्णय पर पहुँच जाता है जिससे सघर्ष दूर होता है। लेकिन ऐसा सदैव नही होता। क्योकि कभी-कभी व्यक्ति मे ऐसी इच्छाएँ भी उत्पन्न होती है जो कि अहम् (ego) या परम् अहम् (super ego) अनैतिक एवं असमाजिक होने के कारण) को मान्य नही होती। ऐसी परिस्थिति मे वह दमन (repression) के माध्यम से इच्छा को अचेतन स्तर पर ढकेल देता है। लेकिन अचेतन स्तर पर भी ये इच्छाएँ सक्रिय रूप से चेतन स्तर पर आना चाहती है। अत. यहाँ भी सघर्ष उत्पन्न हो जाता है जिसे अचेतन सघर्ष कहते है। इन्ही सघर्षों का समाधान मनोरचनाओ मानसिक सुरक्षाओ के माध्यम से होता है।

इस प्रकार का सुरक्षात्मक प्रयास सामान्य एव असामान्य दोनो प्रकार के व्यक्तियो द्वारा किया जाता है। जब इनके माध्यम से नैराश्य, अन्तर्द्वन्द्व आदि के समाधान, चिन्ता से रक्षा व व्यक्तिगत महत्त्व को बनाये रखने के लिए उपयोग किया जाता है तो इन्हे सामान्य समायोजन का परिचायक माना जाता है। परन्तु जब इनका उपयोग अधिक मात्रा व तीव्रता के साथ किया जाता है तो व्यक्ति का वास्तविकता से सम्बन्ध टूटने लगता है, व्यक्तित्व विघटित हो जाता है तथा व्यक्ति असामान्य व्यवहारो को अपनाने लगता है। इस प्रकार मनोरचना समायोजन एव असमायोजन—दोनो प्रक्रिया के अग है। साइमण्ड्स (Symonds) ने इस सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है—"ये मनोरचनाएँ समायोजन प्रक्रिया के ही अग है। इन्हे गतिहीन सरचना के रूप मे स्वीकार करने की अपेक्षा प्रेरणा-शक्ति से सम्पन्न गत्यात्मक शक्ति-सचालन के रूप मे स्वीकार किया जाना चाहिए। मनोरचनाएँ केवल चिन्ता के प्रति सुरक्षात्मक प्रयास ही नही है बल्कि चिन्ता को उत्पन्न करने वाले आवेगो को परिवर्तित

---

1. Brown, J. F, *Ibid*, p. 168.

करने की विधियो की ओर भी सकेत है।"[1] सारटेन एवं अन्य ने मनोरचनाओ के सम्बन्ध में मुख्यत दो विशेषताओ का उल्लेख किया है

(i) जब अहम् को यह पता लगता है कि अब उसकी प्रतिष्ठा, प्रशसा या उपयुक्तता को क्षति पहुँचाने वाली है तब मनोरचनाओ के उपयोग का प्रयास किया जाता है।

(ii) व्यक्ति इन मनोरचनाओ एव सुरक्षात्मक प्रयासो के प्रति जागरूक नहीं होता, क्योकि यह प्रयास अर्द्ध-चेतन या अचेतन स्तर पर होता है।

ब्राउन (Brown) के अनुसार—"**मनोरचनाएँ विविध प्रकार की चेतन व अचेतन प्रक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा आन्तरिक संघर्षो का निराकरण या न्यूनीकरण होता है।**"[2] मैक्डुवाल (McDowall) के अनुसार—"**मनोरचनाएँ वे प्रक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा कुंठित मूलप्रवृत्तियाँ (frustrated instincts) अप्रत्यक्ष रूप से समाज द्वारा मान्य तरीको से अपनी संतुष्टि प्राप्ति करती है।**"[3]

सरल शब्दो मे, मनोरचना वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से इदम्, अहम् तथा परम अहम् के बीच उत्पन्न सघर्ष (चेतन या अचेतन स्तर) को दूर किया जाता है। यह सुरक्षात्मक प्रयास स्वय व्यक्ति के लिए लाभप्रद होता है क्योकि उसका मानसिक तनाव या चिन्ता समाप्त हो जाती है तथा यह तरीका सामाजिक एवं नैतिक नियमो के अनुकूल होता है; उदाहरणस्वरूप—एक व्यक्ति एक लडकी से विवाह नही कर पाता जिसके कारण उसकी कामवासना की सतुष्टि नही होती। इससे उत्पन्न सघर्ष को वह कविता लिखकर दूर कर लेता है। इस प्रकार वह संघर्ष को दूर भी कर लेता है तथा इससे किसी प्रकार के सामाजिक नियम का भी उल्लंघन नही होता है। सघर्ष को दूर करने के इस सुरक्षात्मक प्रयास को उदात्तीकरण (sublimation) कहते है। इस प्रकार मुख्यत मनोरचनाओ का उद्देश्य व्यक्ति की

---

1. "These mechanisms are part of the process of adjustment and should be thought of as dynamic forces having motivating power rather than as static structures......Mechanisms are not only defense against anxiety but also indicate methods by which the impulses giving rise to anxiety are redirected."—**Symonds** : *The Dynamics of Human Adjustment*, p. 169-170.

2. "The mechanisms are various conscious or unconscious processes whereby the conflict situation is eliminated or reduced in its severity"—**Brown** : *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour.*

3. "The reactions are mechanisms by which the frustrated instincts obtain satisfaction in a oblique way which is acceptable to the community."—**McDowall** . *Sane Psychology.*

समायोजना को प्राप्त करना है। इसीलिए मैक्डुवाल (McDowall) ने कहा है —"अधिक सामान्य जैविक दृष्टि से मनोरचनाएँ व्यक्ति को अपने वातावरण मे अभियोजन स्थापित करने मे सहायता करती हैं।"[1]

इन मनोरचनाओ के माध्यम से अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करने वाली परिस्थितियो के साथ समायोजन स्थापित करता है लेकिन जब ये ही युक्तियाँ अतिशय रूप ले लेती हैं तो असामान्यता के लक्षण उत्पन्न करती है। पेज (Page) ने इस सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है—"जब तक वे आघात-अवशोषक युक्ति अपसरण व छद्मावरण के रूप मे होती हैं तब तक ये सफल समायोजनपूर्ण रक्षा युक्तियाँ होती है, किन्तु जब ये स्वय उद्देश्य बन जाती हैं या उसका गलत अर्थ लगाया जाता है तथा वास्तविकता के साथ सम्भ्रमित हो जाती है, तब वे असामान्य लक्षण कहलाती हैं।"[2]

मनोरचनाओं का वर्गीकरण
(Classification of Mental Mechanisms)

मनोरचनाओ को अध्ययन के दृष्टिकोण से दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है :—

(क) **मुख्य रचना** (Major Mechanism)—ये वे मनोरचनाएँ है जो स्वतन्त्र रूप से या तो मानसिक तनाव या सघर्ष को देर कर देती हैं या उनकी तीव्रता को कम कर देती है।

(ख) **गौण मनोरचना** (Minor Mechanism)—ये वे मनोरचनाएँ है जो मुख्य रचनाओ की सहायता करती हैं लेकिन यह स्वय सघर्ष दूर करने की क्षमता नही रखतीं।

वास्तव मे, इन दोनो मनोरचनाओ के प्रकार मे पूर्णत. भिन्नता नही है बल्कि ये दोनो प्रकार एक-दूसरे के पूरक (supplement) है।

---

1. "In a more general biological way they may be looked upon as mechanism by which the individual adopts himself to his environment."—McDowall *Sane Psychology*.

2. "As long as they are utilized for what they are—shock absorbers, stratagems, retreats, and camouflages—they are healthy adjustive mechanisms. They are abnormal symptoms when they become ends in themselves or are misinterpreted and confused with reality."—Page, J. D. : *Abnormal Psychology*, p. 39.
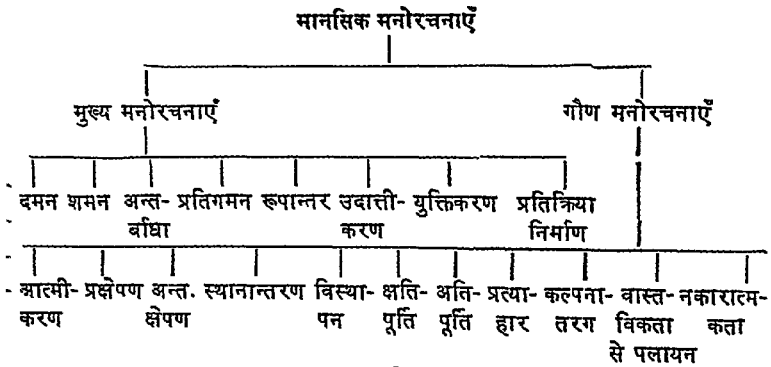
मुख्य मनोरचनाएँ
(Major Mental Mechanisms)

(1) दमन (Repression)—रिचार्ड डब्ल्यू नाइस (Richard W. Nice) के अनुसार, दमन अचेतन प्रक्रिया है। व्यक्ति मे बिना उद्देश्यपूर्ण चिन्तन के, स्वत: रूप में यह क्रियाशील हो जाती है जबकि एक विशेष विचार तथा नैतिक आदर्शों में तीव्र संघर्ष चल रहा होता है।[1] दमन के माध्यम से चेतन संघर्ष का समाधान होता है लेकिन समाधानात्मक क्रिया अचेतन होती है। इदम् (Id) की इच्छाएँ चेतन स्तर पर पहुँचना चाहती हैं लेकिन क्योंकि इसका सम्बन्ध अवास्तविक तथ्यों या असामाजिक क्रियाओ से होता है अत अहम् व परम अहम् को यह मान्य नही होता। इसके परिणामस्वरूप जब एक जटिल सघर्ष-परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है तो उससे छुटकारा प्राप्त करने के लिए अहम् उस इच्छा को अचेतन मे डाल देता है। इसी क्रिया को दमन (repression) कहते हैं।

फ्रायड ने दमन का तब पता लगाया जबकि वह क्षोभोन्माद के एक रोगी का इलाज कर रहा था। दमन मे मुख्यत. निम्न विशेषताएँ होती हैं :—

(1) दमन वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से चेतन मन में सघर्षों का समाधान होता है।

(2) दमन प्रक्रिया मे अहम् दु खद व कष्टकर इच्छाओ को अचेतन मन मे दमित कर देता है।

---

1. "The process of repression is unconscious It takes place automatically, without purposeful thinking on the part of the individual, when a particular idea is in sharp conflict with his own moral values"—Richard, W. Nice : *A Handbook of Abnormal Psychology*, p. 8.

(3) दमन की क्रिया अचेतन या स्वत होती है अत व्यक्ति-विशेप को इसका पता नही चलता।

ब्राउन[1] की निम्न परिभाषा दमन के बारे मे नही, विशेपताओ की ओर सकेत करती है—

"That part of a conflict situation which is most unacceptable to the ego and super ego may be forced into the unconscious by the ego When this occurs the mechanism is called repression"

दमन, अन्तर्बाधा व शमन मे अन्तर (Difference between Repression, Inhibition and Suppression)—दमन प्रक्रिया के माध्यम से दमित इच्छाएँ जब अचेतन मे चली जाती हैं तब व्यक्ति को उसके सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। क्योकि इसके स्थान पर अन्य नई व भिन्न प्रक्रिया आ जाती हैं। दमन प्रक्रिया अचेतन होती है। लेकिन अन्तर्बाधा (inhibition) एक चेतन क्रिया है क्योकि इसके माध्यम से अमान्य कार्यो को नही किया जाता। अन्तर्बाधा के माध्यम से विस्मृत विचारो को व्यक्ति पहचान सकता है जबकि दमित क्रियाओ मे ऐसा सम्भव नही होता। दमन व्यक्ति को छिन्न-भिन्न कर देता है जबकि अन्तर्बाधा मे ऐसा नही होता है। अन्तर्बाधा के दो प्रकार होते हैं —

(अ) **प्रतिवर्ती अन्तर्बाधा** (Retroactive Inhibition)—इस प्रकार की अन्तर्बाधा मे बाद की घटना का पहली घटना पर प्रभाव पड़ने के कारण उसका विस्मरण होता है।

(ब) **संवर्ती अन्तर्बाधा** (Protective Inhibition)—इसमे प्रथम घटना बाद की घटना पर प्रभाव डालती है।

दमन व शमन मे भी अन्तर है। शमन (suppression) मे व्यक्ति किसी अप्रिय विचार या सवेग की जानकारी रहते हुए भी भूल जाने की कोशिश करता है। यह एक प्रकार की चयनात्मक प्रक्रिया है। लेकिन दमन मानसिक सघर्ष के कारण होता है तथा दूषित इच्छाओ के सम्बन्ध मे व्यक्ति को कोई जानकारी नही होती।

दमन का एक उदाहरण
(An Example of Repression)

वैसे तो दमन के अनेक उदाहरण मिल सकते है। लेकिन यहाँ हम एक उदाहरण के द्वारा दमन (repression) को समझा सकते हैं। एक व्यक्ति अपनी भाभी से अपनी काम-वासना की तृप्ति करने की इच्छा रखता है। लेकिन क्योंकि उसकी यह इच्छा अनैतिक है अत. चेतना इसे अस्वीकार कर देती है जिसके परिणाम-

---

1. **Brown, J. F.** : *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour*, p. 100.

स्वरूप सघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस चेतन सघर्ष को व्यक्ति अपने अचेतन मे दवा देता है तथा इस प्रकार सघर्ष समाप्त हो जाता है।

दमन सफल भी हो सकता है या असफल भी तथा यह भी सम्भव होता है कि एक वार जो इच्छा दमित हो गई वह फिर से चेतना मे आ जाय। क्योकि अचेतन की इच्छाएँ सदैव सघर्ष करती रहती है। दमित सामग्री अगर प्रत्यक्ष रूप से सम्भव नही हो तो अप्रत्यक्ष तरीकों से (विभिन्न रूपो मे भेष वदलकर) वाहर निकलने का प्रयास करती है तथा हमारी जाग्रत जीवन की अनेक क्रियाओ को प्रभावित करती है। इसका उदाहरण हमे स्वप्नो, दिवास्वप्नो, अनेक मानसिक रोगो के लक्षणो या अन्य प्रतिदिन की भूलो मे मिलता है।

मूल्यांकन (Evaluation)—दमन मनोरचना के लाभप्रद व हानिप्रद दोनो पहलू है। लाभप्रद पक्ष के अन्तर्गत दमन सभ्यता के विकास मे सहायक होता है। दमन के कारण ही व्यक्ति मल मूत्र त्यागने मे संयम वरतता, अपनी भयावह इच्छाओ का नियत्रण करता है, दु खद भावो, आवेगो आदि के अनुपयुक्त प्रभाव से रक्षा करता है। वह आक्रामक प्रवृत्तियो का दमन करता है, शैशवकालीन आवेगो का दमन करता है। अगर ऐसा नही हो तो या तो समाज के चारो ओर लूट-खसोट दिखायी दे या व्यक्ति मे अनेक प्रकार के व्यक्तित्व गुणो का विकास ही नही हो। दमन हमारे मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करता है तथा चिन्ताओ से मुक्ति का साधन होता है।

दमन के हानिप्रद पक्ष से व्यक्ति को अनेक प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पडता है। क्योकि विभिन्न विफलताओ, नैराश्यो व अन्तर्द्वन्द्वों मे अगर आवेग तीव्र है या तीव्रता उपस्थित करने वाली परिस्थितियो का जन्म हो जावे तव दमन अपर्याप्त होता है। इस अपर्याप्तता के कारण मानसिक विघटन होने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति मे (तीव्र विफलता व अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति मे) व्यक्ति की अचेतन इच्छाओ को चेतन मे आने का अवसर प्राप्त हो जाता है। पूर्ण रूप से या आशिक रूप से दमन असफल हो जाने से व्यक्ति मे मनस्ताप (neuroses) व मनोविक्षिप्तता (psychoses) उत्पन्न होने की सम्भावनाएँ वढ़ जाती हैं।

दमन का व्याधिकीय महत्त्व (Pathological Implications of Repression)—**साइमन्ड्स** (Symonds) का मत है कि दमन की असफलता के प्रति चार प्रकार की सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाओ का होना स्वाभाविक हो सकता है—(1) **हिस्टीरिकल** (Hystrical), (2) **फोविया** (Phobia), (3) **मनोग्रस्तता** (Obsessive), एव (4) **संभ्रान्तिवत्** (Paranoid)। इसका मुख्य कारण यह होता है कि जव शमन इच्छाएँ (suppression's desires) अचेतन मे पहुँचती है तो अन्य मिलती-जुलती दमित इच्छाओ के साथ एक समूह वना लेती है, जिसे ग्रन्थि (complex) कहते है। जव भी असवर मिलता है तव ही ये इच्छाओ का समूह चेतना मे आने का प्रयत्न करता है लेकिन क्योकि इन इच्छाओ का सम्बन्ध मुख्यत असामाजिक व अनैतिक होता है अत अहम् व परम अहम् इन्हे स्वीकार नही करता जिसके फलस्वरूप सघर्ष

उत्पन्न हो जाता है। इस सघर्ष का स्तर अत्यन्त तीव्र होता है। व्यक्ति की मानसिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है तथा इसे दूर करने के लिए ही उपयुक्त सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाओ का उपयोग किया जाता है।

(2) शमन (Suppression)—यह वह रक्षायुक्ति है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी इच्छा व प्रयत्न के द्वारा, चेतन रूप मे ऐसे विचारो, इच्छाओ आदि को दबा लेता है जो अप्रिय, दुखद व अनैतिक होती हैं। स्मरण रहे कि दमन (repression) नामक मनोरचना मे व्यक्ति की इच्छा व प्रयत्न आदि का कोई महत्त्व नही होता अर्थात् बिना इनकी सहायता से अप्रिय, दुखद या अनैतिक इच्छाओ को दमित किया जाता है जबकि शमन (suppression) मे व्यक्ति यह जानता है कि वह अपनी इच्छाओ या विचारो को चेतन से हटा रहा है। पेज (Page) के अनुसार, "ध्यान के क्षेत्र से कष्टदायक आवेगो व स्मृतियो का विमर्शित व निष्कासन शमन कहलाता है।"[1] जैसे युवक पुत्र की मृत्यु को पिता जान-बूझकर तथा प्रयत्नपूर्वक चेतना से हटाना चाहता है।

(3) अन्तर्बाधा (Inhibition)—यह वह सुरक्षात्मक प्रयास है जिसमे एक भावना या इच्छा दूसरी भावना या इच्छा के उपस्थित होने के कारण विस्मृति हो जाती है। इस प्रकार इस मनोरचना से दुखद, अप्रिय व अनैतिक इच्छाओ को भुलाया जा सकता है। दमन, शमन व अन्तर्बाधा तीनो के ही द्वारा, अलग-अलग प्रकार मे दुखद अप्रिय व अनैतिक इच्छाओ को चेतना से हटाया जा सकता है। इन रक्षायुक्तियो से व्यक्ति को अपने अन्तर्द्वन्द्व को काफी हद तक दूर करने मे सहायता प्राप्त होती है। ब्राउन (Brown) के अनुसार, "दमन चेतन द्वन्द्व के समाधान की प्रमुख रक्षायुक्ति है। परिवर्तन, प्रतिगमन, उदात्तीकरण, प्रतिक्रिया व युक्तिकरण अचेतन के अन्तर्द्वन्द्व के समाधान की प्रमुख रक्षायुक्तियाँ हैं।"[1]

(4) प्रतिगमन (Regression)—प्रतिगमन मे व्यक्ति अपनी शैशवावस्था मे पुन. लौट आता है अर्थात् वह शैशवकालीन अपरिपक्व (immature) व्यवहार का प्रदर्शन करता है। व्यक्ति जब अपनी इच्छाओ की पूर्ति नही कर पाता तो उसमे एक प्रकार का सघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस सघर्ष से बचने के लिए वह अचेतन रूप से अपनी प्राथमिक अवस्था मे लौट जाता है। दूसरे शब्दो मे, प्रतिगमन वह मनोरचना है जिसके माध्यम से एक व्यक्ति व्यक्तिगत असमर्थता या सासारिक कठिनाइयो से समाधान

1. "The deliberate and conscious rejection of discomforting impulses and memories from the field of attention is called suppression"—Page, J. D *Abnormal Psychology*

2 "Repressions is the major mechanism for the solutions of conscious conflict conversion, regression, sublimation, reaction and rationalization are the major mechanisms of the resolution of unconscious conflict."—Brown, J. F, *Ibid*

प्राप्त करने के लिए प्रारम्भिक बाल्यकाल या शैशवकाल की प्रतिक्रियाओ का सहारा लेता है। ब्राउन[1] के शब्दो मे—

"By regression we mean the reversal of the ordinarily progressive sequence of development and hence the return to more primitive forms of personality structure."

मॉरगन (Morgan) के शब्दो मे—"जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए बाल्यावस्था मे पलटने की प्रकृति ही प्रतिगमन है"[2]। फिस्टर (Pfister) के अनुसार, "प्रतिगमन सदैव बाल्यावस्था की पुनरावृत्ति है जिसमें या तो शैशवावस्था की कल्पनाओं, भावों और लालसाओं का प्रतिनिधित्व होता है या बाल्यावस्था के व्यवहारों का नवीनीकरण होता है।"[3]

प्रतिगमन की विशेषताएँ (Characteristics of Regression)—समस्त परिभाषाओ को विचारपूर्वक अध्ययन करने से प्रतिगमन की निम्न विशेषताएँ बतलाई जा सकती हैं :—

1 प्रतिगमन का कारण व्यक्ति की इच्छाओ की अपूर्ति के फलस्वरूप सघर्ष उत्पन्न होता है।
2 इस सघर्ष का समाधान एक प्रकृति के रूप मे होता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अचेतन रूप से अपनी प्राथमिक अवस्था मे लौट आता है।
3. प्रतिगमन मे व्यक्ति बच्चो के समान व्यवहार करने लगता है, उसके विचारो एव कल्पनाओ आदि मे भी इसके प्रभाव को देखा जा सकता है।

प्रतिगमन के प्रकार (Types of Regression)

प्रतिगमन दो प्रकार का होता है —

(1) अहम् प्रतिगमन (Ego Regression)—अहम् प्रतिगमन के माध्यम से व्यक्ति विफलता व सघर्ष (frustration and conflict) से अपनी रक्षा करता है। वह ऐसे कार्य या वस्तु का उपयोग करके सुख प्राप्त करने लगता है, जिसे प्राय.

---

1 **Brown, J F.** : *Ibid*, p 272.

2. "Regression is the tendency to solve the problems of life by reverting to childhood."—**Morgan** *The Psychology of Abnormal People.*

3. "It (regression) is always a reversion to the infantile, and it is either a representative of childish fancies, feelings and strivings, or a renewal of types of behaviours which are adapted to an infantile stage of development "—**Pfister** *Die Psychoanalytische Method.*

बच्चे किया करते है । जिस प्रकार सेना पराजित होते समय अपनी रक्षा के लिए पीछे लौट आती है तथा एक सुरक्षित स्थान से शत्रु का मुकाबला करती है, उसी प्रकार जब व्यक्ति जीवन के युद्ध मे पराजित हो जाता है और मानसिक संघर्ष का शिकार बन जाता है तो अपने मानसिक संघर्ष को दूर करने के लिए प्राथमिक प्रक्रियाओ का सहारा लेता है ।

(2) **काम-शक्ति प्रतिगमन** (Libido Regression)—इस प्रकार के प्रतिगमन मे व्यक्ति अपनी काम (sex) सम्बन्धी प्रवृत्तियो की सन्तुष्टि प्राथमिक निर्गम स्थान (outlet) के माध्यम से करता है । इस दिशा मे **टैंसले** (Tansley) ने महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया है । जब काम-शक्ति आगे बढकर सन्तुष्टि नही प्राप्त कर पाती तो वह पीछे लौट आती है, जैसे—प्रेम-प्रदर्शन प्रेम-पात्र पर प्रदर्शित करने मे असमर्थता के कारण बच्चो की तरह खिलौने या गुड्डे-गुडियो से अपने प्रेम का प्रदर्शन करना । प्रतिगमन के दोनो पहलुओ मे घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

काम-शक्ति प्रतिगमन के अन्तर्गत प्रतिगमन के दो रूप और मिलते हैं —

(i) **मौखिक** (oral) **स्थिति तक प्रतिगमन**—इस प्रकार के प्रतिगमन के अन्तर्गत व्यक्ति जन्म के उपरान्त प्रारंभिक आयु स्तक की क्रियाओ को करता है, जैसे अगूँठा पानी या अन्य प्रकार से आत्म कामुक (auto-erotic) व्यवहार से प्रदर्शित करना ।

(ii) **गुदीय** (anal) **स्थिति तक प्रतिगमन**—इस स्तर पर प्रतिगमन मे व्यक्ति का मल-मूत्र असयम उत्पन्न हो जाता है । ऐसा करने से मूल मे यह भावना रहती है कि माँ-बाप तथा अन्य लोग उसकी ओर विशेष ध्यान दें । वह अधिकतर गन्दा रहने लगता है, कब्ज की प्रवृत्ति, अपनी अधिक परवाह न करना । अन्य शब्दो मे, वह ऐसी अभिव्यक्तियाँ करता है जो असहाय होती हैं तथा इन क्रियाओ से लोगो का ध्यान आकर्षित होता है ।

अन्तर्द्वन्द्व को दूर करने का यही तरीका क्यो ?—यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि व्यक्ति अपने मानसिक संघर्षों का समाधान बाल्य-क्रियाओ के माध्यम से ही क्यो करता है ? इसके सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको का यह मत है कि मानव जीवन की सबसे सुखी अवस्था बचपन है । कम इच्छाएँ होती हैं तथा उनकी तृप्ति मे कोई विशेष बाधा उत्पन्न नही होती । बालक को कोई विशेष चिन्ता नही होती । लेकिन जब व्यक्ति वास्तविक जगत् मे आता है तो उसे विभिन्न कठिनाइयो, बाधाओ संघर्षो का सामना करना पडता है । असफल होने पर वह फिर से अपने बचपन काल मे लौट आता है । वह अज्ञात रूप से बाल्यावस्था की ओर मुडता है जहाँ उसे कुछ देर के लिए सुख प्राप्त होता है ।

प्रतिगमन के कारण—वास्तविकता से पलायन ही प्रतिगमन का मुख्य कारण है ।

व्याधिकीय महत्व (Pathological Implications)—प्रतिगमन के आधार पर अनेक प्रकार की मानसिक विकृतियो को समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मनोविकृति (psychosis), मनोविदलता (schizophrenia) आदि मे भी प्रतिगमन का काफी महत्त्व है।

मनोविश्लेषको (psychoanalysis) का कहना है कि काम-शक्ति प्रतिगमन (libido regression) का सम्बन्ध दूध पीने की अवस्था (sucking stage) से तथा अहम् प्रतिगमन (ego regression) का सम्बन्ध प्रारम्भिक आत्म-सम्मोह (narcissism से है।

मूल्यांकन (Evaluation)—प्रतिगमन नामक मनोरचना का प्रमुख लाभप्रद पक्ष यह है कि इसके द्वारा जीवन की विभिन्न कठिनाइयो से कुछ समय के लिए राहत मिल जाती है। परन्तु इस राहत का ढग अनुपयुक्त है, अत इस रक्षा युक्ति से अनेक हानियाँ भी उत्पन्न हो जाती है। क्योकि इस मनोरचना मे वर्तमान वास्तविकता से छुटकारा प्राप्त करने के भाव निहित होते है अत इसका प्रभाव व्यक्ति की उचित परिपक्वता पर पडता है। व्यक्ति की वास्तविकता परख की योग्यता मे कमी आ जाती है। इसके अत्यधिक उपयोग से व्यक्ति आवश्यक समस्याओ को हल नही कर पाता बल्कि उससे छुटकारा पाना, या चकमा देने या सामना करने से भाग जाने आदि की क्रियायें करने लगता है।

(5) रूपान्तर (Conversion)—यह वह मनोरचना है जिसमे मानसिक सघर्ष का समाधान शारीरिक रोगो के लक्षणों के रूप मे होता है। शारीरिक लक्षणो से तात्पर्य गतिवाही (motor) ज्ञानेन्द्रिय जन्य (sensory) व शारीरिक (somatic) लक्षणो से होता है। दूसरे शब्दो मे, रूपान्तर के माध्यम से दमित इच्छा परोक्ष रूप से शारीरिक रोगो के अनेक लक्षणो से प्रकट हो जाती है। ब्राउन के अनुसार, **"रूपान्तर वह मनोरचना है जिसके द्वारा विफलित एवं दमित मूलप्रवृत्तियों की शक्तियाँ, शारीरिक लोगों के क्रियात्मक लक्षणो मे परिवर्तित हो जाती है।"**[1] इस प्रकार सक्षेप मे निम्नलिखित मुख्य बातें मिलती हैं :—

1 मनोविश्लेषण के अन्तर्गत रूपान्तर का काफी महत्त्व है, क्योकि फ्रायड ने अनेक आगिक रोगो (organic diseases) को समझाने के लिए इसका सहारा लिया।
2. रूपान्तर के माध्यम से दमित मूलप्रवृत्तियो की सतुष्टि हो जाती है जिसके फलस्वरूप मानसिक सघर्ष दूर हो जाता है।

---

1 "Conversion is the mechanism through which repressed every connected with the frustration of basic drives is chang ed (converted) into the functional symptoms of bodily disease" —**Brown, J. F.** : *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour*, p. 171.

3. दमित मूलप्रवृत्तियो की सन्तुष्टि शारीरिक लक्षणो मे होती है, जैसे—शून्यता, वाणी एव ज्ञानेन्द्रिय की विकृति आदि।
4 इसका प्रमुख उदाहरण रूपान्तर क्षोभोन्माद (conversion hysteria) मे मिलता है, जैसे—सैनिक का लडाई से पहले ही हाथ न उठना जिससे कि बन्दूक चलाने मे असमर्थ हो जाय।

सक्षेप मे, रूपान्तरण नामक मनोरचना के द्वारा व्यक्ति अपने दमित अन्तर्द्वन्द्वो की अभिव्यक्ति विभिन्न शारीरिक रोगो के लक्षणो के द्वारा करता है तथा इन लक्षणो का कारण दैहिक (physiological) न होकर मानसिक (mental) होता है। इस शारीरिक असमर्थता से व्यक्ति को एक तरफ अपने दवावपूर्ण दु खद स्थिति से छुटकारा प्राप्त हो जाता है तो दूसरी तरफ उसे अनेक लाभ भी प्रदत्त होते है, जैसे—परिवार सदस्यो की सहानुभूति, मित्रो का प्रेम आदि। फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त मे इस सुरक्षात्मक प्रयास को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस मनोरचना मे सर्वप्रथम सवेगात्मक अन्तर्द्वन्द्व का दमन होता है। लेकिन प्राय यह अवदमन सफल नही होता जिसके परिणामस्वरूप दमित इच्छा छद्म रूप मे विभिन्न रोगो का रूप ले लेते है। इस मनोरचना से क्षोभोन्माद (Hysteria) के कारणो की खोज मे पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है।

(6) उदात्तीकरण (Sublimation)—उदात्तीकरण एक मूलप्रवृत्ति (instinct) का कुछ उपयोगी स्थानान्तरण है।[1] हमारी कुछ इच्छाएँ सामाजिक मर्यादाओ एव प्रतिवन्धो के कारण सन्तुष्ट नही होती, तव इस मनोरचना के माध्यम से उस असन्तुष्ट इच्छा की समाज द्वारा मान्य तरीको एव कार्यों मे अभिव्यक्ति होती है। इसका प्रमुख उदाहरण साहित्य-सृजनकर्त्ता मे प्राय मिलता है, जैसे—महाकवि दाते जब बीट्रिस नामक सुन्दरी के प्रेम मे विफल हो गया, तो कविता लिखकर महाकवि बना था। महाकवि तुलसीदास अपनी पत्नी से इतना अधिक प्रेम करते थे कि उसके वियोग को सहन नही कर पाते थे। एक वार पत्नी जब मायके गयी हुई थी तो तुलसीदास भी उसके पीछे वहाँ तक पहुँच गये। इस पर पत्नी काफी नाराज हुई तथा भर्त्सना करते हुए कहा कि अगर इतना असीम प्रेम भगवान के प्रति होता तो कितना अच्छा होता। कहा जाता है कि इन्ही वाक्यो को सुनकर तुलसीदास ने राम की आराधना प्रारम्भ की। इस प्रकार इस मनोरचना के माध्यम से दमित इच्छाओ की पूर्ति रचनात्मक कार्यों के द्वारा होती है। फिशर (Fisher) के शब्दो मे, उदात्तीकरण वह पुन निर्देशन की क्रिया है जिससे कि काम-शक्ति की प्रवृत्तियो

---

1. "Sublimation is the transformation of an instinct into something useful."—**Richard, W. Nice** : *A Hand-book of Abnormal Psychology*, p. 8.

या प्रेरको का नैतिक, सास्कृतिक तथा सामाजिक विपयो की ओर पुन निर्देशन होता है।[1] ब्राउन के अनुसार उदात्तीकरण मे दमित मूलप्रवृत्तियो का प्रतिस्थापन सामाजिक स्वीकारात्मक उद्देश्य मे होता है।[2] इन परिभापाओ मे मुख्यत निम्न विशेपताएँ मिलती हैं :—

1 यह एक मुख्य मनोरचना है।
2. इसके द्वारा दमित इच्छाओ का पुन. निर्देशन होता है।
3. यह पुन निर्देशन या प्रतिस्थापन सामाजिक क्रियाओ के रूप मे होती है।
4. सघर्ष का समाधान परोक्ष रूप के होता है।
5. फ्रायड तथा अन्य मनोविश्लेपणवादियो के अनुसार कलात्मक साहित्य, वैज्ञानिक व दार्शनिक आदि कार्यो के पीछे उदात्तीकरण ही कार्य करता है।
6. यह लाभदायक भी है क्योकि इसमे रचनात्मक क्रियाओ के माध्यम से मानसिक सघर्प दूर हो जाता है। यह व्यक्ति से मानसिक स्वास्थ्य मे सहायक है।
7. लेकिन उदात्तीकरण हानिप्रद भी होता है क्योकि अगर यह अतिविकसित (overdeveloped) हो जावे तो समायोजन मे वाधा तथा वाध्यतात्मक (compulsive) का रूप ले लेता है।

मूल्यांकन (Evaluation)—उदात्तीकरण या उन्नयन के माध्यम से व्यक्ति की वास्तविक इच्छाओं की अभिव्यक्ति रचनात्मक कार्यो के द्वारा होती है। इसमे न केवल सम्भावित विफलता से ही वचाव होता है वरन् व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है। यह मनोरचना व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को सरक्षण प्रदान करती है, साथ ही साथ व्यावसायिक उपचार का भी कार्य करती है। टेलर (Taylor) के अनुसार उदात्तीकरण वह महत्वपूर्ण साधन है जिससे व्यक्ति को तनावो से अत्यधिक मुक्ति प्राप्त होती है। रोहिम (Rohiem) ने इस मनोरचना को एक मनस्ताप कहा है जिससे व्यक्ति को समूह का मान्य व वाछित सदस्य वनाने के लिए उसे समूह से सम्वद्ध किया जाता है। परन्तु इस मनोरचना का उपयोग अत्यधिक हो जाता है तो इसका वाध्यात्मक (compulsive) स्वरूप हो जाता है। अतिरजन रूप लेने से व्यक्ति अपने कार्यों पर नियत्रण नही रख पाता तथा उसे समायोजन करने मे वड़ी कठिनाई होती है।

---

1. "Sublimation is the redirecting of libidinal impulses or motives to ethical, cultural and social objectives"—Fisher, V. E.
2. "By sublimation we mean the resolution (of the basic urge frustrations through the substitution) of a socially acceptable goal."—J. F. Brown : *Ibid*.

रूपान्तर, उदात्तीकरण तथा अवदमन (Conversion, Sublimation and Repression)—दोनो के माध्यम से अप्रत्यक्ष ढग से सघर्ष दूर होता है। लेकिन सघर्ष दूर के साधनो मे भिन्नता है क्योकि रूपान्तर मे जहाँ मानसिक सघर्षों का समाधान शारीरिक रोगो के लक्षणो के रूप मे होता है वहाँ उदात्तीकरण मे रचनात्मक एव सामाजिक रूप से मान्य क्रियाओ मे होता है। इन दोनो मे दूसरा अन्तर यह है कि शारीरिक लक्षण हानिप्रद होता है जबकि रचनात्मक कार्य लाभप्रद एव समाज के अनुकूल होते हैं।

अवदमन मे अवाछित इच्छाओ को दमित कर लिया जाता है। इनके दमित होने के परिणामस्वरूप ये मानसिक व्याधियो के लक्षणो या अन्य विकृत रूप मे व्यक्त होती है जबकि उदात्तीकरण मे इन मौलिक इच्छाओ को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने की दिशा प्रदान की जाती है। ध्यान रहे कि चेतन स्तर पर व्यक्ति को यह पता नही रहता कि उसकी अमुख अमान्य इच्छा इस रचनात्मक कार्य के रूप मे व्यक्त हो रही है। ब्राउन का कहना है कि उदात्तीकरण मे अचेतन अन्तर्द्वन्द्व का अन्त रचनात्मक कार्यो मे पलायन के रूप मे (flight into creative work) होता है।

(7) **युक्तिकरण** (Rationalization)—यह व्यक्ति के लिए सम्भव है कि वह एक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण इस प्रकार करे कि अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न ही नही हो। फ्रायड के सिद्धान्त के अनुसार इदम् से सम्बन्धित आवेग परम अहम् आवेगो (super ego impulses) के साथ अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करता है। इन दो इच्छाओ मे, जिस क्षेत्र मे अन्तर्द्वन्द्व होता है उसी क्षेत्र मे ही अहम् भी क्रियाशील होता है। युक्तिकरण मनोरचना के माध्यम से व्यक्ति या तो परिस्थिति को पुन परिभाषित करता है या बाह्य ससार की प्रकृति मे ही परिवर्तन कर लेता है। स्टेगनर के शब्दो मे—

"Rationalization is thus a process of redefining a situation, of changing the nature of the external world so that laws and other restraining influences are said not to apply to this instance"

इसमे व्यक्ति तार्किक रूप से या दोषपूर्ण चिन्तन के माध्यम से अचेतन इच्छाओ को छिपाने का कार्य करता है। जब व्यक्ति अपनी काम-वृत्ति सम्बन्धी इच्छाओ या वासनाओ की पूर्ति नही कर पाता तो वह युक्तिकरण का सहारा लेते हुये कहता है कि चलो, अच्छा ही हुआ। अर्थात् अचेतन इच्छाओ की पूर्ति करने के लिए वह अपने को धोखे मे डालता है तथा अनेक कमियो एव बुराइयो के माध्यम से अचेतन प्रेरणा का रूप बदलने या छिपाने का कार्य करता है, उदाहरणस्वरूप, लोमडी वृक्ष तक तो पहुँचने मे असमर्थ रहती है लेकिन कहती यह है कि "अगूर खट्टे" है। इस मनोरचना के दैनिक जीवन मे काफी उदाहरण मिलते है, 'क्या करूँ, अब बुरे दिन आ गए है' 'मेरी घडी बन्द हो गई थी,' 'यन्त्र खराब हो गए थे', 'बस इस बार ही गडबडी हो गई, आदि।

[इदम् की इच्छाएँ चेतन स्तर पर आने का प्रयास करती है परन्तु परम अहम् उन्हे आने से रोकता है। इस सघर्ष का समाधान युक्तिकरण के माध्यम से इस प्रकार होता है कि अन्तर्द्वन्द्व या तो उत्पन्न ही न हो या समाप्त हो जावे।]
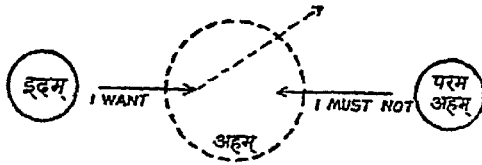
चित्र—24

मैक्डूगल (McDougall) के अनुसार, "इस प्रकार युक्तिकरण के माध्यम से व्यक्ति अपने आपको धोखा देता है। संवेगात्मक कारणों के आधार पर वह अपना तार्किक आधार निर्धारित करके फिर उसके लिए कारण प्रस्तुत करता है.. ....।[1]" मैक्डूवाल (McDowall) के शब्दो मे, "प्रत्येक तर्क में इस मनोरचना का हाथ किसी न किसी रूप मे होता है।"[2]

उदात्तीकरण के मुख्यत. निम्नांकित दो पक्ष है —

(अ) सॉवर-ग्रेप्स टाइप (Sour-Grapes Type)—इसमे व्यक्ति उस वस्तु को कलकित करता है, जिसको प्राप्त करने मे उसे असफलता मिली होती है अत. इस प्रकार के उदात्तीकरण मे व्यक्ति वस्तु को कलकित करने अपने सघर्ष को दूर करने का प्रयास करता है; जैसे—जब लोमडी अगूर नही प्राप्त कर पाई तो वह अगूर को यह कहकर कलकित करती है कि "अगूर खट्टे है"। इस प्रकार अगूर न प्राप्त होने की निराशा से अपने को बचाती है।

(ब) स्वीट-लेमन टाइप (Sweet-Lemon Type)—इस प्रकार के उदात्तीकारण मे व्यक्ति अपनी वस्तु की काफी बड़ाई करता है तथा यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि इस वस्तु का कोई वस्तु से मुकाबला नही है, यह श्रेष्ठ व बहुमूल्य है;

---

1 "A term used to describe a common way in which people receive themselves. They decide on a course of action from purely emotional causes, and then they invent reasons for so acting. Thus a man may argue in favour of the conservative or socialist policy respectively when his choice is really influenced by his attitude to his father during his childhood."—McDougall : *A Biological Introduction to Psychology.*

2 "Rationalization is the refuge of those vested interests, need, is present in almost any argument."—McDougall : *Ibid.*

जैसे—"अपना घर किसी महल से कम है", "अपनी सूखी रोटी अन्य के हलुवा से अधिक स्वादिष्ट है।"

इस मनोरचना का जीवन मे काफी महत्त्व है। क्योकि इस प्रकार के व्यवहार से जीवन सतुलित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त इसका व्याधिकीय महत्त्व भी है क्योकि मनोग्रस्तता (obsession) का महत्त्वपूर्ण कारण युक्तिकरण है तथा इसके अतिरजित रूप से व्यक्ति के विभिन्न व्यामोह (delusion) उत्पन्न हो जाते है। इस प्रकार इस मनोरचना का जहाँ हानिप्रद पक्ष है वहाँ लाभप्रद पक्ष भी है, क्योकि इसी के कारण व्यक्ति की चिन्ताओ को अस्थायी राहत मिलती है।

(8) **प्रतिक्रिया-निर्माण (Reaction-Formation)**—कभी-कभी व्यक्ति अपनी प्रबल अवाछनीय प्रेरणा से बचाव के लिए इस प्रेरणा के विपरीत इच्छा की शरण लेता है। जैसे प्रेम करने मे असफल हो जाने पर घृणा करने लग जाना, या काम-वासना से पीडित व्यक्ति का किसी यौन-सम्बन्धी बात पर तरह-तरह से मुँह बनाना या बिगडना।

व्यक्ति अपनी अनेक इच्छाओ को समर्थन न प्राप्त होने के कारण दमित कर लेता है लेकिन अचेतन मे रहकर ये इच्छाएँ शान्त नही बैठती तथा सदैव चेतन स्तर पर आने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति मे सघर्ष उत्पन्न हो
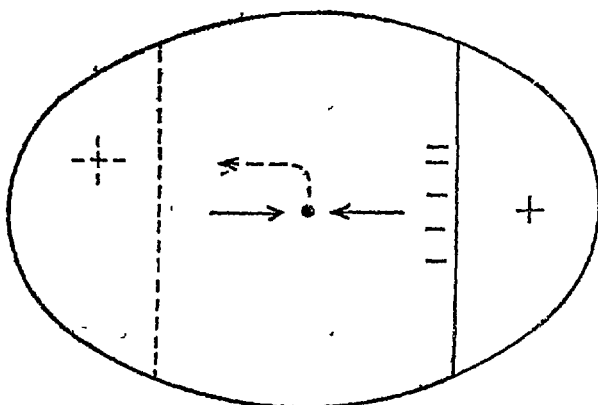
चित्र—25

जाता है। इस सघर्ष से बचाव के लिए वह अज्ञात रूप से दमित इच्छा के विपरीत इच्छा की शरण लेता है। इस प्रकार की क्रिया करने से उसकी चिन्ता कम हो जाती है। प्रतिक्रिया-निर्माण से समाज को बड़ा लाभ होता है। क्योकि प्रतिक्रिया-निर्माण के माध्यम से असामाजिक लक्षण सामाजिक गुणो मे परिवर्तित हो जाता है।

पेज (Page) के शब्दो मे, "प्रतिक्रिया-निर्माण वह मनोरचना है जिसके द्वारा अवांछनीय गुण ठीक विरोधी गुण के माध्यम से दबा ली जाती है।"[1] ब्राउन[2] के अनुसार, प्रतिक्रिया-निर्माण मे अचेतन इच्छा को विरोधी इच्छा के द्वारा दबा कर व्यवहार को विकसित कर देता है।

[प्रतिक्रिया-निर्माण। व्यक्ति धनात्मक लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है लेकिन जब उसे बाधाएँ या खतरो का सामना करना पड़ता है तो वह अपनी समस्या के समाधान के लिए विरोधी लक्ष्यो को चुनता है तथा विरोधी दिशा मे ही लक्ष्य-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है।]

उदाहरण—प्रतिक्रिया-निर्माण के अनेक उदाहरण हमे दैनिक जीवन मे मिलते है। लेकिन मनोस्नायुविकृति में मुख्यत इस मानसिक सुरक्षा के उदाहरण मिलते हैं, जैसे—एक महिला, जो कि इसी रोग से पीड़ित थी, उसे सदैव यह भय रहता था कि लोग मेरे सतीत्व को भ्रष्ट करना चाहते हैं। रात मे कभी-कभी वह चिल्लाया करती थी कि "मुझे बचाओ, कोई मेरे कमरे मे आ गया है, मेरे सतीत्व को लूटना चाहता है।" मनोविश्लेपण के माध्यम से पता चला कि इस महिला की यह अचेतन से सम्वन्धित इच्छा है कि कोई उसे प्रेम करे। लेकिन चेतन स्तर पर परम अहम् (super ego) के प्रतिवन्ध के कारण यह इच्छा नहीं आ पाती। अत. इसी सघर्ष के परिणामस्वरूप ही वह चिल्लाती एव डरती है क्योकि ये सभी क्रियाएँ अचेतन स्तर पर होती हैं।

स्त्रियो मे परम अहम् की अधिक प्रवलता के कारण पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों मे इस मनोरचना का व्यवहार विशेष रूप से देखा जाता है। जैसे वह दूसरो को अपनी ओर देखते हुए इससे प्रभावित तो हो जाती है परन्तु परम् अहम् के कारण प्रेम-प्रदर्शन की अपेक्षा घृणा प्रकट करती है। प्रतिक्रिया-निर्माण कभी-कभी चेतन स्तर पर भी होता है। क्योकि व्यक्ति जानवूझकर इच्छा में विपरीत व्यवहार करता है। इस मनोरचना का मनोविश्लेपण मे काफी महत्त्व है तथा चेतन व अचेतन दोनो स्तरो पर इसका उपयोग होता है।

---

1. "Reaction formation is a mental mechanism where by an undesirable trait is kept in check through the development of a diametrically opposite trait."—Page J D : *Abnormal Psychology*.
2. "By reaction formation or overcompensation, we mean the development of behaviours which are diametrically opposed to the unconscious wish. Doing the opposite of some wish gives as outlet for repressed' energy and is economical in the psychological sense in that by so doing we deny thoroughly and absolutely wish and so strengthen it repression."—Brown : *Ibid.*

प्रतिक्रिया-निर्माण के रूप (Froms of Reaction-Formation)—प्रत्येक प्रकार के प्रतिक्रिया-निर्माण मे यह तथ्य अवश्य निहित होता है—'किसी मूलभूत आवश्यकता का दमन'। परन्तु मूलभूत आवश्यकता का दमन के साथ ही साथ व्यक्ति जो व्यवहार करता है वह इस दमित आवश्यकता के ठीक विपरीत होता है। व्यक्ति का सदैव सादा जीवन व्यतीत करना अपने को समस्त सुखो से पृथक रखकर जीवन व्यतीत करना, प्रतिक्रिया-निर्माण या प्रतिकरण मनोरचना के ही उदाहरण है।

समस्त व्यक्तियो को सरक्षण की आवश्यकता की अनुभूति अवश्य होती है। अगर इसके प्रति प्रतिकरण किया गया तो व्यक्ति अत्यधिक प्रेम-दर्शन करता है। इसी के साथ ही साथ अगर मल-मूत्र त्यागने का प्रतिक्रिया-निर्माण हुआ तो व्यक्ति अत्यधिक स्वच्छता करने लगता है तथा अत्यधिक व्यवस्थाप्रिय हो जाता है। सिमॉण्डस (Symonds, p 431) के अनुसार आवश्यकता से अधिक विश्वसनीयता, ईमानदारी, विभिन्न वस्तुओ को अधिक व्यवस्थित ढग से सजोकर रखना, विभिन्न तथ्यो को करीने से सजाकर रखने, अत्यधिक आनन्द की अनुभूति करना आदि व्यक्ति के कार्यों को मल-मूत्र की इच्छा के प्रति प्रतिकरण या प्रनिक्रिया-निर्माण का ही परिणाम है।

इसी तरह क्रोध, प्रेम, काम, स्वतन्त्रता, अन्य व्यक्तियो का शोषण आदि भी विभिन्न प्रकार के क्रियाओ के प्रतिक्रिया-निर्माण का कारण होता है। इन्ही के माध्यम से व्यक्ति या तो किसी की भी परवाह नही करता या दूसरो के प्रति अत्यधिक विनम्रता, उदारना स्वामिभक्ति प्रदर्शित करता है। एडलर के शब्दो मे, स्त्रियो मे पुरुषोचित विरोध (masculine protest) का होना इस तथ्य की ओर सकेत करता है कि वे परम्परागत यौन-क्रियाओ मे हीन हैं तथा अबलापन को पुरुषोचित सबलता के रूप मे व्यक्त करती हैं।

आधिकीय महत्त्व (Pathological Implications)—प्रतिक्रिया-निर्माण या प्रतिकरण का आधिकीय महत्त्व भी है। क्योकि जब व्यक्ति मे स्वय के प्रति आक्रामक व परपीडन की प्रकृति से अत्यधिक सशकित होने लगता है तब यही तीव्रता चिन्ता मनस्ताप (anxiety neurosis) का रूप ले लेती है। कभी-कभी इस मनोरचना की अभिव्यक्ति मनोग्रस्तता बाध्यता मनस्ताप (obsessive compulsive) के रूप मे भी होने लगती है। यह मनस्ताप मल-निष्कासन की इच्छा, गन्दा रहने की इच्छा, कीटाणुओ से अतिरजित रूप मे भय, अत्यधिक स्वच्छताप्रिय आदि रूप मे व्यक्त होता है।

प्रतिक्रिया-निर्माण का लाभप्रद पहलू के आधार पर वह समाज के साथ ढग से अभियोजन करता है। अपनी इच्छाओ, वास्तविक आवेगो (real impulses) को सामाजिक सभ्यता के अनुरूप बना लेता है। लेकिन अधिक मात्रा मे इस मनोरचना

के उपयोग से उसके सामान्य जीवन के कार्यो मे वाधा पहुँचती है तथा अनेक मानसिक रोगो का शिकार हो जाता है ।

गौण मनोरचनाएँ
(Minor Mechanisms)

(1) आत्मीकरण या तादात्म्य (Identification)—ब्राउन (Brown) के अनुसार—"आत्मीकरण वह मनोरचना है जिसमे व्यक्ति अपने अहम् या व्यक्तित्व को दूसरो के व्यक्तित्व के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है या दूसरों के व्यक्तित्व को अपना व्यक्तित्व समझने लगता है ।"[1] मैकडॉनल्ड[2] के अनुसार आत्मीकरण मे जो तादात्म्य स्थापित करता है, वह एक प्रकार का, एक व्यक्ति या वस्तु का दूसरे के साथ सम्मिलन है, जिससे वाद मे वह वैसे सोचता और व्यवहार करता है । सरल शब्दों मे, आत्मीकरण का अर्थ है कि इसमे एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति जैसा वनना चाहता है । हमारे दैनिक जीवन मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं; जैसे—एक लड़का अपने वाप की तरह तथा एक लडकी अपनी माँ की तरह वनना चाहती है । एक कालेज-छात्रा हेमामालिनी वनना चाहती है ; उसी तरह के वाल रखने की कोशिश करती है । दूसरे शब्दो मे, वह उसी का अनुकरण करना प्रारम्भ कर देती है, जिनका सम्वन्ध इस मनोरचना से होता है ।

आत्मीकरण या तादात्म्य मे व्यक्ति किसी अन्य व्यक्तित्व के अनुरूप अपने अहं का निर्माण करता है तथा अपने को उसी व्यक्ति का दूसरा रूप समझने लगता है । इस अर्थ के अतिरिक्त तादात्म्य के दो और अर्थ है :—

(i) प्रथम अन्य अर्थ मे आत्मीकरण मनोरचना के माध्यम से व्यक्ति अन्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के रूप मे अपने को नही ढालता, वल्कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम मे करना चाहता है । जैसे पिता के द्वारा सामाजिक यश व विद्वान वनने की इच्छा पूर्ति पुत्र के माध्यम से करने की अभिलाषा रखना ।

(ii) एक अर्थ मे इस मनोरचना के द्वारा व्यक्ति अपने विचारो, इच्छाओं, अभिलाषाओ की अभिव्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति के समान करना । उदाहरणार्थ, एक माँ का अपने वच्चे को अपने पिता के रूप मे आत्मीकरण करना अर्थात्

---

1. "Identification refers to the mechanism through which a person attempts to mould his own ego or self after that of some-one else or believes himself to have some other person's personality."—**Brown** : *Ibid*, p. 174.

2. "The imaginative infusion of an object or person with the attributes of another and thereafter feeling and behaving as one did to the first object"—**MacDonald, Ladell** . *A Dictioary of Psychological Terms*, p 20

एक माँ अपने पुत्र के चेहरे, कार्यों, वोलने के ढग आदि मे अपने पिता से साम्यता स्थापित करना।

तादात्म्य के इस अर्थ के सम्वन्ध मे **सिमॉण्ड्स** का मत है कि यह अर्थ भ्रामक है। उसका मत है कि आत्मीकरण या तादात्म्य के स्थान पर इस अर्थ मे तो समीकरण (equation) का शब्द प्रयोग होना चाहिए। वैसे इस मनोरचना की प्रक्रिया से व्यक्तित्व विकास मे काफी सहायता प्राप्त होती है क्योकि व्यक्ति नयी-नयी क्रियाओ, नवीन रुचियो अभिवृत्तियो को सीखता है जिससे कि उसका 'आत्म' 'या 'स्व' (self) अधिक व्यापक होता है। इस मनोरचना के मूल से व्यक्ति की उच्च पद-प्राप्ति, सामाजिक सम्मान व प्रतिष्ठा आदि प्रेरणाओ (motives) की पूर्ति होती है। व्यक्ति अपनी कमियो व हीनताओ पर विजय प्राप्त करता है।

आत्मीकरण के अनुकरण मे अन्तर है। क्योकि अनुकरण क्रिया की चेतना व्यक्ति को होती है लेकिन आत्मीकरण की क्रिया अचेतन रूप से होती है। इन दोनो मे दूसरा महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि अनुकरण मे इच्छित व्यक्ति या वस्तु आदि की नकल होती है परन्तु आत्मीकरण ने व्यक्ति अन्य व्यक्तित्व के व्यक्तित्व के गुणो को आवश्यक अग समझते हैं।

सम्वन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्य—इस मनोरचना के द्वारा व्यक्ति ऐसे व्यक्तियो का तादात्म्य करता है जो प्रतिष्ठित या शक्ति सम्पन्न होते हैं तथा ऐसा करने से उसकी अनेक आवश्यकताओ (उच्च पद प्राप्ति सामाजिक यश, सम्मान आदि) की पूर्ति होती हैं। इस मनोरचना मे जो व्यक्ति अन्य व्यक्ति के साथ आत्मीकरण करता है तो तादात्म्य करने वाले व्यक्ति मे प्रेम व घृणा की भावना होती है। प्रेम इसलिए होता है कि जिस व्यक्ति के साथ आत्मीकरण होता है वह प्रशसित व सम्मानीय व्यक्ति होता है तथा उसका आत्मीकरण करने से तादात्म्य करने वाले व्यक्ति को महत्त्व प्राप्त होता है। तादात्म्य करने वाले व्यक्ति मे घृणा के भाव इसलिए होते है कि उसमे आत्मीकरण वाले व्यक्ति के अनुरूप शक्ति, योग्यता या सौन्दर्य नही होता अत ईर्ष्या के कारण घृणा के भाव उत्पन्न हो जाते है। इस मनोरचना की पृष्ठभूमि मे यह भावना निहित होती है कि 'काश ! मे भी ऐसा ही होता। **किसकर** के अनुसार आत्मीकरण व्यक्ति के द्वेष भावनाओ दण्ड की आवश्यकता तथा शक्तिशाली सवेगात्सक सम्वन्धो के कारणो से होता है।[1] के बायले (Kay Boyle) के प्रसिद्ध लघु उपन्यास 'The Crazy Hunter' मे एक जवान लडकी जो अकेली थी, एक अन्धे घोडे के साथ तादात्म्य स्थापित करती है क्योकि अधा घोडा अकेला तथा दु खी था।

सामान्यत दैनिक जीवन मे तादात्म्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे

1. "Identifications may be made on the basis of guilty feelings, the need for punishment, and strong emotional attachments."—Kisker, G. W. *Idid*, p. 148.

बच्चो का अपने माँ-बाप के कपडो, बोलने के ढग, आचरण का अनुपालन आदि का आत्मीकरण करना। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से आत्मीकरण करता है। जैसे माँ की मृत्यु के बाद बहिन के साथ आत्मीकरण करना या माँ के साथ जो भावनाएँ होती हैं वह उसकी मृत्यु के बाद बहिन के साथ जोड़ देता है। हम प्राय: चलचित्र देखते हैं तथा प्राय. अपने को विजयी नायक व नायिकाओ के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। उनके वेशभूषा, मेकअप, बालो का स्टाइल आदि को भी अपना लेते है।

कभी-कभी दमित अचेतन इच्छाओ या कुत्सित विचारो, अपराधी प्रवृत्तियो या स्वय को दण्डित करने की भावना के कारण ऐसे व्यक्तियो के साथ तादात्म्य स्थापित करता है जो अपराधी होते हैं, खलनायक या कुख्यात व्यक्ति होते है।

(2) प्रक्षेपण या आरोपण (Projection)—पेज (Page) के शब्दो मे, "अपनी प्रवृत्तियों एवं गुणों को दूसरों पर आरोपित करना एवं देखना प्रक्षेपण कहलाता है।"[1] वारेन (Warren) के अनुसार—"यह वह प्रवृत्ति है, जिसमें व्यक्ति बाह्य जगत में अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का आरोपण करता है।"[2] हीली, बॉनर व ब्रॉवर्स ने इसे एक प्रकार की सुरक्षात्मक प्रक्रिया माना जिसके अनुसार, अहम् वाह्य जगत् मे अपनी अचेतन इच्छाओ को लाता है।[3] फ्रायड के अनुसार, प्रक्षेपण के माध्यम से व्यक्ति अपराध भावना (guilt feeling) से छुटकारा प्राप्त करता है। साइमन्ड्स, के अनुसार, प्रक्षेपण स्वय के अवांछित विचारों, इच्छाओ, आवेगो, गलत कार्यों तथा दोषो को वाह्य पदार्थो, या व्यक्तियों पर आरोपित कर देने का सुरक्षात्मक प्रयास है।[4]

उदाहरण—बैग्बी (Begby) ने इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। उसने एक ऐसी माँ का उल्लेख किया है जो अपनी लड़की को सर्वगुण-सम्पन्न देखने

---

1. "Attributing to and observing in others one's own impulses and traits is called Projection"—**Page, J. D. :** ***Ibid.***
2. "Tendency to ascribe to the external world repressed mental processes which are not recognised as being of personal orgin and as a result of which the content of these processes in experienced as a outer perception."—**Warren**
3. " . . . A defencive process under the sway of the pleasure principal whereby the ego thrust forth on the external world unconsciousness wishes and ideas which if allowed to penetrate into consciousness, would be painful to the ego.—**Healy, Bronner and Browers**
4. "Projection is the reference of impulses, thoughts, feelings and wishes originating in the person himself to persons and objects in the outside world."—**Symonds,** ***Ibid,*** **p. 296.**

की कामना रखती थी लेकिन जब ऐसा सम्भव न हो सका तो उसने अपनी पुत्री को परेशान एव डाँटना-फटकारना सीख लिया। इसी प्रकार एक स्त्री की यह शिकायत थी कि यह व्यक्ति मुझे बुरी दृष्टि से देखता है तथा मेरे साथ बलात्कार करना चाहता है। लेकिन जब उस व्यक्ति से अनेक तरीको से पूछा गया तो वह वास्तव मे उस स्त्री को जानता भी नही था। स्त्री से अधिक जानकारी जब मनोवैज्ञानिक ढग से की गई तो यह ज्ञात हुआ कि यह स्त्री अचेतन रूप से उस विशेष व्यक्ति से प्यार करती है तथा सभोग की इच्छा रखती है। इस प्रकार प्रक्षेपण के माध्यम से एक व्यक्ति अपनी असामाजिक एव अवाछित इच्छाओ को, विचारो, आवेगो आदि को अन्य व्यक्तियो या पदार्थों पर आरोपित करती है।

जब प्रक्षेपण-प्रक्रिया कल्पना की सीमा तक पहुँच जाती है तब वह व्यक्ति अनेक प्रकार के विभ्रमो का शिकार हो जाता है। इसका दण्डात्मक व्यामोह (persecutive delusion) मे काफी हाथ रहता है।

प्रक्षेपण से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्य

आरोपण, युक्तीकरण (Rationalization) से भिन्न है क्योकि इस मनोरचना के द्वारा व्यक्ति अपनी कमियो, गलतियो या दुर्बलताओ को पहचानने से इन्कार कर देता है। वह अपनी इन कमजोरियो को दूसरो पर आरोपित करके उन्हे निन्दित करता है। ऐसा वह केवल व्यक्तियो पर ही नही करता बल्कि सामाजिक रीति-रिवाजो व निर्जीव पदार्थों पर भी आरोपित करता है। जैसे बैडमिन्टन का खिलाडी खेल मे हारने के बाद अपने रैकिट को इस प्रकार देखता है, जैसे उसके पराजय का कारण उस रैकिट मे है। मरे (Murray) ने अपने एक अध्ययन मे देखा कि भयात्मक स्थिति मे व्यक्ति स्वय के सन्देह व बुरे विचारो को अपेक्षाकृत सामान्य अवस्था से अधिक, अन्य व्यक्तियो पर आरोपित करता है।

स्वप्नो के द्वारा प्रक्षेपण का प्राय उपयोग होता है। स्वप्न देखने वाला अपने सवेगो, विचारो, भावो आदि को स्वप्न पात्रो के मध्य से व्यक्त करता है। सिमाण्ड्स का मत है कि व्यक्ति जितने बुरे आवेगो का आरोपण करता है, वे प्रधानत निम्न है—

(i) **द्वेष भावनाओ का आरोपण**—इसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने द्वेष एव विरोधी भावनाओ को दूसरो पर आरोपित करता है। अगर एक व्यक्ति कहता है कि "लोग मुझे नापसन्द करते है, मुझसे कतराते है या दूर भागते है", तो इसका यह अर्थ होता है कि वह अनेक परिस्थितियो मे अपनी घृणा व द्वेषभावनाओ को दूसरो पर आरोपित करता है।

(ii) **अनैतिकता का आरोपण**—व्यक्ति अपनी अनैतिकता को छिपाने हेतु अन्य व्यक्तियो मे बेईमानी, अश्रद्धा या अन्य अनैतिकताओ को देखता है।

(iii) **कामेच्छा का आरोपण**—इस प्रकार के आरोपण मे व्यक्ति अपनी कामेच्छा को दूसरो पर आरोपित करता है। एक पति जो अपनी पत्नी के चरित्र पर सन्देह करता है, प्राय स्वय ही अन्य स्त्रियो के प्रति आकर्षित होता है, परन्तु उसकी

यह इच्छा (असामान्य होने के कारण वह) उसे स्वय मे न देखकर अपनी पत्नी मे देखता है।

(iv) काम-क्रियाओं, बीमारी, आत्मश्लाघा आदि का आरोपण—कभी-कभी व्यक्ति अपनी काम-क्रियाओ, बीमारी आदि को अन्य व्यक्ति पर आरोपित करता है।

आधिकीय महत्त्व (Pathological Implications)

विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगी प्रक्षेपण मनोरचना का सहारा लेते है। सभ्रान्ति या पैरानोय्या (Paranoia) का रोगी मे जो दण्डात्मक व्यामोह पाए जाते है, वे प्रक्षेपण प्रक्रिया पर आधारित होते है। प्रक्षेपण के कारण ही रोगी यह समझने लगता है कि अन्य व्यक्ति उसके प्रति षड्यन्त्र रच रहे है। इसी प्रकार दुर्भीति (Phobia) के रोगी मे भी प्रक्षेपण मनोरचना कार्यरत होती है। जैसे पशु से भय या खुले स्थान का भय। फ्रायड का कहना है कि खुले स्थान का भय उन्ही लोगो को होता है जो कामुक या आक्रमण सम्बन्धी इच्छा रखते है तथा इस भय के द्वारा इन्ही इच्छाओ को आरोपित करते है।

मूल्यांकन (Evaluation)—इस मनोरचना के माध्यम से व्यक्ति अपने अह (Ego) की रचना करता है। व्यक्ति की अवाछनीय इच्छाएँ दमित होने के फलस्वरूप चेतन स्तर से हटकर अचेतन स्तर पर चली जाती है तथा व्यक्ति इन्ही इच्छाओ को दूसरो पर आरोपित कर देता है। इस प्रकार यह समायोजन का एक अप्रभावपूर्ण ढंग है। क्योकि व्यक्ति इस मनोरचना को अपनाते रहने के कारण कभी भी अपने मे सुधार नही कर पाता। उसकी आन्तरिक इच्छाओ का दमन होने के कारण उसके बिना किसी कारण के चिन्ता व अन्तर्द्वन्द्व का जन्म हो जाता है।

आरोपण के अतिरिक्त रूप मे व्यक्ति प्रत्येक समय यही चिन्ता करता रहता है कि लोग उसके खिलाफ षड्यन्त्र कर रहे है उसे नीचा दिखाना चाह रहे है। सभ्रान्ति के रोगियो के दण्डात्मक व्यामोह इसी मनोरचना के परिणाम है।

(3) **अन्तःक्षेपण (Introjection)**—अन्तःक्षेपण प्रक्षेपण की प्रतिकूल मनोरचना है। इसमे आरोपण करने के स्थान पर व्यक्ति अन्य व्यक्तियो के व्यक्तित्व-गुणो को अपने व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण समझने लगता है। प्रक्षेपण मे एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति के अनुरूप होना चाहता है। लेकिन अन्तःक्षेपण मे दूसरे व्यक्ति को अपना ही एक अग मानता है। मिलर के शब्दो मे—**"अन्तःक्षेपण वह प्रवृत्ति है, जिसमें व्यक्ति अपने वातावरण के गुणो को अपने व्यक्तित्व में सम्मिलित करता है।"**[1]

ब्लम (Blum) के अनुसार, "अन्तर्निवेश या अन्तःक्षेपण मनोरचना, प्रतिकात्मक रूप से किसी बाह्य पदार्थ को स्वय मे आत्मसात या विलय करने की

1. "Introjection is a tendency of the individual to his corporate his environmental traits into his own personalities."
—Miller, H. C. · *Psychoanalysis and Its Derivatives.*

सुरक्षात्मक क्रिया है।"[1] इसमे व्यक्ति अपनी अनेक दु:खद अनुभूतियो से बचाव करता है। अन्त क्षेपण के अनेक उदाहरण दैनिक जीवन मे हमे मिलते हैं, जैसे—एक छात्र का यह समझना कि मै ही दिलीप कुमार हूँ। इसी प्रकार बच्चा कभी-कभी यह समझता है कि मैं ही पिता हूँ।

अन्त क्षेपण मनोरचना के माध्यम से परम् अहम् के विकास को सबसे अधिक सहायता प्राप्त होती है। इस मनोरचना के द्वारा दूसरे व्यक्ति के आदर्श, मूल्य तथा अन्य विशेषताएँ अपनाने वाले व्यक्ति मे इस प्रकार मिल जाती हैं कि वह अनजाने ही इन्हे स्वय का अभिन्न अग मानने लगता है। यह प्रक्रिया तादात्म्य (identification) के ही समान होती है। केवल अन्तर इतना ही होता है कि व्यक्ति तादात्म्यीकरण मे अन्य व्यक्तियो के समान बनता है जबकि अन्त क्षेपण मे स्वय व्यक्ति उसे (दूसरे व्यक्ति की व्यक्तित्व विशेपताओ को) अपना अभिन्न अग मानने लगता है। अन्त क्षेपण मे व्यक्ति अपने निर्दिष्ट व्यक्ति की भावनाओ, मनोवृत्तियो अन्य मानसिक एव शारीरिक विशेपताओ को अपना समझने लगता है। इसी मनोरचना के ही द्वारा उसके नैतिक विचारो, जैसे—अच्छा-बुरा, शुभ-अशुभ आदि की स्थापना होती है। इस मनोरचना के आधार पर व्यक्ति विभिन्न दुखद अनुभूतियो का बचाव करता है तथा तिरस्कार करके उत्पन्न होने वाली सम्बन्धित कठिनाइयो या दण्डो से बचता है।

मूल्याकन—अन्त क्षेपण मनोरचना को अपनाने वाला व्यक्ति अपने परम अहम् को काफी विकसित कर लेता है जिसके कारण उसे काफी सहायता समायोजन करने मे प्राप्त होती है।

लेकिन इस मनोरचना का बहुत अधिक उपयोग करने पर व्यक्ति मे आत्म-प्रवचना अधिक हो जाती है जिसके कारण उसमे वास्तविकता की परख योग्यता क्षीण हो जाती है। वह प्रत्येक कार्य या बात के लिए अन्तरात्मा का सहारा लेता है। इसी के फलस्वरूप असमायोजन का जन्म होता है।

(4) **स्थानान्तरण** (Transference)—अपने मानसिक सघर्ष से बचने के लिए प्राय हम स्थानान्तरण का उपयोग करते हैं। **ब्राउन**[2] (Brown) के अनुसार, स्थानान्तरण वह मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्रेम की भावना एक व्यक्ति

---

1. "Defensive introjection is the symbolic incorporation of an external object as part of one self"—Blum, G. S., **Psycho-dynamics** : *The Science of Unconscious Mental Forces*, 1966, p. 33

2. "Transference is a sort of mental process by which the feeling tone of love is shifted or transferred from one object or person to another"—**Brown**, *Ibid.*

विशेप या वस्तु-विशेप से हटकर दूसरे व्यक्ति या वस्तु पर चला जाता है।" एक व्यक्ति अपना गुस्सा अपनी स्त्री पर प्रकट करने के स्थान पर अपने सहायक पर करता है तो यह एक प्रकार का स्थानान्तरण हुआ। क्योंकि यहाँ एक भावना एक व्यक्ति-विशेष से हटकर अन्य व्यक्ति पर चली गयी है। फ्रायड ने स्थानान्तरण को मनोविश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण अग माना है, उदाहरणस्वरूप—एक व्यक्ति एक लड़की से प्रेम मे असफल हो जाने के बाद कुत्ते से ही प्रेम करने लगा अर्थात् उसका प्रेम-भाव प्रेमिका से हटकर कुत्ते पर चला गया।

मनोविश्लेपण (Psychoanalysis) मे स्थानान्तरण के दो पक्ष दिखाई पडते है। शुरू-शुरू मे रोगी चिकित्सक से घृणा करता है तथा उसकी बातो को स्वीकार नही करता है लेकिन बाद मे वह उससे प्रेम करने लगता है तथा उसके हर सुझाव को स्वीकार करता जाता है। पहले स्थानान्तरण नकारात्मक हुआ, लेकिन बाद मे स्वीकारात्मक स्थानान्तरण (positive transference) हो गया है।

(5) **विस्थापन (Displacement)**—विस्थापन मे व्यक्ति किसी प्रेरणा या सवेग को मौलिक रूप से हटाकर किसी ऐसे लक्ष्य की ओर प्रेरित कर दिया जाता है जिससे उसका कोई सम्बन्ध नही होता है। पेज (Page) के शब्दो मे, "विस्थापन वह मनोरचना है जिसके द्वारा एक सवेग, जो कि मौलिक रूप मे किसी वस्तु या विचार से सम्बन्धित होती है तथा अन्य विचार या वस्तु पर स्थानान्तरित हो जाती है।"[1]

साइमण्ड्स (Symonds) के अनुसार, विस्थापन के अन्तर्गत व्यक्ति अपने सवेग, इच्छा, विचार या कल्पना को उन व्यक्तियो या पदार्थों, जिनसे वे मूलत सम्बन्धित होते है, से हटाकर अन्य व्यक्तियो या पदार्थों पर स्थानान्तरित कर देता है।[2] सामान्यतया विस्थापन सभी लोगो के जीवन मे किसी न किसी रूप मे अवश्य दिखाई पडता है। इससे सामान्यतया कोई विशेष हानि नही होती। अगर बहुत अधिक सीमा तक विस्थापन हो जावे तो मानसिक रोग की सम्भावना हो जाती है। अचेतन मन प्राय. विस्थापन मनोरचना के प्रयोग के माध्यम से दमित एव कुण्ठित इच्छाओ को प्रकट करता है। विस्थापन मे हमारी मन शक्ति-धारा एक विषय-वस्तु से हटकर दूसरी विषय-वस्तु पर चली जाती है जिसके परिणामस्वरूप अनावश्यक विषय वस्तु आवश्यक तथा आवश्यक विषय-वस्तु अनावश्यक प्रतीत होने लगती है। विस्थापन

---

1. "Displacement is the mechanism whereby an emotion originally associated with an idea or object is transferred to some neutral and inappropriate idea or object " —**Page J D** *Ibid*
2. "Displacement may be defined as a shift of emotion, wish, idea or fantary from a person or object towards which it was originally directed to another person or object " —**Symonds,** *Ibid,* p. 252

के द्वारा दमित इच्छाओ (repressed desires) एव दमन करने की शक्ति (repressing force) मे समझौता होता है। प्राय विस्थापन-क्रिया (mechanism of displacement) स्वप्न व विक्षिप्तावस्था मे चलती है। इस प्रकार की क्रिया के माध्यम से व्यक्ति अपनी इच्छाओ के वास्तविक व मूल स्वभाव को नही समझ पाते।

उदाहरण—माँ के द्वारा पीटे जाने के बाद बालक का अपने छोटे भाई या दोस्त को पीटना, खिलौने तोडना आदि विस्थापन के उदाहरण है। बाँझ औरत का दूसरे बच्चो से प्यार करना, किसी क्लर्क का दफ्तर मे अपमानित होने के बाद पत्नी या बच्चो पर गुस्सा दिखाना आदि भी इसी के उदाहरण हैं। यह क्रिया चेतन या अवचेतन के रूप मे होती है।

कभी-कभी विस्थापन प्रक्षेपण के साथ कार्य करता है। विस्थापन के माध्यम से गलत, पापमय या अनुपयुक्त भावनाओ आदि को वास्तविक लक्ष्य से हटाकर व्यक्ति अन्य असम्बन्धित व्यक्तियो या लक्ष्यो से सम्बन्धित कर देता हैं। विस्थापन क्रिया के अतिरजित हो जाने से इसका समायोजन पर भी प्रभाव पडता है तथा विकृत रूप से विस्थापन-क्रिया व्यक्त होती है।

विस्थापन के प्रकार (Forms of Displacement)—विस्थापन का वैसे तो प्रचलित रूप एक व्यक्ति के प्रति अपनी भावना को अन्य व्यक्ति के प्रति उन्मुख होता होता हैं परन्तु यह विभिन्न व्यक्तियो या पदार्थों की ओर भी उन्मुख हो सकता है। इस मनोरचना मे सवेग की अभिव्यक्ति किन्ही वस्तुओ की ओर होती है। अगर छोटा भाई, बड़े भाई के प्रति विरोधात्मक भावना रखता है तो वह अपने इस विरोध के भाव को छोटा व शारीरिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण उसके प्रति न व्यक्त करके उसकी विभिन्न चीजो को तोड कर करता है।

विस्थापन स्वय की ओर भी उन्मुख होता है। यह भी देखा गया है कि मौखिक रूप से जो प्रेम या घृणा के भाव किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति होता है वह उनकी ओर उन्मुख हो सकता है। यही कारण है कि व्यक्ति अनावश्यक रूप से आत्म-निन्दा आत्म-आलोचना या अत्यधिक विनम्रता का व्यवहार प्रदर्शित करने लगता है। यह विस्थापन शारीरिक अगो के प्रति भी सभव हैं।

विस्थापन की मौलिक भावना पशुओ की ओर उन्मुख होने लगती है। जैसे माँ-बाप के प्रति भय जो बच्चो के साथ जुडा होता है वह भय कुत्ते-बिल्ली तथा अन्य पशुओ के भय के रूप मे व्यक्त हो जाता है।

आधिकीय महत्त्व (Pathological Implications)—सिमान्ड्स के मतानुसार अनेक मानसिक रोग (हस्तान्तरित क्षोभोन्माद, दुर्भीति व बाध्यता आदि मे विस्थापन मनोरचना की मुख्य भूमिका होती है। उदाहरण के रूप मे बार-बार हाथ धोना या गन्दगी से दूर भागने की बाध्यात्मक प्रतिक्रियाओ के मूल मे ग्लानि व अपराध या मल-मूत्र व जननेन्द्रियो के स्पर्श के विस्थापन का हाथ होता हे।

मूल्यांकन—क्योंकि विस्थापन मनोरचना के द्वारा व्यक्ति अपनी अवांछित इच्छाओ, भावनाओ, व विचारो आदि पर रोक (दमन के माध्यम से) लगाए रखने मे समर्थ होती है अत. उसके समायोजन में काफी सहायता प्राप्त होती है। इस मनोरचना के उपयोग से संवेगों की तो अभिव्यक्ति हो जाती है परन्तु बार-बार इसका उपयोग करने से समायोजन मे बाधा उत्पन्न होती है।

(6) क्षतिपूर्ति (Compensation)—क्षतिपूर्ति के माध्यम से व्यक्ति अपनी हीनता व अनुपयुक्तता (inferiority and inadequacy) की भावना से रक्षा करता है। यह एक प्रकार की समायोजनात्मक प्रवृत्ति है, जिसके माध्यम से व्यक्ति उन इच्छाओं व भावनाओ को, जिससे कि उसमे विफलता, आकुलता या हीनता उत्पन्न होती है, उन्हे अन्य सन्तोषजनक स्थिति के साथ चेतन या अचेतन रूप से पूर्ति करता है, उदाहरणस्वरूप, जब कोई व्यक्ति एक क्षेत्र मे असफलता प्राप्त करता है तो इस हीनता के निराकरण के लिए वह किसी अन्य क्षेत्र से सफलता प्राप्त करता है। डेमस्थनीज (Demosthenes) मे हकलाने का दोष था लेकिन बाद में इस शारीरिक दोष को अधिक प्रयासो के फलस्वरूप दूर कर दिया तथा वह एक प्रसिद्ध वक्ता बन गया। क्षतिपूर्ति चेतन व अचेतन, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष या वांछित व अवांछित रूपों मे भी होती है। अगर एक व्यक्ति शरीर से दुर्बल है और वह पौष्टिक भोजन, व्यायाम आदि के माध्यम से इस शारीरिक दुर्बलता की कमी की पूर्ति करता है तो यह इच्छित क्षतिपूर्ति (d.sirable compensation) की क्रिया कहलायेगी। यह क्षतिपूर्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण कहलायेगा। परन्तु अगर व्यक्ति अपनी शारीरिक दुर्बलता की पूर्ति बौद्धिक क्षेत्र मे विशेष योग्यता को प्राप्त करके करे, तब यह क्षतिपूर्ति का परोक्ष प्रयास कहलावेगा। इस प्रकार के कार्य (प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही) सामाजिक व व्यक्तिगत दोनो दृष्टि से ही वाछनीय व शोभनीय हैं परन्तु कभी-कभी व्यक्ति अपनी कमियो की पूर्ति के लिए अवांछनीय (undesirable) तरीको को अपनाता है, जैसे—हीनत्व भाव (inferiority complex) को हटाने के लिए श्रेष्ठ ग्रन्थि (superiority complex) का सहारा लेना अवांछनीय है।

क्षतिपूर्ति के माध्यम—क्षतिपूर्ति के माध्यमो के सम्बन्ध मे सिमॉन्डस ने निम्न मुख्य बातें बताई हैं :—

(i) **व्यवसाय**—व्यवसाय क्षतिपूर्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। व्यक्ति अपनी कमियो की पूर्ति प्राय. व्यवसायो के चयन के द्वारा करते हैं। इसका प्रमुख उदाहरण प्रशिक्षक हैं जिनमे स्वय मे सम्बन्धित योग्यता नहीं होती परन्तु अपनी निपुणता का प्रदर्शन अध्यापन के द्वारा करते हैं।

(ii) **प्रिय रुचि**—अनेक बार ऐसा देखा गया है कि अपनी प्रिय रुचियों (hobbies) के द्वारा क्षतिपूर्ति करता है। जो विद्यार्थी अध्ययन करने मे कमजोर होते हैं वे प्रायः टिकटें एकत्रित करते हैं या सिक्के एकत्र करने में रुचि रखते हैं।

(iii) **व्यक्तिगत विशेषताएँ**—व्यक्ति अगर अपनी कुरूपताओ व अन्य प्रकार की हीनताओ की क्षतिपूर्ति के लिए प्राय शिष्ट व्यवहार, मृदु भाषण, अच्छी व साफ वेशभूषा का उपयोग करते हैं।

(iv) **स्वामित्व**—अनेक व्यक्ति क्षतिपूर्ति हेतु अच्छी-अच्छी वस्तुओ का सग्रह करता है, अच्छी कार, अच्छा घर, अच्छे वस्त्र आदि के स्वामित्व इस मनोरचना के मुख्य उदाहरण है।

(v) **खेल**—**लेहमैंन व विट्टी** का कहना है कि बच्चे प्राय खेल के द्वारा क्षतिपूर्ति करते है।

(vi) **दर्शन**—**सिमॉण्डस** का कहना है कि व्यक्ति जो जीवन-दर्शन अपनाते है वह अनेक दृष्टि से क्षतिपूर्ति का ही रूप होते है।

मूल्यांकन—क्षतिपूर्ति लाभदायक एव हानिकारक दोनो हो सकती है। लाभप्रद पहलू मे तो इसके माध्यम से व्यक्ति अपनी हीनता का बचाव करता है तथा विभिन्न योग्यताओ मे अधिक निगुणता प्राप्त करता है। लेकिन हानिप्रद पहलू मे क्षतिपूर्ति कार्य रूप मे व्यक्त न होकर केवल मानसिक कल्पना मे व्यक्त होती है तथा कभी-कभी व्यक्ति इसके कारण अनेक व्यर्थ एव समाज-विरोधी कार्य करने लगता है।

(7) **अतिपूर्ति** (Over Compensation)—अतिपूर्ति क्षतिपूर्ति का ही एक रूप है। इसमे व्यक्ति हीन भावो से मुक्त होने के लिए किसी गुण या वस्तु को अत्यधिक मात्रा मे प्राप्त करके क्षतिपूर्ति करता है। काना, वहरा, लगडा, कुरूप, कोढी, रोगी आदि मे हीन ग्रन्थि का होना स्वाभाविक होता है। इस प्रकार के व्यक्ति सगीत, नृत्य, लेख, कविता, धन, जमीन या मकान आदि के माध्यम से अतिपूर्ति करते है।

(8) **प्रत्याहार** (Withdrawal)—जब व्यक्ति को अपने पूर्व-अनुभव के आधार पर किसी स्थिति से असफलता या आलोचना का भय रहता है, तो वह इस मनोरचना का सहारा लेता है। इस प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति लज्जालु, एकाकी एव भीरु स्वभाव का हो जाता है। **बर्नहम** (Bernham) ने इस अवस्था को मिथ्या-हीन-बुद्धि (pseudo-feeblemindedness) कहा है। यह अवस्था मुख्यत वयस्को की अपेक्षा वालको मे देखी जाती है। इस प्रकार के व्यक्ति किसी कार्य मे रुचि नही लेते क्योकि उतनी बुद्धि वहुधा दुर्बल होती हैं। ऐसा व्यक्ति अक्सर यह कहता है कि "मैं नही जानता," "यह कठिन कार्य है", "मै नही कर सकता" आदि। ऐसे व्यक्तियो को प्रोत्साहन एव प्रशिक्षण आदि के माध्यम से ठीक भी किया जा सकता है।

(9) **कल्पना तरंग** (Fantasy)—प्राय सभी व्यक्ति जीवन की अनेक कमियो की पूर्ति कल्पना के माध्यम से करते है। कल्पना के माध्यम मे व्यक्ति अपने सघर्षो एव विफलताओ को कम करते है। इसका उपयुक्त उदाहरण दिवास्वप्न है। मानव किशोरावस्था मे सदैव दिवास्वप्न ही देखता रहता है क्योकि इस आयु मे वह एक अत्यन्त तीव्र मानसिक उथल-पुथल से गुजरता है। कल्पना-तरग सामान्यता वास्तविक

कार्य का स्थानापन्न न बनकर केवल मनोरंजन आदि का रूप लेती है। ये अधिकतर हानिप्रद नही होती है। अचेतन मन की यह क्रिया-पद्धति विशेप रूप से युवावस्था में होती है। यह क्रिया अचेतन रूप से विचार-क्रिया को निर्धारित करती है। इस प्रकार की मनोरचना से यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति-विशेष का जीवन अपूर्ण है तथा उसे निराशा मिली है। व्यक्ति कल्पना-तरग के माध्यम से अपनी आकाक्षाओं की पूर्ति करता है व्यक्ति इस प्रकार की क्रिया मे वास्तविक जगत् को छोड़कर कल्पना-जगद् में ही आनन्द-विभोर होता है, जैसे—एक दुर्बल व्यक्ति अपने को पहलवान की कल्पना करके प्रसन्न होता है।

दिवास्वप्न कल्पना तरग का मुख्य उदाहरण है जिसमे व्यक्ति हवाई किलो का निर्माण कर अपने विचारो मे खोकर समायोजन स्थापित करता है। कल्पना तरग इस प्रकार व्यक्तिगत सम्पर्कों से जुडी हुई होती है जो आत्म-केन्द्रिकता लिए होती है। व्यक्ति कल्पना के माध्यम से वहाँ पहुँच जाता है जहाँ उसकी चाह (desire होती है। यह सुखद होती है। सिमाण्ड्स[1] के अनुसार कल्पना तरग नियत्रित चिन्तन के समान चेतन-प्रक्रिया मे उत्पन्न होकर अचेतन स्थिति की मन्द व कुहासे से ढकी हुई एक हलकी चेतन-प्रक्रिया है।

मूल्यांकन—कल्पना-तरग लक्ष्य प्राप्ति का अनेक साधनो मे से वह एक महत्त्वपूर्ण साधन है जिससे अन्तर्द्वन्द्व की परिसमाप्ति होती है। इससे व्यक्ति के आत्म-सम्मान मे वृद्धि होती है तथा वौद्धिक व व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास मे सहायक होता है।

परन्तु जव कल्पना तरंग चिन्ता पर आधारित होती है तव स्वय मे ही साध्य वन जाने के कारण हानिप्रद सिद्ध होती है। यह उस समय अधिक खतरनाक सिद्ध होता है जवकि या तो चिन्ता पर आधारित हो या जव यह साधन न होकर सहायक बन जावे।

(10) **वास्तविकता से पलायन** (Reality Evasion or Denial of Reality)—इससे व्यक्ति अपने चारो ओर के वातावरण की ओर कोई ध्यान ही नही देते है। वे अपनी आलोचना नही सुनते है तथा कान वन्द किये रहते हैं। उन्हे वास्तविकता से कोई सम्वन्ध नही होता। इस प्रकार के व्यक्ति अपनी वास्तविकताओं को स्वीकार नही करते। ये व्यक्ति कभी भी अपनी आलोचना सुनने को तैयार नही होते। कठिन निर्णयो को वह कल पर टालने का प्रयास करते है, जैसे—अगर परिवार का प्रिय व्यक्ति मर जाता है, तो कुछ व्यक्ति अनेक विश्वासो से यह समझाने का प्रयत्न

---

1. "Fantasy, then, is to be contrasted with controlled thinking which takes place in the white light of consciousness. Fantasy tend to be dim and shadow"—Symonds, *The Dynamics of Human Adjustment*, p. 490.

करते हैं कि मृत व्यक्ति जीवित है। मृत व्यक्ति के कपडो, विस्तर, रहने के स्थान आदि को ठीक करते है तथा कभी-कभी उससे बातचीत भी करते है—ये सभी वास्तविकता से पलायन के उदाहरण है।

वास्तविकता से पलायन नामक मनोरचना के द्वारा व्यक्ति असुखद वास्तविकताओ से बचने का उपाय करता है। अस्थायी रूप से दुखद परिस्थिति से व्यक्ति का बचाव होता है। परन्तु वास्तव मे यह समस्या का समाधान नही है। यह तो खतरे को देख कर आँख वन्द कर लेना या जैसे शुतुरमुर्ग खतरे को देखकर अपना सिर वालू मे घुसेड कर छिपा लेता है, के समान है। वास्तविकताओ से मुँह मोड लेना समायोजन का अच्छा तरीका नही है वल्कि मानसिक रोगो को पास बुलाना है।

(11) नकारात्मकता (Negativism)—इस प्रकार की मनोरचना के माध्यम से व्यक्ति किसी विशेष वस्तु, क्रिया या व्यक्ति के प्रति नकारात्मक वन जाता है। जैसे बालको मे यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वह उन कार्यो को करता है जिसे माँ वाप करने के लिए मना करते है। एक लडकी ने बताया कि जब वह छोटी थी तो पाँच भाई-वहिनो की गलतियो का दोष उसके मत्थे मढा जाता था। इसी के परिणामस्वरूप उसने यह निर्णय कर लिया कि माँ-वाप किसी के प्रश्न का उत्तर नही देगी। धीरे-धीरे उसकी यह आदत पड गई कि वह माँ-वाप की किसी भी राय के प्रति विद्रोह करे। इस प्रकार नकारात्मकता अक्सर अनुचित व पक्षपातपूर्ण व्यवहार के फलस्वरूप वनता है। ऐसे लोगो मे यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई पडती है जो आत्म-केन्द्रित व अत्यधिक लाड-प्यार से पले होते है।

सरक्षणात्मक और पलायनात्मक मनोरचनाएँ—हमने अभी अनेक मनोरचनाओ का वर्णन किया है। लेकिन अगर ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो इन्हे हम दो प्रकारो मे वाँट सकते है—(1) सरक्षणात्मक (defensive), (2) पलायनात्मक (escapive)। सरक्षणात्मक मनोरचनाओ मे व्यक्ति विभिन्न दु खद व आघातिक अनुभवो से लाभ प्राप्त करता है। पलायनात्मक मनोरचनाओ मे वह इन स्थितियो से पलायन करता है। कल्पना-तरग, प्रक्षेपण, प्रत्याहार आदि इसी प्रकार की मनोरचनाएँ है। सरक्षणात्मक मनोरचनाएँ व्यक्ति के समायोजन मे सहायक होती हैं जबकि पलायनात्मक मनोरचनाएँ समायोचन मे कठिनाइयाँ उत्पन्न करती है।

मूल्यांकन—प्रेरणाओ मे आन्तरिक व वाह्य प्रभावो के कारण सदैव एक सघर्ष चला करता है। मनोरचनाएँ एक प्रकार के सुरक्षात्मक प्रयास है जिसे अहम् की चिन्ता की रक्षा होती है तथा प्रेरणाओ के अन्तर्द्वन्द्वो का समाधान होता है। ये चेतन व अचेतन दोनो स्तरो पर सम्पादित होते हैं। मनोरचना अहम् के सगठन को वनाये रखने मे सहायता प्रदान करती है। जव अतिरजित रूप से इनका प्रयोग व्यक्ति करता है तो व्यक्तित्व असामान्य बन जाता है। मनोरचनाओ को मुख्य व गौण दो वर्गो मे रखकर अध्ययन किया जाता है।

13

स्वप्न एवं स्वप्न सिद्धान्त
(DREAM & DREAM THEORIES)

स्वप्न सभी व्यक्ति देखते हैं। यही कारण है कि असामान्य मनोविज्ञान में स्वप्न का एक विशेष महत्त्व है। स्वप्न सुखद, दु.खद या मिश्रित होते हैं। आदिकाल से ही व्यक्ति स्वप्न के सम्बन्ध में जानने के लिए उत्सुक रहा है। कुछ स्वप्नों के अर्थ को व्यक्ति समझता है तो कुछ को नही समझ पाता। इसी प्रकार कुछ स्वप्नों को हम सरलता के साथ प्रत्यावाहन कर सकते है तो कुछ को नही। स्वप्न का स्वरूप काफी जटिल है। आदिकाल से ही स्वप्नों के सम्बन्ध मे अद्भुत विचार पाये जाते हैं।

हिप्पोक्रेटिस (Hippocrates, 460-354 B. C.), जो एक प्रसिद्ध दार्शनिक था, उसका स्वप्न के सम्बन्ध में यह मत था कि निद्रा के समय आत्मा शरीर से अलग होकर भ्रमण करती है। इस समय जो कुछ वह देखती या सुनती है, वही स्वप्न है। ल्युक्रिटिएस (Lucretius 98-55 B. C.) का मत था कि आत्मा कई छोटे-छोटे अंशो के माध्यम से बनती है तथा इसके विभिन्न अश शरीर की विभिन्न क्रियाओ का सचालन करते है। आत्मा मे ऐसी शक्ति होती है जिससे कि वह अद्भुत कार्य करने को भी तैयार रहती है। शरीर इस प्रकार के अद्भुत कार्य नही कर सकता, क्योंकि उसमे आत्मा के समान अद्भुत शक्ति नही होती। आत्मा के विभिन्न अंशों की, विभिन्न क्रियाओ के अनुभवों की अभिव्यक्ति स्वप्न मे होती है।

आज भी कुछ लोग उपर्युक्त विचारों को मानते हैं। उनका मत है कि स्वप्न का कारण दैवी शक्ति है। सुखद स्वप्न उस समय दिखाई पड़ते हैं जब दैवी-शक्ति प्रसन्न रहती है तथा इसके अप्रसन्न होने पर दुःखद स्वप्न दिखाई पड़ते हैं। कुछ साधारण व्यक्ति आज भी इस विचार को मानते हैं कि निद्रावस्था मे आत्मा शरीर से अलग होकर विचरण करती है। अतः सोए हुए व्यक्ति को अचानक नहीं उठाना चाहिए अन्यथा आत्मा शरीर में प्रवेश नही कर पावेगी तथा व्यक्ति की मृत्यु हो जावेगी। स्वप्न इस प्रकार निद्रावस्था मे आत्मा के विभिन्न प्रकार के व्यवहार अनुभव हैं। यही विचार पाश्चात्य एवं भारतीय दार्शनिकों का भी है। उनका मत है कि स्वप्न

की व्याख्या आत्मा को बाह्य संसार मे विचरण के आधार पर की जा सकती है। भारतीय दार्शनिको का मत है कि आत्मा चौरासी लाख योनियो मे जन्म लेने के उपरान्त मनुष्य योनि मे जन्म लेती है क्योकि आत्मा अमर होती है अत विभिन्न योनियो मे अर्जित अनुभवो का पुन, स्मरण स्वप्नो के माध्यम से होता है क्योकि इस प्रकार के मतो मे वैज्ञानिकता का अभाव है। अत स्वप्न के सम्बन्ध मे एक मत स्थापित करना सम्भव नही है।

स्वप्न की परिभाषा (Definitons of Dream)

स्वप्न का शाब्दिक अर्थ है—'अपने आप मे रमण करना'। स्वप्न के सम्बन्ध मे ठीक से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम विभिन्न विद्वानो की परिभाषाओ पर ध्यान दें; यथा—

वी० ई० फिशर (V. E. Fisher) के अनुसार—"निद्रावस्था मे मानसिक प्रक्रियायें निरन्तर चलती रहती हैं तथा स्वप्न इन्हीं क्रियाओ की सातत्य की एक विशेष अवस्था है।"[1]

जे० डी० पेज (J D Page) ने स्वप्न की परिभाषा मे फ्रायड के मतो को अभिव्यक्ति किया है। उसके अनुसार—"स्वप्न अचेतन तक पहुँचने का एक रास्ता है।" (*"Dream is the royal road to the unconscious"*)

जे० एफ ब्राउन (J. F Brown) के शब्दो मे—"स्वप्न विभ्रम है जिन्हे हम सभी प्रत्येक रात्रि अनुभव करते हैं और जब हम जानते हैं तो उनका विभ्रमात्मक पूर्णत स्पष्ट होता है।"[2]

इन परिभाषाओ से मुख्यत निम्माकित बातें स्पष्ट होती है

(i) मानसिक प्रक्रियाएँ निरन्तर चलती रहती है।

(ii) स्वप्न निद्रावस्था की एक विशेष मानसिक क्रिया है।

(iii) स्वप्न का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को होता है।

स्वप्न की विशेषताएँ (Characteristics of Dreams)

प्राचीन काल से व्यक्ति मे यह जिज्ञासा रही है कि यह स्वप्न की प्रकृति के सम्बन्ध मे कुछ समझे। कुछ विद्वानो का कथन है कि स्वप्न निरर्थक होते हैं लेकिन आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने अपने शोधो के माध्यम से यह पूर्णत सिद्ध कर दिया है

---

1. "There is a continuity of mental activities during sleep and a dream is merely a phase of this continuity of activities" —Fisher, V. E : *An Introduction to Abnormal Psychology*, p. 403.
2. "Dreams are hallucinations which we all experience every night When we awake their hallucinatory nature is quite obvious to us."—Brown, J F. : *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour*, p 221.

कि स्वप्न अर्थपूर्ण होते है। फ्रायड ने मनोविश्लेषणवाद में स्वप्न को सामान्य व असामान्य प्रक्रिया दोनो ही माना है। प्राचीन एवं नवीन मतों ने स्वप्न की मुख्य विशेपताओ का उल्लेख किया है जिन्हे यहाँ संक्षेप मे वर्णन करना आवश्यक है :—

(1) **स्वप्न एक विशिष्ट मानसिक प्रक्रिया है जो निद्रावस्था में होती है** (Dreams are unique mental processes which occur during sleep)—जैसा कि हमने ऊपर वर्णन किया है कि मानसिक प्रक्रियाएँ निरन्तर क्रियाशील होती है। स्वप्न भी एक मानसिक प्रक्रिया है तथा यह क्रिया निद्रावस्था में होती है। क्योकि निद्रावस्था मे चेतना शिथिल पड़ जाती है। अत स्वप्न की क्रियाओं में चेतना की कमी रहती है। यही कारण है कि व्यक्ति को कभी तो स्वप्न याद रहते है, कभी नही।

(2) **स्वप्न प्रतीकात्मक होते हैं** (Dreams are symbolical)—जैसा हम स्वप्न देखते हैं उसका वैसा ही अर्थ नही होता वल्कि स्वप्न मे एक प्रतीकात्मक भाषा निहित रहती है। फ्रायड ने सर्वप्रथम स्वप्न में अन्य लोगो के कारण रुचि ली परन्तु वाद मे वताया कि स्वप्न एक विशेष प्रकार की भाषा का प्रतिनिधित्व करता है जिसको निर्वचन करने से व्यक्ति की दमित कुण्ठाओ का पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार स्वप्न प्रतीकात्मक होते हैं तथा दमित भावो का प्रतिनिधित्व करते है। इन प्रतीको को समझने मे यह पूर्णत स्पष्ट हो जाता है कि स्वप्न सार्थक होते है। फ्रायड ने प्रतीको का सम्वन्ध काम (sex) से वताया है लेकिन अन्य मनोवैज्ञानिको ने वस्तुओ, व्यक्तियो एवं विभिन्न परिस्थितियो के साथ प्रतीको को सम्वोधित किया है।

(3) **स्वप्न सार्थक होते हैं** (Dreams are meaningful)—साधारण लोग स्वप्न को व्यर्थ एव निरर्थक समझते हैं परन्तु वास्तव मे ये सार्थक होते है क्योकि इनमे एक अव्यक्त भाषा छिपी रहती है। जव हम इन प्रतीको का अर्थ जान लेते हैं तो यह वात पूर्णत स्पष्ट हो जाती है कि स्वप्न सार्थक होते है।

(4) **स्वप्न आत्मगत एव आत्म-केन्द्रित होते हैं** (Dreams are subjective and centripetal)—स्वप्न मे हम उन्ही घटनाओ, पदार्थ या वस्तुओ को देखते है जिनका हमें अनुभव होता है। दूसरे शब्दो मे स्वप्न की समस्त घटनाएँ एव क्रियाओ का केन्द्र व्यक्ति होता है। इसी कारण स्वप्न को आत्मगत एव आत्म-केन्द्रित कहते हैं।

(5) **स्वप्न मन की अचेतन अवस्था से सम्बद्ध होते हैं** (Dreams are related to unconscious stage of mind)—फ्रायड ने स्वप्न के सम्वन्ध मे मुख्यत मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार राज्य मे अचेतन इच्छाओ, भावनाओ, सवेगो आदि की अभिव्यक्ति होती है। निद्रावस्था मे चेतन मे शिथिलता आ जाती है जिसके फलस्वरूप अचेतन इच्छाएँ अपेक्षाकृत स्वप्न में अधिक क्रियाशील हो जाती हैं।

(6) **स्वप्न में इच्छापूर्ति की चेष्टाएँ होती हैं** (Dreams are the attemp-

ted wishfulfilment)—आधुनिक मनोवैज्ञानिक इस बात से पूर्णत. एक मत है कि स्वप्न मे अतृप्त इच्छाओ की पूर्ति साकेतिक भाषा व दृश्यो मे होती हैं। स्वप्नो के माध्यम से व्यक्ति के अचेतन अन्तर्द्वन्द्व कम होते हैं तथा यह इच्छापूर्ति का एक साधन है। एडलर के अनुसार स्वप्न मे व्यक्ति हीन-भावना से मुक्ति प्राप्त करता है जबकि युग का मत है कि स्वप्न से भविष्य की अभिलाषाओ का ज्ञान होता है। वयस्को की अपेक्षा बच्चो के स्वप्नो मे अधिक प्रत्यक्ष रूप से इच्छाओ की पूर्ति होती है। यह विचार फ्रायड का था। इस प्रकार स्वप्न मे इच्छापूर्ति की चेष्टाएँ होती है।

(7) **स्वप्न का स्वरूप विभ्रमात्मक होता है** (Dreams are hallucinatory in nature)—व्यक्ति स्वप्न मे वास्तविकता का अनुभव करते है। इसी कारण से वह स्वप्न मे अनेक प्रकार की शारीरिक एव सवेगात्मक क्रियाएँ करता है। स्वप्न मे वह रोता है, हँसता है, चिल्लाता है तथा डरता है। क्योकि स्वप्नो मे बाह्य आधारो की कमी होती है अत क्षण-भर हमे वास्तविकता का ही अनुभव होता है। यही कारण है कि हम स्वप्न मे स्थितियो को स्वीकार करके उनके प्रति वास्तविक प्रतिक्रिया करते है।

(8) **स्वप्न नींद का सरक्षक है** (Dream is the guardian of sleep)—फ्रायड ने स्वप्नो को निद्रा का सरक्षक कहा है क्योकि इसके कारण निद्रा भग नही होती। क्योकि अचेतन की दमित इच्छाएं निद्रावस्था मे तुष्ट होना चाहती है और अगर स्वप्न नही होते तो व्यक्ति बार-बार जाग जाता और इस प्रकार उसकी निद्रा भग हो जाती।

(9) **स्वप्न विश्लेषण के माध्यम से मानसिक रोगो के अध्ययन से सहायता मिलती है** (Dream analysis helps in the study of mental disease)—फ्रायड ने सर्वप्रथम स्वप्नो के माध्यम से मानसिक रोगो को समझना शुरू किया। फ्रायड का विचार था कि मानसिक रोगो का एकमात्र कारण अचेतन है। अचेतन की इच्छाएँ स्वप्न के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। अत अनेक मनोग्रन्थियो व अन्तर्द्वन्द्वो को स्वप्न विश्लेषण के माध्यम से जान सकते है। स्वप्न विश्लेषण मनोचिकित्सा के लिए काफी सहायक होते है।

स्वप्न के स्रोत एवं सामग्री
(Sources and Material of Dream)

स्वप्न के सम्बन्ध मे मुख्यत तीन स्रोत हैं—

(1) विगत अनुभव (Later Experience)
(2) शैशवकालीन अनुभूतियाँ (Childhood Experiences)
(3) दैहिक स्रोत (Somatic Source)

विगत अनुभव (Later Experience)

विभिन्न स्वप्नो के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि स्वप्न मे विगत दिनो के अनुभवो का सकेत मिलता है। अत स्वप्न की सामग्री विगत दिनो के अनुभवो से भी प्राप्त होती है।

शैशवकालीन अनुभूतियाँ (Childhood Experiences)

बचपन की बहुत-सी घटनाओं की याद चेतना को नही होती तथा बचपन की अनुभूतियाँ स्वप्न मे व्यक्त होती है, ऐसा अनेक मनोवैज्ञानिको का मत है। इस सम्बन्ध मे पूर्णत. ज्ञात नही हुआ कि कितनी मात्रा में शैशवकालीन अनुभूतियाँ स्वप्नो मे व्यक्त होती है, क्योंकि निद्रावस्था मे स्वप्नो के तथ्यो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे विशेष पहचान नही हो पाती।

दैहिक स्रोत (Somatic Sources)

कुछ विद्वानो का मत है कि स्वप्न का स्रोत मुख्यत. दैहिक अवस्थाओ पर निर्भर है। दूसरे शब्दो मे, स्वप्न निर्माण (dream formation) पर शरीर को आकस्मिक स्थिति, निद्रावस्था एव पाचनशक्ति का प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार इस मत के मानने वाले स्वप्न का मुख्य स्रोत आमाशय (stomach) को मानते है। वैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर दैहिक उद्दीपको (somatic stimulus) को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है :—

(1) वस्तुनिष्ठ ज्ञानात्मक उद्दीपक।
(2) शरीर मे ही उत्पन्न होने वाले उद्दीपक।
(3) व्यक्ति की आन्तरिक अवस्था।

स्वप्न सामग्री
(Dream Materials)

अनेक मनोवैज्ञानिको ने अन्त.निरीक्षण एवं प्रश्नावली विधियों के माध्यम से स्वप्न-सामग्री के सम्बन्ध मे अध्ययन किये है। इस दशा मे बेण्टले (Bentley) व अन्य ने उल्लेखनीय कार्य किये है। अपने अध्ययनो के आधार पर बेण्टले तथा उसके साथियो ने बताया कि स्वप्न मे प्रतिमानों (images) की प्रधानता रहती है। प्रतिमाओं के मुख्यत· दो स्वरूप होते हैं ·—

(अ) दृश्य प्रतिमाएँ (Visual Images),
(ब) श्रव्य प्रतिमाएँ (Auditory Images)।

दृश्य प्रतिमाओ मे रंगीन प्रतिमाओ की कमी रहती है तथा धूसर (grey) प्रतिमाओ की प्रधानता रहती है। दु·खद स्वप्न सुखद स्वप्न से दूने होते है। चिन्तन या विचार का स्वप्न मे अभाव-सा ही रहता है। स्वप्न मे व्यक्ति कभी-कभी रगीन प्रतिमाओ का भी अनुभव करता है।

स्वप्न मे प्रत्ययात्मक सामग्री (ideational) की बहुलता नही होती है। कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति मे एक समान स्वप्न-सामग्री नही दिखाई पड़ती। स्वप्न-सामग्री की विभिन्नता का मुख्य कारण व्यक्ति की आय, उसकी मानसिक स्थिति, आर्थिक एव सामाजिक अवस्थाएँ आदि है। बच्चो व वयस्को के स्वप्नो मे अन्तर होता है। इस सम्बन्ध मे किमिन्स (Kimmins) ने महत्त्वपूर्ण अध्ययन

करने के उपरान्त बताया कि स्वप्न-सामग्री विभिन्न अवस्था मे परिवर्तित हो जाती है। बाल्यावस्था की शुरूआत में परियो की बहुलता होती है लेकिन अन्तिम भाग मे स्वप्न मे अभिलाषा-पूर्ति (wish fulfilment) की भावना निहित रहती है। किशोरावस्था के स्वप्नो पर सामाजिक एव आर्थिक वातावरण का प्रभाव पडने से स्वप्न-सामग्री मे विभिन्न परिवर्तन दिखाई पडते है। इस प्रकार स्वप्न-सामग्री के माध्यम से व्यक्ति-विशेष के समायोजन का पता लगाया जा सकता है।

स्वप्न-सिद्धान्त
(Theories of Dreams)

स्वप्न-सिद्धान्तो को मुख्यतः निम्न श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है —

(i) स्वप्न का अलौकिक सिद्धान्त (Supernatural Theory)
(ii) स्वप्न का शारीरिक सिद्धान्त (Physiological Theory)
  (अ) प्रत्यक्षीकरण-भ्रम सिद्धान्त
  (ब) सप्रत्यक्ष प्रयत्न व भूल सिद्धान्त
(iii) स्वप्न का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (*Psychological* Theory)

नीचे हम इन सिद्धान्तो की विस्तृत विवेचना करेंगे :—

स्वप्न का अलौकिक सिद्धान्त
(Supernatural Theory of Dream)

यह सबसे प्राचीन स्वप्न सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का आधार प्राचीन विश्वास है। स्वप्न के सम्बन्ध मे प्राचीन विश्वास था कि स्वप्न दैवी या अलौकिक शक्ति प्रभाव के कारण होते है। अच्छे स्वप्न का कारण दैवी-देवताओ की प्रसन्नता तथा बुरे व दुखद स्वप्न का कारण अप्रसन्नता माना जाता था।

प्राचीन दार्शनिक, जैसे—**ल्युक्रिटियस** (Lucretius) का मत था कि आत्मा का निर्माण अनेक छोटे-छोटे अशो से मिलकर हुआ है तथा ये विभिन्न अश प्राणी की विभिन्न क्रियाओ का सचालन करते हैं तथा उन क्रियाओ को नियन्त्रित भी करते है। जब आत्मा का कोई अश शरीर से अलग हट कर क्रिया करता है तो उसे स्वप्न कहते हैं। यह सिद्धान्त वैज्ञानिक नही है, अतः इससे स्वप्न की समुचित व्याख्या सम्भव नही है।

स्वप्न का शारीरिक सिद्धान्त
(Physiological Theory of Dream)

शारीरिक सिद्धान्तो के प्रतिपादको मे से **बिंज** (Binze), **मौरी** (Mauri), **रॉबर्ट** (Robert), **डेलेज** (Deleage) आदि उल्लेखनीय है। इस सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न का कारण वाह्य एव आन्तरिक उद्दीपक है। इसमे दो सिद्धान्त मुख्य रूप से आते हैं —

(1) प्रत्यक्षीकरण-भ्रम सिद्धान्त (Perception-Illusion Theory)।
(2) सप्रत्यक्ष प्रयत्न व भूल सिद्धान्त (Apperceptive Trial and Error Theory)।

(1) प्रत्यक्षीकरण-भ्रम सिद्धान्त (Perception Illusion Theory)—निद्रावस्था मे चेतना सक्रिय नही होती। चेतना की निष्क्रियता के साथ ही साथ व्यक्ति का उच्च स्नायु-मण्डल (higher nervous system) की क्रिया भी निष्क्रिय हो जाती है। इस निष्क्रियता के कारण वाह्य उद्दीपको का गलत प्रत्यक्ष होता है तथा साहचर्य की क्रियाएँ निर्बल पड़ जाती है। वैसे सुषुप्तावस्था मे उद्दीपक ज्ञानेन्द्रिय को प्रवाहित करती है तथा स्नायु-प्रवाह मस्तिष्क तक भी जाता है लेकिन निष्क्रियता के कारण सही अर्थ नही जुड पाता। इसलिए उद्दीपक का वास्तविक प्रत्यक्षीकरण नही होता बल्कि भ्रम हो जाता है या उद्दीपको का अतिरंजित (exaggerated) रूप अनुभव होता है। दूसरे शब्दो मे, स्वप्नों में प्रत्यक्ष भ्रमात्मक होता है। यही कारण है कि इस सिद्धान्त को प्रत्यक्षीकरण-भ्रम सिद्धान्त की सज्ञा दी जाती है।

उद्दीपको के अतिरंजित रूप का अनुभव इस कारण से होता है कि निद्रावस्था मे वृहत मस्तिष्क (cerebrum) तथा उच्च मस्तिष्क केन्द्रों का नियंत्रण नीचे के केन्द्रो से प्राय. न के बराबर होता है। इसी कारण चेहरे पर पानी की छीटें डालने पर व्यक्ति नदी मे डूबने का अनुभव करता है या निद्रावस्था मे खाट की रस्सी में नाममात्र पैर फँस जाने पर व्यक्ति अपने को किसी जाल मे फँसा पाता है।

(2) संप्रत्यक्ष प्रयत्न व भूल सिद्धान्त (Apperceptive Trial and Error Theory)—यह सिद्धान्त भी भौतिक या शारीरिक उद्दीपको को स्वप्न का कारण मानता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक इस बात को स्वीकार करते है कि निद्रावस्था मे उच्च स्नायु केन्द्र निष्क्रिय होते है। परन्तु उनका यह भी कहना है कि निद्रावस्था से वाह्य व आन्तरिक उत्तेजक व्यक्ति को प्रभावित करते है तथा उच्च स्नायु केन्द्र उत्तेजक के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करता है परन्तु वह सफल नही होता। परिणामस्वरूप उद्दीपको के सही अर्थ का अनुभव नही होता बल्कि सम्बन्धित अन्य अर्थ जुड जाता है। इस प्रकार के प्रयत्नो मे अनेक भूलें होती है।

इस प्रकार हमने स्वप्न के शारीरिक सिद्धान्तो मे दोनो पक्षो पर ध्यान दिया। इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक बिन्ज (Binge) का कहना है—"जिन सब तथ्यो को हम देखते है, वे हमे स्वप्न को एक शारीरिक प्रक्रिया मानने को प्रेरित करती है, जो कि सभी केसो मे व्यर्थ एव अनेक मामलो मे निश्चय रूप से उन्मत्त है"[1] सार्जेन्ट (Sargent) के मतानुसार—"स्वप्न देखने वाला उद्दीपकों को ग्रहण करता है, परन्तु उसका सुप्त मन उनके अर्थ को स्पष्ट नही कर पाता है"[2] हॉर्टन (Horton)

1. "All the facts as we see then urge us to characterize the dream as a physical process in all cases useless and many cases definitely morbid."—Binze.

2. "The stimulus is accepted by the dreamer but the sleeping mind fails to interpret it alright."

—Sargent.

के शब्दो मे—"स्वप्न निद्रावस्था मे व्यक्ति की ज्ञानात्मक प्रभावो का मिथ्या विवेचन है।[1]"

इस प्रकार हार्टन ने स्वप्न को प्रत्यक्ष ज्ञान का गलत स्वरूप कहा है। उसने एक उदाहरण भी दिया है कि—किसी व्यक्ति के कान मे गडबडी थी, जिसके कारण मस्तिष्क अस्त-व्यस्त रहता था तथा उससे बिजली की गर्जना से सम्बन्धित अनेक स्वप्न दिखाई पड़ते है। इसी प्रकार एक विद्यार्थी स्वप्न मे मित्र से कुश्ती लडता तथा उसके दाँत तुडवाता था जबकि वास्तव मे उसके दाँत मे दर्द होता था। इसी प्रकार के उदाहरण **सार्जेंट** भी अपने प्रयोगात्मक अध्ययनो के बाद देता है। एक व्यक्ति अगर रात्रि मे अधिक खाना खाकर सोता है या उसको पाचन-क्रिया गडबड होती है तो उसकी हृदय गति भी तीव्र हो जाती है तथा वह इस प्रकार की अवस्था मे ऊँची जगह से गिरना या भयकर घटना आदि स्वप्न देखेगा।

हॉलिंगवर्थ (Hollingworth) ने भी इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिए है। उसने अपने प्रयोज्य को इत्र सुँघाया जबकि वह सो रहा था। जाग्रतावस्था मे जब प्रयोज्य से पूछा तो प्रयोज्य ने बताया कि वह अभी स्वप्न मे कैरो शहर मे किसी इत्र की दुकान से इत्र खरीद रहा था।

नाइट डनलप (Knight Dunlop) ने अपने अध्ययनो के आधार पर बताया कि स्वप्न का कारण शारीरिक है। नाइट डनलप के अनुसार, टेढे-मेढे या सिकुड कर सोने मे स्वप्न अक्सर दिखाई पड़ते है तथा अधिक सर्दी मे व्यक्ति नगेपन का स्वप्न देखते है।

रॉबर्ट (Robert) ने भी स्वप्न का कारण शारीरिक माना है। इनका मत है कि स्वप्न मे मुख्यत जाग्रत जीवन के वे विचार आते हैं जिनका असफल समाधान होता हैं। **डेलेज** (Delege) के कथनानुसार—दमित ऐन्द्रिक प्रभाव (repressed sensory impression) की अभिव्यक्ति स्वप्नो मे होती है।

सक्षेप मे, इस सिद्धान्त के परिणामो से मुख्यत अग्रलिखित सामान्य विशेषताएँ मिलती हैं :—

(क) स्वप्न की उत्पत्ति का कारण शारीरिक उद्दीपक है।

(ख) स्वप्न की सामग्री शारीरिक उद्दीपको द्वारा उत्पन्न प्रत्यक्ष अनुभव एव संवेदनाएँ होती है।

(ग) इस प्रकार के प्रत्यक्ष व सवेदनात्मक अनुभव वास्तविक ज्ञान के स्थान पर अवास्तविक या मिथ्या ज्ञान देते हैं।

(घ) यह प्रत्यक्ष व सवेदनात्मक मिथ्यात्मक अनुभव असम्बद्ध, अतार्किक व

---

1. "Dremas are misinterpretation of sensory impressions"
—*Horton*

असगत प्रतीत होते है, क्योंकि इसमे उच्च मानसिक क्रियाएँ; जैसे—स्मृति, विवेक या इच्छा-शक्ति आदि का अभाव-सा रहता है ।

(इ) इस प्रकार के स्वप्न अर्थहीन व मिथ्या होते है ।

शारीरिक सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Psysiological Theory of Dreams)—इस सिद्धान्त के महत्त्व को अनेक लोग स्वीकार करते हैं परन्तु अगर इस सिद्धान्त को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाय तो इस सिद्धान्त में प्रमुखत. निम्न दो दोष नजर आते हैं :—

(अ) इस सिद्धान्त का मुख्य दोष यह है कि यह सिद्धान्त इस बात की स्पष्ट विवेचना नहीं करता है कि एक ही प्रकार का उत्तेजक भिन्न-भिन्न व्यक्तियो में भिन्न भिन्न प्रकार के स्वप्न क्यो उत्पन्न करते हैं ? अगर स्वप्न का कारण शारीरिक उत्तेजना मात्र है तो सभी व्यक्ति या एक ही व्यक्ति को एक प्रकार का स्वप्न हमेशा देखना चाहिए, परन्तु ऐसा नही होता ।

(ब) शारीरिक सिद्धान्त की दूसरी त्रुटि यह है कि यह सिद्धान्त स्वप्न को निरर्थक व उद्देश्यहीन मानता है, जबकि स्वप्न अर्थपूर्ण व उद्देश्यपूर्ण होता है, अगर उसको सांकेतिक भाषा की जानकारी हो

स्वप्न के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त
(Psychological Theory of Dream)

यह सिद्धान्त आधुनिक युग की देन है जो कि नवीन व युक्तिसंगत है । इन सिद्धान्तो का आधार मानसिक अवस्थाओ एवं अनुभूतियों के माध्यम से स्वप्न की व्याख्या करना है । इस सम्बन्ध मे फ्रायड (Freud) तथा उसके साथियों के योगदान सहाहनीय हैं । 1900 में फ्रायड की पुस्तक 'स्वप्न-विश्लेषण' (*The Interpretation or Dream*) प्रकाशित हुई, जिसमे उसने अपने सिद्धान्त की वैज्ञानिक व विशद व्याख्या प्रस्तुत की । प्रमुखतः मनोवैज्ञानिक फ्रायड, एडलर व युग स्वप्न-सिद्धान्त में आते है ।

फ्रायड का स्वप्न-सिद्धान्त
(Freuadian Theory of Dream)

फ्रायड के मतानुसार स्वप्न का सम्बन्ध अचेतन की दमित इच्छाएँ होती है । क्योंकि दमित इच्छाओं का अचेतन मे अस्तित्व समाप्त नही होता बल्कि वे अवसर ढूँढती रहती हैं तथा मौका आने पर तुष्टि चाहती हैं तथा स्वप्न उसकी तुष्टि का साधन होता हैं । इस प्रकार स्वप्न मे दमित इच्छाओ की पूर्ति होती है, इसी कारण फ्रायड के सिद्धान्त को **'इच्छापूर्ति का सिद्धान्त'** भी कहा जाता है । फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त की व्याख्या करने से पूर्व संक्षेप में उसकी मुख्य बातों को जानना आवश्यक है —

1. स्वप्न निरर्थक व निष्कारण न होकर निश्चित व सार्थक होते है ।
2. फ्रायड के मतानुसार—मन के तीन क्षेत्र या स्तर होते हैं—चेतन (Conscious), अवचेतन (Sub-Conscious) तथा अचेतन (Uncon-

scious)। चेतन मे उन इच्छाओ का प्रवेश नही होता जो असामाजिक व अनैतिक होती है, क्योकि इसका सचालन वास्तविकता सिद्धान्त के माध्यम से होता है तथा इस प्रकार की इच्छाओ का दमन हो जाता है तथा ये अचेतन मे चली जाती है जहाँ ये निष्क्रिय नही होती बल्कि सदैव चेतन स्तर पर आने की कोशिश करती हैं।

3. निद्रावस्था मे चेतन स्तर मे शिथिलता आने के कारण दमित इच्छाएँ व विचार छद्म रूप मे स्वप्नो के माध्यम से अभिव्यक्त होते है।
4. स्वप्न इच्छापूरक होते है। फ्रायड के मतानुसार स्वप्नो मे लैंगिक इच्छाओ की पूर्ति होती है।
5. फ्रायड के अनुसार स्वप्न—सामग्री (dream content) दो प्रकार का होता है—*व्यक्त व अव्यक्त सामग्री (manifest and latent content)*।
6. स्वप्न की व्याख्या व्यक्ति के मानसिक इतिहास को जानने से हो सकती है तथा इसको जानने की मुख्य विधि मुक्त-साहचर्य विधि (Free Association Method) है।

फ्रायड के स्वप्न-सिद्धान्त को 'इच्छापूर्ति का सिद्धान्त' (*Wish Fulfilment Theory*) भी कहा जाता है। क्योकि फ्रायड के अनुसार—सब स्वप्नो मे कारण, सार्थकता एव उपयोगिता विद्यमान रहती है।[1] इस बात को स्पष्ट करता हुआ फ्रायड कहता है—"स्वप्न निद्रावस्था की वह अचेतन मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अचेतन मे दमित अतृप्त इच्छाओ की अभिव्यक्ति एव सन्तुष्टि छद्म रूप मे होती है।"[2] क्योकि अचेतन की इच्छाएँ अनैतिक व समाज-विरोधी होती हैं। अत स्वप्नावस्था मे ये दमित इच्छाएँ अपने वास्तविक रूप मे प्रकट न होकर प्रतीको के रूप मे प्रकट होती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि स्वप्न देखने वाला व्यक्ति यह विश्वास नही कर पाता कि वे उसी की इच्छाएँ है। आगे हम फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त के मुख्य प्रत्ययो (Concepts) की विवेचना करेंगे।

(1) **स्वप्न प्रतिबन्धक** (Dream Censor)

फ्रायड के अनुसार, जाग्रतावस्था मे चेतन, अवचेतन व अचेतन के बीच आदर्श भावना एक प्रतिबन्धक के रूप मे कार्य करती है जिसके फलस्वरूप अनैतिक, अनुचित एवं असामाजिक विचार व इच्छाएँ चेतना मे नही आ पाती तथा उनका दमन हो जाता है। दमन हो जाने पर ये इच्छाएँ अचेतन मे चली जाती है जहाँ वह निष्क्रिय

1. "All dreams have a cause, a significance and an economy"
—**Freud.**

2. "Dream is that unconscious mental process of sleeping state by which our unconsious desires and wishes are expressed and fulfilled in a disguised form." —**Freud**

होकर नही बैठती वल्कि समय-समय पर चेतन मे आने का प्रयास करती है । निद्रा-वस्था मे प्रतिवन्धक का भय कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप ये इच्छाएँ स्वप्न के रूप मे अभिव्यक्त होती हैं । ये दमित इच्छाएँ असली रूप मे प्रकट न होकर छद्म रूप मे प्रकट होती है । प्लेटो ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है—"जिन कार्यो को पापी अपने वास्तविक जीवन मे करते है, उन्ही कार्यो का स्वप्न देखकर साधु लोग सन्तोष करते है ।"

(2) **स्वप्न विषय** (Dream Contents)

फ्रायड के मतानुसार स्वप्न-निर्माण (Dream formation) के पीछे मुख्यत दो प्रकार की मानसिक प्रवृत्तियाँ (psychic tendencies) क्रियाशील रहती है :—

1. वह मानसिक प्रवृत्ति जिसके माध्यम से अचेतन मे दमित इच्छाओ की स्वप्न मे पूर्ति होती है ।
2. दूसरी प्रकार की मानसिक प्रवृत्ति दमित अतृप्त इच्छा को असली रूप मे प्रकट होने मे प्रतिरोध (resistance) उत्पन्न करती है ।

युंग का स्वतः प्रतीकात्मक सिद्धान्त
(Jung's Auto Symbolic Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन युंग ने किया । इस सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न वह साधारण प्रक्रिया है जिसमे दमित व जातीय विशेपताएँ प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्त होती है । इसका सम्बन्ध अज्ञात मन से है । स्मरण रहे कि अज्ञात मन की प्रमुख विशेपता यह है कि यह किसी भी वस्तु या विपय के सम्बन्ध मे प्रत्यक्ष रूप से नही वल्कि परोक्ष रूप से सोचता है । युग स्वप्न का कारण जातीय विशेपताओ को मानता है । अनेक उदाहरणो मे भी उसने इसके प्रमाण प्रस्तुत किये हैं । युग के मित्र ने एक स्वप्न यह देखा, "वह वहुत-सी स्त्रियो से घिरा हुआ है । वह मुक्त भाव से उन लोगो से विचार-विनिमय करना चाहता है । परन्तु उसके सम्मुख यह समस्या थी कि पिता के सामने उन लोगो से कैसे वातें करे । इस कारण उसने उन स्त्रियो से कहा, "ठहरो ! पहले मुझे पिता से समझ लेने दो ।"

युग का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक भाव-प्रतिमा होती है जो कि उसकी जातीय सवेगात्मक विशेपता से सम्बन्धित होती है । यह स्वप्न इसी भावना का दिग्दर्शन कराता है ।

स्वप्न की कार्य-पद्धतियाँ
(Dream Mechanisms)

फ्रायड का मत है कि स्वप्न क्रिया मे अज्ञात मन की चार कार्य-पद्धतियाँ सहायक होती हैं —

1. 'Saints content themselves with dreaming what the sinners do in their actual life."—*The Republic of Plato*

1. सक्षेपण (Condensation),
2. विस्थापन (Displacement),
3. नाटकीयन (Dramatization),
4 प्रतीकीकरण (Symbolization) ।

संक्षेपण वह कार्य-पद्धति है जिसके द्वारा समान या समान गुणो वाली अनेक विपय-वस्तुओ को एक ऐसी विपय-वस्तु के माध्यम से प्रकट किया जाता है जिसमे समस्त गुणो या विशेपताओ को व्यक्त करने की क्षमता रहती है । अचेतन भी स्वप्न मे व्यक्त होने वाली इच्छाओ का सक्षिप्तीकरण करता है । स्वप्न-कल्पना (dream phantasy) की एक प्रमुख विशेपता यह है कि वह किसी भी विपय-वस्तु को विशद् रूप से नही लेती । यही कारण है कि स्वप्न मे प्रकट होने वाली घटना-विशेष को सक्षिप्त होना आवश्यक है ।

वास्तविक इच्छाओ को स्वप्न रूप लेने के पूर्व विस्थापन (displacement) कार्य-पद्धति से सचालित होना पडता है । विस्थापन कार्य-पद्धति के आधार पर इच्छा-पूर्ति के लिए आवश्यक वस्तु अनावश्यक तथा अनावश्यक आवश्यक दिखाई पडती है । इस तरह इसके कारण एक वस्तु का मान-मूल्य (value) अन्य वस्तुओ की ओर स्थानान्तरित हो जाता है । इस क्रिया-पद्धति के सक्रिय होने से अव्यक्त इच्छाएँ (latent desires) कुछ का कुछ रूप ले लेती हैं । स्वप्न का विषय परिवर्तित होकर दिखाई पडता है । अत स्वप्नद्रष्टा द्वारा वर्णित कहानी के आधार पर स्वप्न की वास्तविकता को समझना भी एक समस्या है ।

नाटकीयन (dramatization) के कारण स्वप्न मे प्रत्येक घटना चित्र रूप मे दिखाई पडती है । ये चित्र दृश्य, श्रव्य व स्पर्श रूप के हो सकते हैं । अचेतन मन स्वप्न के माध्यम से गूढ से गूढ विचारो को चित्र के रूप मे प्रस्तुत करता है ।

प्रतीकीकरण (symbolization) स्वप्न को विकृत करने की एक प्रमुख विधि है । इसके द्वारा अचेतन मन की दमित इच्छाओ के प्रदर्शन मे विशेप सहायता प्राप्त होती है तथा अचेतन मन की निन्दनीय इच्छाएँ भी अभिव्यक्ति योग्य हो जाती है तथा परम अहम् भी इसकी अभिव्यक्ति मे बाधक नही बनता।

मूल्यांकन

स्वप्न के साधारण व मनोवैज्ञानिक अर्थ मे अन्तर है । मनोवैज्ञानिको के अनुसार यह वह मानसिक क्रिया है जिसके माध्यम से अचेतन मे दमित इच्छाओ या अतृप्त इच्छाओ की पूर्ति होती है । असामान्य व्यवहारो को समझने के लिए स्वप्नो का विश्लेषण व उसे समझना लाभदायक होता है । फ्रायड का इस दिशा मे सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान है । उसने स्वप्न विश्लेषण की दो प्रमुख विधियाँ, मुक्त साहचर्य व स्थानापन्न विधि की खोज की । उसका मत था कि स्वप्न विश्लेपण की सहायता से मानसिक रोगो के कारणो का पता लगाया जा सकता है तथा उनका सरलता के साथ निवारण भी सम्भव है ।

14

दैनिक जीवन की मनोविकृतियाँ

(PSYCHOPATHOLOGY OF EVERYDAY LIFE)

सभी व्यक्तियों मे दैनिक जीवन मे भूले होती हैं। कुछ भूलें ऐसी होती हैं जो अज्ञानता या आकस्मिकता के कारण होती है। परन्तु कुछ भूलें ऐसी भी होती हैं जिनका हमे ज्ञान होता है तथा हम शीघ्र ही उन भूलो मे सुधार ले आते है। इन भूलो के अतिरिक्त कभी-कभी ऐसी भावनाएँ घटित हो जाती हैं जिन पर हमें काफी आश्चर्य होता है तथा अपना अधिक ध्यान भी इन घटनाओ पर नही देते। इस प्रकार की भूलो या घटनाओ को करते समय इनकी चेतना व्यक्ति को नही होती, परन्तु भूल हो जाने के उपरान्त उसका ज्ञान अवश्य हो जाता है। ये भूलें देखने मे साधारण होती हैं, परन्तु वास्तव मे प्रतीकात्मक (symbolic) होती है। ये भूलें बीमारी के कारण नही होती, क्योकि प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति के प्रतिदिन के कार्यो मे भूलें दिखायी पड़ती है, जैसे—परिचित व्यक्ति का नाम भूल जाना, कहना कुछ चाहते है परन्तु बोल कुछ जाते हैं, पहचानने मे भूल, लिखने की भूल (slip of pen) मुद्रण-दोष (misprints), वस्तुओ को निर्धारित स्थान पर नही रखना, भ्रान्तिपूर्ण क्रियाएँ करना (erroneous action), प्रतीकात्मक कार्य आदि। ये सब भूलें दैनिक जीवन की मनोविकृतियों के अन्तर्गत आती है

दैनिक जीवन मे जब ये भूलें होती है तो प्राय. हम इन पर ध्यान नही देते। विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने इन दैनिक जीवन की मनोविकृतियो की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की है, जैसे—कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि असावधानी, थकावट, शारीरिक अस्वस्थता, रक्त संचालन मे अव्यवस्था आदि के आधार पर इन मनोविकृतियो की व्याख्या की जा सकती है। परन्तु ऐसा देखा गया है कि इन आधारो की अनुपस्थिति मे भी ये भूलें होती हैं। मनोविश्लेपको ने इन भूलो का कारण अन्तर्द्वन्द्व (conflicts) को माना है। इस दिशा मे फ्रायड ने उपयुक्त ढग से व्याख्या

प्रस्तुत की है। फ्रायड ने अपनी पुस्तक *"The Psychopathology of Everyday Life'* (1914) मे बताया कि मनोवैज्ञानिक व्यवहार का कोई भी अश बिना कारण, अर्थ व मितव्ययता के नही होता। उसका मत है कि इन दैनिक छोटी-छोटी भूलो मे अचेतन का हाथ रहता है। ये भूलें ध्येयपूर्ण होती हैं तथा इनसे आक्रामक या दमित इच्छाओ को कुछ न कुछ सन्तोष अवश्य प्राप्त होता है। फ्रायड का विचार था कि इन भूलो का ज्ञान मनोविश्लेषण के माध्यम से प्राप्त हो सकता है।

दैनिक जीवन की भूलें
(Mistakes of Everyday Life)

(1) नामों का विस्मरण (Forgetting of Names)

कभी कभी हम परिचित व्यक्तियो का नाम भूल जाते हैं। हम बार-बार प्रयास करते हैं कि वे याद आ जावे परन्तु याद नही आते। वैसे तो भूलना एक स्वाभाविक मानसिक क्रिया है परन्तु साधारणत· एक बार परिचय हो जाने पर हमे व्यक्ति, स्थान या वस्तु का नाम याद हो जाता है। परन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि हम परिचित या पडौस के रहने वाले व्यक्ति का ही नाम भूल जाते हैं। ऐसा होने पर हमे आश्चर्य होता है। फ्रायड के ही शब्दो मे—"यदि कोई व्यक्ति सुपरिचित व्यक्तिवाचक नामो को भूल जाता है तथा प्रयत्न करने के बावजूद भी उन्हें याद करने मे कठिनाई अनुभव करता है, तो यह अनुमान लगाना कठिन नही कि उसके मन मे उस नाम वाले व्यक्ति के प्रति कोई बात है तथा वह उसके सम्बन्ध मे सोचना पसन्द नही करता।" इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए मानसिक स्थिति सम्बन्धी निम्न उदाहरणो पर विचार कीजिए जिनमे इस तरह की गलती हो गई थी —

किन्ही 'अ' महोदय को किसी महिला से प्रेम हो गया था, पर उसने इनके प्रति प्रेम प्रदर्शित नही किया तथा कुछ ही समय के बाद किन्ही 'ब' महाशय के विवाह कर लिया। यद्यपि 'अ' महोदय पहले से ही 'ब' को जानते थे तथा उनके साथ कारोबार भी था, परन्तु अब ये बार-बार 'ब' महोदय का नाम भूल जाते थे तथा जब उन्हे नाम लिखने की आवश्यकता होती थी तब अक्सर वे किसी दूसरे से पूछते थे। यहाँ यह बात स्पष्ट है कि 'अ' महाशय अपने भाग्यशाली प्रतिद्वन्द्वी के सम्बन्ध मे समस्त जानकारी को समाप्त कर देना चाहते है।

फ्रायड के अनुसार नामो को भूल जाने का प्रमुख कारण यह है कि हमने नामो को दमित कर लिया होता है क्योकि अचेतन या अचेतन के रूप मे उन नामो से सम्बन्धित कोई कारण छिपा रहता है। हम नामो को इस कारण भी भूल जाते हैं कि हम उन नामो के प्रति आक्रामक (aggressive) होते हैं, यद्यपि इस आक्रामकता को हम दमित किये होते हैं। फ्रायड इस सम्बन्ध मे एक और उदाहरण देता है —

"एक महिला, एक डॉक्टर से अपनी व डॉक्टर की परिचित एक महिला के सम्बन्ध मे, उसका अविवाहित अवस्था का नाम लेकर पूछती है कि वह उसका

विवाहित अवस्था का नाम भूल गई है। वह यह स्वीकार करती है कि मैंने उसके विवाह पर काफी विरोध किया था तथा उसका पति मुझे नापसन्द था।"[1]

कभी-कभी नामो के विस्मरण के साथ गलत प्रत्यावाहन (recall) भी होता है। इसे विस्थापन (displacement) कहते है, क्योंकि यहाँ वास्तविक नाम के स्थान पर गलत नाम याद आ जाता है। फ्रायड के मतानुसार इस प्रकार के विस्थापनो के पीछे कोई न कोई प्रेरक शक्ति अवश्य कार्य करती है। इस प्रकार नाम को भूलना भी एक मनोविकृति है।

(2) बोलने की भूलें (Slip of Tongue)

प्राय. बोलने मे भूले हुआ करती है तथा कभी-कभी तो व्यापक रूप से भूलें हुआ करती है। मेरिंगर (Meringer) व मेयर (Meyer) के अनुसार—बोलने की भूले ध्वनियो की समानता के कारण होती है। फ्रायड ने इनके दृष्टिकोण को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि इन लोगो ने वास्तव मे मानसिक स्थिति का अध्ययन नही किया। कभी-कभी व्यक्ति ऐसी बातें कह जाता है जिन्हे वह चेतन रूप से बोलने को कभी भी तैयार नही होता। उसे स्वय आश्चर्य होता है कि ये शब्द कैसे निकल गए। फ्रायड के अनुसार इसका अचेतन होता है तथा व्यक्ति इस प्रकार की भूलों मे अचेतन की दमित इच्छाओ को व्यक्त करता है। ब्राउन[2] (Brown) ने इस सम्बन्ध मे बड़ा ही रोचक उदाहरण दिया है—उसका एक मित्र था जिसे अपने पर बड़ा गर्व था तथा अपने मित्र को आदर-भाव की दृष्टि से नही देखता था। एक दिन उसे वैज्ञानिको की एक सभा मे अपने एक मित्र के लेख पर बधाई देनी थी। उसने बधाई इन शब्दो मे दी—"इस निम्नकोटि के लेख पर मैं अपने महान् विचार प्रकट करता हूँ, यद्यपि उसे कहना था कि इस महान् लेख पर मैं अपने साधारण विचार प्रकट करता हूँ।"[3] यहाँ इस प्रकार उसने अपने दमित विचारो को ही प्रकट किया। फ्रायड ने भी बोलने की भूलो पर अनेक उदाहरण दिए है, जैसे—फ्रायड के कार्यालय मे एक बीस वर्षीय युवक आया तथा कहने लगा—"एन० एन०, जिसका आपने इलाज किया है, मै उसका पिता हूँ, माफ कीजिए मै उसका भाई हूँ, वह तो मुझसे चार वर्ष बडा है।" उस बोलने की भूल का कारण यह था कि वह युवक भी अपने भाई के समान बीमार था जिसका कारण उसका पिता था तथा वह भी अपने भाई के समान ही इलाज करना चाहता था। परन्तु सर्वाधिक इलाज की आवश्यकता उसके पिता को थी। एक बार ब्रिटिश लोकसभा के एक सदस्य ने दूसरे सदस्य को 'मेम्बर फार

1. Freud, S. : *Psychoanalysis*, p. 35.
2. Brown, J F. . *Psychodynamics of Abnormal Behaviour*, p. 234.
3. "May I offer a few brilliant remarks on this modest paper, in place of saying may I offer a few modest remarks on this brilliant paper.'—Brown : *Ibid*, p. 233.

सेण्ट्रल हल' (एक चुनाव क्षेत्र का नाम) के स्थान पर 'मेम्बर फार सेण्ट्रल हेल' (नरक) कह दिया । इस छोटी-सी भूल के पीछे कारण था ।

फ्रायड ने एक अन्य उदाहरण देते हुए बताया कि एक बार मैं एक ऐसी रोगिणी के लिए नुस्खा लिख रहा था, जो इलाज के खर्च से परेशान थी । रोगिणी कहती है—"मुझे इतने भारी बिल (Bills) न देना जिन्हे मैं निगल ही नही पाऊँ ।" उसका यहाँ बिल (Bills) से तात्पर्य 'Pills' से था । इस प्रकार बोलने की भूल भी अचेतन से प्रेरित होती है ।

(3) लिखने व छपने की भूलें (Slip of Pen and Misprint)

दैनिक जीवन मे भी लिखने से सम्बन्धित अनेक भूलें होती हैं जो मनोविकृत अवस्था की परिचायक होती है । इस प्रकार की भूलो मे प्राय यह देखा जाता है कि हम लिखना कुछ और चाहते हैं और लिख कुछ जाते हैं । यह स्थिति अचेतन मन मे दमित इच्छाओ को व्यक्त करती है । फ्रायड के अनुसार, लिखने की गलतियो से यह पता चलता है कि लिखने वाले की रुचि लिखने मे नही है । लिखने वाले को यह पता नही चल पाता कि उसके द्वारा लिखे गये शब्द सिकुड गए है या वह अन्तिम शब्दो को पहले लिख गया है । ब्राउन (Brown) ने इस सम्बन्ध मे एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है । ब्राउन के एक मित्र को इगलैण्ड जाने की इच्छा थी परन्तु वह कुछ कारणो से शिकागो चला गया । उसने शिकागो से ब्राउन को लिखा—"I am so glad that I am coming to see you soon" और लिफाफे पर पता लिखा था—'To Chicago, England '

डॉ० स्टीकल (Dr Stekel) ने भी लिखने की भूल के सम्बन्ध मे एक उदाहरण दिया है । एक समाचापत्र मे यह वाक्य छपा—"हमारे पाठक इस सत्य के गवाह है कि किस स्वार्थभाव से हमने सदैव जाति की सेवा की है ।" यहाँ सम्पादक नि स्वार्थ भाव छापना चाहता था परन्तु स्वार्थभाव छाप गया । इस तरह सत्य बात छप गई । इसी प्रकार एक बार इगलैण्ड के एक समाचार-पत्र मे छपा कि सभा मे 'हिज हाईनेस क्लाउन प्रिन्स' भी उपस्थित थे । दूसरे दिन इस भूल पर क्षमायाचना करते हुए यह प्रकाशित हुआ कि इससे तात्पर्य 'क्रो प्रिन्स' (कौए राजकुमार) से था, न कि क्लावन प्रिन्स (विदूषक राजकुमार) से । इस भूल के पीछे मूल कारण यह था कि प्रेस के कर्मचारियो व सम्पादक की मनोवृत्ति राजकुमार के प्रतिकूल थी । इस सम्बन्ध मे एक और रोचक उदाहरण प्रस्तुत है । एक युवती एक डाक्टर से प्रेम करती थी । उसने डॉक्टर को एक पत्र लिखा, जिसमे उसने 'Doctor' के स्थान पर 'Dear' लिखा । इस भूल के माध्यम से युवती ने डॉक्टर के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया ।

इसी प्रकार एक युद्ध-सवाददाता ने एक ऐसे सेनापति के सम्बन्ध मे, जो कि अपनी कमजोरी के लिए प्रसिद्ध था, लिखा, "यह बैटल-स्केअर्ड बैटरन' (अर्थात् युद्धभीत योद्धा) । यह समाचार अखबार मे छप गया । अगले दिन भूल सुधार व क्षमायाचना

करते हुए उस सवाददाता ने लिखा कि ये शब्द इस तरह होने चाहिए थे—'**बौटल स्कार्ड बैटरन**'। यहाँ 'स्कार्ड' (Scarred) शब्द तो ठीक है परन्तु '**बैटल**' (Battle) के स्थान पर 'बौटल' छप गया जिसका यहाँ कोई अर्थ नही है।

(4) पहचानने की भूलें (Mistakes of Recognition)

दैनिक जीवन मे कुछ ऐसी भी भूलें हो जाती हैं जिसमे हम परिचित व्यक्ति, स्थान या वस्तु को शीघ्र ही पहचान नही पाते। इस प्रकार की भूलें तब होती है जब कोई व्यक्ति परिचित व्यक्ति, स्थान या वस्तु को देखकर सोचे कि यह स्थान कौन-सा है, शायद कभी देखा है, कब व कहाँ देखा है, यह व्यक्ति परिचित है या अपरिचित तो इसे पहचानने की भूले कहते है।

साधारण रूप से मनोवैज्ञानिको का मत है कि इस प्रकार की भूले मुख्यत. स्मृति चिह्न (memory trace) के समाप्त होने या अत्यन्त मन्द होने से होती है। परन्तु मनोविश्लेषणवादियो का कहना है कि पहचानने की भूलें अचेतन की दमित इच्छाओ के परिणामस्वरूप होती है। किसी को न पहचानना उसकी अप्रियता की द्योतक है।

(5) वस्तुओं को गलत स्थान पर रखना (Mislaying of Objects)

वस्तुओ को निश्चित स्थान पर न रखकर गलत स्थान पर रखना, भूल जाना या किसी की कोई वस्तु लेकर वापस लौटाना भूल जाना आदि भी दैनिक जीवन की मनोविकृति है। जब हम किसी वस्तु को गलत स्थान पर रख देते है तो यह सफाई देते हैं कि सयोगवश ही ऐसा हुआ परन्तु वास्तव मे इसके पीछे भी अचेतन रहता है तथा गलत स्थान पर वस्तुओ को रख देने से व्यक्ति की असन्तुष्ट अचेतन इच्छाओ की अभिव्यक्ति होती है। जॉन्स (Jones) ने इस सम्बन्ध मे एक रोचक उदाहरण दिया है। उसने लिखा है कि जब कभी उसे अधिक खाँसी आती है तब वे अपनी धूम्रपान-नलिका (smoking pipe) को भूल से गलत स्थान पर रख देते है तथा काफी प्रयत्न के बाद भी वह उसकी खोज नही कर पाते। परन्तु जब खाँसी कम हो जाती है तो धूम्रपान-नलिका अति शीघ्र प्राप्त हो जाती है। विश्लेषण करने से यह ज्ञात हुआ कि क्योकि जॉन्स को खाँसी थी अत वे धूम्रपान नही करना चाहते थे। ब्रिल (Brill) ने भी इसी सम्बन्ध मे एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है। एक व्यक्ति एक सामाजिक उत्सव मे, अपनी इच्छा के विपरीत व अपनी पत्नी की इच्छा के कारण, जाने के लिए तैयार हुए। जब कपडे पहनने के लिए बक्से को खोलने को तैयार हुए तो चाभी न मिली। अन्त मे उत्सव मे न पहुँचने की दोनो ने क्षमायाचना कर ली। दूसरे दिन सुबह जब उन्होने ताला तोडा तो चाभी बक्से के अन्दर मिली। विश्लेषण करने से यह ज्ञात हुआ कि अचेतन रूप से दमित हो जाने की इच्छा के कारण उसने कुछ समय पूर्व ही चाभी बक्से मे रखकर ताला दबाकर बन्द कर दिया था।

कुछ व्यक्ति दूसरो से वस्तु उधार ले तो लेते है परन्तु वापस नही लौटाते। उनके ये कार्य भी दैनिक जीवन की मनोविकृतियो के अन्तर्गत आते है। फ्रायड (Freud) ने इस सम्बन्ध मे भी एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है—"एक महिला अपने जीजा के साथ, जो कि एक प्रसिद्ध कलाकार था, रोम गई। रोम मे रहने वाले जर्मनो ने कलाकार का बडा स्वागत किया तथा उसे अन्य वस्तुओ के साथ एक पुराना सोने का तमगा भी दिया। वह महिला यह देखकर अति चिन्तित हुई कि उसके जीजा ने उस बढिया चीज को अधिक पसन्द नही किया। अपनी बहिन के आ जाने के बाद वह स्वदेश लौट आई तथा जब उसने अपना सामान खोला तो देखा कि वह उस तमगे को भी साथ ले आई है—कैसे ले आई, यह उसे ज्ञात नही था। तुरन्त उसने अपने जीजा को पत्र लिखा कि अगले दिन मैं वह चुराई हुई वस्तु वापस भेज दूंगी। परन्तु अगले दिन वह तमगा ऐसे स्थान पर चतुराई से रखकर भूल गई कि वह हाथ ही नही आ सका और वापस नही भेजा जा सका।" इस वस्तु को गलत स्थान पर रखने का मुख्य कारण यह था कि यह युवती उस कलाकृति को वापस लौटाना नही चाहती थी।

(6) भ्रान्तिपूर्ण क्रियाएँ (Erroneous Actions)

अनजाने या भूल से की गई गल्तियाँ भी दैनिक जीवन की मनोविकृत होती हैं। हम किसी कार्य को करने के लिए सकल्प करते है परन्तु उसको करना भूल जाते हैं या कभी-कभी दूसरी क्रिया कर डालते हैं। प्राय यह सुना जाता है कि पति से पत्नी ने बाजार से कोई चीज मँगायी परन्तु पतिदेव उसे लाना ही भूल गये। भूल कह कर हम सन्तोष कर लेते है परन्तु वास्तव मे वे गल्तियाँ दमित इच्छाओ के ही कारण होती हैं। जॉन्स (Jones) ने अपने अनुभव के आधार पर एक रोचक उदाहरण दिया है। उसके पास पहले से सिगरेट थी तथा उसने सोचा था कि पहले वह रखी हुई सिगरेटो को पीयेगा तथा बाद मे नये डिब्बे को खोलेगा। परन्तु इस निर्णय के बावजूद भी उसने नये डिब्बे को खोलकर सिगरेट पी ली। इसका कारण था कि उसके अन्दर नये डिब्बे से सिगरेट पीने की इच्छा विद्यमान थी। ब्रिल (Brill) ने भी इस सम्बन्ध मे कई रोचक उदाहरण दिये है। एक डाक्टर ने भूल से अपने बीमार चाचा को 'डिजिटालिस' (Digitalis) के स्थान पर 'हायोसिन' (Hyoscine) नाम की दवा अधिक मात्रा मे दे दी, जिसके फलस्वरूप चाचा की मृत्यु हो गई। उसे अपनी भूल पर काफी दु ख हुआ। उसका मनोविश्लेषण करने के उपरान्त यह ज्ञात हुआ कि अचेतन मन मे चाचा के प्रति डॉक्टर की द्वेष-भावना थी। इस प्रकार इस भूल मे अचेतन मन की इच्छा व्यक्त हुई।

(7) प्रतीकात्मक क्रियाएँ (Symbolic Actions)

फ्रायड ने प्रतीकात्मक या साकेतिक क्रियाओ को भी दैनिक जीवन की मनोविकृति माना है। इन क्रियाओ का सामान्य रूप से तो कोई अर्थ नही होता परन्तु विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि ये क्रियाएँ सार्थक होती हैं। इन प्रतीकात्मक

क्रियाओं के द्वारा अचेतन मे दमित इच्छाएँ प्रकट होती है। मुख्य रूप से प्रतीकात्मक क्रियाओ के अन्तर्गत बटन लगाना व खोलना, अँगूठी को बार-बार निकालना व पहनना, चाबी के छल्ले को घुमाना, दाँत पीसना, मुट्ठी बाँधना, बार-बार मूँछ ऐंठना, सिर खुजलाना आदि क्रियाएँ आती है।

इसी प्रकार यदि कोई विवाहिता स्त्री अपने पति द्वारा दी गई अँगूठी को बार-बार निकाले तो मनोवैज्ञानिक रूप से इसका अर्थ होता है कि वह अपने पति से सन्तुष्ट नही है तथा उससे छुटकारा पाना चाहती है। इसी प्रकार टिकट, पुस्तक, कैलेन्डर आदि का सग्रह करना भी अचेतन इच्छा की परिचायक होती है।

इस प्रकार दैनिक जीवन की छोटी से छोटी भूल अचेतन मे दमित इच्छाओ की किसी-न-किसी रूप मे पूर्ति करता है। इन भूलों का कोई-न-कोई कारण होता है। अन्य शब्दो मे, इनके पीछे कोई-न-कोई आशय, कारण, इच्छा या प्रेरणा अवश्य होती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने फ्रायड द्वारा की गई उपर्युक्त व्याख्या की आलोचना की है। उनका मत है कि दैनिक जीवन की मनोविकृतियाँ तो आत्मगत होती है। इनकी सार्वभौमिक रूप से व्याख्या करना गलत है। लेकिन इस आलोचना के बावजूद फ्रायड द्वारा की गई दैनिक जीवन की भूलो की व्याख्या युक्तिसगत व मान्य है। असामान्य मनोविज्ञान मे भी इनकी व्याख्या से अनेक लाभ उठाये जाते है। इनके आधार पर मन स्नायुविकृतियो की चिकित्सा आसानी से हो सकती है। अत. इनका असामान्य मनोविज्ञान मे काफी महत्त्व है।

15

असामान्य व्यवहार के सिद्धान्त
(THEORIES OF ABNORMAL BEHAVIOUR)

असामान्य व्यवहार के सिद्धान्तो को समझने के लिए हमे इसके इतिहास पर ध्यान देना पडेगा।[1] असामान्य मनोविज्ञान को आधुनिक स्वरूप प्राप्त करने के लिए अनेक युगो से गुजरना पडा है। सर्वप्रथम असामान्य व्यवहार की अलौकिक व्याख्या (supernatural explanation) की जाती है, जिसके फलस्वरूप असामान्य व्यक्ति को अनेक यातनाओ का सामना करना पडता था तथा अन्धविश्वास के कारण लोगो का ध्यान असामान्य व्यवहार के स्वाभाविक कारणो (natural causes) पर नही गया। वैज्ञानिक रूप से असामान्य व्यवहार की व्याख्या करने का सर्वप्रथम श्रेय यूनानी शरीर-विज्ञान-शास्त्री हिप्पोक्रेटिस (Hippocrates 460-357 B C.) को है। वैसे मनोविज्ञान (psychology) व मनोविकार-विज्ञान (psychiatry) का विकास उन्नीसवी शती मे हुआ। असामान्य व्यवहार के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से समझने के लिए, सिद्धान्तो को हम निम्न वर्गों मे रखकर समझने का प्रयास करेंगे—

(अ) प्राक्-फ्रायडवादी सिद्धान्त (Pre Freudian Theories)
(ब) फ्रायडवादी सिद्धान्त (Freudian Theories)
(स) नव्य-फ्रायडवादी सिद्धान्त (Neo-Freudian Theories)

प्राक्-फ्रायडवादी सिद्धान्त
(Pre-Freudian Theories)

हिप्पोक्रेटिस को ही वैज्ञानिक रूप से असामान्य व्यवहार की व्याख्या करने का श्रेय है। उसने धर्म या अलौकिक शक्ति का असामान्य व्यवहार पर

1. विशेष अध्ययन के लिए—"असामान्य मनोविज्ञान का इतिहास" नामक अध्याय देखिए।

पड़ने वाले प्रभावो (जैसा कि उससे पूर्व तथा उसके समय मे असामान्य व्यवहार के सम्बन्ध मे धारणा थी) को स्वीकार न करके यह बताया कि असामान्य व्यवहार दूषित क्रियावाही (mal-functioning) के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। हालांकि हिप्पोक्रेटिस एक प्रमुख चिकित्मक था परन्तु फिर भी उसके इस सम्बन्ध मे प्रकट किये गये विचारो मे अनेक त्रुटियाँ थी। उसका यह विचार था कि क्षोभोन्माद (hysteria) स्त्रियो को ही होता है। इसका कारण शरीर के भीतर गर्भाशय (uterus) का भटकना है। उसने मानसिक असामान्यताओ की व्याख्या चार रासायनिक द्रव्यो पर की है—(1) पीला पित्त (yellow bile), (2) काला पित्त (black bile), (3) रक्त (blood), (4) श्लेष्मा (phlegm)। हिप्पोक्रेटिस के अनुसार पीले पित्त की अत्यधिक वृद्धि से पागलपन, अत्यधिक काले पित्त को वृद्धि से अवसाद या विषाद (depression or melancholia), रक्त की वृद्धि से व्यक्ति मे आशावादिता तथा श्लेष्मा की वृद्धि से व्यक्ति मे सुस्ती से सम्बन्धित लक्षण होते है। आधुनिक मापदण्ड के अनुसार हिप्पोक्रेटिस के असामान्यता सम्बधी विचार ठीक नही है परन्तु फिर भी ऐतिहासिक रूप से हिप्पोक्रेटिस के सिद्धान्त को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

फ्रायडवादी सिद्धान्त
(Freudian Theories)

उन्नीसवी शती के अन्त मे असामान्य सम्बन्धी सिद्धान्त के जन्म की पूर्ण पृष्ठभूमि तैयार हो गई थी, क्योकि बर्नहाइम, शार्को व जेने ने इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु इन मनोवैज्ञानिको पर देहजात दृष्टिकोण (somatogenic viewpoint) का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा था। इसी समय परम्परागत दृष्टिकोण को तोडते हुए फ्रायड ने नवीन व वैज्ञानिक रूप से एक सिद्धान्त की स्थापना की, जिसे **मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त** (Psychoanalytical theory) कहते है जिसके प्रतिपादन का प्रमुख श्रेय ऑस्ट्रीया (Austria) के स्नायुविशेज्ञ व मनोविज्ञानी **सिगमण्ड फ्रायड** को है। वैसे इस सिद्धान्त मे मुख्य रूप से **एडलर** (Adler) व **युंग** (Jung) का भी योगदान है। इस प्रकार फ्रायडवादी सिद्धान्त मे 3 सिद्धान्त आते है :—

(1) फ्रायड का मनोविश्लेपणात्मक सिद्धान्त (Psychoanalytical Theory of Freud)

(2) एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान (Individual Psychology of Adler)

(3) युंग का विश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Jung's Analytical Theory)

फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त
(Psychoanalytical Theory of Freud)

फ्रायड सर्वप्रथम सन् 1909 मे क्लार्क विश्वविद्यालय (Clark Univer-

sity) गए जहाँ उन्होने मनोविश्लेपण की चर्चा की । फ्रायड ने व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे अपने सिद्धान्त मे जो विचार प्रकट किए, वे सैद्धान्तिक ही नही थे वल्कि व्यावहारिक अनुभवो पर आधारित थे, क्योकि फ्रायड ने एक लम्बे समय तक चिकित्सा कार्य भी किया था। फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के सम्वन्ध मे हम "असामान्य व्यवहार की मनोगतिकी" नामक अध्याय मे विस्तृत व्याख्या कर चुके है ।

एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान
(Adler's Individual Psychology)

एल्फ्रेड एडलर (Alfred Adler, 1870-1937) सर्वप्रथम फ्रायड का अनुयायी था लेकिन फ्रायड के इस मत पर कि लिविडो' (Libido) जीवन की प्रमुख शक्ति है, एडलर का मतभेद था । इसी के परिणामस्वरूप 1911 मे उसने एक जीवन व्यक्तित्व-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जिसे वैयक्तिक मनोविज्ञान' (Individual Psychology) कहते है । फ्रायड के 'लिविडो' के सम्वन्ध मे एडलर का मत था कि यह प्रमुख प्रेरणात्मक शक्ति-स्रोत न होकर व्यक्ति की 'शक्ति-प्राप्त इच्छा' (*Will to Power*) है । एडलर ने सामाजिक चालनाओ (social urges) पर विशेष जोर दिया है । उसका मन था, मनुष्य प्रधानतया सामाजिक है, न कि कामुक प्राणी है ।[1] अत काम (*sex*) पर उसने ध्यान न देकर व्यक्ति की सामाजिक रुचियो पर अधिक ध्यान दिया है । एडलर ने अचेतन के स्थान पर चेतन को महत्त्व दिया है । उसने फ्रायड की इसलिए भी आलोचना की है कि अवदमन व प्रतिरोध (repression and resistance) तथा शैशवकालीन कामुकता पर फ्रायड ने व्यर्थ मे ही अत्यधिक महत्त्व दिया है ।

कोलमैन (Coleman) के अनुसार, एडलर के वैयक्तिक मनोविज्ञान का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियो से भिन्न है । मनुष्य की आधारभूत प्रेरणा उसकी इच्छाएँ है जो कि एक समूह से सम्बन्धित है । क्योकि हमारे जीवन के पूर्व मूल्याकन कार्य या क्षमता आदि मे अपूर्णता या हीनता के भाव निहित रहते हैं अत सामान्य-तया हम एक जीवन-शैली (*Style of Life*) का निर्माण कर लेते हैं तथा अपनी समस्याओ को इसी के अनुसार ही पूर्ति करते हैं । **रिचार्ड डब्ल्यू नाइस**[2] के अनुसार, एडलर ने जीवन का आधारभूत प्रेरक आत्म-महत्ता (Self-importance) को माना है । इस प्रकार एडलर ने व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे व्यक्तिगत विभिन्नताओ पर विशेष जोर दिया । एडलर के प्रमुख प्रत्यय अग्रलिखित हैं —

---

1. "Man is primarily a social and not a sexual creature."—Hall and Lindzey *Theories of Personality*, p. 118.
2. "Dr. Adler maintained that the fundamental drive in life is the desire for self-importance "—Richard W. Nice : *Ibid*

(1) **रचनात्मक शक्ति** (Creative Powers)—एडलर ने रचनात्मक शक्ति को व्यक्तियो मे अन्तर का मूल कारण माना है। यह रचनात्मक शक्ति गतिशील (dynamic) होती है तथा व्यक्तित्व-निर्माण मे सहायक होती है। एडलर ने रचनात्मक शक्ति की गति के सम्वन्ध मे कुछ नियम भी वताए है। जैसे किसी समस्या के उत्पन्न होने पर व्यक्ति गति के नियम (law of movement) के आधार पर दूर करने का प्रयत्न करता है। एक शिशु अपने चारो ओर के वातावरण को देखता है। वह यह अनुभव करता है कि सभी लोग उससे शक्तिवान है तथा उसे अपनी प्रारम्भिक प्रेरणाओ की तृप्ति के लिए भी माँ-वाप व अन्य लोगो पर आश्रित रहना पडता है। इस प्रकार शिशु अपने को अधिकतर अन्य लोगो से निर्वल अनुभव करता है तथा वह इस दुर्वलता को दूर करने का प्रयास करता है। वह यह पता लगता है कि किन कार्यो को करने से माँ-वाप पर अच्छा प्रभाव पडता है। इस प्रकार वह निर्वलता की भावना से प्रेरित होकर एक शक्ति प्राप्त करता है तथा विफलताओ आदि के प्रति समायोजन करता है।

(2) **हीन भावना-ग्रन्थि** (Inferiority Complex)—एडलर का फ्रायड से मुख्य विरोध इस वात पर था कि फ्रायड ने शैशवकालीन यौनिकता पर अधिक जोर दिया है। एडलर ने व्यवहार मे हीन-भावना को काफी महत्त्व दिया है। संसार मे स्वाभाविक रूप से प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी हीन-भावना का शिकार होता है। इसी हीन-भावना के कारण व्यक्ति मे इस ग्रन्थि का जन्म हो जाता है। इस हीन-भावना के कारण व्यक्ति मे एक प्रेरणा का जन्म होता है जिसके फलस्वरूप वह अन्य किसी माध्यम से इसकी सम्पूर्ति करने का प्रयास करता है। इसी सम्वन्ध मे एडलर ने 1917 मे आगिक-हीनता (organic inferiority) का भी उल्लेख किया है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियो से शारीरिक दृष्टिकोण से हीन होता है। एडलर के अनुसार एक वालक अपने लिंग (penis) के आधार पर आगिक-हीनता का अनुभव करता है। उसे इस वात की अनुभूति होती है कि उसका लिंग तो छोटा है या जैसे लडकी मे यह अनुभूति के मेरे पास तो लिंग है ही नही, आदि भावनाएँ आगिक-हीनता की रूप ले लेती है। इसे ही एडलर का **लिंग-ईर्ष्या सिद्धान्त** (Adler's penis envy theory) कहते है। इस प्रकार आगिक-हीनता ही वालक मे धीरे-धीरे हीन-भावना ग्रन्थि का विकास करती है। इस हीन-भावना ग्रन्थि के कारण ही वालक मे श्रेष्ठ वनने, आगे वढने आदि की भावनाएँ जाग्रत होती है। वालक मे इस ग्रन्थि के कारण पुरुषोचित विरोध (masculine protest) की भावना उत्पन्न होती है। वास्तव मे एडलर के सिद्धान्त की मौलिक खोज हीन-भावना ग्रन्थि, लिंग-ईर्ष्या व पुरुषोचित विरोध ही है।

वालक के साथ ही साथ प्रौढो मे भी यह वात लागू होती है; उदाहरणस्वरूप—ग्रीस का प्रसिद्ध वक्ता **डेमोस्थनीज** (Demosthenes) वचपन मे हकलाता था लेकिन इस आगिक-हीनता के कारण उसने समुद्र के किनारे मुँह मे पत्थर रखकर वोलने

का अभ्यास किया तथा एक दिन उसे सफलता प्राप्त हुई तथा वह ग्रीस का प्रसिद्ध वक्ता बन गया। इसी प्रकार थ्योडर रूजवेल्ट (Theodore Roosevelt) ने अपनी दुर्बल शरीर आंगिक-हीनता की घुडसवारी के क्षेत्र मे सम्पूर्ति की। एडलर के इस प्रत्यय से यह कहना बडा ही सरल है कि प्रत्येक महान् व्यक्ति की महानता का कारण हीनता ग्रन्थि है। जैसे सुकरात जो एक महान् बुद्धिमान व्यक्ति था, वह बडा ही कुरूप था तथा उनकी पत्नी मे सदैव लडाई होती थी। सामान्य जीवन मे हम अक्सर यह देखते है कि अन्धा, लगडा या अन्य आंगिक दोषयुक्त व्यक्ति दूसरे क्षेत्र मे अधिक उच्च होते हैं तथा आंगिक कमी की क्षतिपूर्ति करता है। हीनता ग्रन्थि का मानसिक रोगो पर भी काफी प्रभाव पडता है। कभी-कभी व्यक्ति अपनी इस भावना के कारण ऐसे कार्य करने लगता है जिससे मानसिक सन्तुलन अस्त-व्यस्त-सा हो जाता है या सामाजिक सन्तुलन ठीक होने के स्थान पर बिगड जाता है। इस प्रकार एडलर की एक महत्त्वपूर्ण खोज हीनता ग्रन्थि है।

(3) **उच्चता या महत्ता प्राप्ति प्रयास** (Striving for Superiority)—यहाँ यह एक मौलिक प्रश्न उठता हैं कि वह कौन-सा अन्तिम लक्ष्य है जिसे व्यक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है? एडलर ने प्रमुख रूप से इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया। उसने सर्वप्रथम आक्रामकता (aggressiveness) को व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य माना तथा बाद मे शक्ति-प्राप्ति की इच्छा (*will to power*) को। परन्तु अन्त मे उसने इसका कारण महत्ता-प्राप्ति के लिए प्रबल प्रयास माना। इसके कारण व्यक्ति प्रयास करता है तथा अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। मनुष्य उच्चता या महत्ता प्राप्त करने के लिए कौन-सा प्रयास करेगा, इसको ही समझने के लिए एडलर ने हीन-भाव ग्रन्थि की खोज की।

(4) **जीवन-शैली** (Style of Life)—एडलर के मतानुसार बालक अपने जीवन-काल के प्रथम पाँच वर्षों मे पहुँचते-पहुँचते ही हीनता भाव पर विजय प्राप्त करने एव समाज के साथ अभियोजित करने आदि के लिए एक निश्चित एव स्थायी जीवन-शैली का निर्माण करता है। वह अपने जीवन लक्ष्य (life goal) का निर्धारण इसी काल मे करता है तथा उसका बाद का व्यवहार इसी ओर लक्षित होता है। एडलर ने इस सम्बन्ध मे भी विचार प्रकट किए हैं कि बच्चे की जीवन-शैली किस प्रकार की होगी? इस सम्बन्ध मे उसका मत है कि जीवन-शैली का निर्धारण बच्चे का प्रारम्भिक वातावरण, पारिवारिक रूपरेखा, हीनता की भावना का स्वरूप आदि पर निर्भर होता है। क्योंकि ये सब निर्धारक प्रत्येक परिवार के एक समान नही होते। अत प्रत्येक व्यक्ति की जीवन-शैली भी भिन्न होती है।

सामान्य व्यक्ति ऐसे कार्य करने का लक्ष्य निर्धारित करते है जिसमे खतरा एव असफलता कम दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार के व्यक्ति सामाजिक नियमो व परम्पराओ का पूर्णत पालन करते है तथा इनका जीवन सुखमय एव सामाजिक होता है। इस प्रकार के व्यक्तियो मे एक स्वस्थ्य विकसित सामाजिक भावना निहित

रहती है जो मुख्यत माँ के सम्पर्क से आती है। इस प्रकार के व्यक्तियो मे चारित्रिक एव हीनता की भावना अधिक परिश्रम व असफलता को प्रोत्साहन देती है। इस प्रकार के सामान्य व्यक्ति कमजोरी के फलस्वरूप श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होते है। इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण लार्ड वाइरन तथा बीथोवेन है जो कि क्रमश. लगडे होने पर भी एक महान कवि वने, जो वहरे होने पर भी सर्वश्रेष्ठ सगीत रचनाकार वने। एडलर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की जीवन-शैली अवश्य होती है तथा प्रत्येक की जीवन-शैली का विकास का एक समान नही होता। एडलर के मतानुसार व्यक्ति का प्रत्येक कार्य उसकी जीवन-शैली का परिचायक है।

एडलर के अनुसार, जीवन-शैली पर सर्वाधिक प्रभाव माँ का पडता है क्योकि माँ ही वच्चे के सम्पर्क मे सर्वप्रथम आती है। अगर एक वच्चे की प्रत्येक इच्छा का पालन माँ करती है और अधिक देखभाल करती है तो ऐसा व्यक्ति हमेशा दूसरो को आदेश देता है तथा शोषण करने की जीवन-शैली को अपनाता है। एडलर के अनुसार जन्म-क्रम का भी जीवन-शैली पर काफी प्रभाव पडता है। जैसे वडा वालक प्राचीन मान्यताओ पर अधिक वल एव प्रत्येक वस्तु को अनुकूल वनाने की जीवन-शैली अपनाता है जवकि सवसे छोटा वच्चा हीनता की भावना का अधिक शिकार होता है।

(5) **व्यक्तित्व-संरचना** (Structure of Personality)—एडलर ने अपने सिद्धान्त मे व्यक्तित्व की समग्रता पर विशेष ध्यान दिया है, फ्रायड ने व्यक्तित्व-सरचना मे काम पर अधिक वल दिया है लेकिन एडलर ने शक्ति-प्राप्ति एव समाज के साथ समायोजन पर विशेष वल दिया है। उसका कहना है कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है तथा वह प्रत्येक सामाजिक पक्ष मे उन्नत बनना चाहता है। उसकी प्रमुख समस्या सामाजिक समायोजन है। जिस प्रकार का व्यक्ति का सामाजिक समायोजन होगा, उसी प्रकार का यौनिक जीवन (sex life), आर्थिक समायोजन एवं विकास होगा। व्यक्तित्व-विकास का मुख्य कारक एडलर के अनुसार शक्ति की प्राप्ति एव सामाजिक यथार्थता के मध्य संघर्ष है।

(6) **स्वप्न सम्बन्धी विचार** (Views Regarding Dream)—एडलर प्रमुख रूप से फ्रायड की दो वातो को स्वीकार करता है—(1) फ्रायड का मनोनियतिवाद (*psychic determinism*), (2) स्वप्न सम्बन्धी फ्रायड का विचार। वह फ्रायड के स्वप्न-सिद्धान्त को मनोविज्ञान के लिए एक महत्त्वपूर्ण योगदान स्वीकार करता है। एडलर का मत फ्रायड के मत से थोड़ा भिन्न है, क्योकि एडलर स्वप्न को केवल भूत-कालीन अतृप्त इच्छाओ को व्यक्त करने का माध्यम ही स्वीकार नही करता वल्कि स्वप्न वर्तमान सवेगात्मक स्थिति के भी परिचायक होने को स्वीकार करता है। इस प्रकार एडलर के मतानुसार स्वप्न के आधार पर रोगी की वर्तमान सवेगात्मक स्थिति एवं कठिनाइयो की जानकारी की जा सकती है।

(7) **एडलर की उपचार-पद्धति** (Adler's Theraphy)—एडलर की उपचार-पद्धति सरल व सीधी है। क्योकि एडलर चेतन व अचेतन—दोनो को एक

ही सत्ता के दो सहयोगी अग मानता है । अत उसके सम्मुख अचेतन अन्तर्द्वन्द्वो की खोज की समस्या ही नही रही । उसने वार्तालाप पद्धति (interview method) को अपनाया, जिसमे चिकित्सक एव रोगी के मध्य एक 'हितैषी मित्र' जैसा सम्बन्ध रहता था । एडलर की चिकित्सा का प्रमुख उद्देश्य रोगी को पुनर्शिक्षण, आत्म-विश्वास एव सामाजिक समायोजन करवाना था । चिकित्सा के प्रथम चरण मे चिकित्सक का प्रथम कर्तव्य था—रोगी को जीवन-शैली की जानकारी ज्ञात करना । रोगी ने श्रेष्ठता का क्या लक्ष्य चुना है ? इसकी जानकारी के लिए चिकित्सक रोगी के पिछले जीवन की इच्छाओ, अनिच्छाओ, भयो, रुचियो, आदतो, हीनता की प्रवृत्तियो, शारीरिक दोषो आदि को वार्तालाप के आधार पर जानने का प्रयास करता है । स्वप्न तथा अन्य विशेष व्यवहार भी इस सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान कर सकते हैं ।

चिकित्सा के प्रथम चरण मे जीवन-शैली, लक्ष्य आदि की जानकारी के बाद द्वितीय चरण मे रोगी की काल्पनिक लक्ष्यो एव लक्षणो के अर्थ को समझना होता था । इसके लिए चिकित्सक को रोगी के साथ एक पिता, सरक्षक या बडे भाई के समान व्यवहार करना चाहिए । उसे वास्तविक दुनियाँ मे लाने के लिए चिकित्सक का प्रत्येक गलत व्यवहार की व्याख्या करनी चाहिए । अन्तिम चरण मे चिकित्सक के रोगों के लिए आवश्यक निर्देश एव प्रोत्साहन देना चाहिए ।

(8) **एडलर का मन स्नायुविकृति सम्बन्धी सिद्धान्त** (Adler's Theory regarding Psychoneuroses)—एडलर के मतानुसार, समस्त स्नायुविकृतियो के पीछे हीनता की भावनाएँ निहित रहती है । एडलर का मत है कि एक सामान्य व्यक्ति की भाँति रोगी भी एक श्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है लेकिन वह हीनता की भावना से अत्यधिक पीडित होने के कारण असाधारण एव काल्पनिक अभीष्टो का चयन करता है । इस प्रकार के रोगियो मे सामाजिक भावना की कमी होती है । उनकी जीवन-शैली आत्म-केन्द्रित होती है । उसमे एक मिथ्या श्रेष्ठत्व की भावना रहती है । वह असफलता से बचने के लिए बहाने बनाता है जिससे कि अन्य लोग उसे श्रेष्ठ समझने लगें, जैसे—मै बीमार हूँ अत आपको मेरे साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए ।" इस प्रकार का व्यक्ति कार्य करने मे सन्देह प्रकट करता है । उसके निर्णय सदिग्ध होते है ।

मूल्यांकन (Evaluation)—यह निर्विवाद सत्य है कि एडलर ने मनोविज्ञान एव मानसोपचार पद्धति दोनो को कई नए प्रत्यय दिए । एडलर ने व्यक्तित्व सम्बन्धी एक मानवतावादी सिद्धान्त की स्थापना की तथा व्यक्तित्व-विकास एव निर्धारण मे सामाजिक पक्ष को विशेष महत्त्व दिया है ।

युंग का विश्लेषणात्मक सिद्धान्त
(Jung's Analytical Theory)

कार्ल गुस्टॉव युग (Carl Gustav Jung) का जन्म सन् 1875 मे तथा मृत्यु सन् 1961 मे हुई । पिता पादरी थे तथा उनका प्रभाव युग पर पडा जिसके

कारण उसकी अभिरुचि धर्म मे अधिक थी। बसेल विश्वविद्यालय (Basel University) से आपको एम० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। युग फ्रायड के प्रमुख अनुयायी थे। परन्तु 1913 के करीब आप फ्रायड से अलग हो गये तथा एक नवीन सिद्धान्त की स्थापना की, जिसे विश्लेषणात्मक सिद्धान्त कहते हैं। युंग का फ्रायड से अलग होने का मुख्य कारण यह था कि फ्रायड ने अपने सिद्धान्त मे यौन पर अत्यधिक महत्त्व दिया था। युग के सिद्धान्तो की मुख्य बाते निम्न है :—

(1) लिबिडो या काम-शक्ति सिद्धान्त (Libido Theory)

युग का विचार था कि मनुष्य का व्यवहार न तो लैंगिक काम-शक्ति (फ्रायड) और न ही श्रेष्ठता प्राप्त करने की प्रवृत्ति (एडलर) से निर्धारित होता है। युग के अनुसार काम या लिविडो शक्ति समस्त जीवन-शक्ति का केन्द्र है अर्थात् इससे मनुष्य किसी व्यवहार या सामाजिक सम्पर्क की ओर प्रेरित होता है। युग के काम-शक्ति सिद्धान्त सम्बन्धी विचारो मे फ्रायड व एडलर के लिविडो सम्बन्धी विचार अन्तर्निहित है। इसके विचार शापेनहॉवर के 'जीवित रहने की इच्छा (*will to live*) या बर्गशाँ के 'एलान वीटा' (*Elan Vitol*) के समाज व्यापक है। इस प्रकार युग ने इसे सभी प्रकार के व्यवहारो व मानवीय सम्पर्को के निर्देशन का स्रोत माना है।

(2) सामूहिक अचेतन (Collective Unconscious)

युंग ने फ्रायड द्वारा अचेतन पर प्रकट किए गए विचारो को आंशिक रूप से ही स्वीकार किया है। युग के अनुसार अचेतन के दो उपभाग—(1) **व्यक्तिगत अचेतन**
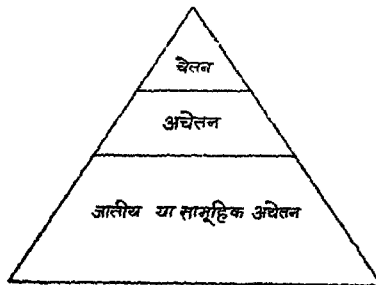
(युंग के अनुसार अचेतन के विभिन्न भाग)
चित्र—26

(Personal Unconscious) व (2) **सामूहिक अचेतन** (Collective Unconscious) होते हैं। व्यक्तिगत अचेतन के निर्माण मे दमित व्यक्तिगत इच्छाओ, स्मृतियो और अभिप्रेरणाओ का महत्त्व होता है। परन्तु व्यक्ति के सामूहिक अचेतन मे आनुवंशिक इच्छाओ, प्रेरणाओ आदि का समावेश होता है। अन्य शब्दो मे, मानव जाति के

एकत्रित अनुभव सामूहिक अचेतन मे मूलरूप (*Archetype*) मे रहती है। सामूहिक अचेतन से ही व्यक्तिगत चेतन व अचेतन का विकास होता है।

अहम् वास्तविकताओ का सामना करने के लिए इनका सहारा लेता है। मानसिक विकृतियाँ तब उत्पन्न होती है जबकि अहम् प्राचीन प्रजातीय ज्ञान को अस्वीकार या उसकी अवहेलना करना प्रारम्भ कर देता है। सामूहिक अचेतन के अस्तित्व के प्रमाण प्रत्येक समाज मे उपस्थित आदिम युग की दन्त-कथाएँ, लोक-गीत आदि मे मिलते हैं। युंग के अनुसार, मूलप्ररूप (*Archetype*) सवेग-प्रवाहित विश्वव्यापी विचार (universal ideas charged with emotion) है। अन्य शब्दो मे, यह वह सार्वभौमिक तत्त्व है जिसमे सवेग तत्त्व अधिक निहित होता है।[1]

(3) **व्यक्तित्व-प्रकार** (Personality Types)

व्यक्तित्व की व्याख्या युंग ने मूलरूप (*Archetype*) के आधार पर की है। इसके अनुसार व्यक्तित्व को दो वर्गों मे वर्गीकृत किया जा सकता है—(1) अन्तर्मुखता (Introversion), व (2) वहिर्मुखता (Extroversion)। अन्तर्मुखी व्यक्तियो का लिबिडो स्वय की ओर उन्मुख होता है। अत वह आत्म-केन्द्रित हो जाता है। वाहरी ससार से इन व्यक्तियो का कोई लगाव नही होता। ये व्यक्ति तो अपने ही विचारो, भावनाओ, आदर्शों आदि मे लीन होते है। वहिर्मुखी प्रकार के व्यक्ति सामाजिक कार्यों मे अधिक रुचि लेते हैं। इनकी अभिवृत्ति वहिर्मुखी होने के कारण ये व्यक्ति मिलनसार तथा अन्य व्यक्तियो से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करते है। अन्तर्मुखी व वहिर्मुखी व्यक्तित्व के कारण व्यक्तियो की रुचियो तथा मानसिक क्रियाओ मे भी भिन्नता पायी जाती है।

युग ने व्यक्तित्व के अन्तर्मुखी व वहिर्मुखी भागो को मानसिक प्रक्रियाओ के दृष्टिकोण से निम्न आठ भागो मे वर्गीकृत किया—

1 अन्तर्मुखी-चिन्तन प्रकार (Introvert Thinking Type)
2 अन्तर्मुखी-भावना प्रकार (Introvert-Feeling Type)
3. अन्तर्मुखी-सवेदन प्रकार (Introvert-Sensation Type)
4 अन्तर्मुखी-अन्त प्रज्ञा प्रकार (Introvert-Intution Type)
5 वहिर्मुखी-चिन्तन प्रकार (Extrovert-Thinking Type)
6 वहिर्मुखी-भावना प्रकार (Extrovert-Feeling Type)
7 वहिर्मुखी-सवेदन प्रकार (Extrovert-Sensation Type)
8 वहिर्मुखी-अन्त प्रज्ञा प्रकार (Extrovert-Intution Type)

युग का मत है कि मानसिक क्रियाओ के चार मुख्य प्रकार हैं—**चिन्तन, प्रत्यक्षीकरण, प्रज्ञा व भावना** (Thinking, Perception, Intution and Feeling)

---

1 "An *archetype* is a universal thought from (Idea) which contains a large elements of emotion"—**Hall and Lindzey** *Theories of Personality*, p. 82.

इन चार प्रकार की मानसिक क्रियाओ मे चिन्तन व भावना एक दूसरे के विरोधी है। इसी प्रकार प्रत्यक्षीकरण व प्रज्ञा भी एक-दूसरे के विरोधी है। प्रत्येक मानसिक क्रिया बहिर्मुखी व अन्तर्मुखी रूप लिए हो सकती है। अत इन चार मानसिक क्रियाओ व अन्तर्मुखता व बहिर्मुखता के आधार पर युग ने 8 प्रकार के व्यक्तियो को स्वीकार किया है। यहाँ हम यह बताना अधिक उपयुक्त समझते है कि युग का इन प्रकारो की विवेचना से यह तात्पर्य नही था कि अन्तर्मुखी व्यक्ति मे बहिर्मुखता या बहिर्मुखी व्यक्ति मे अन्तर्मुखता का पूर्णत अभाव रहता है। युग का मत तो इसके विपरीत था। क्योकि उसका कहना था कि जिस व्यक्ति का चेतन बहिर्मुखी है वह अचेतन रूप से अन्तर्मुखी है तथा अगर चेतन अन्तर्मुखी है तो अचेतन बहिर्मुखी। युग का मत है कि व्यक्ति के मनोभौतिक रचना का प्रमुख अग व कार्य का निर्धारण करना यह होता है कि 'लिबिडो' आन्तरिक जगत की ओर उन्मुख हो या वाह्य जगत की ओर। उसका यह भी कहना था कि इसी के आधार पर उसके व्यक्तित्व प्रकार का निर्धारण होता है।

परन्तु ऐसा देखा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अन्तर्मुखी व बहिर्मुखी दोनो प्रकार की अभिवृत्तियाँ विद्यमान होती है। युग ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए बताया है कि व्यक्ति के अन्दर ये दोनो अभिवृत्तियाँ विद्यमान रहती है—एक चेतन रूप से, दूसरी, अचेतन रूप से। (देखिए चित्र 27)

(युंग के अनुसार व्यक्तित्व-प्रकार)

चित्र—27

(4) स्वप्न-विश्लेषण (Dream Analysis)

युग ने स्वप्न की व्याख्या करते समय यह बताया है कि स्वप्न-विश्लेषण के समय 'व्यक्तिगत अचेतन' से सम्बन्धित प्रेरणाओ के साथ ही साथ 'सामूहिक या जातीय अचेतन' (collective or racial unconscious) पर भी ध्यान देना चाहिए। युंग ने स्वप्नो की व्याख्या मे न तो फ्रायड के इस मत को ही स्वीकार किया है कि स्वप्न मे अतीत की अतृप्त व अमान्य अवदमित इच्छाओ की अभिव्यक्ति होती है और न ही एडलर के इस मत की कि स्वप्न वर्तमान जीवन से सम्बन्धित होते है। युंग के अनुसार, स्वप्न व्यक्ति के सम्बन्ध मे भूत, वर्तमान व भविष्य से सम्बन्धित जानकारी प्रदान करते हैं।

(5) उपचार (Theraphy)

युंग ने मानसिक विकृतियो के उपचार के लिए अपनी पद्धति को प्रमुख रूप से चार चरणो की विवेचना की है—(1) स्वीकार करना (confession), (2) व्याख्या करना (explanation), (3) शिक्षण (training), (4) रूपान्तर (tranformation)। युग ने रोगी की दमित अनुभूतियो व सवेगो को जानने से लिए 'शब्द-साहचर्य परीक्षा' (Word Association Test) का निर्माण किया। ऐसे परीक्षण मे 100 ऐसे शब्दो की सूची है जिनका सवेगात्मक आधार होता है। इसमे रोगी को यह बता दिया जाता है कि चिकित्सक द्वारा बोले गये प्रथम शब्द को सुनकर उसके मन मे सर्वप्रथम जो शब्द आवें, उन्हे बिना किसी सकोच के बता दे। रोगी को प्रतिक्रिया करने मे जो समय लगता है, उसे नोट कर लिया जाता है। रोगी के प्रतिक्रिया शब्दो के आधार पर उनकी भावना ग्रन्थियो को आसानी से समझा जा सकता है। युग के उपचार मे रोगी से सर्वप्रथम व्यक्तिगत अचेतन तथा फिर बाद मे सामूहिक अचेतन के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। युग की उपचार पद्धति को हम विस्तृत रूप से 'मनश्चिकित्सा' (Psychotheraphy) अध्याय मे वर्णन करेंगे।

(6) मूल्यांकन (Evaluation)

युग प्रतिभाशाली व विलक्षण बुद्धि वाला विद्वान था। उसने अनेक क्षेत्रों से तथ्य एकत्रित किए। वह तथ्यो को अधिक महत्त्व प्रदान करने वाला व्यक्ति था। उसने जो तथ्य सकलित किए, उनके सम्बद्ध क्षेत्र थे—प्राचीन कथाएँ, आधुनिक काल्पनिक कहानियाँ, प्राचीन जीवन व आधुनिक सभ्यता, पूर्व व पश्चिम के धर्म, रीतियाँ, इतिहास, साहित्य-कला, मनोचिकित्सा आदि। वह इन क्षेत्रो से प्राप्त अनेक तथ्यो का समन्वय करके, उन्हे समन्वित व एक लडी मे पिरोकर एक सिद्धान्त मे व्यक्त करना चाहता था तथा एक सीमा तक वह इसमे सफल भी हुआ। उसने स्वय कहा है—"I have no system, I talk of facts"

युग को काफी ख्याति प्राप्ति भी हुई परन्तु उसके सिद्धान्त मे प्रयोगात्मकता का अभाव था। इसी के परिणामस्वरूप युग का सिद्धान्त कम आकर्षक लगता है। फ्रायड की तुलना मे युग अपने सिद्धान्त मे गम्भीरता व व्यापकता के गुणो का समावेश नही कर पाया।

एडोल्फ मेयर का मनोजैवविज्ञान
(Psychobiology of Adolf Meyer)

एडोल्फ मेयर का जन्म स्विट्जरलैण्ड मे सन् 1866 ई० मे हुआ था। मेयर सन् 1892 ई० मे अमरीका आ गये तथा मनोविकारविज्ञान (psychiatry) पर उल्लेखनीय कार्य किया। उसने क्रेपलीन के द्वारा वर्णन किये गये वर्णनात्मक देहजात मनोविकार-विज्ञान (descriptive somatogenic psychiatry) से लेकर फ्रायड के गतिक मनोजात मनोविकार-विज्ञान (dynamic psychogenic psychi-

atry) तक के विकास का अध्ययन किया तथा उनकी कमियो को दूर करने का प्रयास किया। मेयर के प्रभाव के कारण देहजात व मनोजात दृष्टिकोणो (somatogenic and psychogenic viewpoint) मे सन्धि हुई। इस प्रकार उसने मनोजैवविज्ञान की स्थापना की। मेयर की चिकित्सा-पद्धति की प्रमुख विशेषता यह थी कि वे अपनी पत्नी को रोगियो के घर भेजकर व्यक्ति-वृत्त मँगवाते थे तथा मनोजैविक कारणो का पता लगाकर मानसिक रोगो का अध्ययन शुरू करते थे। मेयर का मत था कि चिकित्सा के लिए यह परम आवश्यक तत्त्व है कि चिकित्सक रोगी के मध्य एक आत्मीयता का सम्बन्ध (Rapport formation) स्थापित हो। उसके अनुसार, मनश्चिकित्सा मे किसी प्रकार के अविश्वास की भावना नही होनी चाहिए। मेयर के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को आकार व व्यवहार के गतिक पक्षो को अन्तर्वस्तु माना जाना चाहिए। मेयर के अनुसार, आकार व अन्तर्वस्तु के मनो-जैव-सामाजिक (psycho-bio-social) तत्त्व ही मानसिक रोग के सलक्षण (syndrome) होते है। इस प्रकार मेयर ने मनोजैव-सामाजिक सिद्धान्त के आधार पर मानसिक रोगो की विवेचना की है।

ओटो रेंक
(Otto Rank)

ओटो रेंक भी फ्रायड का अनुयायी था तथा उसके विचारो से पूर्ण रूप से सहमत था। परन्तु सन् 1920 मे रेंक जैसे कट्टर व सच्चे अनुयायी ने साथ छोड़ दिया। ध्यान रहे कि युंग व एडलर ने भी फ्रायड के साथ कुछ सैद्धान्तिक मतभेद के कारण साथ छोड दिया था।

रेंक का जन्म सन् 1883 मे वियना मे हुआ था। रेंक ने सन् 1905 मे मानसिक रोगो की चिकित्सा प्रारम्भ की। सन् 1939 मे उसकी मृत्यु हुई।

ओटो रेंक का योगदान
(Contributions of Otto Rank)

वैसे तो रेंक ने इच्छा शक्ति, व्यक्तित्व-सरचना, व्यक्तित्व पर समाज-सस्कृति के प्रभाव आदि पर अपने विचार व्यक्त किये परन्तु उसका महत्त्वपूर्ण योगदान **जन्म आघात** (Birth Trauma) पर है। रेंक के मतानुसार शिशु माँ के गर्भ मे अपने को पूर्ण रूप से सुरक्षित पाता है। उसे किसी प्रकार का दुख व चिन्ता की अनुभूति नही होती। परन्तु गर्भ से बाहर आने के उपरान्त उसे एक नया वातावरण मिलता है। उसे इस वातावरण से कठोर आघात (trauma) का अनुभव होता है। क्योकि उसे इस बाह्य वातावरण से पहले किसी प्रकार का सम्पर्क नही हुआ करता था तथा गर्भाशय के वातावरण से यह वातावरण भिन्न होता है अत वह अपने को उतना सुरक्षित नही मानता जितना कि गर्भ मे था। शिशु मे इस आघात के फलस्वरूप चिन्ता का जन्म होता है। स्मरण रहे कि फ्रायड ने जन्म को दुखपूर्ण प्रक्रिया माना था परन्तु रेंक ने जन्म को जन्म-आघात कहा। इडीपस (oedipus) के सम्बन्ध मे रेंक का कहना था

कि माँ व पुत्र के मध्य इस ग्रन्थि की उत्पत्ति होने का कारण बालक को पुन. गर्भ जैसी सुरक्षा पाना होता है। अन्य शब्दो मे वह उस सुरक्षा की पुन प्राप्ति करना चाहता है जो गर्भ मे प्राप्त थी। रैंक का कहना था कि पुरुष की सभोग (intercourse) की इच्छा इस तथ्य की परिचायक है कि वह पुन गर्भ मे जाना चाहता है।

मनोविज्ञान के इतिहास रचियता का मत है कि फ्रायड ने इस क्षेत्र मे महत्त्व-पूर्ण योगदान दिया है। बोरिंग (Boring) का मत है कि फ्रायड ही मनोविज्ञान के इतिहास का बुनियाद है तथा अगली तीन शताब्दियो तक मनोविज्ञान के इतिहास पर फ्रायड के बिना कुछ नही लिखा जावेगा। वोलमैन (Wolman) ने बोरिंग से भी बढकर फ्रायड के सम्बन्ध मे लिखा है। उसका कहना है कि न केवल मनोविज्ञान बल्कि चिकित्साशास्त्र, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, इतिहास, कला, दर्शन, साहित्य आदि सभी विषय फ्रायड के ऋणी है। फ्रायड ने अपने विचारो के माध्यम से सभी विषयो पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला है।

फ्रायड ने एक बहुत बडी भूल यह की थी कि परिवर्तित होते हुए युग की आव-श्यकताओ के अनुसार उसने अपनी विचारधारा को परिवर्तित नही किया, उसमे परिशोधन करने की त्रुटि की तथा उसने केवल पुराने सिद्धान्तो की ही व्याख्या करना उपयुक्त समझा। यही कारण था कि फ्रायड के उपरान्त जो भी मनोवैज्ञानिक हुआ, उसने या तो फ्रायड की आलोचना की या उसके सिद्धान्तो को सामाजिक व सास्कृतिक आवरण पहनाने का प्रयत्न किया। फ्रायड व नव्य-फ्रायडवादी जहाँ अचेतन प्रेरणा, दमन व अन्य मनोरचनाओ के महत्त्व, चिन्ता व सुरक्षा के प्रत्यय, प्रारम्भिक काल का व्यक्तित्व-विकास पर प्रभाव आदि विषयो पर एकमत थे, वहाँ नव्यफ्रायडवादी मनोवैज्ञानियो ने सास्कृतिक व सामाजिक प्रभावो पर बल दिया, अन्त वैयक्तिक सम्बन्धो के महत्त्व को स्वीकार किया तथा पूर्णवादी (holistic) दृष्टिकोण को मनो-विज्ञान के क्षेत्र मे उपयोग किया।

नव्य-फ्रायडवादी सिद्धान्त
(Neo-Freudian Theories)

एडोल्फ मेयर ने सर्वप्रथम असामान्य व्यवहार के सिद्धान्त मे मनो-जैव सामा-जिक (Psycho-bio-social) तत्वो पर बल दिया। नव्य-फ्रायडवादी सिद्धान्त भी इसी दृष्टिकोण को मानते हैं। प्रमुख रूप से नव्य-फ्रायडवादी सिद्धान्त निम्नलिखित हैं —

कैरेन हॉर्नी का सिद्धान्त
(Karen Horne's Theory)

हॉर्नी का जन्म सन् 1885 ई० मे जर्मनी मे हुआ था। आपकी विशेष रुचि मनोविश्लेषण मे थी। कुछ समय तक आपने जर्मनी मे मनोविश्लेषण का प्रचार भी किया। बाद मे (सन् 1932) मे आप अमरीका चली गई। हॉर्नी ने फ्रायड के सिद्धान्त को स्वीकार नही किया। आपके अनुसार, फ्रायड के सिद्धान्त मे प्रमुख रूप से चिन्तन

की कमी थी तथा पूर्णरूप से जैविक आधारशिला पर ही सिद्धान्त आधारित था। हॉर्नी का मत था कि व्यक्तित्व-विकास मे जैविक तत्त्वो के साथ ही साथ सामाजिक पर्यावरण का भी काफी महत्व है। वास्तविक वात तो यह है कि हार्नी ने फ्रायड के सिद्धान्त का परिमार्जन किया। फ्रायड के द्वारा वताई गई अनेक वातो को हार्नी ने स्वीकार किया, जैसे—अचेतन प्रेरणा, अन्तर्द्वन्द्व, चिन्ता व दमन सम्बन्धी विचार। परन्तु फ्रायड द्वारा वर्णित इदम्, अहम् व परम अहम् के प्रत्ययो के स्थान पर हॉर्नी ने व्यक्ति पर पडने वाले विरोधी सांस्कृतिक दवावो को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है।

हार्नी ने फ्रायड के काम या लिविडो सम्वन्धी विचारो को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने यह मानने से इन्कार कर दिया कि मातृमनोग्रन्थि (oedipus complex) का व्यक्तित्व विकास पर विशेप रूप से प्रभाव पडता है। नारी-मनोविज्ञान के सम्वन्ध मे हॉर्नी ने नवीन व्याख्या प्रस्तुत की। उसके अनुसार नारी-मनोविज्ञान का आधार लिंग-द्वेप (*Penis envy*) व हीनता-भाव (feeling of inferiority) है। उनके अनुसार फ्रायड द्वारा वर्णित अहम् केवल स्नायु-विकृतियो मे ही पाया जाता है। सामान्य व्यक्ति मे तो वास्तविक आत्मा (potential) का विकास होता है, सामान्य व्यक्ति मे स्वीकारात्मक व रचनात्मक सम्भाव्यता (potential) रहती है। एक सामान्य व्यक्ति व्यवस्थित व सफलतापूर्वक समायोजन तव ही कर सकता है जवकि उसके सामने सहानुभूति व स्नेहपूर्ण पर्यावरण हो। जो समाज उसकी मूल सम्भाव्यता (basic potentiality) की ही पूर्ति नही कर पाता, व समाज व्यक्ति को असमायोजित वनाता है। व्यक्तियो मे इसी कारण चिन्ताएँ उत्पन्न होती है। हॉर्नी इसे और अधिक स्पष्ट करती हुई कहती है कि अगर वच्चे को अकेला व असहाय रखा जावेगा तो वह दूसरो को अपना शत्रु समझने लगता है तथा अपनी सुरक्षा व संरक्षण के लिए वह जो प्रयत्न करता है, उससे उसमे स्नायु-विकृति-प्रक्रिया उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार हॉर्नी ने **मूलभूत चिन्ता** (basic anxiety) को व्यक्तित्व-सिद्धान्त का मुख्य प्रत्यय माना है।

दूसरी प्रमुख वात हॉर्नी के सिद्धान्त की यह है कि उसने सामाजिक तत्वो को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। प्रत्येक प्रकार की संस्कृति व्यक्ति के व्यवहार को नियमित वनाती है तथा इससे व्यक्ति मे अनेक प्रकार के मूल्यो (values) का विकास होता है। जव एक व्यक्ति सफलतापूर्वक सामाजिक परिस्थितियो का समाधान करता जाता है तो वह सामान्य व्यक्ति कहलाता है परन्तु जव सामाजिक आदर्शो (social norms) मे व्यक्ति विचलित होता है तो उसे असामान्य कहते है।

हॉर्नी के अनुसार मूलभूत चिन्ता के तीन अग हैं :

(i) असहायता के भाव (Feeling of Helplessness)
(ii) द्वेषभाव (Feeling of Hostility)
(iii) अकेलेपन के भाव (Feeling of Isolation)

हॉर्नी ने स्नायुविकृत व्यक्तियों के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये है। उसके अनुसार स्नायुविकृत व्यक्तियो मे दमित असहायता के भाव (feeling of repressed helplessness) होते है तथा उसकी सुरक्षा के लिए उसमे अन्य लोगो की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति जागृत करता है। इस प्रकार हॉर्नी ने फ्रायड के सिद्धान्त मे सामाजिक तथा सास्कृतिक तत्त्वो को सम्मिलित किया है।

एरिक फ्रॉम का सिद्धान्त
(Erich Fromm's Theory)

फ्रॉम का जन्म जर्मनी मे सन् 1900 ई० मे हुआ था। फ्रॉम की गणना प्रमुख नव्य फ्रायडवादियो मे की जाती है। इन्होने फ्रायड के सिद्धान्त मे सामाजिक परिस्थितियो का समावेश किया। सन् *1941* मे प्रकाशित अपनी पुस्तक *'Escape From Freedom'* मे फ्रॉम ने सामाजिक पक्ष पर विशेष महत्त्व देते हुए बताया कि मानव की अच्छी बुरी या सुन्दर-असुन्दर प्रवृत्तियो व रुचियो का जन्म, विकास व स्थिरीकरण जैविक स्वभाव के माध्यम से नही होता है, बल्कि सामाजिक प्रक्रिया से उत्पन्न होता है। समाज ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अत मनोविज्ञानियो को व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए उसके सामाजिक स्वरूप को अनिवार्य रूप से समझने का प्रयास करना चाहिए। फ्रॉम ने यह बताया कि मानवीय व्यवहार पर सास्कृतिक पर्यावरण व वशानुगत तत्वो का अत्यधिक प्रभाव पडता है। फ्रायड के इस विचार को फ्रॉम ने अस्वीकार कर दिया है कि सभी वस्तुओ का केन्द्र काम (sex) है। मातृ मनोग्रन्थि (oedipus complex) के सम्बन्ध मे फ्रॉम का मत है कि यह एक प्रकार की यौन स्वरूप है जो उस समाज मे पाई जाती है, जिसमे परिवार पर सत्तावादी दृष्टिकोण रखने वाले पिता का प्रभाव पडता है।

प्रेरणाएँ
(Motives)

फ्रॉम का विचार था कि मनुष्य मे पशु व मानव—दोनो के गुण विद्यमान होते हैं। शक्ति की मौलिक आवश्यकताओ (need) की पूर्ति न होने पर उसमे निराशा के भाव उत्पन्न होते है। प्रेरणाओ के सम्बन्ध मे फ्रॉम का मत था कि इनके माध्यम से मनुष्य जैविक आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के साथ ही साथ ख्याति व शक्ति प्राप्ति, प्रेम व धार्मिक व उच्च मानवीय आदर्शो की सन्तुष्टि भी चाहता है। फ्रॉम ने मुख्य रूप से पाँच आवश्यकताओ को स्वीकार किया है—

(1) सम्बन्ध स्थापना की आवश्यकता (Need for relatedness)
(2) साधारण स्तर से ऊपर उठना (Urge for transcedence)
(3) बद्धमूलता की आवश्यकता (Need for rootedness)
(4) परिचय की आवश्यकता (Need for identification)
(5) निश्चित दृष्टिकोण की आवश्यकता (Need for accurate views)

(1) **सम्बन्ध स्थापना की आवश्यकता** (Need for Relatedness)—फ्रॉम के मतानुसार यह आवश्यकता इस तथ्य पर आधारित है कि मनुष्य, 'मनुष्य बनने' के लिए प्रकृति से पृथक पर दिया गया है। मानव एक बुद्धिमान प्राणी है, वह तर्क, कल्पना चिन्तन आदि कर सकता है, जिसके कारण उसकी 'प्रकृति' से नही पट पाती। इसी कारण वह नए सम्बन्धो को बनाना चाहता है। यह सम्बन्ध परस्पर प्रेम, स्नेह पर आधारित होना चाहिए जिससे मनुष्य का व्यवहार ऐसा हो कि अन्य व्यक्तियो के अस्तित्व को समझे, अन्य लोगो की परवाह करे, उसमे उत्तरदायित्व की भावना हो व सम्मानपूर्वक विचारो का आदान-प्रदान करे।

(2) **साधारण स्तर से ऊँचा उठना** (Urge for Transcedence)—मनुष्य मे यह आवश्यकता रहती है कि वह रचनात्मक कार्य करे, ऐसे कार्य करे जिससे पशुत्व की अवस्था से ऊपर उठ सके। वह रचनात्मक व्यक्ति बनना चाहता है, परन्तु अगर उसकी रचनात्मक इच्छाओ की पूर्ति नही होती तो वह विध्वंसक बन सकता है। फ्रॉम का कहना है कि मनुष्य मे प्रेम तथा घृणा की भावना उसके पशुत्व से ऊपर उठने का एक प्रयास है क्योकि पशु न तो प्रेम करता है और न ही घृणा।

(3) **बद्धमूलता की आवश्यकता** (Need for Rootedness)—मनुष्य इस जगत का एक अभिन्न अग बनना चाहता है। वह सदैव अपने आपको सम्बद्ध करता रहता है। वह अपने अन्दर इस बात से कि अन्य व्यक्ति भी उसे चाहते हैं, एक शक्ति का अनुभव करता है। बाल्यावस्था मे वह माँ से अपने को सम्बद्ध करता है। आगे चलकर अन्य पुरुषो व स्त्रियो से सम्बद्ध होने के कारण बन्धुत्व की भावना आती है जो मनुष्य को सर्वाधिक सुखद व सतुष्टि प्रदान करती है।

(4) **परिचय की आवश्यकता** (Need for Identification)—मनुष्य कुछ न कुछ बनना चाहता है। उसकी यह इच्छा रहती है कि वह अद्वितीय व्यक्ति बने। वह अद्वितीय व्यक्ति बनने के लिए अनेक रचनात्मक कार्य करता है जिससे कि वह उभर कर आता है, अनेक व्यक्तियो, समाजो व समूहो से उसका सम्बन्ध हो जाता है। वह इन समाजो या समूहो मे रहने वाले व्यक्तियो से व्यक्तिगत परिचय स्थापित करना चाहता है।

(5) **निश्चित दृष्टिकोण की आवश्यकता** (Need for Accurate Views)—अनेक व्यक्तियो से परिचय प्राप्त करने के उपरान्त, अनेक रचनात्मक कार्यो को करने के उपरान्त तथा उसके परिणामो को दृष्टिगत रखते हुए व्यक्ति यह आवश्यक समझता है कि उसका एक निश्चित दृष्टिकोण हो। वह जो भी दृष्टिकोण विकसित करता है वह तार्किक, अतार्किक या मिश्रित प्रकार का हो सकता है।

मनोलैंगिक विकास (Psychosexual Development)—फ्रॉम का व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध मे यह मत था कि इसका क्रमिक विकास जैविक (biological) न होकर सामाजीकरण की प्रक्रिया के आधार पर होता है। उसका मत था कि फ्रायड ने मौखिक व गुदा चरित्रो के विकास का कारण लैंगिक विकास की इन

विशिष्ट अवस्थाओ के साथ स्थिरीकरण (Fixation) माना है वह गलत है, क्योकि इसका वास्तविक कारण तो माँ-बाप द्वारा बालक के साथ किया गया अनुपयुक्त व्यवहार है।

सामाजिक दर्शन (Social Philosophy)—फ्रॉम ने अपना एक सामाजिक दर्शन प्रस्तुत किया है जिसमे निम्न आधारभूत तथ्यो को रखा है —

(अ) मनुष्य की स्वय की आवश्यकताएँ होती है तथा प्रत्येक आवश्यकताओ की एक निश्चित व अनिवार्य प्रकृति होती है।

(ब) कोई भी समाज नही है जहाँ मनुष्य की समस्त आवश्यकताओ की सन्तुष्टि हुई हो या होने की सम्भावना हो।

असामान्य व्यवहार
(Abnormal Behaviour)

फ्रॉम के अनुसार असामान्य व्यवहार को प्रकट करने के लिए सामाजिक परिस्थितियाँ बाध्य करती हैं। जब तक समाज ऐसा पर्यावरण व्यक्ति को नही देता ह जहाँ प्रेमभाव अनुभव करने का मौका प्राप्त हो, तब तक व्यक्ति की निराशा समाप्त नही होती। फ्रॉम के अनुसार व्यक्ति इन निराशाओं से बचाव करने के लिए निम्न रक्षण-युक्तियो को प्रयोग मे लाता है —

(1) **मिथ्या स्वपीड़नरति** (Pseudo-masochist)—इस रक्षण-युक्ति के कारण व्यक्ति सकुचित विचार का हो जाता है तथा व्यक्ति मे हीनता के भाव उत्पन्न हो जाते है।

(2) **आत्म-प्रेरित सानुकूलता** (Self-motivated Confirmity)—इस मनो-रचना के कारण व्यक्तित्व-प्रकार प्रभावित होती है।

(3) **विनाश** (Destructive)—इससे व्यक्ति की प्रवृत्ति विनाशकारी कार्यों की ओर उन्मुख हो जाती है।

फ्रॉम के अनुसार, जीवन का परम लक्ष्य सामाजिक समायोजन करना नही है। उसने चार प्रकार के व्यक्तित्व-प्रकारो (types) का वर्णन किया है, यथा—

व्यक्तित्व प्रकार
(Personality types)

(i) **प्राप्ति की इच्छा करने वाले** (Receiving Type)—वे लोग प्रमुख रूप से इस प्रकार मे आते है जो यह आशा करते हैं कि सभी वस्तुओ की प्राप्ति उन्हे दूसरो से हो जावेगी। इस प्रकार के व्यक्ति दूसरे व्यक्तियो से प्रेम प्राप्त करना ही अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझते है।

(ii) **शोषक प्रकार** (Exploiting Type)—ऐसे व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को शक्ति व अपनी चातुर्यता के माध्यम मे प्राप्त करना चाहते हैं।

(iii) **जमाखोर प्रकार** (Hording Type)—ऐसे व्यक्ति वस्तुओ का स्वय ही सचय करते हैं।

(iv) विक्रेता प्रकार (Marketing Type)—इस प्रकार के व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को बेची जाने वाली वस्तु के रूप मे स्वीकार करते हैं।

हैरी स्टैक सुलीवन का सिद्धान्त
(Harry Stack Sullivan's Theory)

सुलीवन का जन्म न्यूयार्क मे सन् 1892 ई० मे हुआ था। सुलीवन पर सास्कृतिक मानवशास्त्र (Cultural Anthropology), समाजशास्त्र व समाज मनोविज्ञान का विशेष प्रभाव पडा। वास्तविक रूप से वह सामाजिक मनोरोगविज्ञान (Social Psychiatry) का समर्थक था। उसने मेयर से प्राणी को पर्यावरण मे रखकर देखना तथा ह्वाइट (White) से औषधि सम्बन्धी योग्यताओ को सीखा। सुलीवन ने जहाँ फ्रायड के यौन सम्बन्धी विचारो को अस्वीकार किया वहाँ उसके सिद्धान्त को गहन रूप से अध्ययन करने की सलाह दी। उसने फ्रायड द्वारा वर्णित व्यक्तित्व के मनोलैंगिक विकास सम्बन्धी कुछ स्तरो को स्वीकार किया। सुलीवन के मतानुसार, मानव मे निहित प्रेरणाओ के दो पक्ष होते है—(1) जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति, (2) सस्कृति द्वारा डाला गया प्रभाव तथा सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति समाज द्वारा मान्य रीतियो से करना। इस प्रेरणा को उसने सुरक्षा आवश्यकता (security need) कहकर पुकारा है।

मानव व्यवहार के लक्ष्य
(Goals of Human Behaviour)

सुलीवन के अनुसार मानव व्यवहार की पृष्ठभूमि मे दो प्रेरणाएँ निहित रहती है—(i) जैविक आवश्यकताओ (भोजन, निद्रा, काम आदि) की पूर्ति के लिए व्यक्ति द्वारा किए गए प्रयास तथा (ii) मानव पर सास्कृतिक दबाव, जिसके कारण व्यक्ति अपनी जैविक आवश्यकताओ को समाज द्वारा मान्यता प्राप्त विधियो से प्राप्त करता है। सुलीवन ने इस प्रेरणा को सुरक्षा की आवश्यकता (Need of security) कहा है। उसका मत है कि यह आवश्यकता 'एकल्चरेशन' या समाजीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न होती है तथा यह प्रक्रिया व्यक्ति के जन्म के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है।

सुलीवन के अनुसार, बच्चे के अन्दर 'आत्म-गतिशीलता' (self-dynamics) का प्रारम्भ बाल्यावस्था से होता है। क्योकि इस स्तर पर माँ-बाप दण्ड व पुरस्कार के माध्यम से बच्चे को गलत व सही क्रियाओ का ज्ञान करवाते है। जिस प्रकार जीवन के प्रत्येक स्तर पर अन्तर्वैयक्तिक (interpersonal) सम्बन्ध परिवर्तित होते है उसी तरह 'स्व' (self) भी निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। बालक प्रयत्न व भूल के द्वारा ससार की वास्तविकता या सत्यता व तर्क के नियमो को समझने का प्रयास करता है। जब बडे-बूढो से बालक तिरस्कृत होता है तो इस असुखद भावना से बचाव के लिए वह अपने 'स्व' मे उन्ही बातो को स्थान देता है जो बड़े-बूढो को प्रिय होती है।

सुलीवन ने अपने ढंग से व्यक्तित्व-विकास को समझाया है। उसके विचारों का आधार प्रमुख रूप से उसके चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव थे।

सुलविन ने सन्तुष्टि व सुरक्षा के सम्बन्ध में अपनी विचारधारा को प्रकट करके प्रयोजनवाद (Teleology) के सिद्धान्त पर महत्त्व दिया। उसका मत था कि संसार में मनुष्य के कार्य के दो मुख्य उद्देश्य होते हैं—सन्तुष्टि व सुरक्षा। इसके विचारों से प्रतीत होता है कि वह मनोविज्ञान में द्वैत सिद्धान्त का प्रारम्भ करना चाहता था—

(1) तनाव-कमी का सिद्धान्त (Tension-Reduction Theory)—सुलविन ने अपने सन्तुष्टि के प्रत्यय को समझाने के लिए तनाव व उसकी कमी के सिद्धान्त पर महत्त्व दिया। उसका मत था कि जब व्यक्ति के अन्दर भूख व प्यास की इच्छा जाग्रत होती है तो उसे एक प्रकार के तनाव का अनुभव होता है जिसके कारण वह व्याकुल हो जाता है तथा यह व्याकुलता उस समय समाप्त या कम होती है जबकि भोजन की प्राप्ति हो जाये या प्यास बुझ जाये। एक दृष्टि से इसका सिद्धान्त गोल्डस्टीन (Goldstein) के अवयविक सिद्धान्त (Organismic Theory) व कैनन (Cannon) के समस्थिति सिद्धान्त (Homeostatic Theory) का ही एक प्रतिरूप है।

(2) सामाजिक व सांस्कृतिक कारक (Social and Cultural Factors)—फ्रायड का सिद्धान्त व सुलीवन के सिद्धान्त में एक स्पष्ट अन्तर यह था कि सुलीवन यह मानता था कि बालक के व्यक्तित्व के विकास में सुरक्षा व सन्तुष्टि के सिद्धान्त व सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के सम्बन्ध का महत्त्वपूर्ण योगदान था। फ्रायड इस तथ्य को स्वीकार नहीं करता था।

सुरक्षा (security) को सुलविन मानव जीवन की संचालन शक्ति या ऊर्जा (conduction energy) मानता था। इस सम्बन्ध में वह दो मुख्य बातें बताता है—

(i) उल्लासोन्माद (Euphoria)—बाल्यावस्था में अगर माँ, बालक की उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति एक अच्छे ढंग से करती है तो इसके परिणामस्वरूप उसके अन्दर एक तरफ शारीरिक तनाव दूर होते हैं और दूसरी तरफ इस सन्तुष्टि की अनुभूति से सुरक्षा की भावना विकसित होती है। इसे उल्लासोन्माद कहते हैं।

(ii) तदनुभूति (Empathy)—बालक धीरे-धीरे यह समझने लगता है कि दूसरे लोग उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं। इसी स्थिति को तदनुभूति कहते हैं।

व्यक्तित्व विकास सिद्धान्त (Theory of Personality Development)—सुलीवन ने समाजीकरण प्रक्रिया को अपने व्यक्तित्व विकास सिद्धान्त का आधारभूत प्रत्यय माना है। यद्यपि उसने जैविक कारणों को अस्वीकार नहीं किया है परन्तु उन्हें सामाजिक कारकों के अधीन माना है। उसका व्यक्तित्व विकास मुख्यतः सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारकों पर निर्भर है। उसका कहना है कि कभी-कभी यह भी होता है कि व्यक्ति नैतिक आवश्यकताओं के प्रतिकूल कार्य भी करता है जिसका कारण उस पर

पड़ने वाला सामाजिक प्रभाव है। उसका कहना है कि ऐसा प्रभाव पड़ना व्यक्तित्व के लिए हानिकारक है। सुलीवन जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के विकास क्रम को निम्न 6 अवस्थाओ मे विभाजित करता है—

(अ) **शैशवावस्था** (Infancy)—सुलविन के अनुसार अवस्था जन्म से प्रारम्भ होकर तब तक चलती है जब तक कि बच्चे को मातृभाषा समझने का ज्ञान न हो जावे। जब माँ का व्यवहार अधिक कर्कश होने पर बालक के अन्दर चिन्ता (anxiety) के भाव उत्पन्न होते है। अगर उसे आत्म-सन्तुष्टि का अनुभव होता है तो उसके अन्दर 'अच्छी माँ' (*'Good Mother'*), 'मै अच्छा' (*'Good me'*) आदि की भावना जाग्रत होती है।

(ब) **बाल्यावस्था** (Childhood)—यह अवस्था तब से प्रारम्भ होती है जबकि बच्चा मातृभाषा को समझने लगता है तथा तब तक चलती है जब तक कि वह स्कूल नही जाता।

(स) **तरुणावस्था** (Juvenile Stage)—सुलविन के अनुसार इस अवस्था का प्रारम्भ उस समय से होता है जबकि बच्चा स्कूल जाने लगता है। स्कूल जाना बच्चे के लिए एक उन्मुक्त वातावरण मे आना होता है क्योंकि यहाँ उसे अपने पसन्द के अनुसार हमजोली बच्चो के साथ खेलने-कूदने का अवसर प्राप्त होता है।

(द) **पूर्व-व्यवस्था** (Pre-adolescence)—यह अवस्था 8½ वर्ष की आयु से 12 वर्ष की आयु तक होती है। इसी अवस्था मे बच्चे के अन्दर प्रेम की भावना उत्पन्न होती है। सुलविन के अनुसार वह अपने समलिंगी के साथ ही प्रेम करता है परन्तु इसे समलैंगिकता (homo-sexuality) नही कहने बल्कि इसे ***'Isophile'*** कहते है।

(य) **किशोरावस्था** (Adolescence)—12 वर्ष के उपरान्त यह अवस्था आती है। सुलीवन के अनुसार इस अवस्था मे प्रेम की मात्रा अत्यधिक होती है जिसके फलस्वरूप वह अपनी समस्त, कुण्ठाओ चिन्ताओं को भूलकर काम-सुख (sex-hunger) को तृप्त करना चाहता है।

(र) **प्रौढ़ावस्था** (Adult Stage)—इस अवस्था मे व्यक्तित्व को जीवन के वास्तविक सुख का अनुभव होता है।

सुलीवन ने व्यक्तित्व को दो भागो मे विभाजित किया है—(1) आन्तरिक व्यक्तित्व व (ii) ऐसा व्यक्तित्व, जिसके द्वारा मानव सामाजिक नियमो के आधार पर अपनी विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति करता है।

स्व या आत्म-गतिशीलता
(Self Dynamics)

सुलीवन के अनुसार, बच्चे के अन्दर 'आत्म-गतिशीलता' (Self-dynamics) का प्रारम्भ बाल्यावस्था से होता है। क्योंकि इस स्तर पर माँ-बाप दण्ड व पुरस्कार के माध्यम से बच्चे को गलत व सही क्रियाओ का ज्ञान करवाते है। जिस प्रकार

जीवन के प्रत्येक स्तर पर अन्तर्वैयक्तिक (interpersonal) सम्बन्ध परिवर्तित होते है उसी तरह 'स्व' (self) भी निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। बालक प्रयत्न व भूल के द्वारा समार की वास्तविकता या सत्यता व तर्क के नियमो को समझने का प्रयास करता है। जब बड़े-बूढो से बालक तिरस्कृत होता है तो इस असुखद भावना से बचाव के लिए वह अपने 'स्व' मे उन्ही बातो को स्थान देता है जो बड़े-बूढो को प्रिय होती हैं। सुलीवन ने अपने ढग से व्यक्तित्व-विकास को समझाया है। उसके विचारो का आधार प्रमुख रूप से उसके चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव थे।

प्राचीन काल से ही असामान्य व्यवहार को समझने का प्रयास चलता आ रहा है। इस सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तो का प्रतिपादन हुआ, जिन्हे तीन वर्गो मे रखकर अध्ययन किया जा सकता है। प्राक्-फ्रायडवादी सिद्धान्त वैसे तो पूर्ण रूप से वैज्ञानिक नही है परन्तु यह एक वैज्ञानिक विचारो के उद्‌भव का प्रयास अवश्य है। फ्रायड ने प्रथम वैज्ञानिक, मौलिक व विस्तृत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसके ही अनुयायी (बाद मे विरोधी) युग, एडलर आदि ने भी फ्रायड के मौलिक विचारो से जरा हटकर अपने-अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया। नव्य-फ्रायडवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत फ्रॉम, सुलीवन, हार्नें के सिद्धान्त प्रमुख रूप से आते है। ये सिद्धान्त असामान्य व्यवहार को समझने के लिए मनो-जैव-सामाजिक (psycho-bio-social) दृष्टिकोण पर विशेष रूप से बल देते है।

16

लैंगिक विपर्यास या विकृतियाँ
(SEXUAL PERVERSIONS OR DISORDERS)

लैंगिक विपर्यास या विकृति का स्वरूप
(Nature of Sexual Perversion)

प्रत्येक व्यक्ति की लैंगिक इच्छा होती है जिसकी पूर्ति सामान्य व्यक्ति अपने से भिन्न लिंगी (opposite sex) से करता है। दूसरे शब्दों में, इस तुष्टीकरण के माध्यम से सामान्य व्यक्ति का मनोलैंगिक विकास होता है। परन्तु समाज में ऐसे अनेक स्त्री-पुरुष होते हैं जो पूर्णत: स्वस्थ होते है तथा ठीक व सन्तुलित व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं परन्तु उनका लैंगिक जीवन बिल्कुल असामान्य होता है। वे या तो विपय या विपरीत लिंगी के प्रति कोई आकर्षण नहीं रखते या उनकी लैंगिक आवेग व इच्छाएँ इतनी विकृत हो जाती है कि वे विपमलिंगी के पास जाने से भी कतराते है, क्योकि उनकी काम-इच्छा असंगत विषयों से सम्बन्धित होती है। लैंगिक विपर्यास से तात्पर्य है कि मनोलैंगिक विकास सामान्य ढंग से न हो। दूसरे शब्दो में, लैंगिक विकृतियो के कारण व्यक्ति अस्वाभाविक व असामान्य रूप मे काम-वासना (Libido) की तृप्ति करता है। फ्रायड ने लैंगिक विकृतियों को दो भागों में बाँटा है—(1) लैंगिक आलम्बन में परिवर्तन होना, तथा (2) काम के उद्देश्य को परिवर्तित कर देना। प्रथम मे वे लोग आते है जो लैंगिक क्रिया के लिए जननेन्द्रियो के स्थान पर अपने किसी साथी का कोई अंग या शरीर का कोई भाग (यथा—योनि के स्थान पर मुख या गुदा का प्रयोग) का उपयोग करते है। इसी भाग में वे लोग भी आते हैं जो जननेन्द्रियो का उपयोग मैथुन सम्बन्धी कार्य के लिए न करके अन्य कार्यों के लिए करते हैं। दूसरे वर्ग में वे लोग आते हैं जिन्होने जननेन्द्रियों को आलम्बन बनाना पूर्ण रूप से छोड़ दिया होता है तथा शरीर के अन्य भाग (स्त्री की छाती, पैर या बालो की लट) को लैंगिक आलम्बन बना लिया है।

कभी-कभी अधिक आयु तक विवाह न होने के कारण भी लडके व लडकियाँ हस्तमैथुन का सहारा लेते हैं। कभी-कभी इस भ्रम के कारण भी लोग हस्तमैथुन करते है कि मैथुन के कारण कोई रोग हो जावेगा। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जिन व्यक्तियो मे आत्मशक्ति (narcssism) अधिक होती है, वे व्यक्ति अपने ही शरीर से काम-इच्छा की पूर्ति करते है। हस्तमैथुन से शारीरिक हानि इतनी अधिक नही होती जितनी अधिक मानसिक व सामाजिक हानि होती है।

(2) समलैंगिकता (Homosexuality)

समलैंगिकता भी कामतुष्टि का एक विकृत रूप है जिसमे एक ही लिंग के दो व्यक्ति आपस मे ही लैंगिक व्यवहार कर लेते है। सामान्य रूप से लैंगिक व्यापार विरोधी लिग अर्थात् पुरुष, स्त्री के व स्त्री, पुरुप के मध्य होता है। परन्तु जब पुरुप-पुरुष मे, या स्त्री-स्त्री मे लैंगिक व्यवहार होता है तो उसे समलैंगिकता विपर्यास कहते है। इस प्रकार के लैंगिक व्यवहार मे पुरुष के स्थान पर दूसरे पुरुप से लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करता है तथा स्त्री पुरुप के स्थान पर दूसरी स्त्री से आलिंगन करती है तथा अपने भग-शिश्न (Clitoris) को दूसरी स्त्री की भग-शिश्न के घर्षण करके लैंगिक तुष्टि करती है।

पुरुषो मे समलैंगिकता के तीन प्रकार दिखाई पडते हैं—(1) सक्रिय समलैंगिकता (Active homosexuality), (2) निष्क्रिय समलैंगिकता (Passive homosexuality), तथा (3) मिश्रित समलैंगिकता (Mixed homosexuality)। प्रथम प्रकार के समलैंगिकता मे व्यक्ति सदैव अन्य व्यक्ति के साथ लैंगिक सम्बन्ध मे पुरुष का कार्य करता है, दूसरे प्रकार मे पुरुप सदैव स्त्री का ही कार्य करता है तथा तीसरे प्रकार मे कोई व्यक्ति कभी पुरुष व कभी स्त्री की भूमिका अदा करता है।

फ्रायड का मत है कि कुछ समलिंग-कामी अपनी इस विकृत्ति पर गर्व करते है। कुछ समलिगकामियो का विचार है कि समलैंगिता यौन जीवन का उच्च स्तर है, क्योकि इस स्तर पर बच्चा पैदा करने व पालने की समस्या नही होती है। प्राचीन साहित्य मे भी अनेक समलैंगिकता के उदाहरण मिलते है। अनेक महापुरुष समलिगीकामी हुए है। सामाजिक दृष्टि से समलैंगिता को सामाजिक अपराध माना जाता है तथा समलैंगिकता के प्रति घृणा के भाव होते हैं। अनेक मनोवैज्ञानियो ने समलैंगिकता के विकास के कारणो पर भी ध्यान दिया है। **जेनकिन्स** (Jenkins) के अनुसार—विपरीत लिंगी के अभाव के फलस्वरूप समलैंगिकता आ जाती है। **विलियम क्रेग** (William Craig) के अनुसार, अगर नर-पक्षियो को अधिक दिनो तक बचपन मे मादा-पक्षियो के साथ रखा जाय तो अधिक दिनो के सहवास के कारण नर मे भी मादा के गुण विकसित हो जाते है। अत क्रेग का दूसरे शब्दो मे यह तात्पर्य था कि पुरुप को अगर बचपन मे सदैव स्त्रियो के साथ रखा जावे को पुरुष मे समलैंगिकता विकसित हो जाती है। एडलर के मतानुसार, समलैंगिकता का कारण हीनता ग्रन्थि (inferiority complex) मे निहित रहता है। जिन बालको को यह सन्देह होता है

कि उनमें पुरुषत्व नहीं है तथा वे स्त्री के साथ संभोग नहीं कर सकते हैं। वे स्त्री से दूर भागते हैं तथा समलिंगियों के माध्यम से अपनी कामेच्छा तृप्त करने का प्रयास करते हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ समकामी इसलिए बनती हैं कि उन्हें उत्तरदायित्व से डर लगता है। वे नहीं चाहती कि सन्तानोत्पत्ति हो, परिवार बने, जीवन के क्रम में दुख-दुःख आवें।

चिकित्साशास्त्रियों ने भी समलैंगिकता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। जैसे कुछ डाक्टर समलैंगिकता को यौन-क्रिया का एक जन्मजात दोष मानते हैं तथा इसका कोई भी इलाज संभव नहीं है। परन्तु वास्तव में समलैंगिकता कोई जन्मजात या वंशानुगत दोष नहीं है बल्कि लैंगिक विकृति का एक प्रकार है। हर्शफील्ड (Hirscfield) के अनुसार, जन्म से पूर्व गर्भाशय के कुछ प्रभावों के कारण समलैंगिकता उत्पन्न होती है। कुछ लोग इसका कारण जन्म-निरोध भी मानते हैं क्योंकि इस क्रिया से लैंगिक सुख की प्राप्ति तो हो जाती है परन्तु बच्चे उत्पन्न होने की कोई संभावना नहीं होती। समलैंगिकता का एक कारण सामाजिक भी है, कुछ देशों या जातियों में दोनों लिंगों की संख्या में बड़ा अन्तर होता है जिसके कारण समजातिलैंगिकता बहुत फैली हुई होती है। अन्य कारणों का भी कुछ मनोवैज्ञानिकों ने उल्लेख किया है; जैसे—डा० स्टीन्च (Dr. Steinch) का कहना है—समलैंगिकता का कारण एक प्रकार का रस-विशेष है जो लिंग-ग्रन्थि के कोषों से निकलता है। नव्य-फ्रायडवादियों के अनुसार, समलैंगिकता का प्रमुख कारण सामाजिक व सांस्कृतिक प्रभाव है।

(3) मुखलिंग विपर्यास (Sexual Oralism)

जब व्यक्ति मुख को लैंगिक इन्द्रिय (sexual organ) पर लगाकर लैंगिक आनन्द प्राप्त करता है तो उसे मुखलिंग विपर्यास कहते हैं। मुखलिंग विपर्यास दो प्रकार का होता है—(1) पुरुष-मुखलिंग विपर्यास, व (2) स्त्री-मुखलिंग विपर्यास। पुरुष का शिश्न मुँह में रखकर जब लैंगिक सुख प्राप्त किया जाता है तो उसे पुरुष मुखलिंग विपर्यास कहते हैं तथा जब स्त्री की योनिमार्ग पर मुँह का व्यवहार किया जाता है तो इसे स्त्री-मुखलिंग विपर्यास कहते हैं।

व्यवहारवादियों ने इस विकृति के कारणों की व्याख्या सम्बद्ध-सहज (conditioned reflex) सिद्धान्त के आधार पर की है। डेविड लेवी (David Levy) ने बच्चों पर प्रयोग करने के बाद यह प्रमाणित किया कि जिन बच्चों को स्तनपान करने का उपयुक्त अवसर नहीं मिलता, वे आगे चलकर शरीर के अन्य अंगों को चूसना प्रारम्भ कर देते हैं। कार्लसन (Carlson) व गुडेले (Goodale) ने भी पशुओं पर प्रयोग करके इस कथन की सत्यता की पुष्टि की है। फ्रायड व उसके अन्य सहयोगियों के अनुसार, इस विकृति का कारण मनोग्रन्थियाँ होती हैं। बच्चा अपने मानसिक स्तर पर स्तन व शिश्न का एकीकरण कर लेता है अतः भविष्य में उसमें घृणा आत्मीकरण (identification), परावर्तन व स्थिरीकरण, हीनता आदि के कारणों के प्रभाव से मुखलिंग विपर्यास उत्पन्न हो जाता है।

(4) गुदालिंग विपर्यास (Sexual Analism)

यह वह विपर्यास है जिसमें काम-इच्छा की तृप्ति स्त्री के योनिमार्ग से न करके गुदा के उपयोग से किया जाता है। व्यवहारवादियों ने इस विकृति की व्याख्या आकस्मिक या ऐच्छिक सम्बद्धन (accidential or voluntary conditioning) के आधार पर की है। पुरुष किसी कारणवश योनि का उपयोग न करके गुदा द्वारा लैंगिक आनन्द प्राप्त करता है तथा पुनः सम्बद्धन के कारण इस विकृति की उसे आदत बन जाती है। व्यवहारवादियों के मतानुसार इससे केवल सक्रिय व्यक्तियों को ही नही, निष्क्रिय व्यक्तियो को भी लैंगिक आनन्द प्राप्त होता है। यह विकृति सयौन अर्थात् एक पुरुष दूसरे पुरुष की गुदा का प्रयोग करे, ही नहीं, वियौन, अर्थात् एक पुरुष, स्त्री की गुदा को उपयोग मे लावे; प्रकार की भी होती है।

कुछ व्यक्तियो मे यह विकृति जन्म-विरोध के कारण उत्पन्न हो जाती है। कुछ व्यक्ति संतानोत्पत्ति के भय से गुदा-लिंग का उपयोग करते हैं। मनोविश्लेषण-वादियो ने इसका कारण अन्तर्द्वन्द्व बताया है। जब व्यक्ति मानसिक रूप से स्त्री को स्वाभाविक ढंग से अस्वीकार कर देता है तब लैंगिक विपर्यास उत्पन्न हो जाता है। इसके कारण पुरुषों में समलैंगिकता आती है तथा एक पुरुष दूसरे पुरुष की गुदा को स्त्री के योनिमार्ग के रूप में उपयोग करता है।

(5) परपीड़नरति (Sadism)

इस प्रकार की विकृति में दूसरो को पीड़ा पहुँचाकर लैंगिक आनन्द को प्राप्त किया जाता है। व्यक्ति को अपने प्रेमपात्र को पीड़ा पहुँचा कर काम सुख प्राप्त होता है तथा उसका मुख्य उद्देश्य प्रेमपात्र को पीड़ा या कष्ट पहुँचाना होता है। परपीड़न-रति के मुख्य उदाहरण पुरुष के शिश्न को काटना या उस पर चोट पहुँचाना, स्त्री के योनिमार्ग पर आघात पहुँचाना, स्तन या गालो को काटना आदि।

परपीड़नरति के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में एक मत नही है। कैनन, शेरिंगटन आदि विद्वानों का मत है कि इस विपर्यास के मुख्य कारण मानसिक स्थिति (mental condition), स्नायुविक तनाव (muscular tension) या अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (endocrine glands) के स्राव आदि हैं। यह विकृति सामान्यतः पुरुषों मे ही पायी जाती है। एडलर ने परपीड़नरति की व्याख्या हीनभाव ग्रन्थि के आधार पर की है। व्यक्ति अपनी हीनभाव की परिपूर्ति परपीड़न रति के द्वारा करता है। ऐसा करने से उसे आसानी से अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शन का अवसर मिल जाता है। उल्फेन (Wulffen) ने इसका कारण ग्रन्थियों में दोष बताया है जबकि इवलेनबर्ग (Evlenburg) ने इसका कारण आनुवंशिकता या दैहिक माना है। कुछ लोग परपीड़नरति को प्रजातीय विशेषता (racial trait) या प्राथमिक चेष्टाओं का पुनरावर्तन (recapitulation) को मानते है।

फ्रायड के अनुसार, परपीड़नरति मृत्यु-मूलप्रवृत्ति का विस्थापन है। शैशवा-वस्था से इसके कारणो का प्रादुर्भाव हो जाता है, जब बच्चा उत्तेजित हो जाता है तो

माँ के स्तनो को काट लेता है, पीटता है। माँ उसे डाँटती, मारती है जिससे कि परपीड़न की भावना दमित हो जाती है तथा वाद मे पुन जब उसकी लैंगिकता परिपक्व हो जाती है तो जाग्रत हो जाती है।

(6) स्वपीड़नरति (Masochism)

इस विकृति से ग्रस्त व्यक्तियो की यह प्रबल इच्छा होती है कि वे अपने प्रेमपात्र के द्वारा वास्तविक या प्रतीक रूप मे अपमानित या पीड़ित हों। उसे अपने को कष्ट और पीड़ा मे रहकर लैंगिक आनन्द का अनुभव होता है। परपीड़नरति (sadism) मे व्यक्ति अपने प्रेमपात्र को पीड़ा पहुँचाकर लैंगिक आनन्द प्राप्त करता है परन्तु स्वपीड़नरति मे स्वयं अपने को पीड़ा देकर लैंगिक सुख का अनुभव करता है। कुछ लोगो का मत है कि जिस प्रकार प्राय. परपीड़नरति पुरुषो को होती है तो स्वपीड़नरति प्रायः स्त्रियो को ही होती है। क्योंकि स्त्रियाँ प्राय सहनशील व दब्बू स्वभाव की होती हैं। परन्तु यह प्रचलित धारणा वास्तव मे निराधार है। स्वपीड़नरति के प्रमुखत. निम्न तीन रूप होते हैं :—

(i) **कामोत्तेजक स्वपीड़नरति** (Erotogenic Masochism)—इस प्रकार के स्वपीडनरति में व्यक्ति स्वयं अपने को पीड़ा या कष्ट देकर लैंगिक सुख का अनुभव करता है, जैसे—सेचर मैसोच (Secher Masoch) नामक पुरुष की यह इच्छा थी कि उसकी पत्नी उसे कोडे से पीटे। वह अपनी पत्नी से ऐसा करने को कहता था तथा पत्नी न चाहते हुए भी वैसा ही करती थी। इस प्रकार इस अवस्था मे अपने को कष्ट पहुँचा कर लैंगिक सुख प्राप्त करता है।

(ii) **नारीसुलभ स्वपीड़नरति** (Feminine Masochism)—कुछ औरतो को पति से कष्ट प्राप्त करने की इच्छा विद्यमान होती है तथा इससे उनकी लैंगिक इच्छा की तुष्टि होती है। यहाँ तक कि वे चाहती हैं कि पति इतना निर्दयतापूर्वक व्यवहार करे कि उनकी जान निकल जावे।

(iii) **नैतिक स्वपीड़नरति** (Moral Masochism)—इनमे लैंगिक सुख प्रमुख नही होता है परन्तु मनोवैज्ञानिको का मत है कि आतिक आचरण भी काम का ही विपर्यास हैं। नैतिक स्वपीडनरति के प्रमुख उदाहरण रूपवास, सन्यास तपस्या आदि हैं।

स्वपीड़नरति की व्याख्या मनोवैज्ञानिको ने विभिन्न कारणो के आधार पर की है, जैसे—कुछ लोग दैहिक दुर्वलता व लिग ग्रन्थि की निष्क्रियता को इस विकृति का कारण मानते हैं। फ्रायड के अनुसार स्वपीडनरति लड़के मे माँ के प्रति घृणा का ही स्वयं पर विस्थापन है तथा इसी प्रकार लडकी अपनी हीनता की भावना के कारण नारीसुलभ स्वपीड़नरति उत्पन्न कर लेती है।

एडलर के अनुसार इसका आधार प्रतिक्रिया-निर्माण व अतिपूर्ति की रक्षा-युक्ति ही है।

(7) स्पर्श आसक्ति (Frotteurism)

इस प्रकार के लैंगिक विपर्यास मे लैंगिक सुख दूसरे व्यक्ति के स्पर्श मात्र से ही प्राप्त होता है। सामान्य रूप से लैंगिक सुख, पुरुष लिंग व योनिमार्ग के सम्पर्क से प्राप्त होता है। परन्तु कभी-कभी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जानबूझकर या अनजाने मे स्पर्श करते है, लैंगिक आनन्द प्राप्त कर लेते है। कुछ व्यक्ति जानबूझकर भीड या मेले-तमाशे मे जाते है और इस ताक मे रहते है कि स्त्रियो का स्पर्श हो जावे। इस प्रकार स्त्रियाँ भी यह चाहती है कि पुरुषो से स्पर्श हो। कुछ लोगो में स्पर्श मात्र से ही वीर्यपात तक हो जाता है। स्पर्श आसक्ति उत्पन्न होने के प्रमुख कारण सवेगात्मक असन्तुलन, स्नायुविक दुर्बलता, अन्तर्द्वन्द्व, हीनता-मनोग्रन्थि आदि हैं।

(8) नग्नतादर्शन आसक्ति (Scopophilia)

इस प्रकार के लैंगिक विपर्यास मे व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को नग्न देखना चाहता है। इस प्रकार की विकृति मे व्यक्तियो को दूसरो को नग्न देखकर ही लैंगिक आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार के विपर्यास स्त्री व पुरुष दोनो मे पाए जाते हैं। स्त्री पुरुष को नग्न देखना चाहती है तथा पुरुष स्त्री को नग्न देखना चाहता है। सामान्य रूप से स्त्री व पुरुष दोनो की नग्न देखने की इच्छा स्वाभाविक रूप से होती है, परन्तु नग्न देखकर ही पूर्ण काम-तुष्टि का अनुभव निश्चय ही असामान्यता है।

(9) प्रदर्शनवृत्ति (Exhibitionism)

इस प्रकार के लैंगिक विपर्यास मे व्यक्ति को लैंगिक सुख की प्राप्ति केवल अपने लैंगिक अगो को दिखाने मात्र से ही हो जाती है। पुरुषो मे ही नही, स्त्रियो मे भी लैंगिक इन्द्रियो के प्रदर्शन की भावना निहित रहती है। आधुनिक युग मे लडकियाँ चुस्त कपडे पहन कर अपने अगो का प्रदर्शन करती है। इस प्रदर्शन प्रवृत्ति से उन्हे सुख की अनुभूति होती है। प्रदर्शनवृत्ति के पीछे दमित लैंगिक इच्छाओ का होना होता है। बाध्यता (compulsion) को भी इसका कारण बताया गया है। अन्य विद्वानो ने इसकी व्याख्या जैविक, प्रजातीय व सास्कृतिक गुणो के आधार पर की है।

(10) प्रतिजातीय वस्त्रधारण आसक्ति (Transvertism)

इस प्रकार की लैंगिक विकृति मे पुरुष, स्त्री के वस्त्रो व स्त्री-पुरुषो के वस्त्र धारण करने मात्र से ही लैंगिक सुख का अनुभव करते है। स्त्रियाँ प्राय पुरुषो के अण्डरवियर व पुरुष स्त्री की चोली या ब्लाउज को पहनकर लैंगिक सुख का अनुभव करते है। इस विपर्यास के कारणो के सम्बन्ध मे कुछ विद्वान सामाजिक पर्यावरण को दोष देते है तो कुछ विद्वान प्रतीकान्धभक्ति (fetishism) व प्रदर्शनवृत्ति (exhibitionism) का ही दूसरा रूप बताते हैं।

(11) शिशु-कामुकता (Infanto-sexuality)

यह उस प्रकार का लैंगिक विपर्यास है जिसमे लैंगिक सुख प्राप्त करने का साधन उन लड़के व लडकियो को बनाया जाता है जो अपरिपक्व होते है अर्थात् इसमे पुरुष कम उम्र की लडकी से लैंगिक आनन्द प्राप्त करता है और स्त्री कम उम्र के लड़के के साथ लैंगिक समागम करती है। मनोविश्लेषण के आधार पर यह ज्ञात

हुआ है कि इस विकृति की उत्पत्ति दमन व अवरोध के कारण होती है। असन्तुष्ट वैवाहिक जीवन, आजीवन अविवाहित व अधिक उम्र तक अविवाहित रहने के कारण भी यह विकृति उत्पन्न हो जाती है।

(12) पशुकामुकता (Bestiosexuality)

इस प्रकार की विकृति मे लैंगिक क्रिया का साधन पशु को बनाया जाता है। पुरुष जानवर के मुख, कान, नाक, योनिमार्ग या गुदा में अपने शिश्न को प्रवेश करके लैंगिक सुख प्राप्त करता है। इसी प्रकार स्त्री पशु को पुरुष का स्थान देकर उससे शिश्न आदि के द्वारा लैंगिक सुख प्राप्त करती है।

समाचार पत्रो से कभी-कभी पशुकामुकता के सम्बन्ध मे समाचार पढ़ने को मिलते हैं। पशुकामुकता के पीछे दमन विरोध, कुरूपता आदि कारण होते हैं। कुछ लोगों की बचपन से ही पशुकामुकता की आदत पड़ जाती है। देहातो मे जो लोग जानवर चराने का कार्य करते हैं, वे अक्सर पशुकामुकता से लैंगिक सुख प्राप्त करते हैं।

(13) शवकामुकता (Necrophilia)

यह एक विचित्र प्रकार की लैंगिक विकृतियाँ हैं जिसमें मरे हुए जीव का लैंगिक पात्र बनाकर लैंगिक सुख प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार की कामुकता के उदाहरण बहुत कम ही प्राप्त होते हैं परन्तु कभी-कभी इस प्रकार की घटनाओ की खबर अक्सर प्राप्त होती रहती है। जब पुरुष या स्त्री अपने प्रेम-पात्र से किसी कारणवश लैंगिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते तो उनकी यह इच्छा दमित हो जाती है तथा मरे हुए जीवो के साथ समागम करने की इच्छा जाग्रत हो जाती है।

(14) अकामुकता व अतिकामुकता (Asexuality and Hyper-sexuality)

व्यक्तियो में लैंगिक कार्यों के कम या अधिक विकसित रूप भी देखने को मिलते हैं; जैसे—नपुंसक पुरुष मे काम की इच्छा चेतन रूप से विद्यमान होती है परन्तु समागम करने की क्षमता उनमे नहीं होती है। अकामुकता के कारण पुरुष मे कामवासना का अभाव तथा स्त्रियो मे कामशैत्य (frigidity) का गुण आ जाता है। कामशैत्य के कारण स्त्रियो मे लैंगिक क्रिया से चरम तुष्टि का अनुभव नहीं होता, क्योकि उनमे इस प्रकार के अनुभव की योग्यता नही होती। अतिकामुकता के कारण पुरुषो मे कामार्ति तथा स्त्रियो मे नारीकामोन्माद (nymphomania) होती है। इसका अर्थ है कि कामार्ति के कारण पुरुषो मे काम-इच्छा तीव्र होती है तथा अनेक स्त्रियो के साथ समागम करने के बाद भी उन्हे तुष्टि की प्राप्ति नहीं होती।

असामान्य व्यवहार के विभिन्न सिद्धान्तों एवं शोध-परिणामों मे यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो गयी है कि इसके कारणो मे से एक प्रमुख कारण उसकी लैंगिक क्रिया है। सामान्यत. लैंगिक इच्छाओ की पूर्ति भिन्न लिंगी के माध्यम से होती है। लेकिन जब ऐसा नही होता या लैंगिक विकास मे असामान्यता आ जाती है तो विभिन्न प्रकार की लैंगिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनका व्यक्तित्व-विकास पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की लैंगिक विकृतियों का विभिन्न प्रकार की चारित्रिक एवं मानसिक विकृतियो से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

17

मन:स्नायुविकृति व मनोविकृति
(PSYCHONEUROSES AND PSYCHOSES)

आज का युग संघर्षशील है। सामाजिक दृष्टिकोण मे मानसिक रोग एक जटिल समस्या है। वैसे तो मानसिक रोग का इतिहास काफी प्राचीन है परन्तु वैज्ञानिक स्तर पर मानसिक रोगो को समझने का प्रयास कुछ समय पूर्व ही हुआ है। 14वीं शताब्दी में सर्वप्रथम अमरीका मे एक मानसिक अस्पताल की स्थापना हुई तथा यही से ही वैज्ञानिक स्तर पर मानसिक रोग के कारण एवं उनके उपचार पर अनुसन्धान शुरू हुए। मुख्यत मानसिक रोगों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

(1) मन.स्नायुविकृति (Psychoneuroses)[1],
(2) मनोविकृति (Psychoses)।

मन:स्नायुविकृति
(Psychoneuroses)

मन:स्नायुविकृति का अर्थ (Meaning of Psychoneuroses)

यह ज्ञानात्मक, संवेगात्मक व प्रक्रियाओं से सम्बन्धित मानसिक विकृतियों का हल्का प्रकार है। दूसरे शब्दो मे, यह मानसिक एवं स्नायु सम्बन्धित विकृतियाँ हैं, जिसमे रोगी मानसिक रूप से तो अस्वस्थ रहता है लेकिन उसे आस-पास के वातावरण आदि के बारे में पूर्ण ज्ञान होता है। चिकित्सा के दृष्टिकोण से भी यह एक साधारण मानसिक रोग है। साधारणत· डाक्टर के इलाज की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक उपाय अधिक उपयोगी है। ये विकृतियाँ मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न होती हैं। इन रोगियो का सम्बन्ध वातावरण की वास्तविकता से बना रहता है। इनका

---

1. मन स्नायुविकृति (Psychoneuroses) को अंग्रेजी मे 'Neuroses', 'Psychoneurotic Reactions' व 'Neurotic Reaction' आदि भी कहते हैं।

व्यवहार सामाजिक आदर्शों के अनुरूप ही होता है। रोगी अन्य रोगो की अपेक्षा दु खी, चिन्तित व आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व आदि से घिरा नही होता। ऐसे रोगियो की मृत्यु बहुत कम होती है। इन्हे मानसिक चिकित्सालयो मे भर्ती कराने की अपेक्षा एक मनोचिकित्सक की अधिक आवश्यकता होती है। ब्राउन (Brown) के अनुसार, वे व्यक्ति जो चेतन व अचेतन सघर्षों के कारण कुछ ऐसे कार्य नही कर पाते जो कि एक सामान्य व्यक्ति अपनी योग्यता व सस्कृति के कारण करने की क्षमता रखता है। इनका सम्बन्ध सामाजिकता से होता है। हार्नी (Horney) ने 1937 मे बताया कि बहुत-सी प्रतिक्रियाएँ, जो कि हमे एक सस्कृत के मन स्नायुविकृति से सम्बन्धित दिखाई पडती हैं तो दूसरी सस्कृति मे वे पूर्णत सामान्य क्रियायें होती है। अत मन स्नायुविकृति व्यक्ति वह होता है जो इस प्रकार का व्यवहार करता हो कि उस सस्कृति मे अन्य व्यक्ति नही करते हो।

प्रो० रोजन व ग्रेगरी (Rosen and Gregory) का मत है कि जहाँ व्यक्ति स्नेह, सुरक्षा व आत्म-सम्मान आदि से सम्बन्धित आवश्यकताओ की पूर्ति करता है वहाँ साथ-ही-साथ एक सीमा तक चिन्ता व अपराध की भावना से भी मुक्त रहना चाहता है। पर्याप्त मात्रा मे उपर्युक्त आवश्यकताओ की सन्तुष्टि मे जिस व्यक्ति मे कमी होती है, वे उस रोग के अन्तर्गत आते है। इस प्रकार के रोग मे व्यक्ति अनेक आवश्यकताओ की पूर्ति या सामना करने मे सुरक्षात्मक दृष्टिकोण अपनाता है। वह बुद्धि व विवेकना के साथ बात करता है। सक्षेप मे, मन स्नायुविकृति मे प्राय व्यक्ति आशिक रूप से कार्य करने मे अयोग्य हो जाता है तथा उसके मौलिक लक्षणो का सम्बन्ध चिन्ता (anxiety) से होता है।
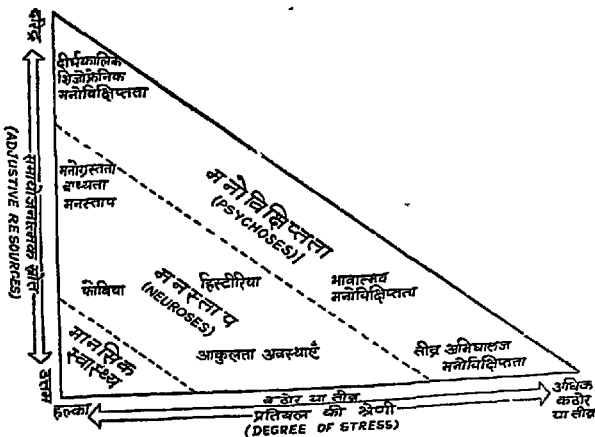
चित्र—28

कोलमैन ने मन स्नायुविकृति (Neurosis or Psychoneurosis) व मनोविकृति या मनोविक्षिप्तता (Psychoses) को समझाने के लिए एक चित्र का सहारा लिया है। (देखिए चित्र 28, पृ० 258)। इस चित्र को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जैसे-जैसे व्यक्ति की प्रतिबल श्रेणी (degree of stress) कठोर या तीव्र होती जाती है वैसे-वैसे ही उसका मानसिक स्वास्थ्य असन्तुलित होता जाता है तथा इसी कठोरता व तीव्रता के आधार पर विभिन्न प्रकार के मनस्ताप व मनोविक्षिप्तता का जन्म होता है तथा इसी की तीव्रता की वृद्धि के साथ-ही-साथ उसकी समायोजनात्मक क्षमता भी उत्तम से दरिद्र होती जाती है, अर्थात् वृद्धि के साथ-ही साथ व्यक्ति का पर्यावरण व वास्तविकताओ से सम्पर्क टूटता जाता है।

घटनाक्रम (Incidence)

क्योकि यह एक हल्के प्रकार की विकृति है तथा इस प्रकार के अधिकाश रोगियो को मानसिक अस्पताल मे भर्ती कराने की आवश्यकता नही होती। अत इनकी निश्चित सख्या का अनुमान लगाना असम्भव है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, यह कहना कठिन है कि इस प्रकार के रोगियो की सख्या कितनी है। क्योकि भारत मे मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान न के बराबर दिया जाता है। अमरीका मे प्रथम बार जो मानसिक रोगी मानसिक अस्पतालो मे प्रवेश करते है, उनमे 45% रोगी मन.-स्नायुविकृति के रोगी होते हैं। **कोलमैन** (Coleman) ने **कैंटिल व स्किरर** (1961) तथा **मैकमिलन** (1957) के सर्वेक्षण के आधार पर यह बताया कि अमरीका मे करीब 10,000,000 से भी अधिक व्यक्ति इस रोग से पीडित है। कोलमैन ने यह भी बताया है कि जितने भी व्यक्ति शारीरिक शिकायतो को लेकर डाक्टर के पास जाते हैं उनमे से आधे से अधिक व्यक्ति मन स्नायुविकृति के रोग से पीडित होते हैं। यह रोग पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे अधिक तथा आयु के दृष्टिकोण से पूर्व-यौवनावस्था मे अधिक होता है।

मन स्नायुविकृति के सामान्य लक्षण (General Symptoms of Psychoneuroses)

जैसा कि हम जानते है कि मन स्नायुविकृति एक रोग न होकर मानसिक व स्नायु सम्बन्धी सरल विकृतियाँ हैं। ये समाज से सम्बन्धित होती हैं तथा एक सामाजिक सस्कृति मे जो प्रतिक्रियाएँ मनोस्नायुविकृति के समान लगती है तो वही प्रतिक्रियायें अन्य सस्कृति मे सामान्य लोगो की प्रतिक्रियाएँ होती है। अत निश्चित रूप से मन स्नायुविकृतियो के सामान्य लक्षणो का पता नही लगाया जा सकता है लेकिन इसके विकास-क्रम मे पर्याप्त समानता दिखाई पड़ती है। इसके विकासक्रम पर सक्षेप मे प्रकाश डालने के बाद प्रमुख सामान्य लक्षणो की विवेचना करेंगे। **कोलमैन** के अनुसार इसका विकास-क्रम इस प्रकार है :—

(1) व्यक्तित्व का दोषपूर्ण विकास, जैसे अपरिपक्व (immature), विरूपण (distortion) आदि, जिसके फलस्वरूप व्यक्तित्व-सरचना मे विशिष्ट दोषो का समावेश हो जाता है।

(2) इससे व्यक्ति जीवन की साधारण कठिनाइयो का सामना करने मे भी हिचकिचाता है। उसे एक डर-सा लगने लगता है।

(3) इस स्थिति के कारण व्यक्ति मे तीव्र चिन्ताएँ जाग्रत होने लगती हैं।

(4) इस स्थिति से बचाव करने के प्रयास मे अनेक प्रकार की मनोस्नायु-विकृति लक्षणो की उत्पत्ति हो जाती है।

(5) इसके कारण व्यक्ति की कार्य-क्षमता मे ह्रास, थकान एव असन्तोष आदि अन्य गौण लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

विकास-क्रम को जानने के बाद हम नीचे सामान्य लक्षणो का वर्णन करेंगे।

(1) **चिन्ता एव भयावह** (Anxiety and Fearfulness)—अनेक मनोवैज्ञानिको ने चिन्ता को मन स्नायुविकृति का प्रमुख लक्षण माना है। रोगी इसमे बिना कारण के ही भयात्मक स्थिति मे विचरण करता है, जिसका स्वरूप वास्तविक भय से भिन्न होता है। इस प्रकार के रोगी के रोग का मुख्य कारण चिन्ता से बचाव करने का प्रयास होता है। मन स्नायुविकृति के रोगियो को अधिकतर यह आशका सताती है कि कही मेरे आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व व भय प्रकट न हो जायें। यही कारण है कि रोगी सदैव अनेक अकारण भय, यथा—दुर्घटनाग्रस्त होने, बीमार पड जाने व पागल हो जाने आदि से त्रस्त रहता है।

(2) **अनुपयुक्तता एवं हीनता** (Inadequacy and Inferiority)—इन रोगियो का व्यक्तित्व अपरिपक्व व असन्तुलित हो जाता है, जिसके कारण रोगी अपने को साधारण-से-साधारण अवस्था मे भी अनुपयुक्त समझने लगता है तथा अन्य लोगो की अपेक्षा अपने को हीन समझने लगता है। इस प्रकार के व्यक्तियो मे प्रायः दो प्रकार की स्थिति पायी जाती हैं—(i) या तो वह पूर्ण रूप से दूसरे पर ही निर्भर रहते है, (ii) या प्रत्येक कार्य स्वतन्त्र रूप से करना चाहते है।

(3) **अहं-केन्द्रिता** (Ego-centricity)—प्राय ये रोगी अपने ही विचारो, भावनाओ आदि मे खोये रहने के कारण, जीवन के सघर्षों का सामना एक सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा कठिनाई के साथ कर पाते है। दूसरे शब्दो मे, ये रोगी मुख्यत अपनी समस्याओ मे उलझे रहते हैं तथा अन्य व्यक्तियो की समस्याओ से इनका कोई सम्बन्ध नही रहता है।

(4) **तनाव एव अति-संवेदनशीलता** (Tension and Hyper-sensitivity)—क्योकि ये रोगी आत्म-केन्द्रित होते है। छोटे-छोटे सघर्षो तथा चिन्ताओ से सुरक्षा करने के लिए व्यर्थ की चिन्ताओ मे लीन रहते है। अत ये व्यक्ति हमेशा एक तनावपूर्ण स्थिति मे जीवन-यापन करते हैं। इनमे सवेगशीलता सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक होती है तथा बात ही बात मे इन्हे गुस्सा आ जाता है।

(5) **अन्तर्दृष्टि की कमी** (Lack of Insight)—क्योकि ये छोटे-छोटे सघर्षों का सामना उपयुक्त क्रियाओ से नही कर पाते। अत' इनमे मानसिक तनाव, सघर्ष, भय आदि की स्थिति बनी ही रहती हैं, जिसके परिणामस्वरूप इनमे सूझ की कमी

रहती है, आत्म-संयम, आत्म-निर्भरता आदि का अभाव दिखाई पड़ता है। व्यवहार में स्वाभाविक लोच का अभाव रहने के कारण वह अपने को अत्यन्त निराशाजनक स्थिति में पाता है।

(6) पारस्परिक सम्बन्ध व सामाजिकता की कमी (Lack of Sociability and Inter-relation)—रोगी आत्मकेन्द्रित व अनुबुकता में घिरे होने के कारण अन्य व्यक्तियों एवं अनेक सामाजिक परम्पराओं व रीति-रिवाजों के प्रति उदासीन रहता है। क्योंकि उसमें या तो यह भावना रहती है कि वह स्वतन्त्र रूप से कार्य करे या पूर्ण रूप से दूसरों पर ही निर्भर रहे, जिसके कारण अन्य व्यक्ति ऐसे व्यक्तियों से शीघ्र ही ऊब जाते हैं तथा दूर रहने का प्रयास करते हैं।

(7) थकान और अन्य शारीरिक कष्ट (Fatigue and Other Physical Injury)—मानसिक तनाव, चिन्ता, संघर्ष, भय आदि के कारण इनकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति व्यर्थ में ही नष्ट होती रहती है। फलतः वह थकान तथा अन्य शारीरिक कष्ट आदि से पीड़ित रहते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों को पेट सम्बन्धी रोग, सिर-दर्द, शरीर में अस्पष्ट वेदना आदि कष्ट सताते हैं।

(8) अन्य मानसिक लक्षण (Other Mental Symptoms)—इन रोगियों में उपर्युक्त लक्षणों के अलावा अनेक अन्य मानसिक लक्षण; यथा—परेशानी, असंतुष्टि, ध्यान की एकाग्रता में कमी आदि भी पाये जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि मनःस्नायुविकृति एक साधारण कोटि का रोग है, जिसमें रोगी के शरीर को अधिक कष्ट नहीं होता तथा चिन्तन एवं बोलने आदि क्रियाएँ युक्तिसंगत होती हैं। व्यामोह व विभ्रम के लक्षण नहीं मिलते तथा रोगी सामान्य व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है और सामाजिक रीतियों का पालन करता है। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि मनःस्नायुविकृति कोई मानसिक विकृति ही नहीं है। वास्तविक बात तो यह है कि मनःस्नायुविकृति मानसिक रोगों की प्रथम शृंखला है तथा इन्हीं लक्षणों या विकृति का अतिरंजित रूप में व्यक्ति अन्य खतरनाक मानसिक रोग से ग्रस्त हो सकता है।

मनःस्नायुविकृति के सामान्य कारण
(General Etiology or Causes of Psychoneurosis)

मनःस्नायुविकृति के अनेक कारण हैं, जिनका पूर्ण-रूपेण वर्णन करना कठिन है। अतः हम यहाँ इसके सामान्य कारणों की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

(1) जैविक कारक (Biological Factors)—इस सम्बन्ध में अनेक अध्ययन हुए हैं जो इस तथ्य के प्रमाण हैं कि मनःस्नायुविकृति को उत्पन्न करने में जैविक कारक भी महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि इस प्रकार के रोगियों के परिवारों में सामान्य परिवारों की अपेक्षा यह विकृति अधिक संख्या में बढ़ित होती है। हेनरी, इवान आदि ऐसे भी अध्ययन किये गये हैं जिनके अनुसार जो माँ-बाप मनःस्नायुविकृति के रोगी हैं उनके बच्चों को भी अधिकतर यह रोग हो जाता है; क्योंकि ये माँ-बाप बच्चे

का उचित पालन-पोषण, व्यवहार व वातावरण उपस्थित नही कर पाते। चाहे कुछ भी हो, जैविक कारको को इस रोग का पूर्ण उत्तरदायी कारक न तो माना जा सकता है और न ही इन कारको को इस रोग से पूर्णत पृथक् ही किया जा सकता है। अन्य जैविक कारक, लिंग, आयु, मस्तिष्क कोप व विभिन्न ग्रन्थि क्रियाएँ है।

(2) **मनोवैज्ञानिक कारक** (Psychological Factors)—विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने विभिन्न मनोवैज्ञानिक कारको की खोज की है जिनका वर्णन यहाँ करना उचित प्रतीत होता है

(i) अनेक विद्वानो का मत है कि सभी प्रकार के मन स्नायुविकृतियो का कारण असमायोजन उत्पन्न करने वाली क्रियाओ को सीखना है। इस मत के प्रमुख समर्थक **आइजेन्क** (Eysenck) है, उदाहरण के लिए—दुर्भीति (phobia) एक प्रकार से भय के प्रति सम्बद्ध प्रतिक्रिया (conditioned responnse) है। आइजेन्क के अनुसार दुर्भीति का रोगी जो प्रतिक्रियाएँ करता है, उससे तनाव व चिन्ता दूर होती है। आइजेन्क के इस मत को मन स्नायुविकृति सम्बन्धी व्यवहारवादी दृष्टिकोण कहते है। यहाँ कोलमैन के विचारो को बताना आवश्यक प्रतीत होता है क्योकि उसका मत है कि मनःस्नायुविकृति को अगर सम्बद्ध प्रतिक्रिया मान लिया जावे तो इसमे निहित गत्यात्मक पक्ष उपेक्षित रह जाता है।

(ii) अनेक मनोवैज्ञानिको का मत है कि मन स्नायुविकृति का कारण दबावपूर्ण मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ, जैसे—अवास्तविक महत्त्वाकाक्षाएँ, अवाछित इच्छाएँ आदि है। **एडॉल्फ मेयर** (Adolf Meyer) का मत है जब व्यक्ति अपने को उपयुक्त नही समझता तथा योग्यता व क्षमता से अधिक जीवन-लक्ष्य बनाते है, तब मन स्नायुविकृति उत्पन्न होती है। **एडलर** भी मेयर के इस मत का समर्थन करता है। उसका मत है कि आज का समाज जटिल व प्रतिस्पर्द्धात्मक है, जिसमे व्यक्ति अपनी योग्यताओ का यथार्थ रूप से मूल्याकन नही कर पाता तथा उच्चता की भावना की पूर्ति सही ढग से नही कर पाता। इसी के परिणामस्वरूप वह अपनी हीनता की भावना की क्षतिपूर्ति विभिन्न प्रकार के मन स्नायुविकृति के लक्षणो के माध्यम से होती है।

(iii) मनोवैज्ञानिक कारको के अन्तर्गत तीसरा वर्ग उन मनोवैज्ञानिको का आता है जो इसके उत्पन्न होने का कारण जीवन की सार्थकता व आशा की कमी (lack of meaning and hope) को मानते हैं। थार्न (Thorne, 1963) का मत है जब व्यक्ति के जीवन मे किसी भी क्षेत्र मे सार्थकता की कमी तथा काल्पनिक बातो की अधिकता हो जाती है तब उसे अपने अस्तित्व की चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। इसी के परिणामस्वरूप वह उचित व समायोजित रूप मे जीवन-यापन नही कर पाता। जब उसकी सफलताएँ स्थायी हो जाती हैं तब उसमे मन स्नायुविकृति लक्षण उत्पन्न हो जाते है। बेकर (Becker, 1962) का कहना है—कठिनाई की स्थिति मे व्यक्ति दो मुख्य कार्य करना है—(अ) अपने आत्मबोध की निरन्तरता की

रक्षा, तथा (ब) परिस्थितियो का सामना करने के लिए प्रयास करते रहना। जब उसके ये दो कार्य ही असम्भव हो जाते है तब उसमे मनोविकृति लक्षणो का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। मॉवरर (Mower) का मत है कि अपरिपक्वता व अपराध भाव (immaturity and guilt) ही इसके उत्पन्न होने के प्रमुख कारक हैं।

(3) **सामाजिक कारक** (Social Factors)—वैसे तो इस प्रकार के रोगी प्रत्येक समाज व वर्ग मे पाये जाते हैं परन्तु फिर भी कुछ ऐसी विशिष्ट सामाजिक स्थितियाँ होती है, जो विभिन्न प्रकार के मनोविकृतियो का एक विशिष्ट रूप प्रदान करती है, जैसे—क्षोभोन्माद (hysteria) के रोगी उन क्षेत्रो मे अधिक मिलते है जो आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पिछडे हुए होते है। विशेष प्रकार की सस्कृति व जाति भी इस रोग को उत्पन्न करने में सहायक हैं, जैसे—हण्ट (Hunt) ने अपने अध्ययन मे पाया कि नीग्रो व्यक्तियो की अपेक्षा अमेरिकन गोरे व्यक्तियो मे मनोविकृति का रोग सापेक्षिक रूप से कम होता है।

मनोविकृति का अर्थ
(Meaning of Psychoses)

मनोविकृति एक सगीन असामान्यता है। इस रोग से पीडित व्यक्ति का व्यक्तित्व अत्यधिक विघटित हो जाता है। रोगी को वास्तविकता का ज्ञान नही होता। आत्मसयम व सामाजिक सन्तुलन का पूर्णत अभाव रहता है तथा अक्सर कल्पना लोक मे विचरण करता रहता है। उसे अपने कार्यों की अच्छाई व बुराई के बारे मे ज्ञान नही होता। कानून (law) के दृष्टिकोण से उन्हे पागल (insane) की सज्ञा दी जाती है। अन्य व्यक्तियो को इन रोगियो का व्यवहार देखने मे विचित्र व बुरा लगता है। इनमे विपर्यय व विभ्रम (illusion and hallucination) का बाहुल्य रहता है तथा इन्हे अपने सुधार या ठीक होने की कोई चिन्ता नही रहती। चिकित्सक की सलाह को स्वीकार नही करते तथा आत्महत्या करने पर उतारू रहते है। **प्रो० ब्राउन** का मत है कि इस प्रकार की असामान्यता मे रोगी के व्यक्तित्व का पूर्ण विघटन हो जाता है। अह, इदम् व परम अह (ego, id and super-ego) के आपसी सम्बन्ध इस असामान्यता मे विगड जाते है। सक्षेप मे, मनोविकृति के सम्बन्ध मे हम कह सकते है कि ये तीव्र असामान्यताएँ होती है, जो कि बोधात्मक, ज्ञानात्मक व क्रियात्मक से सम्बन्धित रहती है तथा जिसके फलस्वरूप व्यक्ति कार्य करने मे योग्य नही होता। उसका वास्तविक जगत् से सन्तुलन बिगड़ जाता है।

घटनाक्रम
(Incidence)

भारत मे अज्ञानता व अन्य कारणो के फलस्वरूप इस रोग से सम्बन्धित रोगियो की सख्या के सम्बन्ध मे अनुमान लगाना कठिन है। अमरीका मे अनुमानत मनोविकृति के रोगियों की सख्या लगभग 10,00,000 है, जिसमे से करीब एक-

तिहाई अस्पताल मे प्रवेश करते हैं तथा शेष घर वालो की देखरेख मे ही रहते है। इस प्रकार के रोगियो की मध्याक आयु करीब 44 वर्ष है। यह रोग स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे अधिक होता है तथा इसका अनुपात 3 व 4 का है। विवाहित व्यक्तियो की अपेक्षा अविवाहित, विधुर व तलाक दिये गये व्यक्तियो को यह रोग अधिक होता है। देहातो की अपेक्षा अधिक सख्या शहरो मे (जैको, 1960), निम्न सामाजिक वर्ग मे इसका घटनाक्रम 13% तथा उच्च स्तर के व्यक्तियो मे 3 6% तथा निम्न व उच्च सामाजिक स्तर के मध्य 3 6 1 अनुपात पाया जाता है (रैनो, 1957)।

मनोविकृति का वर्गीकरण
(Classification of Psychoses)

मनोविक्षिप्त लक्षणो (psychotic symptoms) का जन्म या तो मनोवैज्ञानिक दबावपूर्ण स्थिति या आगिक मस्तिष्क व्याधि या इन दोनो ही स्थितियो के कारण होता है।[1] इस प्रकार से मनोविकृति विकारो (psychoses disorders) का दो सामान्य भागो मे वर्गीकरण किया जा सकता है :—

(1) मनोजन्य मनोविकृति (Functional Psychoses),
(2) आगिक मनोविकृति (Organic Psychoses)।

मनोजन्य मनोविकृति को मुख्यत निम्न चार प्रकारो या समूहो मे बाँटा जा सकता है :—

(i) **शिजोफ्रेनिक प्रतिक्रियाएँ** (Schizophrenic Reactions)—इसमें रोगी के अन्दर वास्तविकता के सम्बन्ध मे पुन पीछे हटने (retreat) की प्रवृत्ति पायी जाती है, जैसे—व्यामोह (delusion), विभ्रम (hallucinations) और रूढियुक्तियाँ (stereotypes)।

(ii) **पैरानॉइड प्रतिक्रियाएँ** (Paranoid Reactions)—रोगो से मुख्यत उत्पीडन (persecution) या महानता (granduer) से सम्बन्धित व्यामोह आते हैं।

(iii) **भावात्मक प्रतिक्रियाएँ** (Affective Reactions)—इस प्रकार की प्रतिक्रियाओ मे भावो (moods) का तीव्र उच्चावसन पाया जाता है, जिसका सम्बन्ध विचार व व्यवहार की बाधाओ से होता है। इसके दो उप-समूह है —

(अ) उत्साह-विषाद प्रतिक्रियाएँ (Manic Depressive Reactions),
(ब) मनोविक्षिप्त विषादात्मक प्रतिक्रियाएँ (Psychotic Depressive Reactions)।

---

1 "Psychotic symptoms may originate from either psychological stresses or organic brain pathology or from the interaction of both"—Coleman *Abnormal Psychology and Modern Life*, p. 263

(iv) प्रत्यावर्तनकालीन विषाद प्रतिक्रियाएँ (Involutional Psychotic Reactions)—इसमे प्रत्यावर्तन काल मे असामान्य विषाद व चिन्ता आदि उत्पन्न हो जाती है।

आगिक मनोविकृतियो मे मुख्यत. आगिक व विषात्मक (toxic) दोष आते है। मनोजन्य (function) मनोविकृतियो मे प्रमुखत कटु अनुभव एव वंशानुगत दोष मूल रूप से आते है लेकिन इस सम्बन्ध मे कोई प्रमाण नही प्राप्त होता है। कुछ विद्वानो का कहना है कि मनोजन्य मनोविकृतियो की एक प्रमुख पहिचान यह है कि इनके कारण ज्ञात नही होते लेकिन यह सम्भव है कि बाद मे इनका कारण आगिक ही निकल आवे तथा इन्हे आगिक मनोविकृति के वर्ग मे ही रखेंगे।

मनोविकृति के लक्षण
(Symptoms of Psychoses)

वैसे तो प्रत्येक प्रकार की मनोविकृति मे एक विशिष्ट लक्षण पाया जाता है लेकिन फिर भी कुछ ऐसे लक्षण भी इस विकृति से सम्बन्धित होते हैं, जो प्रत्येक प्रकार की मनोविकृति मे पाये जाते है। इसमे रोगी का व्यवहार अत्यधिक असगत व असम्मानजनक होता है, क्योकि रोगी अपनी प्रतिक्रियाओ पर अनुकूल नियन्त्रण नही कर पाता। अत उसके विचार, क्रिया व भाव आदि पर भी उसका अनियन्त्रण हो जाता है, जिससे वह बदला-बदला-सा नजर आता है। वह अनैतिक कार्य कर सकता है तथा आक्रमण कर सकता है। शीयर (Scheier · 1962) ने इस सम्बन्ध मे यह बताया कि रोगियो से मुक्त चिन्ता की मात्रा सामान्यत औसत से कुछ अधिक होती है (60 शताशीय मान), लेकिन मनोविकृतियो के रोगियो मे यह मात्रा (85 शताशीय मान) अधिक होती है।

मनोविकृति के दो प्रमुख सामान्य लक्षण है, यथा—(1) व्यामोह (delusion), (2) विभ्रम (hallucination)।

नीचे हम इनके वर्णन के साथ ही अन्य लक्षणो की भी व्याख्या करेंगे .—

(1) व्यामोह (Delusion)—व्यामोह[1] झूठे विश्वास होते है जिन्हे व्यक्ति सत्य मानता है तथा इसकी असत्यता सिद्ध करने के सभी तर्कों को वह स्वीकार नही करता। यद्यपि व्यामोह सामाजिक समायोजन मे गम्भीर रूप से बालक मे होते है फिर भी व्यक्ति इनसे मुक्त नही हो पाता है। इसके निम्न प्रमुख रूप है :—

(i) महानता का व्यामोह (Delusion of Grandeur)—इस प्रकार के व्यामोह मे व्यक्ति अपने को एक महान् वैज्ञानिक, महान् लेखक, महान् दार्शनिक,

---

1 "Delusions are false beliefs which the individuals defends vigorously despite logical absurdity or proof to the contrary and despite their serious interference with his social adjustment."
—Coleman, J. C *Ibid*, p 264.

महान् समाज-सुधारक या ईश्वर का अवतार आदि समझने लगता है। उसे चाहे जितना भी समझाया जाय, वह अपने को साधारण न मानकर महान् ही समझता है।

(ii) **दण्डात्मक या उत्पीड़न व्यामोह** (Delusions of Persecution)—इस प्रकार के व्यामोह मे व्यक्ति यह समझने लगता है कि लोग उसे धोखा देना चाहते है या षड्यन्त्र रच रहे है।

(iii) **सन्दर्भ व्यामोह** (Delusion of Reference)—इस प्रकार के व्यामोह मे व्यक्ति यह समझता है कि लोग उसके ही सन्दर्भ मे बातचीत कर रहे है।

(iv) **प्रभाव व्यामोह** (Delusion of Influence)—इस प्रकार के व्यामोह मे व्यक्ति यह समझता है कि शत्रु उसे प्रभावित कर रहे है तथा उसके मस्तिष्क को आसक्त विद्युत तरगो के माध्यम से नष्ट कर रहे है।

(v) **रोगभ्रम व्यामोह** (Hypochondrical Delusion)—इस प्रकार के व्यामोह मे व्यक्ति अपने को अनेक प्रकार की बीमारियो से पीडित समझता है। वह किसी भी युक्तिसगत तथ्य को स्वीकार नही करता है तथा यह समझने लगता है कि उसका शरीर प्राय नष्ट हो रहा है।

(vi) **पाप व अपराध व्यामोह** (Delusion of Sin and Guilt)—इस प्रकार के व्यामोह मे व्यक्ति यह समझने लगता है कि उसने अनेक पाप किये है, वह अपराधी है तथा उसे अब किसी भी शर्त पर क्षमा नही किया जा सकता है।

(vii) **मिथ्यात्मक व्यामोह** (Nihilistic Delusion)—इस प्रकार की व्यामोहात्मक स्थिति मे व्यक्ति यह समझने लगता है कि ससार मिथ्या है। वह भ्रम के मायाजाल मे उलझा हुआ है तथा उसकी तो मृत्यु कई वर्ष पूर्व हो चुकी है। अब तो केवल आत्मा की छाया ही कार्य कर रही है।

(2) **विभ्रम** (Hallucination)—विभ्रमावस्था मे, बिना बाह्य स्नायुविक उद्दीपक के रोगी को अनेक प्रकार का प्रत्यक्षीकरण होता है।[1] यह वह स्थिति है जिससे मिथ्या ज्ञान होता है। विभ्रम सभी ज्ञानेन्द्रियो से सम्बन्धित होता है लेकिन मुख्यत श्रवण से सम्बन्धित ज्ञानेन्द्रिय मे विभ्रम अधिक होते है। रोगी को कभी-कभी अदृश्य स्थान या विशिष्ट व्यक्तियो से सन्देश या आवाजें सुनाई पडती है। आवाज के आने तथा दिशा मे अन्तर पाया जाता है, उसे कभी खिडकी मे मे आवाज आती हुई प्रतीत होती है तो कभी चारो ओर से आती सुनाई पडती है। सुनने सम्बन्धी विभ्रमो के अतिरिक्त दृश्य, गन्ध, स्वाद आदि से भी सम्बन्धित विभ्रम उत्पन्न होते है।

(3) **विचार, भाषा आदि मे असंगिकता** (Unconsistency in Idea, Language, etc)—मनोविकृति मे व्यक्ति के विचार, भाषा आदि मे सगति नही

---

1 "In hallucinatory reactions, the patient perceives various kinds of strange objects and events without any appropriate 'external' sensory stimuli"—**Colemen, J. C.** *Ibid*, p. 265

होती । वह अनोखी बातो को कहता है जिसका तार्किक दृष्टिकोण से कोई महत्त्व नही होता । उसका मानसिक जीवन पूर्णत अस्त-व्यस्त हो जाता है जिसके फलस्वरूप व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है तथा व्यक्ति व्यामोह, विभ्रम आदि का शिकार हो जाता है ।

(4) **सामूहिकता व सामाजिकता का अभाव** (Lack of Sociability and Group)—रोगी के व्यक्तित्व का विघटन व मानसिक जीवन अस्त-व्यस्त होने के कारण उसमे सामाजिक नियमो, रीति-रिवाजो, सामाजिक व्यवहार आदि मे असंतुलन दिखाई पडता है । वह ऐसे कार्यो को करता है जो समाज के अनुकूल नही होते तथा उसका व्यवहार सामाजिक दृष्टिकोण से काफी चिन्तनीय होता है ।

(5) **आत्म-भाव व आत्म-व्यवस्था का अभाव** (Lack of Self-respect and Self-management)—रोगी कुछ सोच नही पाता जिसके कारण वह आत्म-व्यवस्था बनाये रखने मे पूर्णत असमर्थ होता है । वह आत्महत्या करने तक को तत्पर होता है ।

(6) **मानसिक अस्पताल की आवश्यकता** (Need of Mental Hospital)—मनोविकृति सरल प्रकार की विकृति नही होती बल्कि एक जटिल विकृति है, इसलिए इस प्रकार के रोगियो को घर की अपेक्षा मानसिक चिकित्सालयो मे भर्ती कराना चाहिए या घर को ही चिकित्सालय के समान बनाकर रोगी की देखभाल करनी चाहिए ।

मनोविकृति का उपचार
(Treatment of Psychoses)

मनोविकृति क्योकि एक जटिल विकृति है । अत इसका उपचार सरल नही है । इसमे मनोवैज्ञानिक, शारीरिक व मानसिक उपचार के मिले-जुले रूप का उपयोग करना चाहिए । मनोवैज्ञानिक विधियो के अन्तर्गत व्यक्तिगत व सामूहिक दोनो प्रकार की विधियो का उपयोग सम्भव है । इनके अतिरिक्त रासायनिक औषधियो, विद्युत-आघात पद्धति, इन्सुलीन पद्धति आदि का उपयोग किया जाता है । इन विधियो के अतिरिक्त व्यावसायिक एव मनोरजनात्मक विधियो का भी प्रयोग किया जा सकता है । इसमे मुख्यत दीर्घकालीन चिकित्सा की आवश्यकता होती है ।

मनोस्नायुविकृति व मनोविकृति का तुलनात्मक अध्ययन
(Comparative Studies of Psychoneurosis and Psychoses)

अनेक मनोवैज्ञानिको ने मनोस्नायुविकृति व मनोविकृति के सम्बन्ध मे तुलनात्मक अध्ययन किया है । हैरिस (Harris · 1938), रॉस (Ross · 1936), यासकिन (Yaskin) मे अपने तुलनात्मक अध्ययनो के बाद यह बताया कि 4 से 7 प्रतिशत मनोस्नायुविकृति के रोगी आगे चलकर मनोविकृति के शिकार होते हैं ।

मनोजन्य एवं आनुवंशिकता से होता है। इसमें स्नायुविक, दैहिक एवं रासायनिक तत्व प्राय. अमहत्त्वपूर्ण होते है। लेकिन मनोविकृति मे प्रमुख कारणो का सम्बन्ध मुख्यत आनुवंशिकता, विषात्मक (toxic) व स्नायुविक (neurological) से होता है।

(2) व्यवहार के दृष्टिकोण से
(According to Behaviour)

मनोस्नायुविकृतिग्रस्त रोगी मे भाषा व विचार के दृष्टिकोण के सगति पाई जाती है, क्योंकि उनका व्यवहार तार्किक होता है। लेकिन इसके विपरीत मनोविकृतियों के रोगियों की भाषा एव विचार मे असगति, विचित्रता व अतार्किकता पायी जाती है। इन रोगियो मे व्यामोह, विभ्रम व मानसिक अस्थिरता अधिक होती है कि जब मन स्नायुविकृतियों मे ऐसा नही पाया जाता है।

(3) सामाजिक दृष्टिकोण से
(According to Social Point of Views)

सामाजिक दृष्टिकोण से मन स्नायुविकृतियो के रोगियो के लक्षणो मे समाज व वास्तविकता (society and reality) मे एक समन्वय की झलक मिलती है, क्योंकि इनका व्यवहार करीब-करीब सामान्य लोगो से मिलता-जुलता है। लेकिन मनोविकृति के रोगियो मे सामाजिक लक्षणों का अभाव रहता है। उसमे सामाजिक आदतें, समाज व वास्तविकता का सम्बन्ध, सामूहिकता आदि भावनाएँ प्राय नष्ट हो जाती है। दूसरे शब्दो मे, मनोविकृति के रोगियो को सामाजिक नियमो से न तो कोई सम्बन्ध ही रहता है और न ही ये समाज के नियमो का पालन ही करते है।

(4) व्यक्तित्व के आधार पर
(On the Basis of Personality)

मनोस्नायुविकृति के रोगियो का व्यक्तित्व या तो सामान्य व्यक्ति से मिलता हुआ होता है या थोडा-सा अन्तर होता है। लेकिन मनोविकृति के रोगियो का व्यक्तित्व सामान्य व्यक्तियो से काफी भिन्न होता है। उसका व्यवहार व प्रतिक्रियायें इतनी भिन्न होती है कि वह सामान्य व्यक्ति से बिल्कुल अलग दिखाई पडता है।

(5) व्यवस्था एव चिकित्सा के दृष्टिकोण से
(According to Management and Therapy)

मनोस्नायुविकृति रोगी मे इतनी समझ होती है कि वह अपना भला-बुरा समझता है तथा आत्म-व्यवस्था को बनाये रखता है। लेकिन मनोविकृति के रोगियो मे आत्म-व्यवस्था का पूर्णतः अभाव पाया जाता है, जिसके कारण वे आत्महत्या की प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होते है। चिकित्सा के दृष्टिकोण से मन स्नायुविकृति रोगियो का उपचार घर मे सम्भव है, लेकिन मनोविकृति के रोगियो को या तो चिकित्सालय मे भरती करा दिया जाता है या चिकित्सालय की भाँति घर मे ही प्रबन्ध कराना चाहिए।

मनःस्नायुविकृति, सामान्य व मनोविक्षिप्तता में अन्तर
(Difference in Psychoneurosis, Normal and Psychoses)

	आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व की प्रकृति	उसके व्यवहार का सामाजिक रूप	प्रतिगमन श्रेणी	प्रेम-वस्तु के आधारभूत उत्तेदनाओ से सम्बन्ध	अन्तर्द्वन्द्व का रूप
मनःस्नायुविकृति (Psychoneuroses)	अहम्, परम अहम् व इदम् और वास्तविकता मे असामजस्यपूर्ण सन्तुलन, अहम् का परम अहम् व इदम् से सघर्ष परन्तु वास्तविकता के साथ सम्बन्ध बना रहता है।	आशिक रूप से स्वीकृत व्यवहार। गत्यात्मक व ज्ञानात्मक दोनो दृष्टि से व्यवहार विध्वसात्मक, लेकिन इदम् के आवेगो पर नियन्त्रण।	गुदा या लैगिक अवस्था मे प्रतिगमन।	वस्तुविहीन या अधिकतम रूप मे उभयवृति का होना।	उग्र या तीव्र लक्षण का निर्माण।
सामान्य (Normal)	अहम्, परम अहम् व इदम् तथा वास्तविकता के साथ सामजस्य सन्तुलन।	व्यवहार, रचनात्मक व सामाजिक रूप से स्वीकृत।	कोई नही।	उभयवृत्ति केन्द्र।	अन्तर्द्वन्द्व नही।
मनोविक्षिप्तता (Psychoses)	अहम्, परम अहम् व इदम् तथा वास्तविकता मे अधिकतम असामजस्य सन्तुलन। अहम् की शक्ति ह्रास होने लगती है तथा इसका वास्तविकता के साथ सम्बन्ध नही होता।	सामाजिक रूप मे अस्वीकृत व्यवहार। इदम् सम्बन्धी आवेगो का विकृत रूप से प्रकट होना।	प्रारम्भिक गुदा अवस्था मे प्रतिगमन।	वस्तुविहीन या अधिकतम रूप से उभयवृत्ती होना।	उग्र व तीव्र लक्षणों का निर्माण।

(6) उपचार एवं अवधि के दृष्टिकोण से
(According to Treatment and Duration)

मनोस्नायुविकृति के रोगियो की अन्तर्दृष्टि पूर्णतः या लगभग ठीक होती है। अत. इन्हे मनोवैज्ञानिक उपचार, यथा—निर्देश, पुनर्शिक्षण आदि के माध्यम से ठीक किया जा सकता है लेकिन मनोविकृति के रोगियो के उपचार के लिए रासायनिक—शरीर-विज्ञानात्मक विधियो का सहारा लेना पडता है। अवधि (duration) के दृष्टिकोण से मनोस्नायुविकृति के लक्षण अस्थायी एव प्राय अनुकूल होते हैं। इस रोग मे रोगियो की दशा चिन्ताजनक नही होती तथा मृत्यु-सख्या साधारण होती है। इसके विपरीत मनोविकृति के लक्षण अपेक्षाकृत स्थायी व प्रतिदिन परिवर्तित होते रहते हैं। अधिकतर लक्षणो के परिणाम प्रतिकूल होते हैं तथा इस रोग मे रोगियो की दशा विगड़ जाना साधारण वात है एव मृत्यु सख्या की अधिकता भी पायी जाती है।

मनोस्नायुविकृति सम्बन्धी सिद्धान्त
(Related Theories of Psychoneurosis)

फ्रायड का मनोस्नायुविकृति सिद्धान्त
(Freud's Psychoneurosis Theory)

फ्रायड ने वताया कि स्नायुविकृत प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले सभी तत्त्वो का सम्बन्ध प्रमुखत. रोगी के वाल्यकालीन एव वयस्क लैंगिक जीवन से होता है। फ्रायड इनके अतिरिक्त वशानुक्रम को भी मनोस्नायुविकृति का कारण मानता है। इन्ही आधारो पर फ्रॉयड स्नायुविकृति को दो भागो मे विभाजित करता है —

(1) वास्तविक स्नायुरोग (Actual or True Neurosis),

(2) मन.स्नायुविकृति (Psychogenic)।

वास्तविक स्नायुरोग की उत्पत्ति वयस्क लैंगिक जीवन के व्यतिक्रमो के कारण होती है। इसके अन्तर्गत स्नायुदौर्बल्य (neurasthenia) व चिन्ता (anxiety) प्रमुख रूप से आती है। मन स्नायुविकृति मनोजन्य (psychogenic) होती है। इनकी उत्पत्ति का प्रमुख कारण मुख्यत शैशवकालीन लैंगिक अनुभव व इडिपस ग्रन्थि (oedipus complex) का असन्तुलन है। इसके अन्तर्गत प्रमुखत. रूपान्तरित क्षोभोन्माद (conversion hysteria) व मनोग्रस्तता-वाध्यता मन स्नायुविकृति (obsessive-compulsive psychoneurosis) आते है। फ्रायड ने इस सम्बन्ध मे निम्न प्रमुख वातो की विवेचना की है —

(1) मुख्यत मन स्नायुविकृति का कारण लैंगिक आघात (sexual trauma) है।

(2) वाद के ग्रन्थो मे फ्रायड ने मन स्नायुविकृति का कारण इडिपस ग्रन्थि का असन्तुलन वताया है।

(3) वाद मे फ्रायड ने इसका कारण इदम् व परम अहम् के वीच संघर्ष को माना है।

(4) मन स्नायुविकृति का क्षेत्र काफी विस्तृत है, क्योंकि इसका सम्वन्ध प्रारम्भिक जीवन का तिरस्कारमय वातावरण से माना गया है।

(5) फ्रायड ने अन्त में यह वताया कि मन.स्नायुविकृति को अनेक कारणों के आधार पर समझा जा सकता है।

इस प्रकार फ्रायड 'शुद्ध न्यूरॉसिस' (*True Neurosis*) व मन स्नायुविकृति मे उत्पन्न होने के कारण से भेद मानता है। उसका विचार है कि 'शुद्ध न्यूरॉसिस' के उत्पन्न होने का कारण शारीरिक एवं विपाक्त दशाएँ है। ये दशाएँ व्यक्ति में काम सम्बन्धी क्रियाओ मे गड़वड़ी होने के कारण उत्पन्न होती हैं। मन.स्नायुविकृति शुद्ध मनोविकृति के विपरीत प्रधानत मनोजन्य (psychogenic) होते है। इनका सम्वन्ध मुख्यत शैशव यौन जीवन के असन्तुलन से होता है।

फ्रायड ने इन दोनो की उत्पत्ति एव विकास मे दैहिक महत्त्व का संकेत दिया है। जैसे फ्रायड का विचार है कि अत्यधिक हस्त-मैथुन करने से व्यक्ति में मन स्नायुदौर्वल्य का जन्म होता है। लेकिन जव व्यक्ति की काम-इच्छा तो अधिक प्रवल होती है। परन्तु उसकी सन्तुष्टि उचित रूप से नहीं होती है तो व्यक्ति चिन्ता मनः स्नायुविकृति का शिकार हो जाता है। फ्रायड ने वाद मे मन स्नायुविकृति का कारण मनोवैज्ञानिक माना है। ऑडिपस अन्तर्द्वन्द्व (oedipus conflict) की उपयुक्त परिसमाप्ति के कारण तथा 'इदम्' व 'परम् अहम्' के मध्य सघर्ष के कारण मन.स्नायु-विकृति की उत्पत्ति होती है।

फ्रायड ने मन.स्नायुविकृति के क्षेत्र को अधिक विस्तृत माना, क्योंकि इसकी उत्पत्ति का कारण प्रारम्भिक जीवन का तिरस्कारपूर्ण वातावरण है। फ्रायड ने अपने पूर्व अनुभव के आधार पर वाद में वताया कि मन स्नायुविकृतियो को एक कारण के आधार पर नही समझा जा सकता। फ्रायड ने मन स्नायुविकृतियों के विभिन्न रूपो की व्याख्या की जिसके परिणामस्वरूप चार मन स्नायुविकृति के प्रत्यक्ष सम्मुख आए —

(1) मनोग्रस्तता व वाध्यता मन स्नायुविकृति (Obsessive-Compulsive Psychoneurosis),
(2) चिन्ता मन स्नायुविकृति (Anxiety Psychneurosis);
(3) रूपान्तरित क्षोभोन्माद (Conversion Hysteria),
(4) मन.श्रान्ति (Neurasthenia)।

एडलर का मन.स्नायुविकृति सिद्धान्त
(Adler's Psychoneurosis Theory)

एडलर फ्रायड के काम व मन.स्नायुविकृति के सम्वन्ध को स्वीकार नही करता। एडलर का कहना है कि मन स्नायुविकृति के रोगो मे एक प्रकार की हीनता की भावना रहती है तथा मन.स्नायुविकृति ही प्रत्येक हीनता को दूर करने का

साधन है । रोगी उच्चता की भावना को कायम रखने के लिए ही मन स्नायुविकृति से पीडित हो जाता है । फ्रायड ने अपने सिद्धान्त मे काम को अत्यधिक महत्त्व दिया है तथा काम भावना से पीडित होना ही इस रोग का कारण माना है जबकि एडलर का मत है कि व्यक्ति अपनी हीन भावना को त्यागने या दबाने तथा उच्च भावना की प्राप्ति के उद्देश्य से ही इस विकृति से पीड़ित हो जाता है । रोगी अनुपयुक्त 'जीवन-शैली' (*Style of Life*) का शिकार होता है जिसके फलस्वरूप स्वय तथा समाज के मध्य सन्तुलन बनाए रखने के प्रयास मे असफल रहता है ।

एडलर का कहना है कि उपकार के लिए इस प्रकार के रोगियो को जीवन-शैली का विस्तृत अध्ययन करना आवश्यक है । इसके लिए चिकित्सक को व्यक्ति के परिवार जन्म-क्रम, प्रारम्भिक घटनाएँ व स्मृतियाँ, रुचि-अरुचि, व्यावसायिक चयन आदि का ज्ञान करना चाहिए ।

युङ्ग का मनःस्नायुविकृति का सिद्धान्त
(Jung's Psychoneurosis Theory)

मन स्नायुविकृति के सम्बन्ध मे युङ्ग का सिद्धान्त यह बताता है कि इसका प्रमुख कारण व्यक्ति के सम्मुख वे परिस्थितियाँ होती हैं जिनका वह सीधे तौर पर समाधान नही कर पाता । वह कठिनाई मे पड जाता है कि क्या करे या समस्याओ के सुलझाव के लिए शैशवकालीन विधियो को अपनाने लगता है । क्योकि शैशव-कालीन विधियाँ वर्तमान समस्याओ का उचित समाधान नही हैं, अत उसका समायोजन और भी बिगड जाता है । इस प्रकार के व्यक्तियो के उपचार के लिए युंग के अनुसार सर्वप्रथम रोगी को 'व्यक्तिगत अचेतनता' (*Personal Unconsciousness*) तथा बाद मे धीरे-धीरे 'सामूहिक अचेतनता' (*Collective Unconsciousness*) के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करनी चाहिए । ऐसा करने से रोगी स्वय अपने आपको समझने का प्रयास करेगा तथा वर्तमान समस्या का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकेगा । युग का मत है कि रोगियो को धार्मिक ग्रन्थो का अवलोकन करने की सलाह देनी चाहिए ।

कैरेन हॉर्नी का मन स्नायुविकृति सिद्धान्त
(Karen Horney' Psychoneurosis Theory)

मन स्नायुविकृति के सम्बन्ध मे हार्नी का यह मत है कि सामान्य व्यक्ति तो अपनी मूलभूत चिन्ताओ का समाधान यथार्थ रूप से निकाल लेते हैं लेकिन मन.-स्नायुविकृति के रोगी मूलभूत चिन्ताओ तथा इनके फलस्वरूप उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्वो को दूर करने के लिए कृत्रिम रास्ता निकालते हैं । इस प्रकार सामान्य व्यक्ति अपनी समस्याओ के समाधान के लिए अन्य व्यक्तियो की ओर अग्रसर होने, उनका विरोध करने या उनसे दूर भागने आदि समाधानो पर ध्यान देते है तथा उनके समन्वित रूप के माध्यम से समस्या का निराकरण करते हैं । लेकिन मन स्नायुविकृति रोगी चेतन रूप से केवल एक ही साधन को अपनाता है, अन्य दो को या तो दमित (repressed) कर

लेता है या पूर्ण रूप से अस्वीकार कर देता है। हॉर्नी, फ्रायड के इस मत से सहमत था कि मन स्नायुविकृति का कारण अन्तर्द्वन्द्व है लेकिन यह अन्तर्द्वन्द्व 'इदम्', 'अहम्' व 'परम् अहम्' के मध्य न होकर तीन प्रकार के मनोझुकावो (trends) के बीच होता है। हॉर्नी के अनुसार, मूलभूत चिन्ता का प्रमुख कारण सामाजिक वातावरण से समायोजन न होना, माँ-बाप या संरक्षक के प्रति 'विरोध की भावना' को व्यक्त न कर सकने आदि के कारण होता है।

मूल्यांकन

मानसिक रोगो को विभाजित करना एक कठिन कार्य है। फिर भी अध्ययन के दृष्टिकोण से इसे दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—मन स्नायुविकृति व मनोविकृति। मन स्नायुविकृति मानसिक रोगों का एक हल्का प्रकार है। इस वर्ग मे आने वाले रोगियों का व्यवहार सामान्य व्यक्तियो से काफी मिलता-जुलता है तथा इस प्रकार के रोगियों का वास्तविकता के साथ सम्पर्क भी बना रहता है। इस प्रकार के रोगियो का उपचार करना सम्भव है तथा अधिकाश रोगी ठीक भी हो जाते हैं। मनोविकृति रोगी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विघटित हो जाता है। ये तीव्र असामान्यताएँ हैं। रोगी का व्यवहार सामान्य व्यवहार से पूर्ण रूप से भिन्न होता है। मनोविकृति को दो प्रकारो मे विभाजित किया जा सकता है—मनोजन्य व आगिक। इसके प्रमुख लक्षण व्यामोह व विभ्रम हैं। इस प्रकार के रोगियो की चिकित्सा-व्यवस्था का उचित प्रबन्ध करना चाहिए तथा मानसिक अस्पताल मे भरती करा देना चाहिए।

18

चिन्ता मनःस्नायुविकृति

(ANXIETY NEUROSIS OR PSYCHONEUROSES)

प्राचीन युग से ही मानव भयभीत होता आ रहा है। कभी वह देवी-देवताओ के श्राप से भयभीत व चिन्तित रहा है तो कभी अन्य समस्याओ के कारण चिन्तित रहा है। आधुनिक युग मे अपेक्षाकृत मनुष्य के सम्मुख अनेक समस्याएँ है जिनका सम्बन्ध परिवार, समाज, आदर, सम्मान आदि से है। चिन्ता भय से उत्पन्न होती है तथा भय मनुष्य के लिए आवश्यक व स्वाभाविक है। जो लोग अपने सामने आये हुए खतरो से डरते नही हैं, वे बुद्धिहीनता का परिचय देते है, क्योकि बुद्धिमान लोग अपने ज्ञान के आधार पर पहले से ही पता लगा लेते है कि कौन-सी विपत्ति आ रही है तथा कौन-कौन से साधनो के सहारे उनका सामना किया जा सकता है। आधुनिक युग अधिक जटिल होने के कारण आज का व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक भयभीत तथा चिन्तित हो जाता है।

चिन्ता मनोस्नायुविकृति की प्रमुख विशेषता भय है। क्योकि भय के माध्यम से ही चिन्ता की उत्पत्ति होती है। कोलमैन (Coleman)[1] के अनुसार, मुख्यत इस रोग की प्रमुख विशेषता व्यक्ति मे स्वतन्त्र दिशाहीन चिन्ता का होना है, जो न किसी विशेष पदार्थ या स्थिति से उत्पन्न होती है और न ही उसे उसके विशेष लक्ष्य या स्थिति का ही ज्ञान होता है। फिशर (Fisher) के अनुसार, "चिन्ता मन स्नायुविकृति मे उन आन्तरिक व्यक्तिगत अप्रवेश योग्य कठिनाइयो की प्रक्रिया है जिनका ज्ञान

---

1 "It is characterized primarily by diffuse, "free-floating" anxiety, which does not seem to stem from or be directed toward any particular situation or object"—Coleman, James C. *Abnormal Psychology and Modern Life*, p. 175

व्यक्ति को नही होता ।[1] रोजेन व ग्रेगरी (Rosen & Gregory) के अनुसार, इस रोग से पीड़ित व्यक्ति बेचैनी, आशंकाएँ तथा स्वतन्त्र दिशाहीन चिन्ता आदि के प्रमुख लक्षणो से चिन्तित रहता है। कैमरॉन (Cameron) के अनुसार, इस प्रकार के रोगियो मे व्यापक सवेगात्मक तनाव व स्वतन्त्र चिन्ता के प्रमुख लक्षण मिलते हैं।

विभिन्न विद्वानो के मतो का ध्यान से अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि "चिन्ता भय से उत्पन्न होती है।" मैक्डूगल (McDougall) के अनुसार, यह मन स्नायुविकृति उस अवस्था मे उत्पन्न होती है जब व्यक्ति एक निश्चित उद्देश्य के परिणाम प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है और ऐसी परिस्थितियों मे जब सवेग का जन्म हो जाता है तो उसे यह प्रतीत होने लगता है कि वह कठिनाइयो पर विजय प्राप्त नही कर पावेगा। यहाँ यह बताना भी अभीष्ट होगा कि भय व चिन्ता में अन्तर है। भय वह मनोस्थिति है जो थोडे समय तक रहती है लेकिन चिन्ता अधिक देर तक रहने वाला मनोभाव है। भय सवेग का प्रकार है जबकि चिन्ता भय का सवेगात्मक भाव है। इसी तरह भय का सम्बन्ध उन भयपूर्ण परिस्थितियो से होता है जो भविष्य मे घटित होने वाली होती है।

सामान्य व असामान्य चिन्ता मे अन्तर
(Difference between Normal and Abnormal Anxiety)

जैसाकि हम जानते है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार चिन्ता से ग्रस्त रहता है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख संघर्ष व तनाव होते रहते है। यही कारण है कि उसका चिन्तित या भयभीत रहना एक स्वाभाविक गुण है, जैसे—माँ-बाप का बच्चे के प्रति अथाह प्रेम होता है, अत बच्चे की बीमारी को सुनकर वे चिन्तित हो जाते है। लेकिन अगर कोई डाक्टर यह विश्वास दिला देता है कि वह इस रोग से पीडित है तथा इस विशेष दवा से ठीक हो जावेगा तो उनकी चिन्ता कम या समाप्त हो जाती हैं। लेकिन असामान्य चिन्ता मे इस प्रकार की चिन्ता से भिन्न स्थिति होती है। यदि बच्चे की बीमारी से चिन्ता उत्पन्न होती है तो वह साधारण व सामान्य चिन्ता होती है लेकिन यदि बिना किसी बीमारी के चिन्ता उत्पन्न हो तो वह चिन्ता मन स्नायुविकृति या असामान्य चिन्ता के अन्तर्गत आवेगी। असामान्य चिन्ता बिना किसी कारण के उत्पन्न होती हैं, इसका स्वरूप व्यक्तिगत होते हुए भी व्यक्ति को यह जानकारी नही होती कि आखिरकार वह क्यो चिन्तित है। असामान्य चिन्ता का सम्बन्ध भविष्य से होता है। सामान्य चिन्ता वस्तुगत होती हैं जिनके बारे मे व्यक्ति को पता रहता है, वर्तमान परिस्थिति से सम्बन्धित होता है तथा अपेक्षाकृत कम स्थायी होता है। यहाँ चिन्ता उसके व्यक्तित्व से उत्पन्न होती है तथा उसके व्यक्तित्व का एक अंग

1. "Neurotic anxiety is a reaction to an unapproachable inner or subjective difficulties of which the individual has no idea"
—**Fisher** : *An Introduction to Abnormal Psychology*, p. 175.

है। फिशर (Fisher) के अनुसार सामान्य चिन्ता उन अप्रवेश योग्य कठिनाइयों की प्रतिक्रिया है जिनको कि व्यक्ति त्यागने मे अयोग्य रहता है जबकि असामान्य चिन्ता व्यक्ति की आन्तरिक अप्रवेश योग्य कठिनाइयाँ है जिनके सम्बन्ध मे व्यक्ति को कोई ज्ञान नही होता, उदाहरणस्वरूप—यदि किसी व्यक्ति के अन्दर यह भय है कि वह शादी करने के बाद अपनी स्त्री की कामवासना तृप्ति न कर पावेगा, तो इस प्रकार के व्यक्ति को असामान्य चिन्ता मे ग्रस्त कहा जावेगा। इसी प्रकार कुछ माताएँ बिना कारण के ही अपने लडके-लडकियो के सम्बन्ध मे चिन्तित रहती हैं, उन्हे अपने सामने से अलग नही होने देती तथा अनेक प्रकार की कल्पनाओ से चिन्तित रहती हैं। सक्षेप मे, मन स्नायुविकृति चिन्ता मे ग्रस्त व्यक्ति की प्रमुख विशेषता यह होती है कि उसे अपनी चिन्ता का कारण पता नही होता तथा उसे युक्तिसगत सिद्ध करने के लिए बराबर प्रयास करता रहता है।

चिन्ता मन स्नायुविकृति के प्रकार
(Kinds of Anxiety Neurosis)

चिन्ता मन स्नायुविकृति दो प्रकार की होती है—

(1) **दीर्घकालीन चिन्ता**—इस प्रकार की चिन्ता प्रतिक्रिया मे अन्तर्द्वन्द्व बहुत समय तक बना रहता है। व्यक्ति को बार-बार तीव्र चिन्ता आक्रमणो का सामना करना पड़ता है। वैसे तो यह पता चल जाता है कि व्यक्ति चिन्तित है या चिन्ता की अभिव्यक्तियाँ प्रकट रहती हैं परन्तु चिन्ता के स्रोत अज्ञात व दमित रहते हैं। व्यक्ति के शरीर की क्रियाएँ आपातिक (emergency) स्थिति मे रहती हैं। व्यक्ति सदैव विकृत व थकित रहता है तथा अज्ञात दुर्घटना के लिए सदैव तैयार रहता है। वस्तुत. यह दुर्घटना कभी भी घटित नही होती। वह सदैव अपनी चिन्ता व द्वन्द्व को दूर करने का प्रयास करता रहता है।

(2) **तीव्र चिन्ता**—तीव्र चिन्ता के आक्रमण आकस्मिक होते हैं। इसकी अवधि कुछ मिनटो से लेकर घण्टो तक ही होती है। शरीर पर भी इसका प्रभाव पडता है तथा मुख्य रूप मे यह प्रभाव जठरान्त्र (gastro-intestinal) हृदय व श्वसन क्रिया पर पड़ता है। इसके लक्षण कब उत्पन्न हुए और कब समाप्त, इसका पता रोगी को नही होता। रोगी को इस प्रकार के आक्रमण मे काफी बेचैनी हो जाती है। उसके मुख का रग बदल जाता है पसीना अधिक आता है तब मुख सूखने लगता है। वह बार-बार पेशाब करने जाता है, हृदय-गति बढ जाती है, उबकाई, कै, दस्त आदि भी होने लगते हैं।

चिन्ता मनःस्नायुविकृति के लक्षण
(Symptoms of Anxiety Neurosis)

चिन्ता मनोविकृति के रोगियो मे चिन्ता की मात्रा पर्याप्त हल्का (mild) दीर्घकालीन (chronic) होता है। उसमे अस्थायी रूप से चिन्ता के आक्रमण होते हैं जिनकी अवधि कुछ क्षणो मे लेकर एक या अधिक घटो तक रहती है। तीव्र चिन्ता (acute anxiety) मे लक्षण यकायक तीव्र रूप से उत्पन्न होते हैं जिससे रोगी परेशान

हो जाता है। दीर्घकालीन चिन्ता (chronic anxiety) के रोगी मे निरन्तर एवं स्थायी रूप से चिन्ता वनी रहती है। उसे सदैव दुर्घटनाओं की सम्भावना परेशान करती रहती है। वह अपने दुर्भाग्य को स्वीकार कर सदैव व्यग्र, भयभीत वना रहता है परन्तु उसे उसके कारणो का ज्ञान नही होता। चिन्ता के लक्षणो पर विचार करने से पूर्व हम कुछ विद्वानो के उन चिन्ताग्रस्त रोगियो के वर्गीकरण के वारे मे वतायेंगे, जिनका आधार इस रोग के लक्षण है :—

(1) कुछ विद्वानो का कहना है कि असामान्य चिन्ता दो प्रकार की होती है :—प्रथम, चिन्ता विना आलम्बन एव विना कारण के होती है, क्योंकि इस प्रकार की चिन्ता का सम्बन्ध किसी स्थूल वस्तु से नही होता है अत. इसे स्वतन्त्र दिशाहीन चिन्ता (*Free Floating Anxiety*) कहते है। दूसरे प्रकार की चिन्ता का सम्बन्ध किसी मूर्त स्थूल वस्तु से होता है, जैसे—आन्तरिक अशान्ति, स्वास्थ्य-हीनता, प्रियजन की मृत्यु।

(2) कुछ विद्वानो ने रोगियो के लक्षणों के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, यथा —

(अ) कुछ ऐसे व्यक्ति होते है जो मेहनती होते हैं तथा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। यदि इस प्रकार के व्यक्ति को थोड़ी-सी भी असफलता का पता चल जाय तो वह दुगुने परिश्रम से कार्य करता है। संकट में वह अत्यधिक चिन्तित हो जाता है जिसके फलस्वरूप अत्यन्त दु.खद शारीरिक व मानसिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह मुख्यत प्रौढ अवस्था मे विफलता के कारण तथा हीनभावना के कारण चिन्ता मन स्नायुविकृति से पीड़ित हो जाते हैं।

(व) कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो दूसरो पर निर्भर होते है। इनकी बुद्धि कम होती है तथा जीवन की कठिनाइयो का वे सामना नही कर पाते। वे स्वार्थी व आत्मकेन्द्रित हो जाते है, अपने आपको अधिक महत्त्व देते है तथा अन्य व्यक्तियो के लिए मुसीवत वन जाते हैं। स्वार्थ, कमजोरी व असमर्थता के कारण इन व्यक्तियो मे इस प्रकार के मन स्नायुविकृति के लक्षणो का विकास हो जाता है।

(स) कुछ ऐसी विवाहित स्त्रियाँ होती है जिनका सवेगात्मक विकास पूर्ण नही हो पाता। दूसरो पर अत्यधिक निर्भर रहने के कारण वे असहनशील व अनुदार हो जाती है। यदि उन्हे पति से कठोर व असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार मिलता है तो वह अपने को एकाकी, हीन, अरक्षित समझने लगती है। उनका पारिवारिक जीवन क्लेश-युक्त हो जाता है और वे सहानुभूति प्राप्त करने के लिए चिन्ता मन.स्नायुविकृति से पीड़ित हो जाती है।

इस रोग के लक्षणो के वर्गीकरण के आधार पर हम मुख्यत. निम्न लक्षणो को इस रोग से सम्वन्धित वता सकते हैं —

(1) **मानसिक लक्षण** (mental Symptoms)

भय व आशका दो प्रमुख मानसिक लक्षण चिन्ता मन.स्नायुविकृतियों के

रोगियो मे पाये जाते हैं। उसकी आशका का कोई निश्चित स्वरूप नही होता। रोगी इन आशकाओ के सम्बन्ध मे कोई निश्चित प्रमाण भी नहीं दे पाता, लेकिन फिर भी उसे यह अटल विश्वास हो जाता है कि कोई बहुत बड़ी दुर्घटना होने वाली है। वह इन आशकाओ के कारण काफी चिन्तित हो जाता है। उसकी चिन्ताओ का वास्तविक कारण मुख्यत आन्तरिक या व्यक्तिगत होता है। रोगी का भय अनैतिक भावनाओ के दमन के कारण होता है। प्राय- रोगी अपनी आन्तरिक इच्छा से काफी भयभीत व आशकित रहता हे जिसे भुलाने के लिए वह अनेक वस्तुओ व व्यक्तियो के प्रति भय एव आशका से चिन्तित रहता है। इस सम्बन्ध मे प्रो० मॉर्गन (Morgon) ने एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण दिया है। वह एक ऐसी महिला के सम्बन्ध मे बताता है जिसे भय व चिन्ता परेशान करती रहती थी। उसके मन मे यह विचार आया करता था कि वह अपने बच्चे की हत्या कर डाले। वह अपने बच्चे को बहुत प्यार करती थी लेकिन आन्तरिक भाव के बार-बार आने से वह चिन्तित हो जाती थी। वह जब किसी सहारक अस्त्र को देखती थी तो उसके मन मे ये भाव उठते थे कि कही वह इनसे अपने बच्चो को मार न डाले। उसने अपने घर के सभी सँहारक अस्त्र, यथा—चाकू, हथौडा, हँसिया आदि को बाहर फिकवा दिया था। एक दिन उसके मन मे यह विचार आया कि बच्चे के सिर को जमीन पर पटककर हत्या कर दे। इस विचार से वह अत्यधिक चिन्तित हो गई तथा उपचार व सलाह हेतु एक मनोवैज्ञानिक के पास गई। मनोविश्लेषण करने के बाद मनोवैज्ञानिक ने यह बताया कि वह बच्चे को तो काफी प्यार करती थी परन्तु उसके अचेतन मन मे बच्चे की मृत्यु की इच्छा विद्यमान थी क्योकि वह सन्तान नही चाहती थी तथा सन्तानोत्पत्ति से बचाव के लिए सन्तान-निग्रह के साधनो का उपयोग करती थी। यह बच्चा उस महिला की असावधानी के कारण उत्पन्न हुआ था। इसी अचेतन अवस्था के कारण उसमे बच्चे की हत्या करने की इच्छा जागृत हुई थी।

चिन्ता मन-स्नायुविकृति के रोगियो मे अत्यधिक मानसिक उत्तेजना पायी जाती है। इनका सामाजिक समायोजन बिगड जाता है। इनमे सवेदनशीलता एवं सशय की भावना सदैव बनी रहती है, जिसके परिणामस्वरूप ये अव्यवस्थित, बेचैन तथा हतोत्साहित बन जाते हैं। रोगी की बौद्धिक कार्यकुशलता मे कमी आ जाती है। उसकी एक परेशानी समाप्त होते ही दूसरी परेशानी उत्पन्न हो जाती है तथा मित्र भी उसकी सहायता करने से घबराते है। सोते समय वह चिन्तित अवस्था मे होता है। स्वप्न मे भी भविष्य की आशकाओ से सम्बन्धित स्वप्न देखता है। इस सम्बन्ध मे केमरान (Cameron) ने रोगी के स्वप्न का उदाहरण दिया है। एक रोगी स्वप्न मे देखता है कि वह एक नदी के किनारे किसी व्यक्ति के साथ टहल रहा है। अचानक वह अकेला ही रह गया। उसके सामने एक कब्रिस्तान का दृश्य उत्पन्न हो गया। उसने देखा कि बहुत-से व्यक्ति दाँयी (right) तरफ भाग रहे हैं। आकाश मे कोई आणुविक विस्फोट हुआ है जिसके कारण ये लोग भाग रहे हैं। वह भी

भागना चाहता है, लेकिन दायी ओर न भागकर बायी ओर भागता है तथा आणुविक विस्फोट मे समा जाता है। वह चीखने की कोशिश करता है और जाग जाता है तथा जागृतावस्था मे वह चिन्ता से ग्रस्त हो जाता है।

शारीरिक लक्षण (Physical Symptoms)

चिन्ता मन स्नायुविकृति के रोगियो मे मुख्यतः निम्न शारीरिक लक्षण पाए जाते हैं :—

(अ) सामान्य—शरीर का वजन घट जाना आदि।

(ब) हृदय-धमनीय—दिल की धडकन बढ जाना, नाड़ी की गति मे स्पष्ट व्यतिक्रम रहना, मूर्च्छा व सिर मे भारीपन रहना।

(स) स्वास्थ्य—हवा की कमी का अनुभव या घुटन का अनुभव।

(द) त्वचीय—हथेली मे पसीना आना या रात मे अधिक पसीना आना।

(य) आमाशय—भूख न लगना, मुँह सूखना, मिचली आना, बार-बार लघु-शका जाना, थकान, नीद न आना, घबराहट आदि।

इसके अतिरिक्त कुछ मानसिक लक्षणों के उत्पन्न होने के कारण शारीरिक लक्षण उत्पन्न हो जाते है, जैसे—बहुत-से नवयुवको मे मानसिक चिन्ता इसलिए उत्पन्न हो जाती है कि वे जिस लड़की से प्यार करते हैं, उनसे उनका विवाह नहीं हो पाता। मानसिक नपुंसकता (mental impotancy) का अनुभव करने वाले व्यक्ति वास्तव मे नपुंसक नहीं होते, बल्कि कुछ सामाजिक व व्यक्तिगत प्रतिकूल व्यवहार के कारण वह इतने भयभीत हो जाते हैं कि उनमे नपुंसकता आ जाती है।

चिन्ता मन.स्नायुविकृति के कारण
(Causes or Etiology of Anxiety Neurosis)

सामान्य रूप से चिन्ता मन स्नायुविकृति के अनेक कारण हैं—(1) कार्य मे असफलता व कठिनाई, (2) विफल महत्त्वाकांक्षा (Thwarted ambition), (3) अरुचिकर व्यवसाय, (4) आर्थिक हानि, (5) लडाई-युग, (6) पारिवारिक अशान्ति, (7) अपराधी चेतना, (8) दुःख, (9) लैंगिक कुसमायोजन, (10) दुर्घटनाएँ व मानसिक अन्तर्द्वन्द्व। विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने विभिन्न प्रकार के कारण बताए हैं जिन्हें हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि इसका कारण अल्प आयु मे कोई विक्षेपकारी अनुभव है। प्रौढावस्था मे अल्पावस्था के मौलिक अनुभव के लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिससे भय व चिन्ता के लक्षणो का विकास हो जाता है। व्यक्ति को यह जानकारी नहीं होती कि ये लक्षण क्यों प्रकट हुए हैं।

(2) फ्रायड ने इस रोग का कारण अस्रवित लैंगिक शक्ति (undischarged libido) माना है। फ्रायड का मत है कि चाहे पुरुष हो या स्त्री, यदि उसमे अत्यधिक कामवासना उत्पन्न होती है तथा अगर उसकी सन्तुष्टि न हो तो वह दमित (repre-ssed) हो जाया करती है। दमित हो जाने पर ये इच्छाएँ अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न कर देती है

तथा चिन्ता मन स्नायुविकृति का कारण बन जाती है। दूसरे शब्दो मे, फ्रायड चिन्ता मनोविकृति का कारण काम-वासना का दमन व अन्तर्द्वन्द्व को मानता है।

(3) एडलर (Adler) फ्रायड के इस मत को स्वीकार नही करता। उसका कहना है कि इस रोग का कारण है—आत्म-प्रकाशन (self-assertion) की प्रवृत्ति का दमन। उसका कहना है कि व्यक्ति मे आत्म-प्रकाशन की प्रवृत्ति बहुत प्रवल होती है। जब इसकी पूर्ति नही हो पाती तो इसका दमन हो जाता है तथा चिन्ता मन· स्नायुविकृति उत्पन्न हो जाती है।

(4) ओकेली (Okelly) ने इस सम्बन्ध मे यह बताया है कि मानसिक सघर्ष व विफलता ही इस रोग का मुख्य कारण है। सघर्ष व विफलता किसी भी कारण से उत्पन्न हो सकती है अर्थात् उसका सम्बन्ध लैंगिक वासना से रह भी सकता है और नही भी। ओकेली के मत का समर्थन **गॉर्डन** व **मैक्डूगल** ने भी किया है। **गॉर्डन** का कहना है कि दो सवेगो के संघर्ष के कारण यह रोग उत्पन्न होता है।

(5) **कोलमैन** ने कुछ ऐसी तात्कालिक स्थितियो का वर्णन किया है जो कि इस रोग को उत्पन्न करने मे सहायक होती है —

(अ) चिन्ता मन स्नायुविकृति के रोगियो मे असुरक्षा की भावना निहित रहती है। उसमे यह आशका विद्यमान रहती है कि उसकी प्रतिष्ठा व वर्तमान स्थिति पर कोई क्षति न पहुँचे। यदि उसके उद्देश्यो मे थोडी-सी भी वाधा पहुँचने की सम्भावना हो तो वह विचलित हो जाता है। इस सम्बन्ध मे **प्रो० कोलमैन** एक 4 वर्षीय दन्तचिकित्सक का वर्णन करता है जिसने दस वर्ष तक सफलतापूर्वक चिकित्सा की, लेकिन अन्तिम वर्ष मे उसकी आमदनी कुछ कम हो गई। उसे कुछ हल्के प्रकार के चिन्ता-दौरे (mild anxiety attacks) पडने लगे। उसने कार्य-अवधि बढा दी लेकिन उसकी चिन्ता समाप्त नही हुई। अन्त मे वह मनोचिकित्सक के पास गया जहाँ यह ज्ञात हुआ कि उसकी प्रारम्भिक आयु मे भी स्थायी असुरक्षा विद्यमान थी। वह माँ-बाप से तिरस्कृत किया गया था। तिरस्कार के कारण उसके अन्दर हीनता व अनुपयुक्तता का जन्म हो गया था।

(ब) कभी-कभी व्यक्ति की अचेतन इच्छाओ को व्यक्त करने की भावनाएँ वन जाती है जिससे उसकी नैतिक एव सामाजिक प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है। वह किसी भी कीमत पर सामाजिक प्रतिष्ठा को नही त्यागता। वह इस प्रकार की इच्छाओ को अचेतन से दिवास्वप्न एव कल्पना-तरग आदि के माध्यम से पूर्ण करना चाहता है। वह कभी-कभी तो इच्छाओ के अप्रत्यक्ष रूप मे व्यक्त होने को भी अस्वीकार कर देता है जिसके कारण वह चिन्ता-मनोविकृति से ग्रस्त हो जाता है।

(स) कभी-कभी व्यक्ति के मन मे पाप या अपराध की भावना उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण उसमे चिन्ता मन स्नायुविकृति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। **कून व रेमण्ड** ने वताया है कि जो स्त्रियाँ कम उम्र मे लैंगिक क्रिया-कलापो मे फँस जाती हैं, वे अधेड आयु मे अपने को असुरक्षित समझने लगती हे। पति की थोड़ी-सी

नाराजगी मे भी इतने तनाव उत्पन्न हो जाता है । प्राय ये स्त्रियाँ कामुक कहानियो के माध्यम से काम-इच्छा की सन्तुष्टि करती है। बाद मे यही अपराध-वृत्ति अनेक प्रकार की चिन्ता व विवाद का रूप ले लेती है। डार्लिग ने एक ऐसे विश्वविद्यालीय विद्यार्थी का वर्णन किया है जिसे अति तीव्र चिन्ता के दौरे पडते थे। कारणो की खोज करने पर पता लगाने से यह ज्ञात हुआ कि उससे एक कार-दुर्घटना हो गई थी जिसमे एक बालक की मृत्यु हो गई थी। विद्यार्थी को दुर्घटना की याद नही थी, उसने इस घटना को अचेतन मन मे दमन कर लिया था। इसी कारण उसे चिन्ता के अति तीव्र दौरे पड रहे थे।

(द) जीवन मे कुछ ऐसी घटनाएँ घटित होती है जो व्यक्ति को पुरानी घटनाओ की याद दिलाती है जिससे एक स्थिति ऐसी उत्पन्न हो जाती है कि व्यक्ति तीव्र बेचैनी का अनुभव करने लगता है। व्यक्ति अत्यधिक अस्त-व्यस्त हो जाता है तथा इस रोग का शिकार हो जाता है।

चिन्ता मनःस्नायुविकृति का उपचार
(Treatment of Anxiety Neuroses)

चिन्ता मनोविकृति के रोगियो के उपचार के लिए प्राय दो विधियो का प्रयोग किया जाता है —

(1) समूह चिकित्सा (Group Therapy),
(2) मनोविश्लेषण (Psychoanalysis)।

चिकित्सक का इन रोगियो के उपचार का प्रमुख आधार ऐसी अनुकूल प्रतिक्रिया का रोगी मे उत्पन्न करना होता है जिससे कि उसमे व्याप्त चिन्ता कम मे कम हो जाय। रोगी को स्वस्थ वातावरण मे रखना चाहिए जिसमे वह सक्रिय जीवन, सुखद साहचर्य व पुनर्शिक्षण कर सके। ऐसा करने मे रोगी बहुत कम चिन्ता का शिकार होता है। बाह्य लक्षणो को शीघ्र ही सुधार करने के लिए साधारण मनोपचार का सहारा लेना चाहिए, परन्तु चिन्ता के कारणो (अर्न्तनिहित तत्व) को दूर करने हेतु उचित एव दीर्घकालीन मनोपचार की आवश्यकता है। वैसे आजकल अनेक प्रकार की औषधियो से भी चिन्ता मन स्नायुविकृति का उपचार किया जाता है। जैसे—वेलियम एण्ड सेरिण्टियल टेबलेट (Valium and Serential Tab) सेरक्स, ट्राईएवल, लिबरियम टेबलेट (Serex, Triavil and Librium Tab.)।

19

मनोग्रस्तता-बाध्यता मनःस्नायुविकृति
(OBSSESIVE-COMPULSIVE PSYCHONEUROSES)

प्रारम्भिक मनोवैज्ञानिक मनोग्रस्तता (Obsession) व बाध्यता (Compulsion) को दो विभिन्न मानसिक रोग मानते थे। लेकिन बाद के अध्ययनो से यह ज्ञात हुआ कि दोनो एक ही मनोस्नायुविकृति के दो रूप होते हैं। जेने (Janet : 1859-1947) ने इस मनोस्नायुविकृति को 'साइकसथेनिया' के अन्तर्गत रखा, लेकिन 'अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन' (*American Psychiatric Association*) के नवीन वर्गीकरण के अनुसार इस मनोविकृति का स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है कि इसमे मनोग्रस्तता तथा बाध्यता दो प्रमुख लक्षण पाए जाते है। रोगी मे दोनो लक्षण एक साथ पाए जाते हैं लेकिन कभी इसके एक रूप की प्रधानता होती है, तो कभी दूसरे रूप की, और कभी-कभी समान रूप से दोनो रूपो की प्रधानता पाई जाती है। अब हम मनोग्रस्तता व बाध्यता के स्वरूप का अलग-अलग वर्णन करेंगे जिससे कि इस मनोस्नायुविकृति को ठीक से समझा जा सके।

मनोग्रस्तता का स्वरूप
(Nature of Obsession)

मनोग्रस्तता की स्थिति मे रोगी अपनी मानसिक शान्ति को बनाए रखने के लिए ऐसे विचारो को अपनी चेतना मे उपस्थित व प्रमुखता को स्वीकार कर लेता है जो कि व्यर्थ, अतार्किक व विघ्नकार होते हैं। दूसरे शब्दो मे, व्यक्ति की चेतना अतार्किक एव व्यर्थ के विचारो से पीडित रहती है। वह उन विचारो को असगत तथा अतार्किक जानते हुए भी अपने मस्तिष्क से इन्हे हटा नही पाता। वह चाहता है कि ये विचार मस्तिष्क से परे हो जाएँ लेकिन ये विचार चेतना से अलग नही हो

पाते फिशर (Fisher) के अनुसार—"मनोग्रस्तता एक ऐसे विशिष्ट स्वरूप की मानसिक या आन्तरिक क्रिया है जिसे व्यक्ति अतार्किक समझता है। लेकिन उस पर उसका कुछ नियन्त्रण नहीं होता।"[1] पेज (Page) के अनुसार—"मनोग्रस्तता का विचार या आवेग है जो रोगी की इच्छा के प्रतिकूल अपने आप ही उसके मन मे वार-वार आती है।"[2] अगर हम इन परिभाषाओ का विश्लेपण करें तो हमे निम्नलिखित मुख्य वातें इस सम्वन्ध मे ज्ञात होती है .—

(1) मनोग्रस्तता एक मानसिक रोग है।

(2) रोगी के मन मे भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यर्थ व अतार्किक विचार या आवेग वार-वार आते रहते हैं।

(3) इनका रोगी की इच्छा से कोई सम्वन्ध नही रहता है।

(4) रोगी इन पर किमी भी प्रकार का नियन्त्रण करने मे असमर्थ होते है।

(5) सक्षेप मे मनोग्रस्तता से सम्वन्धित रोगी अपनी चेतना पर नियन्त्रण न करने के करण व्यर्थ अतार्किक क्रियाओ को करने के लिए बाध्य हो जाता है।

बाध्यता का स्वरूप
(Nature of Compulsion)

वाध्यता मे रोगो के अन्दर यह प्रवल प्रेरणा वनी रहती है कि वह किसी सस्कारजन्य कार्य को वार-वार अनुभव करे। यही कारण है कि इसमे रोगी कुछ कार्यो को वार-वार करता रहता है; जैसे—रुपए गिनना, कन्धे उचकाना, जीभ निकालना, हाथ धोना, चिह्नो को पढना आदि। इस प्रकार की क्रियाओ को व्यक्ति सामान्य जीवन मे भी करता है लेकिन जव इन क्रियाओ का अतिरंजित विकास हो जावे तो व्यक्ति इस मानसिक विकृति का शिकार हो जाता है। फिशर (Fisher) के अनुसार, **"वाध्यता एक ऐसे विशिष्ट स्वरूप की वार-वार होने वाली वाध्य क्रिया है जिसे व्यक्ति उस परिस्थिति में, जिससे यह क्रिया होती है, अतार्किक व असंगत समझता है लेकिन उस पर उसका कुछ भी नियन्त्रण नहीं होता।"**[3] इस परिभाषा का विश्लेषण करने पर अग्रलिखित मुख्य वातें मिलती हैं .—

---

1. "An obsession is a mental or implicit activity of a fairly specific nature which the individual recognizes to be irrational but over which he has little or no control." —**Fisher.**
2. "An obsession is a spontaneously recurring thought or impulse that presistently intrudes itself into the patient's mind even against his wishes"—**Page, J D.** *"Abnormal Psychology"*, McGrow Hill; 1947.
3. "A compulsion is an over activity of a persistent and fairly specific character which the individual recognizes to be irrational and incongruous with the situation in which it occurs but over which he has little or no control."—**Fisher.**

(1) वाध्यता एक मानसिक रोग है ।
(2) इसमे रोगी एक ही क्रिया को बार-बार दोहराता है ।
(3) यह क्रिया अतार्किक व असगत होती है ।
(4) रोगी का इन क्रियाओ पर कोई नियन्त्रण नही होता है ।

मनोग्रस्तता-बाध्यता मनःस्नायुविकृति का स्वरूप
(Nature Obsession-Compulsion Psychoneurosis)

मनोग्रस्तता व बाध्यता—दोनो की परिभाषाओ को ध्यान से देखने पर यह पता चलता है कि सामान्यत दोनो मे ही एक प्रकार की मनोदशा रहती है। रोगी यह तो जानता है कि उसके यह विचार तथा कार्य अतार्किक व असगत है लेकिन फिर भी इन्हे नियन्त्रित या छोड सकने मे असमर्थ रहता है। मनोग्रस्तता मे क्रियाएँ बोधात्मक स्वरूप की होती है जिनका प्रकाशन केवल ज्ञान के स्तर पर होता है। लेकिन वाध्यता मे क्रियात्मक क्रियाएँ होती है जिनका प्रकाशन एक विशिष्ट प्रकार की चेष्टाओ मे होता है। यही कारण है कि इस विकृति को हम मनोग्रस्तता-बाध्यता मनोस्नायुविकृति के नाम से पुकारते हैं। इस रोग मे कभी-कभी केवल वोधात्मक क्रियाओ की ही प्रधानता रहती है तो कभी-कभी क्रिया की प्रधानता रहती है जिससे प्रेरित होकर रोगी एक ही क्रिया को बार-बार करने के लिए वाध्य हो जाता है, जैसे—एक बार हाथ साफ कर लेने पर भी बार-बार हाथ को साफ करना, वन्द ताले को बार-बार देखना, एक विशेष सख्या व नाम को बार-बार दोहराना तथा पास मे बैठे व्यक्ति को नोचना आदि लक्षण पाए जाते हैं।

इस रोग के लक्षण या कारण समझने से पूर्व हमे दैनिक जीवन की सामान्य वाध्यता व मनोग्रस्तता जैसी क्रियाओं व इस रोग की क्रियाओ के अन्तर को समझना आवश्यक है। सामान्य जीवन की वाध्यता व मनोग्रस्तता मे व्यक्ति को इस बात का ज्ञान नही होता कि ये क्रियाएँ निरर्थक, असगत व हास्यापद है। लेकिन मानसिक रोग मे बाध्यता एव मनोग्रस्तता वास्तव मे निरर्थक, असगत व हास्यापद ज्ञात होती है। रोगी को उसका ज्ञान रहता है लेकिन उन पर वह नियन्त्रण करने मे असमर्थ होता है। रोगी को इन क्रियाओ से छुटकारा नही मिलता लेकिन सामान्य जीवन मे एक वार सोच लेने व क्रिया को करने के वाद व्यक्ति मे सन्देह की भावना समाप्त हो जाती है, उदाहरणस्वरूप—एक स्वस्थ व्यक्ति सोने से पूर्व कमरे का दरवाजा ठीक से वन्द कर विस्तर पर लेट जाता है। अचानक उसके मन मे यह सन्देह उत्पन्न होता है कि वास्तव मे उसने दरवाजा वन्द कर दिया है या नही। इस सन्देह को दूर करने से लिए वह दरवाजे के पास जाता है तथा यह देखकर कि दरवाजा वन्द है, वह निश्चित होकर सो जाता है। लेकिन जो व्यक्ति इस मानसिक रोग से पीडित होता है तो दरवाजे का बार-बार निरीक्षण करता रहता है तथा उसके सन्देह की पुष्टि नही होती जिसके परिणामस्वरूप वह दरवाजे का बार-बार निरीक्षण करता है। व्यक्तिगत व सामाजिक दृष्टिकोण से भी एक सामान्य व्यक्ति की इन क्रियाओ एव एक रोगी की क्रियाओ मे अन्तर होता है, जैसे—मानसिक रोगी की वाध्यता

हानिकारक होती है; उदाहरणस्वरूप—एक रोगी को आग लगाने की बाध्यता है तो इस क्रिया से समाज को भी हानि होती है तथा रोगी को दण्ड मिलने के बाद भी वह अपनी इस हरकत से दूर नहीं होता, जबकि एक सामान्य व्यक्ति बाध्यता जैसी क्रियाओं के शिकार के बाद एक ही बार दण्डित होने पर इन क्रिया से दूर हो जाता है।

प्रो० केमरॉन (Cameron) ने यह बताया कि इस प्रकार मनोस्नायु-विकृति में अचेतन अन्तर्द्वन्द्व (unconscious conflicts) खुले रूप से व्यर्थ कार्यों को बारम्बार दोहराने (शब्दों या विचारों को), कर्मकाण्डों, अविवेकपूर्ण व अनावश्यक रूप से शिष्टाचार के रूप में प्रदर्शित होते हैं। इस रोग के प्रधान अचेतन अन्तर्द्वन्द्व का सम्बन्ध प्रेम व घृणा, शुभ व अशुभ, व्यवस्था व अव्यवस्था, स्वच्छता व अस्वच्छता से सम्बन्धित होते हैं।

1896 में फ्रायड ने बाध्यताकारी व्यवहार के सम्बन्ध में एक नवयुवक का उदाहरण निम्न प्रकार से दिया है—

एक 11 वर्षीय लड़का सोने से पूर्व निम्न बाध्यताकारी क्रिया करता है। तब तक वह नहीं सोता था जब तक कि वह अपनी माँ को दिनभर की सब बातें वर्णित न कर ले। सोने से पूर्व वह यह देख लेता था कि कमरे में कोई कागज का टुकड़ा तो नहीं है, पलंग दीवार से सटा हुआ है जिसके समीप तीन कुर्सियाँ रखी हैं तथा एक विशेष ढंग से तकिया रखा है या नहीं। इतनी क्रियाएँ करने के बाद वह एक करवट ही लेट जाता था।

मनोग्रस्तता-बाध्यता मनस्तापुविकृति के लक्षण
(Symptomatology of Obsessive-Compulsive Psychoneurosis)

विचारों का शिकार होना ही इस रोग का प्रमुख लक्षण है। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार की मनोस्नायुविकृति में रोगी आवश्यकता से अधिक इतना विचारशील व बौद्धिक हो जाता है कि वह पूर्णतः निष्क्रिय हो जाता है। उसे इस बात का तो ज्ञान रहता है कि यह विचार महत्त्वपूर्ण नहीं है और न ही तार्किक रूप से ठीक है तथा वह इस प्रकार के इनकी विचारों से छुटकारा भी पाना चाहता है लेकिन मस्तिष्क में विचारों की शृंखला बनी रहने के कारण वह ऐसा नहीं कर पाता। इनसे रोगी की कार्यक्षमता में ह्रास हो जाता है। अर्नेस्ट जोन्स (Ernest Jones) ने एक ऐसे रोगी का वर्णन किया है जिसकी आयु 45 वर्ष की थी तथा उस पर कई बार इस रोग का आक्रमण हो चुका था। इस रोग के प्रथम आक्रमण के समय उसकी आयु 18 वर्ष की थी। उस समय उसके मन में यह विचार आया कि उसकी माँ ने किसी व्यक्ति की हत्या कर दी है। यह विचार उसके मन में करीब एक महीने तक बना रहा। वह माँ के कमरे में उनकी वस्तुओं को बहुत ध्यानपूर्वक देखा करता था कि कहीं खून का निशान तो नहीं है। उसे इस सम्बन्ध में कोई सफलता नहीं मिली तथा इस आक्रमण के चार वर्ष बाद उसके मन में यह विचार आया कि उसे मधुमेह (diabetes) की बीमारी हो गई है। इस विचार से भी वह काफी

परेशान रहा। तीसरे आक्रमण से उसके अन्दर वह विचार आया कि किसी ने कब्र मे से लडकी का शव (dead body) निकाल लिया है। काफी समय तक वह इस विचार से परेशान रहा तथा एक दिन तो उसके मन मे यह विचार आया कि वास्तव मे उसने अपनी लडकी का शव गाड़ी मे जाते हुए देखा है। बहुत-से लोगो ने उसे समझाया, परन्तु उसकी समझ मे कुछ नही आया। वह अपने कमरे की खिडकी के पास बैठा रहता था तथा अपनी लडकी के शव को देखने के विचार से पीडित रहेता था। घर वालो ने उसे कमरे मे बन्द कर दिया परन्तु फिर भी उसे इस प्रकार के अतार्किक विचार सदैव पीडित करते रहते थे।

उपर्युक्त उदाहरण से यह पता चलता है कि मनोग्रस्तता मे रोगी एक विचार से छुटकारा पाने पर दूसरे विचार का शिकार हो जाता है तथा वह अत्यधिक सन्देह-शील हो जाता है। प्रो० कोलमैन का मत है कि मनोग्रस्तता की अवस्था मे रोगी के इस प्रकार के विचार अमूर्त ही रहते हैं, क्रिया के रूप मे प्रकट नही होते लेकिन रोगी के लिए बहुत दु खदायी होते हैं। क्रेन्स ने एक युवती रोगी का उल्लेख किया जो अपने प्रेमी के सम्बन्ध मे जब भी सोचती थी तब यह कामना करती थी कि वह मर जाय। इसी प्रकार जब माँ को सीढी उतरते हुए देखती थी तो वह यह कामना करती थी कि वह गिर जाय तथा उसकी गर्दन टूट जावे, उसकी बहन जब अपनी छोटी लडकी के साथ समुद्रतट पर घूमती रहती थी तो उसके मन मे यह विचार आता था कि दोनो डूब जायें तथा मर जावे। इस प्रकार के विचार आते ही वह भयभीत हो जाती थी। वह जानती थी कि ये विचार व्यर्थ हैं, अतार्किक व असगत हैं तथा इन लोगो से प्यार भी करती थी लेकिन फिर भी इन विचारो को अपने से अलग नही कर पाती थी।

कुछ रोगी इतने सन्देहपूर्ण हो जाते हैं कि उन्हे भय सवेग परेशान करता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार के भय व दुर्भीति (phobia) के भय मे अन्तर है। क्योकि दुर्भीति मे भय के भाव का सम्बन्ध किसी उत्तेजित परि-स्थिति से होता है, लेकिन बाध्यता (obsession) मे रोगी के भय से सम्बन्धित विचार मे उत्तेजक परिस्थिति का अभाव रहा है। इस सम्बन्ध मे टी० ए० रॉस (T A Ross) ने एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण दिया है। वह एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख करता है जिसके मन से 13 की सख्या बराबर आती रहती थी। जब कभी भी वह इस सख्या को सुनता था, डर के मारे काँपने लगता था। यहाँ तक कि 13वें व 27वें दिन तो वह बिस्तर से भी नही उठता था। 27 को अँग्रेजी मे 'Twenty-Seventh' कहते है तथा इसमे 13 अक्षर हैं। उसके मन मे यह विचार आया करता था कि लोग उसे देखकर 'प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से 13 के बारे मे कहते हैं। किसी व्यक्ति का 'शुभ सुबह' (*Good Morning*) कहना उसके लिए '*Oh Good Morning*' होता था। वह '*Good Afternoon*' सुनने पर डर जाता था क्योकि उसमे 13 अक्षर हैं। जब कभी वह सीढी पर चढ़ता था तो सीढ़ी पर पैर ही नही रखता था, उसे फाँदकर अगली सीढी पर चढ़ जाता था। अपने कमरे के

कलेण्डर मे से वह 13 तारीख फाड़ देता था। उसे 13वाँ रास्ता, 13वाँ घर, 13 चीजें काफी परेशान करती रहती थी। इस 13 के विचार से वह काफी परेशान रहता था तथा कोई कार्य नही कर पाता था।

बाध्यता की स्थिति मे रोगी अपने कार्य को व्यर्थ एव असंगत समझते हुए भी करता रहता है। एक स्त्री एक दिन मे 56 बार हाथ-मुँह धोती थी। एक स्त्री को सदैव यह विचार सताता रहता था कि उसे महतर ने छू लिया है। इस कारण वह रात मे उठकर कई बार नहाती थी। कुछ रोगियो मे सवेगात्मक तनाव (emotional tension) दिखाई पडता है। वह ऐसी विचित्र क्रियाएँ करता है जो कि असगत तथा आधारहीन होती हैं। वह वास्तविकता को जानते हुए भी विवश होकर ऐसे कार्य करता है जो व्यर्थ व निरर्थक होते है। अगर इस प्रकार की क्रियाओ मे बाधा उपस्थित हो जावे तो वह अत्यधिक क्रुद्ध, चिडचिडा हो जाता है। **संख्या उन्माद** (numeromania) मे रोगी गिनने सम्बन्धी क्रियाएँ, **अपहरण उन्माद** (kleptomania) मे चोरी करता है तथा **अग्नि उन्माद** (pyromania) मे रोगी आग लगाने की क्रियाएँ करता है। इस प्रकार के उदाहरण कहानियो तथा उपन्यासो मे भी मिलते हैं, जैसे—शेक्सपियर के नाटक "मैकबेथ" मे लेडी मैकबेथ का बार-बार हाथ धोना इस रोग का लक्षण है। इस सम्बन्ध मे **फिशर** (Fisher) ने एक रोचक उदाहरण दिया है। फिशर के पास एक बीस वर्षीय 'फेलिक्स' (Felix) नामक युवक आया जिसको यह बात बहुत अधिक परेशान करती थी कि वह दिन मे कई बार हाथ धोवे। मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने के बाद यह पता चला कि उसका यह विचार हस्तमैथुन के कारण उत्पन्न हुआ है।

इस रोग के लक्षणो की विविधता के सम्बन्ध मे **प्रो० केमरॉन** ने अनेक रोगियो का बडा ही रुचिपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है :—

इस रोग से पीडित एक व्यक्ति को गाली बकने तथा ईश्वर निन्दा से सम्बन्धित विचार उत्पन्न होते थे। उनकी प्रबलता को रोकने के लिए तथा स्वय को दण्ड देने के लिए अपने मुँह पर टेप लगा लेता था।

एक बारह वर्षीय लडके मे अचानक यह विचार जाग्रत हुआ कि वह अपने माँ-बाप को गन्दी व अश्लील बातें कहे। इस आवेग पर जब वह काबू नही कर पाता था तो वह "इसे रोको! इसे रोको!" ("Stop it! Stop it!!") कहना शुरू कर देता था। वह कभी-कभी इस आवेग के लिए स्वय को मन ही मन कोसता था।

एक अर्द्ध युवा स्त्री के मन मे सोते समय ऐसे तीव्र आवेग उठते थे कि वह अपने पति का गला घोट दे तथा यह विचार इतना तीव्र होता है था कि स्त्री अपने कमरे से बाहर चली जाती थी तथा ऐसा करने पर वह अपने को रोक पाती था।

एक छात्र, जो कि इन्जीनियरिंग मे पढ़ता था, को यह आशंका बनी रहती थी

कि यदि वह किसी को घूर कर देख ले, तो वह मर जावेगा। वह इस बात को जानता था कि वह गलत है परन्तु फिर भी इस अतार्किक विचार से परेशान रहता था।

सक्षेप मे मनोग्रस्तता-बाध्यता मनोस्नायुविकृति मे मानसिक तनाव की प्रधानता मिलती है। वे तीव्र बुद्धि व सवेदनशील तो होते हैं परन्तु आदर्शवादी धार्मिक एव आत्म-ग्लानि से पीडित रहते हैं। वैसे सामान्य व्यक्ति मे भी ऐसे लक्षण पाये जाते हैं लेकिन कुछ समय के उपरान्त उनके इस प्रकार के लक्षण समाप्त हो जाते है।

कारण (Causes or Etiology)

वैसे तो इस रोग के कारणो के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतैक्य नही है फिर भी हम कुछ प्रमुख कारणो की विवेचना करेंगे, यथा :—

(1) स्टैंगल के मतानुसार अगर इस प्रकार के रोगियो के जीवन-इतिहास को ध्यान से देखा जाय तो इन लोगो का व्यक्तित्व-विकास ऐसी परिस्थितियो मे होता है जिसमे ये लोग पूर्णत: कट्टर (rigid) नियम उपासक (methodical), अन्तर्मुखी, आवश्यकता से अधिक पुराने विचारो को मानने वाले तथा अत्यधिक भावुक होते है।

(2) फ्रायड (Freud) का कहना है कि मनोग्रस्तता-बाध्यता मनोस्नायुविकृति का मुख्य कारण लैगिक इच्छा दमन है। इस इच्छा के दमन के कारण मानसिक सघर्ष उत्पन्न हो जाता है तथा इस सघर्ष से बचाव करने के कारण वह व्यक्ति बाध्यता का शिकार हो जाता है। उसका यह भी कहना है कि गुदीय अवस्था (anal stage) मे माँ-बाप बच्चे पर जो अतिरजित दबाव डालते है, उसके कारण बच्चा अपनी अनेक लैगिक इच्छाओ का दमन कर लेता है तथा आगे चलकर उसे इन मनोस्नायुविकृति का शिकार हो जाना पडता है। दूसरे शब्दो मे, फ्रायड के मतानुसार इस रोग का मुख्य कारण गुदीय अवस्था मे क्रियाओ का ही अतिरजित रूप है। फ्रायड इस सम्बन्ध मे यह भी बताता है कि बार-बार हाथ धोने की बाध्यता का सम्बन्ध हस्तमैथुन क्रिया का दमन है। लेकिन अनेक विद्वान् फ्रायड के इस विचार से सहमत नही है।

(3) कुछ मनोवैज्ञानिको ने इस रोग का मुख्य कारण पुनरावृत्ति माना है। उनके अनुसार बचपन मे बहुत-से खेल इस प्रकार के होते है कि उनमे किसी सख्या या शब्द को बार-बार दोहराना पडता है या खेल के नियमो का पालन करने के लिए एक ही नियम को क्रिया के रूप मे बार-बार करना होता है, जिसके फलस्वरूप एक आदत का निर्माण हो जाता है। कुछ समय उपरान्त बाध्यता रोग का शिकार वह व्यक्ति हो जाता है। यह भी कोई सर्वमान्य विचार नही है।

(4) लेविस (Lewis) ने 100 मनोग्रस्तता-बाध्यता मनोस्नायुविकृति के रोगियो का अध्ययन किया तथा इसका कारण वश-परम्परा को माना। उसने अपने इस अध्ययन के आधार पर यह बताया कि 100 रोगियो मे से केवल 18 के माँ-बाप सामान्य थे, शेष सभी स्नायु रोग से पीड़ित थे।

(5) प्रो० कोलमैन (Coleman) ने इस रोग के गत्यात्मक पक्ष का वर्णन करते हुए बताया कि इस प्रकार की विकृति में रोगी का व्यवहार एक सुरक्षात्मक प्रयास है, जिसका कारण चेतन नहीं, अचेतन है। इस सम्बन्ध में उसने निम्न मुख्य बातों का भी वर्णन किया है :—

(i) रोगी ऐसे विचारों को जो अचेतन में निहित होते हैं या जिनका सम्बन्ध चिन्ता या अप्रियता से होता है, किसी एक विचार या क्रिया के माध्यम से चेतना मे आने से रोकता है।

(ii) कुछ रोगी अपने अन्तर्निहित भयपूर्ण विचारों व आवेगो को प्रतिक्रिया-निर्माण (reaction formation) के रूप मे व्यक्त करता है। इस स्थिति में व्यक्ति के असामाजिक व काम सम्बन्धी विचार प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त न होकर अप्रत्यक्ष रूप से (प्रतिक्रिया-निर्माण के रूप मे) व्यक्त होते है।

कोलमैन ने इस सम्बन्ध मे मैसरमैन द्वारा प्रस्तुत एक उदाहरण में बताया है कि एक व्यक्ति को बच्चों की सुरक्षा का विचार परेशान करता रहता था। वह इस बात को भली-भाँति जानता था कि उसके बच्चे स्कूल में सुरक्षित होंगे, क्योंकि वह उसे स्वय छोड़कर आया है। फिर भी वह निर्धारित स्कूल के समय में अनेक बार टेलीफोन आदि के माध्यम से उनकी कुशलता जाना करता था इस रोग का विश्लेषण करने पर यह पता चला कि उसके अन्दर पति तथा पिता बनने के उत्तरदायित्व से घृणा थी तथा इस इच्छा से बचाव करने के लिए वह प्रतिक्रिया-निर्माण की सहायता लेता था।

(iii) कुछ रोगियों में भय से सम्बन्धित इच्छाएँ चेतन उपस्थित होते हुए भी उनका ज्ञान नही होता। प्रो० कोलमैन ने इस सम्बन्ध में एक किसान का वर्णन किया है, जिसके मन में यह विचार आया करता था कि वह अपने तीन वर्षीय पुत्र के सिर पर हथौड़ा मार दे। वह अपने बच्चे को बहुत प्यार करता था जिसके परिणामस्वरूप उसे अपने मन के विचारों के सम्बन्ध मे ज्ञान नहीं था। जब इस किसान का विश्लेषण किया तो यह पता चला कि इस बच्चे के पैदा होते समय उसकी पत्नी को बहुत कष्ट हुआ था तथा इस कष्ट के कारण किसान ने अपनी पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध (sexual relation) पूर्ण रूप से समाप्त कर लिए थे।

(iv) कुछ रोगी अपनी असामान्य एवं घृणित इच्छाओं के प्रति ऐसी क्रियाएँ करते है जिससे उनके पाप धुल जाएँ या समाप्त हो जाएँ; जैसे—हाथों को बार-बार साफ करना या दिन मे कई बार स्नान करना आदि। इस प्रकार के रोगियो के व्यवहार के पीछे उनके यौनिक एवं अनैतिक व्यवहार छिपे रहते हैं। इस सम्बन्ध में शरमैन ने एक 14 वर्षीय लडके का उदाहरण दिया है जिसे सफाई बहुत अधिक पसन्द थी। वह कई बार हाथ धोता था तथा काफी समय तक नहाता था। उसके जीवन-इतिहास का अध्ययन करने से यह पता चला कि उसके माँ बाप ने यौन-कार्यों को अत्यधिक घृणित बताया था तथा छोटी-से-छोटी भूल के लिए काफ़ी दण्ड दिया था।

इसी के परिणामस्वरूप उस लडके के अन्दर सफाई से सम्बन्धित आदत का निर्माण हो गया था।

(v) कभी-कभी रोगी के सामने एक यही रास्ता बच जाता है कि वह अपनी विपत्तिपूर्ण अवस्था से बचाव करने के लिए ऐसी क्रियाएँ करे जिनका सम्बन्ध मनोग्रस्तता-बाध्यता मनोस्नायुविकृति से होता है। इस सम्बन्ध मे कोलमैन ने कॉलिज मे पढने वाली छात्रा का वर्णन किया है जो एक नौ-सैनिक युवक से प्रेम करती थी। कई महीनो के लिए वह युवक दक्षिण प्रशान्त महासागर चला गया। जब वह वहाँ से लौटा तो उसने लडकी पर विश्वासघात का आरोप लगाकर अपना प्रेम तोड दिया। छात्रा ने अपने को निर्दोष साबित करने के लिए अनेक प्रमाण दिये व रो-रोकर प्रार्थना की कि वह पवित्र है, उसने विश्वासघात नही किया है। लेकिन फिर भी उसके प्रेमी को विश्वास नही हुआ। इससे लडकी के सम्मुख एक ऐसी विपत्तिपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि उससे छुटकारा प्राप्त करने का एकमात्र उपाय बाध्यात्मक क्रियाओ को करना था।

(vi) सुरक्षा व भविष्य की रक्षा के लिए कभी-कभी व्यक्ति अत्यधिक व्यवस्थित एव कडे नियम को अपनाता है जिसके फलस्वरूप वह प्रत्येक वस्तु को सुरक्षित एव व्यवस्थित रूप से रखता है। कोलमैन ने इस सम्बन्ध मे एक रोगी का वर्णन किया है जो अस्पताल मे भरती होने से पूर्व सुबह 6-50 पर उठता था। 7 बजकर 10 मिनट पर दैनिक क्रियाओ से निवृत्त होकर तथा कपडे आदि पहनकर नाश्ता करना शुरू कर देता था। उसके नाश्ते मे क्या चीज होगी, उसको एक महीने पहले ही वह तैयार कर अपनी पत्नी को दे देता था। ठीक 7–45 मिनट पर वह आफिस मे चला जाता था। सायकाल 5-55 मिनट पर वह घर लौटता था, नहाता था व अखबार पढता था। तथा ठीक 6-30 मिनट पर भोजन करता था। इसी प्रकार सोमवार को सिनेमा जाना, बुधवार को पढना, शुक्रवार को ब्रिज खेलना, शनिवार को गौल्फ (Golf) खेलना, रविवार को सुबह व सायकाल चर्च जाना आदि निश्चित था। कोलमैन के अनुसार, यह निश्चित प्रकार की व्यवहारहीनता की भावना बाहर निकालने से बचाये हुए था। जब कभी भी कोई इन व्यवस्थित क्रियाओ मे बाधा उत्पन्न करता था तो वह चिन्तित हो जाता था।

(vii) कभी-कभी किसी विशिष्ट मनोघात (psychic trauma) के फलस्वरूप बाध्यात्मक क्रियाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

उपचार (Treatment)

इस रोग के रोगियो का उपचार सरल नही है। इनके कारणो की जानकारी स्वतन्त्र साहचर्य, सम्मोहन व मनोविश्लेषण के माध्यम से की जा सकती है। लक्षणो को दूर करने के लिए सकेत, सम्मोहन तथा औषधिजन-बेहोशी (narcosis) का सहारा लेना चाहिए। साक्षात्कार चिकित्सा (interview theraphy) व आघात चिकित्सा (shock theraphy) भी काफी सहायक सिद्ध हुई है। अगर रोगी के सवेगो की रचना

का आधार वहिर्मुखी हो तो उपचार अपेक्षाकृत शीघ्र सम्भव व सरल होता है। जटिल रोगियो के लिए मनोविश्लेपण विधि से उपचार करना अधिक सहायक सिद्ध हुआ है। सर्वप्रथम तो इस विधि से उपचार करने में कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं, क्योकि रोगी चिकित्सक के साथ सहयोग नही करता। लेकिन रोगी की यह भावना कुछ समय उपरान्त समाप्त हो जाती है। आपरेशन के माध्यम से भी यह रोग ठीक हो जाता है। इसमे रोगी के मस्तिष्क का छोटा-सा आपरेशन करके मस्तिष्क के कुछ अंश को निकाल देने से रोगी स्वस्थ हो जाता है।

आधुनिक युग मे मनोग्रस्तता वाध्यता मनोस्नायुविकृति के उपचार के लिए अनेक प्रकार की औपधियो का उपयोग किया जाता है। करीव 70% रोगी विपाद विरोधी (anti depresssant) व शामक औषधि (Tranquilizing drugs) का उपयोग करने के वाद काफी राहत प्राप्त करते, हैं। लेकिन इन औपधियों का शरीर पर घातक प्रभाव भी पड़ता है। E C T (Electro Convulsive Theraphy) का भी उपयोग इस प्रकार के रोगियों के लिए किया जाता है।

से ग्रस्त लोगो को कोई प्रेत आदि लग जाता है तथा इसका उपचार या तो ये ओझा आदि कर सकते हैं या शारीरिक यातनाओं के माध्यम से भूत-प्रेत को रोगी के शरीर से बाहर निकाला जा सकता है। परन्तु वास्तव मे क्षोभोन्माद एक प्रकार की मानसिक विकृति है जिसका प्रमुख कारण मनोविच्छेद (mental dissociation) है।

क्षोभोन्माद का स्वरूप
(Nature of Hysteria)

क्षोभोन्माद एक प्रकार की मन.स्नायुविकृति है जिसके मानसिक एवं शारीरिक लक्षण होते हैं। प्राचीन विद्वानो के अनुसार यह रोग स्त्रियों को ही होता है तथा इसका मुख्य कारण गर्भाशय का शरीर मे इधर-उधर घूमना है। शार्को के अनुसार इस रोग का मुख्य कारण वंशानुगत होता है। शार्को को ही क्षोभोन्माद का वैज्ञानिक अध्ययन व निरूपण करने का श्रेय है। आयुर्वेद के विद्वानों के अनुसार स्त्रियों को यह रोग अधिक इस कारण से होता है कि स्त्रियाँ प्रेम व लैंगिक व्यवहार से अधिक प्रभावित होती हैं तथा जब उन्हें इनसे सम्बन्धित नैराश्यों (frustrations) का सामना करना पडता है तो वे क्षोभोन्माद रोग से ग्रस्त हो जाती हैं। फ्रायड के अनुसार क्षोभोन्माद का कारण अचेतन रूप से चित्तीय अभिघात (psychic trauma) है। आधुनिक मनोवैज्ञानिको का कहना है कि जब व्यक्ति जीवन की अनेक समस्याओं का सामना नहीं कर पाता तो उनसे बचाव के लिए 'असामर्थ्यता में पलायन' (flight into incapacity करता है तथा इस रोग के लक्षण उसमें विकसित हो जाते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख कुछ जिम्मेदारियाँ या समस्याएँ होती हैं, जब वह जीवन की इन समस्याओं का सामना नहीं कर पाता या असमर्थ व असफल हो जाता है तो निराश होकर ऐसी क्रियाएँ करने लगता है, जो अस्वाभाविक व असम्बन्धित होती हैं। वह परेशान होकर गिर जाता है, बेहोश हो जाता है; दौरे (fits) आने लगते है या भय के कारण लकवा मार जाता है। ये सब क्षोभोन्माद (Hysteria) की ही प्रतिक्रियाएँ है। अब हम क्षोभोन्माद को पूर्ण रूप से समझाने का प्रयास इस अध्याय मे करेंगे।

क्षोभोन्माद के प्रकार
(Kinds of Hysteria)

प्राय. क्षोभोन्माद को तीन प्रकारों में रखकर अध्ययन किया जाता है :—

(i) हिस्टीरिया या क्षोभोन्माद (Hysteria)—इस प्रकार में रोगी रोने या हँसने से सम्बन्धित अनियन्त्रित संवेगों का प्रदर्शन करता है।

(ii) चिन्ता क्षोभोन्माद (Anxiety Hysteria)—चिन्ता क्षोभोन्माद मे रोगी मे आकुलता, व्यग्रता व चिन्ता प्रायः स्थायी रूप से बनी रहती है।

(iii) रूपान्तरित क्षोभोन्माद (Conversion Hysteria)—इस प्रकार में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, शारीरिक लक्षणो में रूपान्तरित हो जाता है, अर्थात् रोगी किसी

प्रकार की शारीरिक बीमारी से ग्रस्त होता है परन्तु उसके कारण, उसके शरीर में खोज करने पर भी प्राप्त नहीं होते।

नीचे हम ओमोन्माद के तीनों प्रकारों की व्याख्या करेंगे।

ओमोन्माद के लक्षण
(Symptoms of Hysteria)

ओमोन्माद में मानसिक व शारीरिक—दोनों प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं। इसके लक्षण कुछ स्थायी प्रकृति के तथा कुछ अस्थायी या आकस्मिक प्रकार के होते हैं। इन लक्षणों का हम नीचे वर्णन कर रहे हैं :—

(क) शारीरिक लक्षण
(Physical Symptoms)

(i) **संवेदनात्मक असामर्थ्य (Sensory Incapacities)**—ओमोन्माद के रोगियों में वेदना, स्पर्श व तापक्रमीय सम्बन्धी संवेदनाओं का अभाव देखा जाता है जिसके कारण रोगी इन संवेदनाओं के प्रति कोई भी प्रतिक्रियाएँ नहीं कर पाता तथा कभी-कभी शरीर के आधे भाग में और कभी-कभी सम्पूर्ण शरीर में या विभिन्न अंशों में संवेदनहीनता प्रकट होने लगती है। मुख्य रूप से संवेदनात्मक लक्षणों के अन्तर्गत त्वचीय संवेदना दृष्टि व श्रवण सम्बन्धी विकृतियाँ आती हैं। अन्य शब्दों में, इस प्रकार के लक्षण संवेदनाहरण (hyperaesthesia=excessive sensitiveness), अपसंवेदन (paraesthesia=unusual sensation, e. g., pins and needle feeling'), स्पर्श संवेद (touch sensation) आदि में अभिव्यक्त होते हैं। परिवर्तन अन्धेपन (conversion blindness) के अन्तर्गत नेत्र व दृष्टि तन्त्रिका (optic nerve) तो पूर्ण रूप से ठीक होते हैं परन्तु रोगी देख नहीं पाता। कभी-कभी रंग-अन्धता भी देखी जाती है।

कभी-कभी रोगी को विकृत संवेदनाएँ भी होती हैं, जैसे—दृष्टि सम्बन्धी विकृतियाँ—बहरापन या श्रवण शक्ति में ह्रास आदि।

(ii) **गत्यात्मक असमर्थता (Motor Disability)**—ओमोन्माद के रोगी में पक्षाघात या अंगघात (paralyses) भी आ जाते हैं। कभी-कभी वह सीधे खड़े होने या चलने में असमर्थ-सा हो जाता है। इसी प्रकार उसमें गति असमर्थता के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। वह बिस्तर पर पैरों को हिला सकता है परन्तु चल नहीं सकता या खड़ा नहीं हो सकता। ओमोन्माद से रोगी में वाणी सम्बन्धी विकृतियाँ भी दिखाई पड़ती हैं।

(iii) **अन्य शारीरिक लक्षण (Other Physical Symptoms)**—ओमोन्माद के रोगी में आन्तरिक क्रियाओं में अन्तर आ जाता है; जैसे—साँस लेने की प्रक्रिया में गड़बड़ी, नाड़ी-गति में तीव्रता, अत्यधिक पसीना आना, चेहरा व त्वचा का बदरंग हो जाना, शर्म से मुँह लाल हो जाना आदि। ओमोन्माद के शारीरिक लक्षणों में भूख की कमी, उदरशूल, वमन तथा अन्तरावयव-सम्बन्धी दोष भी आते हैं।

(ख) मानसिक या मनोवैज्ञानिक लक्षण
(Mental or Psychological Symptoms)

क्षोभोन्माद के प्रमुख मानसिक या मनोवैज्ञानिक लक्षण निम्न है :—

(1) निद्राभ्रमण (Somnambulism)—इसमे रोगी नीद मे ही उठकर अचेतन रूप से अनेक जटिल कार्य व व्यवहार करता है जिसकी स्मृति उसे जागृतावस्था मे नही होती। सामान्य रूप से रोगी सोता है तथा रात्रि मे बिना जागे बिस्तर से उठकर अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है तथा पुन अपने बिस्तर पर जाकर सो जाता है। सुबह उसे रात्रि की क्रियाओ आदि का ध्यान नही होता। इस प्रकार रोगी को निद्राचार व निद्राभ्रमण का ज्ञान नही होता। रॉस[1] (1948) ने निद्राभ्रमण का एक रोचक उदाहरण दिया है। एक नौसैनिक अधिकारी निद्राभ्रमण की अवस्था मे अपना शयन-कक्ष उस समय छोडता था जबकि वह पूर्ण नौसैनिक वस्त्रों को पहन लेता था। इसके बाद ही वह जहाज की छत पर टहलने लगता था। कभी-कभी निद्राभ्रमण के समय ही इस नौसैनिक अधिकारी से बातचीत की जा सकती थी परन्तु उसे जाग्रतावस्था मे इन क्रियाओ की स्मृति नही होती थी।

(2) आत्म-विस्मृति (Fuge)—आत्म-विस्मृति का लक्षण भी क्षोभोन्माद के रोगियो मे पाया जाता है। इस लक्षण के कारण रोगी असह्य सवेगात्मक अनुभव व व्यक्तिगत कठिनाइयो या अपना नाम, पता, व्यवसाय व प्रियजनो के सम्बन्ध आदि को ही भूल जाते हैं। फिशर (Fisher) के शब्दो मे, **"आत्मविस्मृति के क्षोभोन्मादी आक्रमण (दुर्घटना) है जिसमे व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन को भूल जाता है तथा अपने पर्यावरण को छोड़ देता है।"**[2] दुःखद परिस्थितियो से बचने के लिए ही व्यक्ति आत्म-विस्मृति का सहारा लेता है। आत्म-विस्मृति का समय-काल एक-दो घण्टे, दो-चार दिन या कई महीने भी हो सकता है।

विलियम जेम्स (William James)[3] ने आत्म-विस्मृति के सम्बन्ध मे एक बडा ही सुन्दर उदाहरण दिया है। एन्सील बोर्न नामक एक पादरी ने रोडद्वीप बैंक से एक चैंक भुनाया। जिस समय वह अपने चैंक के रुपये ले रहा था उसी समय उसे आत्म-विस्मृति हो गई। इस कारण वह ट्रेन पर सवार होकर उस शहर से बाहर चला गया जहाँ उसने सब्जी की दुकान खोली जो ब्राउन की दूकान के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार उसने दो वर्ष तक ब्राउन के नाम से सब्जी का व्यापार किया। एक दिन जब वह सोकर उठा तो अपने को नये पर्यावरण मे पाया तथा जब लोगो ने उसे

---

1 Ross T. A : *The Common Neurosis*, Baltimore, Wood, 1948.

2 Fuge is a hysterical attack (accident) in which the individual forgets his personal identity and leaves his physical surrounding"—Fisher

3 James, W . *Principles of Psychology*, New, York, Holt, 1904.

मि० ब्राउन कहकर सम्बोधित किया तो उसने जवाब दिया कि उसका नाम ब्राउन नही है, उसका नाम तो एन्मील बोर्न है ।

अतिनिद्रा लुप्ता (Narcolepsy) भी कभी-कभी रोगियो मे देखी जाती है । इस लक्षण के कारण रोगी को निद्रा-आक्रमण पडता है जो कि कुछ महीनो से लेकर कुछ वर्षो तक चलती है । इन आक्रमणो से ऐसा प्रतीत होता है कि इनके द्वारा रोगी की आन्तरिक अभिलाषा की अनुभूति प्रकट होती है । ये एक प्रकार की रक्षात्मक प्रतिक्रिया है जो अचेतन आवश्यकताओ से प्रेरित होती है । समाचारपत्रो एव दैनिक जीवन मे प्राय ऐसे उदाहरण मिलते है कि बमबारी के दौरान अनेक सैनिक निद्राग्रस्त हो गये या प्रोफेसर लेक्चर देने के दौरान सो गये । किसकर ने इस सम्बन्ध मे एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है । दक्षिण-अफ्रीका मे एक युवती एक पुरुष से प्यार करती थी । जब उस मनुष्य को यह ज्ञात हुआ कि माँ-बाप उसके साथ विवाह नही करना चाहते तो उसने आत्महत्या कर ली । लडकी को इतना सदमा पहुँचा कि वह 33 वर्ष तक निद्राग्रस्त रही ।

(3) **स्मृतिलोप** (Amnesia)—स्मृतिलोप क्षोभोन्माद का एक प्रमुख मानसिक लक्षण है । क्षोभोन्माद का रोगी अपना नाम, पता, व्यवसाय, परिवार व प्रियजनो से सम्बन्धित बातो को भूल जाता है । स्मृतिलोप के दौरे का काल प्राय तीन घण्टे से एक माह तक चलता है । परन्तु रोगी को पूर्ण रूप से विस्मृति नही होती, क्योकि उसे दूसरो से सम्बद्ध बाते, सामाजिक आचार-विचार (भाषा, शिष्टाचार), सस्कृति आदि की स्मृति होती है । अत रोगी एक सामान्य व्यक्ति ही लगता है तथा केवल दु खद सवेगात्मक स्थितियो से बचने के लिए ही स्मृतिलोप का सहारा लेता है ।

(4) **संवेगात्मक अस्थिरता व मूर्च्छा** (Emotional Instability and Fits)—क्षोभोन्माद के रोगी मे सवेगात्मक अस्थिरता व मूर्च्छा के लक्षण पाये जाते है । वह रोता है, चिल्लाता है, हँसता है, आक्रमण करता है, दाँत काटता व पीसता है, कभी-कभी शरीर को नोचना या कपडे को फाडना आदि क्रियाएँ करता है । ये सब क्रियाएँ सवेगात्मक अस्थिरता को प्रदर्शित करती है । इसके अतिरिक्त कभी-कभी रोगी मूर्च्छित भी हो जाता है, जिसे क्षोभोन्मादी मूर्च्छा (hysterical fit) कहते है । इन मूर्च्छाओ मे सवेगात्मक परिस्थितियो की अभिव्यक्ति होती है । कुछ समय तक रोगी को मूर्च्छा के माध्यम से सवेगात्मक तनावो या अन्तर्द्वन्द्व व चिन्ताओ से छुटकारा मिल जाता है ।

(5) **द्वैध व्यक्तित्व** (Dual Personality)—क्षोभोन्माद का यह मुख्य लक्षण है । रोगी कभी-कभी एक ही स्थान पर रहकर दूसरे व्यक्तियो के समान व्यवहार करने लगता है । निद्राभ्रमण तो रोगी सोते-सोते भ्रमण करने को चला जाता था परन्तु द्वैध व्यक्तित्व मे बिना आवास परिवर्तन व घर मे भागे समय-समय पर विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व को धारण कर लेता है । मनोवैज्ञानिको ने द्वैध व्यक्तित्व के शुभ व

अशुभ (good and bad) स्वरूपो पर आधारित माना है। द्वैध व्यक्तित्व के पीछे, समय-समय पर नैतिक, सामाजिक व धार्मिक, शुभ तथा अशुभ प्रवृत्तियो के बीच द्वन्द्व का हाथ रहता है। गोडार्ड (Goddard) ने इस सम्बन्ध मे एक लड़की, नोर्मा-पॉली (Norma-Polly) का अध्ययन किया। बाल्यावस्था से ही उस लडकी मे निद्रा-भ्रमण, सामान्य थकान, व्यक्तिगत अप्रसन्नता आदि के लक्षण विद्यमान थे। युवावस्था तक आने पर उस लडकी का व्यक्तित्व दो स्पष्ट प्रकारो मे बँट गया। उसके दो नाम नोर्मा व पॉली हो गये। नोर्मा, शुभ व्यक्तित्व-प्रकार था तथा वह बुद्धिमान आत्म-नियन्त्रित विनम्र व सदाचारी लडकी थी। पॉली अशुभ-व्यक्तित्व प्रकार की लडकी थी, जो स्वार्थी, उद्दण्ड, निर्लज्ज व शरारती थी; नोर्मा व पॉली दोनो प्रकार के व्यक्तित्व एक-दूसरे से अनभिज्ञ थे। गोडार्ड के अनुसार एक तरफ वह घर के नोर्मा के रूप मे उत्तरदायित्वो, कठिनाइयो आदि का सामना करती थी तथा इन सबसे छुटकारा प्राप्त करने के लिए पॉली व्यक्तित्व को धारण कर लेती थी।

उपर्युक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो गई कि क्षोभोन्माद के विभिन्न शारीरिक व मानसिक लक्षण होते है। क्षोभोन्मादी व्यक्ति कुछ विशेष व्यक्तित्व-विशेषताओ को लिए होता है। उसकी सवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ आवेगशील (impulsive) होती है।

क्षोभोन्माद के निदान या कारण

(Etiology or Causes Hysteria)

क्षोभोन्माद के कारणो के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। अलग-अलग मनोवैज्ञानिको ने भिन्न-भिन्न प्रकार के कारण बताये हैं। मुख्य रूप से क्षोभोन्माद के निम्न कारण है —

(1) **मानसिक अभिघात** (Mental Trauma)—कुछ व्यक्ति जीवन मे ऐसी दु खद परिस्थिति या सवेगात्मक परिस्थितियो मे इस प्रकार फँस जाते है कि निकल ही नही पाते तथा अन्त मे उनमे तीव्र मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाते है। ध्यान रहे कि सवेगात्मक तनाव ही मानसिक अभिघात पहुँचाते है। सवेगात्मक तनाव उत्पन्न करने के प्रमुख कारण दु खद समाचार, जैसे—प्रियजनो की मृत्यु, आर्थिक हानि, वैवाहिक जीवन मे असफलता, सामाजिक अप्रतिष्ठा आदि। इन मानसिक अभिघातो के फलस्वरूप व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन बिगड जाता है तथा उसमे क्षोभोन्माद के लक्षण विकसित हो जाते है।

(2) आयु (Age)—कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि क्षोभोन्माद के कारणो मे आयु एक प्रमुख कारण है। व्यक्ति के सम्मुख किशोरावस्था के स्तर पर सर्वाधिक समस्याओ का सामना करना पडता है तथा सर्वाधिक नैराश्यो (frustrations) का सामाना भी इसी अवस्था मे होता है। अपरिपक्व व्यक्तित्व के कारण वह इन समस्याओ का समाधान नही कर पाता तथा उसमे मानसिक व सवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाते है जो क्षोभोन्माद के लक्षण विकसित कर देते है। इस प्रकार किशोरावस्था क्षोभोन्माद उत्पन्न करने का प्रमुख कारण है।

(3) **मन्द-बुद्धि** (Low Intelligence)—हॉलिंगवर्थ (Hollingworth) ने बहुत-से सैनिको मे व्याप्त क्षोभोन्माद का अध्ययन किया तथा बताया कि क्षोभोन्मादी मे बुद्धि की कमी होती है। ध्यान रहे कि अनेक मनोवैज्ञानिक इस कारण को स्वीकार नही करते।

(4) **दोषपूर्ण अनुशासन** (Faulty Discipline)—कुछ मनोवैज्ञानिको के अनुसार क्षोभोन्माद का यह भी कारण होता है कि अनुशासन का अधिक या शिथिल नियत्रण होने पर आत्म-नियन्त्रण की योग्यता का विकास नही हो पाता जिसके फल-स्वरूप व्यक्तित्व ठीक तरह से विकसित नही हो पाता तथा व्यक्ति के अन्दर क्षोभोन्माद के लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

(5) **बहिर्मुखी व्यक्तित्व** (Extrovert Personality)—अनेक मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व-प्रकारो के आधार पर क्षोभोन्माद का अध्ययन करके यह ज्ञात किया कि मुख्यत. बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाला ही व्यक्ति क्षोभोन्माद का रोगी होता है।

(6) **व्यक्तित्व में संश्लेषण का अभाव** (Lack or Synthesis in Personality)—कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि व्यक्तित्व मे जब विभिन्न गुणो का सश्लेषण नही हो पाता तो इसके कारण व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है तथा क्षोभोन्माद की उत्पत्ति हो जाती है। परन्तु अनेक मनोवैज्ञानिको ने इस कारण को यह कहकर अस्वीकार कर दिया है कि क्षोभोन्माद के रोगियो मे भिन्न-भिन्न लक्षण होते है।

(7) **सुझाव** (Suggestion) कुछ लोगो का कहना है कि जो व्यक्ति सुझाव-ग्राही होते हैं, उनमे क्षोभोन्माद के लक्षण शीघ्र उत्पन्न हो जाते है तथा क्षोभोन्माद के लक्षणो के विकास मे प्रभावकारी भूमिका निभाते है।

(8) **असन्तुष्ट लैंगिक इच्छाएँ** (Unsatisfied Sexual Desires)—**फ्रायड** ने विशेष रूप से काम (sex) पर जोर देते हुए बताया है कि उन्ही व्यक्तियो को क्षोभोन्माद होता है जिन्होने अपनी लैंगिक इच्छाओ को दमित कर लिया है, क्योकि इन इच्छाओ के दमित होने के कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द उत्पन्न हो जाते हैं जिससे बचने के लिए व्यक्ति मे क्षोभोन्माद के लक्षण विकसित हो जाते है।

(9) **असमायोजन** (Maladjustment)—नव्य-फ्रायडवादियो ने क्षोभोन्माद का कारण असमायोजन माना है, जैसे—एडलर ने हीनता मनोग्रन्थि (inferiority complex), युंग ने जीवन की समस्याओ के उत्पन्न असमायोजन, **कैरेन हॉर्नी, सुलीवन,**, फ्रॉम आदि ने सामाजिक जीवन मे असमायोजन को क्षोभोन्माद का कारण माना है।

क्षोभोन्माद का उपचार
(Treatment of Hysteria)

क्षोभोन्माद के उपचार की निम्न विधियाँ हैं —

(1) **मनोविश्लेषण विधि** (Psychoanalysis Method)—फ्रायड तथा अन्य मनोवैज्ञानिको के क्षोभोन्माद का उपचार मनोविश्लेषण विधि के द्वारा किया है।

मनोविश्लेषण विधि से तात्पर्य है कि रोगियो के उन कारणों का पता लगाना जिनसे कि ऐसे व्यक्ति इस रोग का शिकार होता है। इस विधि में दो प्रकार से चिकित्सा की जाती है :

(क) मुक्त-साहचर्य विधि (Free Association Method),

(ख) स्वप्न-विश्लेपण के द्वारा (Dream Analysis)।

(2) सकेत (suggestion)—सकेतो के द्वारा भी क्षोभोन्माद का इलाज किया जा सकता है। लेकिन इस विधि से की गई चिकित्सा अस्थायी होती है तथा ठीक होने के वाद भी इनके लक्षण रोगी में पुनः उत्पन्न हो सकते हैं।

(3) सम्मोहन (Hypnosis)—सम्मोहन विधि का उपयोग प्राचीन काल से होता रहा है। इस विधि का प्रयोग मुख्यत शार्को, मैक्सवार्क तथा फ्रायड ने किया। इस विधि के द्वारा रोगी को सम्मोहन की अवस्था मे पहुँचाया जाता है तथा सम्मोहन की अवस्था पर पहुँचने पर रोगी अपने रोग के वारे में बहुत कुछ वता देता है। सम्मोहन उत्पन्न करने के लिए कभी-कभी कुछ औपधियो का भी उपयोग किया जाता है। सामान्यत. सम्मोहन प्रक्रिया मे रोगी को आरामदायक कुर्सी पर वैठा दिया जाता है तथा कुछ मौखिक सकेतो के द्वारा रोगी के अन्दर सम्मोहन की अवस्था उत्पन्न की जाती है। इन मौखिक सकेत के उदाहरण कुछ इस प्रकार होते हैं—"केवल मेरी आवाज सुनो, विश्राम करो और सो जाओ, तुम्हारी आँखें भारी हो रही हैं, आराम करो और सो जाओ।" सम्मोहन अवस्था उत्पन्न हो जाने के उपरान्त सम्मोहित अवस्था मे भी कुछ इस प्रकार के सकेत देते है कि "अब तुम्हारे अन्दर वोलने की शक्ति उत्पन्न हो गई है।" इस प्रकार इन सकेतों के माध्यम से क्षोभोन्माद के अनेक लक्षणो को दूर किया जाता है।

चिन्ता क्षोभोन्माद
(Anxiety Hysteria)

जैसाकि हम पहले वता चुके हैं कि चिन्ता क्षोभोन्माद, क्षोभोन्माद का ही एक रूप है। आरम्भ मे कुछ लोगो का मत था कि चिन्ता क्षोभोन्माद दुर्भीति (phobia) है परन्तु आधुनिक युग में इसे एक भिन्न विकृति समझा जाता है।[1] इस प्रकार के मानसिक रोग मे अपने को क्षति पहुँचाने का विकृत रूप ले लेता है। अन्य शब्दों मे, जव कोई व्यक्ति विना किसी आधार के भयग्रस्त रहता है तो इस अवस्था को चिन्ता क्षोभोन्माद कहते है। इस प्रकार के क्षोभोन्माद में किसी विशेष वस्तु या परिस्थिति के प्रति आरोपित चिन्ता की अभिव्यक्ति चेतन रूप से होती है। इस अभिव्यक्ति के पीछे दमित काम-भावना सम्बन्धी कारक, शारीरिक प्रतीत आदि रहते हैं। दुर्भीति व चिन्ता क्षोभोन्माद मे एक वात की समानता यह है कि दोनो के कारण एक ही होते हैं परन्तु इन दोनो में पर्याप्त अन्तर भी है। दुर्भीति (phobia)

1. इसी कारणवश हमने दुर्भीति (Phobia) का अलग अध्याय में वर्णन किया है।

मे इस प्रकार का भय होता है जो कि वास्तव मे सम्बन्धित व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति प्रति स्वाभाविक कारणो से उत्पन्न नही होती । चिन्ता क्षोभोन्माद मे दुर्भीति की प्रधानता होती है तथा दुर्भीति मे अत्यधिक तीव्रता पायी जाती है । सामान्य व्यक्ति जिन परिस्थितियो से भयभीत नही होता है रोगी उनसे अत्यधिक व्याकुल हो जाता है । रोगी का भय बच्चो के भय जैसा होता है । जिस प्रकार एकान्त, अँधेरे स्थान पर बच्चे डरते है, ठीक उसी प्रकार चिन्ता क्षोभोन्माद का रोगी वयस्क होने पर भी बच्चो जैसा भयभीत होता है । चिन्ता क्षोभोन्माद का भय स्थायी प्रकृति का होता है । सामान्य भय क्षणिक होता है तथा सम्बद्धन (conditioning) के द्वारा दूर किया जा सकता है जबकि चिन्ता क्षोभोन्माद सम्बद्धन के द्वारा दूर नही किया जा सकता है ।

चिन्ता क्षोभोन्माद के प्रकार
(Types of Anxiety Hysteria)

चिन्ता क्षोभोन्माद को भी मुख्यत 3 वर्गो मे रख कर अध्ययन किया जाता है —

(1) सरल मूर्त चिन्ता क्षोभोन्माद (Simple Concrete Anxiety Hysteria),

(2) प्रतीकात्मक मूर्त चिन्ता क्षोभोन्माद (Symbolic Concrete Hysteria),

(3) प्रतीकात्मक अमूर्त चिन्ता क्षोभोन्माद (Symbolic Abstract Hysteria) ।

(1) **सरल मूर्त चिन्ता क्षोभोन्माद**—इस प्रकार के चिन्ता क्षोभोन्माद मे रोगी के भय का सम्बन्ध कोई मूर्त वस्तु होती है । इसके प्रमुख लक्षण जल आदि से सम्बन्धित भय होते हैं । फिशर (Fisher) ने इस सम्बन्ध मे एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है । एक व्यक्ति को, जिसकी आयु करीब 55 वर्ष की थी, बचपन से ही यह भय लगा रहता था कि कोई उसे पीछे से पकडने आ रहा है । इस चिन्ता के कारण जब कभी वह सभा मे जाता तो कुर्सी को दीवार से सटाकर बैठता था । उसे भीड मे जाने से भय लगता था । इस प्रकार के भय का कोई कारण उसे ज्ञात नही था । 55 वर्ष की आयु मे वह उस नगर मे गया जहाँ उसका बचपन व्यतीत हुआ था तो उसे समस्त घटनाएँ याद आयी कि उसे किस प्रकार मूँगफली चुराते हुए पीछे से पकडा गया था । इस घटना का स्मरण हो जाने के उपरान्त वह ठीक हो गया तथा उसको अब डर नही लगता था ।

(2) **प्रतीकात्मक मूर्त चिन्ता क्षोभोन्माद**—इस प्रकार के क्षोभोन्माद मे रोगी को भय तो मूर्त वस्तुओ से ही लगता है परन्तु भय का उद्दीपन मूर्त वस्तु वास्तव मे प्रतीकात्मक होती है । जैसे एक व्यक्ति को सदैव इस बात का भय बना रहता था

कि उसकी मृत्यु उसकी पत्नी उसके गले मे रस्सी बाँधकर करेगी। यहाँ रस्सी का भय प्रतीकात्मक है। इसी प्रकार अन्ना (Anna) नामक एक युवती को सदैव यह भय बना रहता था कि जब वह सो जावेगी तब उसकी माँ रसोईघर में रखे चाकू से उसकी हत्या कर देगी। इस भय के कारण उसे नीद नही आती थी तथा जब तक माँ जगती रहती थी तब तक वह भय के मारे सोने तक नही जाती। इस युवती का मनोविश्लेषण किया गया जिसके आधार पर यह पता चला कि 'चाकू' दमित काम-क्रिया का प्रतीक था।

(3) **प्रतीकात्मक अमूर्त चिन्ता क्षोभोन्माद**—इस प्रकार के क्षोभोन्माद में रोगी का भय उद्दीपन अमूर्त होता है। रोगी को खुले स्थान, ऊँची जगह तथा बन्द जगह से अधिक भय लगता है। इस प्रकार के क्षोभोन्माद के रोगियो मे प्रमुखत: नीद का अभाव, विस्थापन (displacement), प्रक्षेपण (projection), प्रतिगमन (regression), आक्रमण (aggression) आदि के लक्षण पाए जाते है।

फिशर (Fisher) ने इस सम्वन्ध मे एक रोचक उदाहरण का विवरण दिया है। लूसी (Lucy) नामक एक महिला कार्य करते समय तीव्र हृदय-धड़कन का अनुभव करने लगी तथा उसके कुछ समय उपरान्त वह सडक को पार करने में असमर्थ हो गई। इसके वाद जब कभी वह घर से वाहर जाने की चेष्टा करती थी तब उसके मन मे पागलपन, मृत्यु आदि का भय छाया रहता था। जब इस औरत का मनोविश्लेषण किया गया तो यह ज्ञात हुआ कि ये भाव पति को छोडने के प्रतीक थे।

चिन्ता क्षोभोन्माद के लक्षण
(Symptoms of Anxiety Hysteria)

हैडफील्ड (Hadfield) के अनुसार मुख्यत चिन्ता क्षोभोन्माद दो प्रकार का होता है प्रथम प्रकार मे वाल्यावस्था के दमित भय की पुनरावृत्ति क्षोभोन्माद के लक्षणो के रूप मे होती है तथा दूसरे प्रकार में काम (sex) या आक्रमण जैसे निषिद्ध इच्छाओ से क्षोभोन्माद के लक्षण उत्पन्न होते है।

चिन्ता क्षोभोन्माद के शारीरिक लक्षणो मे प्रमुखत. रोगी मे शरीर का थर-थराना, वेहोश होना, हृदय की धड़कन बढ जाना आदि लक्षण दिखाई पडते हैं। भय इस विकृति का महत्त्वपूर्ण लक्षण है। इसके मानसिक लक्षणो मे भय के अतिरिक्त व्याकुलता, वेचैनी आदि अनुभूतियाँ प्रमुख रूप से देखी जाती है। रोगी को नीद न आने की शिकायत प्राय: रहती है।

चिन्ता क्षोभोन्माद या हिस्टीरिया के कारण
(Etiology or Causes of Anxiety Hysteria)

चिन्ता क्षोभोन्माद के कारणो के सम्वन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतैक्य नही है। व्यवहारवादियो के मतानुसार इसका मुख्य कारण सम्बद्धन (conditioning) है। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक इस रोग का कारण वाल्यावस्था का मानसिक अभिघात

(mental trauma) को मानते थे। इन मनोवैज्ञानिको का मत है कि मानसिक अभिघात से प्रतिक्रिया-प्रतिमान (reaction-pattern) उत्पन्न हो जाता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति असन्तुलित हो जाता है तथा चिन्ता क्षोभोन्माद के रोग से वह ग्रस्त हो जाता है।

फ्रायड के अनुसार इस रोग का मुख्य कारण यह है कि रोगी का मनोलैंगिक विकास मातृ-प्रेमग्रन्थि स्तर तक पहुँच कर रुक जाता है। स्मरण रहे कि इस स्तर पर बच्चो मे माँ-बाप से यौन-सम्बन्ध की इच्छा विद्यमान रहती है, परन्तु वयस्क होते ही परम अहम् के दबाव या भय के कारण इस इच्छा का दमन हो जाता है जिसकी अभिव्यक्ति चिन्ता क्षोभोन्माद के लक्षणो द्वारा होती है।

जेने (Janet) ने चिन्ता क्षोभोन्माद का प्रमुख कारण इच्छा-शक्ति की अव्यवस्था बताया है। जो व्यक्ति अपनी इच्छा-शक्ति को सामान्य रूप से पर्यावरण के साथ समायोजन नही कर पाते, उनका सन्तुलन बिगड जाता है और वे इस रोग के शिकार हो जाते है।

कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि यह रोग उन्ही व्यक्तियो को होता है जिनके सवेग परिवर्तनशील व स्वच्छन्द होते है।

चिन्ता क्षोभोन्माद का उपचार
(Therapy of Anxiety Hysteria)

अनेक मनोवैज्ञानिक प्राविधियो के द्वारा चिन्ता क्षोभोन्माद के रोगी का उपचार किया जाता है। मुख्यत मुक्त साहचर्य विधि (free associatian method), सम्मोहन विधि (hypnotism method), सकेत या सुझाव (suggestion), पुन - शिक्षण (re-education) आदि प्राविधियों का उपयोग इनके उपचार के लिए किया जाता है।

रूपान्तरित क्षोभोन्माद
(Conversion Hysteria)

रूपान्तरित क्षोभोन्माद का स्वरूप
(Nature of Conversion Hysteria)

रूपान्तरित क्षोभोन्माद, क्षोभोन्माद का ही एक रूप है जिसमे रोगी अपने द्वन्द्वात्मक भावनाओ या विचारो को शारीरिक लक्षणो मे परिवर्तित करके समाधान करता है। रोगी मे शारीरिक लक्षण तो विद्यमान रहते हैं परन्तु उनका कोई आंगिक कारण या शारीरिक आधार नही होता है।[1] प्रो० केमरॉन (Prof Cameron) के अनुसार, "रूपान्तरित क्षोभोन्माद एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अचेतन अन्तर्द्वन्द्व किसी

---

1. "Conversion reaction is a neurotic defense in which symptoms of some organic disease appear without any underlying organic pathology."—Coleman, James C, : *Ibid*, p. 204.

शारीरिक लक्षण में परिवर्तित या प्रकट हो जाती है, जिससे कि अन्तर्द्वन्द्व की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा तनाव व चिन्ता कम हो जाती है।"[1]

रूपान्तरित क्षोभोन्माद पद की रचना फ्रायड ने की। सरल शब्दो में, इस रोग मे मनोवैज्ञानिक या मानसिक अन्तर्द्वन्द्व शारीरिक विक्षेपों मे प्रकट होता है। लकवा मार जाना, अन्धा हो जाना आदि इसके मुख्य लक्षण हैं।

रूपान्तरित क्षोभोन्माद के लक्षण
(Symptoms of Conversion Hysteria)

रूपान्तरित क्षोभोन्माद में रोगी को स्पष्ट रूप से शारीरिक कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं जिनका आधार मानसिक होता है। इसके प्रमुख लक्षण हैं—डकार लेना, बार-बार गला साफ करते रहना, गले मे कुछ रुकावट महसूस करना, हिचकियाँ लेते रहना, उल्टी (vomiting) करना, बार-बार पेशाब करने जाना, अत्यधिक पसीना आना, हाथ-पैर ठण्डे हो जाना आदि। अध्ययन के दृष्टिकोण से रूपान्तरित क्षोभोन्माद के प्रमुख लक्षणो को हम निम्न वर्गों मे रखकर अध्ययन करेंगे :—

(1) **ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी लक्षण** (Sensory Symptoms)

जब रोगी को ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी विकृतियाँ हो जाती हैं तब ये लक्षण उत्पन्न होते हैं। सवेदन-शून्यता (anaesthesia), मे अत्यधिक ह्रास तथा अत्यधिक संवेदनशीलता आदि ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी लक्षण है। लेकिन इन लक्षणो के साथ किसी भी प्रकार का आगिक परिवर्तन नही पाया जाता। सवेदनशून्यता के रोगी अक्सर मिलते हैं जिन्हे सकेत द्वारा उत्पन्न व समाप्त किया जा सकता है। रोगी को कई बार ऐसा अनुभव होता है कि उसके शरीर के किसी अग या किसी भाग पर किसी भी प्रकार की सवेदना अनुभव नही हो रही है। आँखो से कम दिखाई पड़ना, सुनने सम्बन्धी दोष, जैसे—कम सुनना, स्पर्श व वेदना का अनुभव होना या न होना प्रमुख ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी लक्षण हैं। इन लक्षणो के पीछे वास्तव मे ज्ञानेन्द्रियो मे किसी भी प्रकार का विक्षेप नही होता है।

(2) **गत्यात्मक या कार्य सम्बन्धी लक्षण** (Motor Symptom)

रूपान्तरित क्षोभोन्माद मे रोगी के शरीर मे विभिन्न गयात्मक दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे—पक्षाघात (paralysis) होना। वैसे तो पक्षापात प्राय एक ही अग तक सीमित रहता है परन्तु कभी-कभी सम्पूर्ण बाँया या दाँया अग प्रभावित हो जाता है। परन्तु एक तरफ तो उनका अग पक्षाघात से पीड़ित होता है, दूसरी तरफ

1. "A conversion reaction is a process where by an unconscious conflict is transformed ('converted') into a body symptom which reduces tension and anxiety by expressing conflict symbolically"—**Cameron N** : *Personality Development and Psychopathology*, p 307.

उसी अंग से तेजी के साथ हरकतें भी हुआ करती हैं; जैसे—रूपान्तरित क्षोभोन्माद का रोगी बैठ तो सकता था परन्तु खड़ा-खड़ा होकर चल नही सकता। इसी प्रकार एक रोगी लिख नही पाता परन्तु उसी हाथ के उपयोग से ताश फेंट सकता है, पियानो बजा सकता है। इससे यह पता चलता है कि वास्तव मे उसमे किसी भी प्रकार का शारीरिक रोग नही है। परन्तु अगर पक्षाघात या लकवे की स्थिति लगातार बनी रहे, तो कुछ समय उपरान्त मांसपेशियो मे सचमुच विकार उत्पन्न हो जाता है।

इस प्रकार के रोगियो को कम्पन, ऐंठन, अनेक प्रकार के टिक्स (tics), जैसे—कधा उचकाना, बार-बार पलक झपकाना, पैर हिलाना तथा मूर्च्छा आदि शारीरिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

(3) अन्य लक्षण (Other Symptoms)

रूपान्तरित क्षोभोन्माद मे कभी-कभी कुछ रोगी इस प्रकार के भी होते हैं जिनमे किसी शारीरिक रोग के सम्पूर्ण लक्षण तो उत्पन्न हो जाते है परन्तु वास्तव मे कोई शारीरिक कारण उपस्थित नही रहते; जैसे—मैरिल (Meril) ने एक ऐसे रोगी का वर्णन किया है जिसमे मलेरिया के सभी लक्षण थे परन्तु वास्तव मे शारीरिक कारण कोई भी नही था। इसी प्रकार गोल्ड ने एक स्त्री का उल्लेख किया है जिसमे टी० बी० के सभी लक्षण उपस्थित थे परन्तु उसका कोई आगिक आधार नही था।

कभी कभी इस सम्बन्ध मे भूलें भी हो जाती हैं, जैसे—बैनेट व सेमार्ड (Bennet and Semard) ने ऐसे 100 रोगियो का उल्लेख किया, जिन्हे भूल से शारीरिक रोगग्रस्त माना गया। ऐसे 179 आपरेशन किये गये, जिसमे करीब आधे बेकार सिद्ध हुए। क्योंकि उनमे किसी भी प्रकार का शारीरिक दोष नही था। इस प्रकार दिखाई पड़ता है कि रोगी मे शारीरिक लक्षण तो उत्पन्न हो जाते है परन्तु उनका वास्तव मे कोई आगिक या शारीरिक आधार नही होता।

रूपान्तरित क्षोभोन्माद के कारण
(Etiology of Conversion Hysteria)

जैविक दृष्टि मे इस रोग का मूल कारण असुरक्षा की भावना है जिसके कारण रोगी बाह्य ससार के साथ उचित सम्बन्ध का समायोजन स्थापित नही कर पाता, क्योंकि उसकी सवेदनात्मक व गत्यात्मक क्रियाएँ अव्यवस्थित हो जाती हैं जो समायोजन मे बाधा भी उपस्थित करता है। मुख्य रूप से रोगी अपने अचेतन अन्त-र्द्वन्द्व का निदान रूपान्तरण (conversion) नामक मनोरचना के द्वारा करता है। इससे रोगी को चिन्ताओ से छुटकारा तो प्राप्त होता ही है, साथ ही बाह्य व्यक्तियो की सहानुभूति भी प्राप्त होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रूपान्तरित क्षोभोन्माद का प्रमुख कारण स्नेह से वचित होने की भावना है।

कून व रेमण्ड (Coon and Raymond) ने रूपान्तरित क्षोभोन्माद का एक उदाहरण दिया है। एक लड़की, जिसे बाल्यावस्था से ही पर्याप्त स्नेह, प्रशसा व सरक्षण मिला था तथा सभी घर के प्राणी उसकी कलात्मक अभिरुचि के लिए

प्रोत्साहन देते थे; परन्तु वास्तव में वह संगीत मे विशेष योग्य नहीं थी फिर भी वह अपने को विशेष योग्य समझती थी। जब उसकी परीक्षा के दिन आते तो परीक्षा की तिथि से पूर्व उसे अनेक शारीरिक विक्षेप, जैसे—सिर मे दर्द, गले मे खराबी आदि उत्पन्न हो जाते थे तथा इसके कारण परीक्षा तिथि आगे बढ जाती थी। अन्त मे जब परीक्षा हुई तो उस लड़की ने प्रारम्भिक परीक्षा तो दे दी परन्तु महत्त्वपूर्ण परीक्षण के समय उसका गला जवाब दे गया। इस प्रकार अन्तिम परीक्षण के समय वास्तविकता सामने आ गई तथा इस शारीरिक विकृति से उसके आत्म-सम्मान व आत्म-उपयुक्तता की रक्षा हो गई। प्रो० कोलमैन (Coleman) ने रूपान्तरित क्षोभोन्माद के सम्बन्ध में 3 क्रम बताये है जिनसे दैहिक रोग के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ये क्रम हैं :—

(i) दुःखद या अप्रिय परिस्थिति से बचाव करने की इच्छा।
(ii) इस स्थिति से बचाव के लिए बीमार पड़ने की अस्थायी इच्छा का उत्पन्न हो जाना तथा महत्त्वहीन समझकर चेतन से निकाल देना।
(iii) अन्य दुःखित, अप्रिय या कठिनाई के उपस्थित होने पर रूपान्तरित क्षोभोन्माद के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

कोलमैन ने क्षोभोन्माद उत्पन्न करने वाले विशेष कारणों का भी वर्णन किया है :—

(i) रूपान्तरित क्षोभोन्माद, रोगी को अप्रिय व खतरनाक परिस्थितियो से दूर रखने से सहायक सिद्ध होता है।
(ii) व्यक्ति की अपराध-भावना व स्वयं को दण्ड देने की इच्छा ही इस प्रकार के क्षोभोन्माद को उत्पन्न करने के कारण होते हैं।
(iii) कभी-कभी इस विकृति मे अन्तर्निहित खतरनाक आवेगो का कार्य रूप मे प्रकट होने से बचाव हो जाता है।
(iv) कठोर व्यवहार से बदला लेने की इच्छा भी इस विकृति के उत्पन्न होने के कारण बन जाते हैं।
(v) कभी-कभी भविष्य की कठिनाइयों से बचने के लिए रूपान्तरित क्षोभोन्माद के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

रूपान्तरित क्षोभोन्माद का उपचार
(Therapy of Conversion Hysteria)

इस प्रकार के रोगी चेतन रूप से यह चाहते हैं कि उनके इस रोग का उपचार होना चाहिए परन्तु अचेतन रूप से यह नही चाहते कि उनका इलाज हो अत. रोगी का अचेतन मन उपचार का विरोध करता है। इस रोग का उपचार मनोचिकित्सा के माध्यम से आसानी से हो सकता है। अगर रूपान्तरित क्षोभोन्माद के लक्षण पुराने हो गए हैं तो इन लक्षणो का निराकरण सरलतापूर्वक संकेत व सम्मोहन के द्वारा आसानी से हो सकता है।

21
दुर्भीति
(PHOBIA)

जैसा कि हम पिछले अध्याय मे बता चुके हैं कि आरम्भ मे अनेक विद्वान् दुर्भीति व चिन्ता क्षोभोन्माद (Anxiety Hysteria) को एक ही प्रकार की विकृति मानते थे। परन्तु आधुनिक दृष्टिकोण इस तथ्य को स्वीकार नही करता है। परन्तु यह बात ठीक है कि दुर्भीति व चिन्ता क्षोभोन्माद दोनो मे ही भय या असगत भय का लक्षण प्रधान होता है। परन्तु दुर्भीति मे चिन्ता क्षोभोन्माद की अपेक्षा अधिक तीव्र असामान्य या असगत भय विद्यमान रहता है।

कोलमैन[1] (Coleman) के मतानुसार किसी भी वस्तु या स्थिति के प्रति स्थायी भय, जो कि रोगी के सम्मुख किसी भी प्रकार का वास्तविक खतरा उपस्थित नही करता है, को दुर्भीति, असगत भय या फोविया कहते हैं। दुर्भीति एक प्रकार का अतार्किक या असामान्य भय है, क्योकि इसमे रोगी यह तो समझता है कि विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति के प्रति यह भय व्यर्थ है परन्तु फिर भी वह इस प्रकार के भय से अपने को मुक्त नही कर पाता है।

केमरॉन[2] (Cameron) के अनुसार "दुर्भीति प्रतिक्रिया एक ऐसा प्रयास

1. "A Phobic reaction is a persistent fear of some object or situatiou which presents no actual danger to the patient or in which the danger is magnified out of all proportion to its actual seriousness."—Coleman . *Abnormal Psychology and Modern Life*, p. 278.
2. "A phobic reaction is an attempt to reduce internally generated tension and anxiety by a process of displacement, projection and avoidance "—Cameron, N : *Personality Development and Psychopathology*, p. 278.

है(तो विस्थापन, प्रक्षेपण व अनुवाद प्रक्रियाओं के माध्यम से आन्तरिक रूप से उत्पन्न तनाव व चिन्ता को कम करता है।" विस्थापन व प्रक्षेपण कुछ बाह्य परिस्थितियों से असंगत या अतार्किक भय ग्रहण कर लेते हैं तथा फिर व्यवस्थित रूप से इस वस्तु या परिस्थिति से दूर भागने का प्रयास करता है। दुर्भीति विशिष्ट व्याधिकीय भय है जो कभी या कुछ समय तो चिन्ता आक्रमण (anxiety attack) के फलस्वरूप आरम्भ होती है परन्तु बाद में रोगी अपनी चिन्ता को अपने चारों ओर के पर्यावरण के वस्तुओं या परिस्थितियों के साथ सम्बन्धित कर लेता है।

सामान्य व असामान्य या दुर्भीति भय में अन्तर होता है। सामान्य भयात्मक या खतरनाक परिस्थितियों में व्यक्ति उचित प्रतिक्रियाएँ करता है क्योंकि वहाँ भय का एक कारण होता है जिसे वह समझता है। जैसे जो व्यक्ति एक बार पानी में डूबने से बच जाता है, वह पानी से डरता है। परन्तु असामान्य भय या दुर्भीति में भयों का कोई भी उचित कारण नहीं होता, ये भय निराधार होते हैं। रोगी इस प्रकार के भयो का कारण नहीं जानता और न ही वह सामान्य व्यक्ति के समान ही इन भयों के प्रति प्रतिक्रिया करता है। रोगी को भयात्मक प्रतिक्रिया करने में काफ़ी असुविधा होती है। अगर उसे इन भयों के मूल कारणों को बता दिया जावे या पता लग जावे तो उसके भय की तीव्रता या तो कम हो जाती है या भय पूर्णतया समाप्त हो जाता है।।

बेग्बी व शैफर (Begby and Shaffer) ने दुर्भीति की निम्नलिखित सामान्य विशेषताओं का उल्लेख किया है—

(1) दुर्भीति, साधारणतया किसी तीव्र अभिघातज (traumatic) घटनाओं से प्रारम्भ होता है जिसका सम्बन्ध बाल्यकालीन अवस्था से होता है।

(2) रोगी का अप्रिय अनुभव का सम्बन्ध किसी निषिद्ध या लज्जाजनक कार्य में जुड़ा होना है। इसी के कारण रोगी न तो इस सम्बन्ध में स्वयं ही सोच पाता है और न ही अन्य व्यक्तियों से खुलकर वर्णन ही कर पाता है। अतः इस प्रकार के अनुभवों से वह छुटकारा प्राप्त करने के लिए दुर्भीति प्रतिक्रियाओं का सहारा लेता है।

(3) दुर्भीति में रोगी के अन्दर एक स्थायीभाव निहित रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि रोगी को भय की मूल परिस्थिति से सम्बन्धित अपराध भावना, उक्त घटना को चेतन प्रत्यास्मरण में रोक लगा देती है।

(4) वैसे दुर्भीति में एक विशेष परिस्थिति से भय उत्पन्न होता है परन्तु भय का क्षेत्र कभी-कभी वस्तुओं के एक वर्ग तक फैल भी जाता है।

(5) जब मुक्त-साहचर्य (free association), स्वप्न-विश्लेषण या अन्य मनोवैज्ञानिक प्रविधियों से दुर्भीति रोग के मूल दमित अभिघातज अनुभवों को रोगी को पुनः स्मरण कराया जाता है तो अतार्किक या असामान्य भय की तीव्रता में कमी हो जाती है।

दुर्भीति का गत्यात्मक संगठन
(Dynamic Organization of Phobia)

दुर्भीति प्रतिक्रियाएँ, व्यक्तित्व-प्रतिरूपो व नैदानिक सलक्षणो (clinical syndromes) की विस्तृत सीमा तक उत्पन्न हो सकती है। रोगी के भय का सम्बन्ध आन्तरिक अचेतन अन्तर्द्वन्द्व होता है। समस्त प्रकार के दुर्भीतो का गत्यात्मक सगठन आधारभूत रूप से समान ही होता है। केमरॉन ने इसके गत्यात्मक सगठन का सक्षिप्तीकरण निम्न शब्दो मे किया है[1] —

(1) इसकी पृष्ठभूमि मे सदैव यह आशका विद्यमान रहती है कि समन्वित अहम् (ego integration), आन्तरिक रूप से उत्पन्न सवेगात्मक तनावो एव चिन्ता से नष्ट हो सकता है।

(2) इस आशका से बचाव के लिए व्यक्ति दोषपूर्ण रक्षात्मक उपायो (defective defense systems) का सहारा लेता है जो अचेतन के प्रभाव को रोकने मे असमर्थ होता हैं। अन्य शब्दो मे, ये रक्षात्मक युक्तियाँ अचेतन अहम्, इदम् व परम् प्रक्रियाओ के अन्तर्भेदन (intrusions) को रोकने मे असमर्थ होती है।

(3) ये अन्तर्भेदन, भयपूर्ण हवाई कल्पनाओ (fearful fantasies) के रूप मे स्फाटित (crystalized) हो जाती है।

(4) ये हवाई कल्पनाएँ (fantasies) मुख्यत अचेतन व शैशवावस्था से सम्बन्धित होती हैं जो कि बाह्य पदार्थो या परिस्थितियो से प्रतीकात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं।

केमरॉन के अनुसार —

"... these fantasies, usually unconscious and often infantile are *Symbolized as something axternal*, something that serves as an equivalent for the internal danger—a threating animal, the brink of a cliff, a storm, mobs, dangeros wide-open or shut in places "[2]

(5) **केमरॉन** के अनुसार, इस अन्तिम विस्थापन व प्रक्षेपण के द्वारा दुर्भीति लक्ष्य पूर्ण रूप से तैयार हो जाते है तथा रोगी इन्हे स्वीकार नही कर पाता।

दुर्भीति प्रतिक्रियाओं के प्रकार
(Varieties of Phobic Reactions)

असामान्य या असंगत भय अनेक प्रकार का हो सकता है। आगे हम कुछ मुख्य प्रकारो के बारे मे वर्णन दे रहे है

---

1 Cameron, N . *Personality Development and Psychopathology*, p 278

2. *Ibid*, p 279.

(1) विवृत स्थान भीति (Agoraphobia)—खुले स्थान का भय ।
(2) उत्तुगताभीति (Acrophobia)—ऊँचे स्थान का भय ।
(3) सवृन्त-स्थान भीति (Claustrophobia)—बन्द या तग स्थान का भय ।
(4) भीड-भीति (Ochlophobia)—भीड का भय ।
(5) रुधिर-भीति (Hematophobia)—रुधिर को देखकर डरना ।
(6) ससर्ग-भीति (Mirophobia)—एकान्त मे रुकने का भय ।
(7) जीवविष-भीति (Toxophobia)—जीवविष से भय ।
(8) चलन-भीति (Locomotion-phobia)—चलने से डरना ।
(9) जन्तु-भीति (Zoophobia)—विशिष्ट या सभी प्रकार के पशुओ से भय ।
(10) व्याधि-भीति (Pathophobia)—रोग का असामान्य भय ।

यहाँ दुर्भीति के विभिन्न प्रकारो के बारे मे वर्णन करना उचित प्रतीत होता है । अत. नीचे हम कुछ विशिष्ट प्रकारो के बारे मे वर्णन प्रस्तुत करेंगे .—

विवृत्त स्थान भीति या खुले स्थान का भय
(Agoraphobia or the Fear of Open Place)

विवृत्त स्थान भीति से ग्रस्त रोगी खुले मैदान, पार्क, खुली छत या अन्य खुले स्थानो से डरता है । इस प्रकार के भय का उद्भव वास्तविक खतरनाक घटनाओ से होता है । वैसे तो सामान्य रूप से व्यक्ति रात्रि मे या अन्य घटनाओ से घटित होने के कारण अकेले पार्क या खुले स्थान मे जाने से डरता है । परन्तु इस प्रकार के असगत भय मे एकान्त स्थान मे किसी भी प्रकार का वास्तविक भय विद्यमान नही होता है । रोगी से इस भय का कारण पूछा भी जावे तो वह कुछ भी वर्णन करने मे स्वय को असमर्थ पाता है ।

उत्तुगता भीति या ऊँचे स्थान का भय
(Acrophobia or the Fear of Height)

इस प्रकार के भय से ग्रस्त रोगी ऊँचे स्थान, यथा—मकान की छत, पहाड या अन्य ऊँचे स्थान पर जाने से डरता है । वह जब भी ऊँचे स्थान पर पहुँचता है, तो भय के मारे काँपने लगता है । यही नही, जब कभी वह ऊँचे स्थान के बारे मे सोचता है, तो भय से चिन्तित हो जाता है । जन्म से ही मानव मे ऊँचे स्थान से सम्बन्धित भय विद्यमान नही होता है । धीरे-धीरे प्रत्येक बालक यह जानने लगता है कि ऊँचे स्थान पर जाने मे खतरा है । अत. वह ऊँचे स्थानो पर जाने से भयभीत होने लगता है । अतः यहाँ वह इस प्रकार के भय को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सीखता है । परन्तु असंगत व अतार्किक भय (ऊँचे स्थान का) मे इस प्रकार की कोई भी स्थिति विद्यमान नही होती है, जैसे—**कैमरॉन** ने एक 30 वर्षीय अविवाहित स्त्री का वर्णन किया, जो कि इस प्रकार की दुर्भीति से पीडित थी, वह मकान की दूसरी व तीसरी मजिल तक जाने मे डरती थी । जब कभी वह जाने का प्रयास करती थी और यहाँ तक कि ऊँचे स्थान पर जाने की सोचती भी थी तो काफी भयभीत हो जाती थी ।

संवृन्त-स्थान भीति या बन्द या तंग स्थान का भय
(Claustrophobia or the Fear of Being Closed in)

संवृन्त-स्थान-भीति मे व्यक्ति जब कभी भी अपने को बन्द या तग स्थान मे पाता है इस सम्बन्ध में चिन्तन करता है या सोचता है तो उसे अतार्किक चिन्ता का अनुभव होता है।[1] इस प्रकार की स्थिति में पड़ जाने पर व्यक्ति अति चिन्तित हो जाता है, उसके अन्दर एक तनावपूर्ण स्थिति का जन्म हो जाता है तथा उसकी हृदय गति व श्वास गति (respiration rate) मे वृद्धि हो जाती है। वह तग स्थान या वन्द स्थान से दूर रहने का प्रयास करता है तथा रहने पर वह आराम से रहता है।

भीड़-भीति
(Ochlophobia)

भीड़-भीति या ओक्लोफोबिया से सम्बन्धित रोगी किसी प्रकार की भीड़ परिस्थिति से भयभीत हो जाता है तथा वह उस स्थान पर जाने से कतराता है जहाँ भीड रहती है। वह भीड मात्र की कल्पना या चिन्तन मात्र से ही अत्यधिक चिन्तित हो जाता है। भीड़-भीति से सम्बन्धित एक रोचक उदाहरण बैग्बी (Bagby) ने दिया है। एक मनोवैज्ञानिक के पास एक युवा युवती, जोकि भीड़ के भय से अत्यधिक पीडित थी, चिकित्सात्मक सहायता लेने आयी। उसे जव कभी भी यह आभास होता था या वह ऐसी परिस्थिति मे होती है कि कुछ लोग उसके चारो ओर से घेरे हैं या वह भीड़ मे है तो उसे भय लगने लगता था कि वह कुचल जायेगी या उसका दम घुट जावेगा। वैसे वह इस तथ्य से इकार नही करती थी कि इस प्रकार का भय उसकी मूर्खता का परिचायक है, परन्तु फिर भी इसी भय के कारण घर मे कैदी के समान ही रहती थी। यहाँ तक कि वह इस भय के कारण ही भीड़ से भरी बस या रेल आदि मे सफर करने तक के लिए भी तैयार नही होती थी। इस प्रकार का भय उसे वचपन से ही था परन्तु वह उसके कारण को नही जानती थी। मुक्त-साहचर्य विधि के द्वारा उसने अपने इस भय का कारण वताया कि जव वह छोटी थी तो उसे इस बात की आज्ञा प्राप्त हुई कि वह घर के सामने से गुजरने वाले सरकस के जुलूस को देख सकती है, परन्तु उसे यह चेतावनी भी दे दी गई थी कि वह जुलूस के पीछे-पीछे शहर तक नही जावेगी। परन्तु इस आज्ञा की अवज्ञा करके वह जुलूस के साथ-साथ नगर के केन्द्र तक पहुँच गई। यहाँ उसने अपने आप को अनेक व्यक्तियो के वीच घिरा पाया। उसने धक्का देकर यह यह प्रयास किया कि उसे रास्ता

---

1. "The Claustrophobic person experiences irrational anxiety whenever he finds himself in an enclosed or narrow place, or whenever he thinks he may not be able to escape from one."
—Cameron : *Ibid*. p. 285.

मिल जावे परन्तु इसमे उसे सफलता प्राप्त नही हुई। वह अत्यधिक भयभीत हो गई तथा रोने लगी। उसे इस प्रकार रोते हुए देखकर एक व्यक्ति ने यह समझा कि यह बालिका नेत्रहीन है। अत उसने उसे भीड से निकाल दिया। कुछ समय उपरान्त बालिका का भय समाप्त हो गया तथा वह अपने घर लौट आई। उसने अपने माँ-बाप से इस घटना का कोई जिक्र नही किया तथा धीरे-धीरे यह घटना विस्मृत हो गई। इस प्रकार जब उसे अपने भय का कारण बता दिया गया तो उसने अपने भीड़-भीति पर काबू कर लिया।

जन्तु भीति या पशु जीवन का भय
(Zoophobia—The Fear of Animal Life)

जन्तु भीति मे रोगी या तो किसी विशिष्ट पशु या समस्त पशुओ से अत्यन्त भयभीत रहता है। वह पशुओ के करीब जाने मे डरता है या उन्हे देखकर भी उसे चिन्ता हो जाती थी। एक पहलवान, जो कि कीडे-मकोड़ों से भयभीत रहता था, चिकित्सा करने के उपरान्त इस भय के कारण का पता चला कि पहलवान के अतीत जीवन मे एक घटना घटित हुई थी। उसके कान मे एक कीड़ा घुस गया था जिसे पिचकारी आदि की सहायता से बड़ी कठिनाई से निकाला गया था। इसी भयंकर अनुभव के कारण ही उसे जन्तुओ से डर लगता था।

इस कारण दुर्भीति के मुख्य प्रकारों के वर्णन से हम यह देखते है कि भय का एक वास्तविक कारण होता है जिसका ज्ञान रोगी को नही होता। परन्तु अगर रोगी को अपने भय का कारण ज्ञात हो जावे तो वह अपने भय पर काबू कर सकता है।

दुर्भीति के लक्षण
(Symptoms of Phobia)

दुर्भीति रोगियो के भय अतार्किक या असगत होते हैं। सामान्य रूप से भी व्यक्ति इस प्रकार के भयो का अनुभव करता है परन्तु असामान्य भय अपेक्षाकृत अधिक तीव्र (intense) होते हैं। इस प्रकार के भयो के रोगो के दैनिक क्रिया-कलापो मे बाधा पहुँचती है। रोगी यह जानते हुए भी कि इस प्रकार का भय गलत, असगत या अतार्किक है, अपने व्यवहार को परिवर्तित नही कर सकता। वह सोचने मात्र से ही भय का अनुभव करने लगता है। अगर भयात्मक परिस्थिति, उपस्थित हो जावे तो वह अत्यधिक भयभीत हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उसके शरीर मे तीव्र गति से विभिन्न आन्तरिक परिवर्तन, जैसे—हृदय-गति, श्वास-गति आदि होते है। कभी-कभी इस प्रकार के अतार्किक व असगत भय से रोगी मे अन्य लक्षण जैसे सिर-दर्द, पेट की खराबी, पीठ या शरीर के अन्य स्थानों मे दर्द आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं।

सामान्य भय मे अतार्किकता की मात्रा कम होती है तथा अपेक्षाकृत इनका स्वरूप भी अस्थायी होता है। सामान्य भय व्यक्ति के दैनिक जीवन मे बाधा उत्पन्न

नही करता। अन्य शब्दो मे, सामान्य भय व असामान्य भय मे मात्रा (degree) का अन्तर होता है क्योकि वही भय सामान्य व्यक्तियो मे भी पाया जाता है परन्तु उसका प्रभाव व्यक्ति की क्रियाओ पर नही पड़ता जबकि असामान्य व्यक्तियो मे भय अतिरंजित व विकृत रूप (exaggerated and perverted) मे विद्यमान होता है।

दुर्भीति के कारण
(Etiology of Phobia)

अन्य असामान्यताओ की तरह दुर्भीति मे भी पूर्वनिहित कारण विद्यमान रहते है। कुछ परिस्थितियाँ मनुष्य के सम्मुख इस प्रकार की उपस्थिति होती हैं जो उसे भयभीत बनाती है। व्यक्ति अपने अहम् (ego) की रक्षा के लिए इस प्रकार की भयात्मक स्थितियो से पलायन करता है। वह यह तो समझता है कि उसका इस प्रकार का भय असगत व अतार्किक है परन्तु अन्तर्निहित अन्तर्द्वन्द्व से बचाने के लिए वह उन स्थितियो या वस्तुओ से भयभीत होता रहता है। दुर्भीति सम्बन्धी स्थितियो का वर्णन कोलमैन (Coleman) के अनुसार इस प्रकार है।

(1) चिन्ता का व्यवस्थापन
(Displacement of Anxiety)

दुर्भीति मे प्रतिबल स्थिति से उत्पन्न चिन्ता का विस्थापन किसी अन्य वस्तु या स्थिति मे हो जाता है। स्मरण रहे कि इस रक्षायुक्ति के महत्त्व को मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के समर्थको ने बताया था। फ्रायड के मतानुसार दुर्भीति मे चिन्ता का जो विस्थापन होता है, वह मातृ-भावना-ग्रन्थि से सम्बन्धित होती है। फ्रायड ने अपने इस तथ्य के समर्थन मे एक पाँच वर्षीय बच्चे का उदाहरण दिया है जिसकी ऑडीपस भावना-ग्रन्थि का ठीक प्रकार से समाधान नही हुआ था जिसके कारण उसने अपने पिता के प्रति भय को स्थानान्तरित करके घोडो के साथ जोड दिया था। फ्रायड ने इस केस के आधार पर यह निष्कर्ष ज्ञात किया कि प्रौढो मे भी दुर्भीति का मुख्य कारण उनकी बाल्यावस्था की ऑडीपस भावना-ग्रन्थि ही होती है।

परन्तु बाद की खोजो के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि दुर्भीति का कारण केवल यौनिक समस्याएँ (sexual problems) ही नही है बल्कि अन्य प्रतिबल या दबावपूर्ण परिस्थितियाँ भी है जिनके विस्थापन के कारण दुर्भीति होता है।

व्यक्ति की अन्तर्निहित अचेतन चिन्ता का रूप केवल विस्थापन ही नही होता है, बल्कि कभी-कभी प्रतीकात्मक (symbolic) रूप से भी व्यक्त होती है। अचेतन चिन्ता को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त करने मे अहम् को अपनी वास्तविकता का आभास नही हो पाता तथा वह अवमूल्यन से बच जाता है। जैसे व्यक्ति, जिसे इस बात का भय है कि कही उसकी कार्य अकुशलता के कारण उसे नौकरी से पृथक न कर दिया जावे, उसके अन्दर इस प्रकार की दुर्भीति (phobia) का जन्म हो जावे कि वह उस ऑफिस मे ही न जावे। इसी प्रकार ऊँचे स्थान का भय, असफलता के भय का प्रतीक हो सकता है। इन प्रतीकात्मक रूपो मे रोगी की अन्तर्निहित अचेतन

चिन्ता कुछ समय तक दबी रहती है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को आराम प्राप्त हो जाता है, परन्तु अधिक तीव्र हो जाने पर उसका समस्त व्यवहार असन्तुलित हो जाता है।

(2) खतरनाक आवेगों के प्रति सुरक्षा (आन्तरिक धमकी)
(Defence Against Dangerous Impulses : Internal Threats)

कभी-कभी दुर्भीति का कारण व्यक्ति की दमित आक्रामक या लैंगिक आवेगों (sexual impulses), जो कि उसे खतरनाक स्थिति में ला सकते हैं, भी हो सकती है। रोगी इन दमित व समाज-विरोधी कामुक इच्छाओं से बचने के लिए दुर्भीति प्रतिक्रियाओं का सहारा ले लेता है; जैसे—एक पति, जिसके अचेतन में अपनी पत्नी को पानी में गिराकर मारने की इच्छा विद्यमान है तो उसमें जल-दुर्भीति (water phobia) उत्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार एक पत्नी जिसके अचेतन में अन्य पुरुष के साथ सम्भोग करने की इच्छा विद्यमान है, तो उसमें एकान्त स्थान का दुर्भीति उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार की स्थिति में उस स्त्री की अचेतन इच्छा के प्रकाशन की सम्भावना कम हो जाती है, क्योंकि न ही वह एकान्त स्थान में होगी और न ही उसके मन में अन्य पुरुष से संभोग की इच्छा उत्पन्न होगी। इसी प्रकार प्रथम उदाहरण में पति ने अपनी पत्नी के प्रति वैमनस्यता व विरोध की भावना को छिपाने या बचाव करने के लिए जल दुर्भीति का सहारा लिया है। इसी से सम्बन्धित एक उदाहरण यह भी हो सकता है कि जिस स्त्री के अन्दर (अचेतन में) पति या पुत्र का गला काटने की इच्छा विद्यमान है तो वह चाकू आदि तेज धार वाले हथियारों के प्रति अतार्किक भय उत्पन्न कर सकती है।

कभी-कभी एक ही रोगी में अनेक प्रकार के दुर्भीति उत्पन्न हो जाते हैं; उदाहरणस्वरूप—क्रेन्स (Kraines) ने एक ऐसी युवा लड़की का उल्लेख किया है जिसे अनेक असंगत या अतार्किक भय परेशान करते थे। जैसे, कभी वह आदमियों से, अकेले रहने में, बन्द स्थानों, विभिन्न रोगों से ग्रस्त होने में, पागल हो जाने सम्बन्धी आदि विचारों से भयभीत हो जाती है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने से यह पता चला कि इस प्रकार के भयों का कारण वह नैतिक वातावरण था जिसमें उसका पालन-पोषण किया गया था। जैसे अगर कोई व्यक्ति उसे छू लेता या चुम्बन ले लेता था तो वह कामुक हो जाती थी तथा तीव्र काम-इच्छा उत्पन्न हो जाती है परन्तु दूसरे क्षण ही उसके मन में यह भावना आ जाती थी कि काम इच्छा तो एक प्रकार का पाप है। धीरे-धीरे वह आदमियों से ही भयभीत होने लगी। अतः दुर्भीति के कारण व्यक्ति की दमित इच्छाएँ आदि भी हो सकती हैं।

(3) सम्बद्धन
(Conditioning)

दुर्भीति का विकास एक सरल भय प्रतिक्रिया के सम्बद्ध होने के कारण भी हो सकता है। अन्य शब्दों में, व्यक्ति सम्बद्धन के कारण दुर्भीति की भय स्थिति से

सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। अनेक अध्ययनो के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि अगर भयात्मक उद्दीपक के साथ तटस्थ उद्दीपक को भी प्रस्तुत किया जावे तो आगे चलकर तटस्थ उद्दीपक ही भयात्मक उद्दीपक का रूप ले लेता है। अगर भय की स्थिति अति तीव्र व गहरी है तो भविष्य मे भी भय उत्पन्न हो सकता है। कोलमैन ने एक 18 वर्षीय लड़की का इस सम्बन्ध मे उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसे कुत्तो से एक बड़ा भय लगता था। साधारण रूप से वह युवती यह जानती थी कि उसका यह भय निरर्थक व असगत है परन्तु फिर भी वह जब कभी भी कुत्तो को देखती थी, भय से काँपने लगती थी, हृदय गति तीव्र हो जाती थी तथा वह सुरक्षित स्थान की तलाश के लिए दौड़ जाती थी। इन क्रियाओ को देखकर कुत्ता भी उसके पीछे भगने लगता था। अध्ययन करने से यह ज्ञात हुआ कि जब वह 8 वर्ष की थी तब उसे एक कुत्ते ने काट खाया था। उसका यह अनुभव दुर्भीति के रूप मे व्यक्त हुआ।

उपचार

(Treatment)

दुर्भीति के रोगियो के उपचार के लिए विभिन्न विधियो का प्रयोग किया जाता है। किस प्रकार के ढंग से दुर्भीति के रोगियो का उपचार किया जावे, इसका निर्धारण इस बात पर होता है कि उसे उत्पन्न करने वाली कौन-कौन-सी परिस्थितियाँ थी तथा उनका स्वरूप क्या था? वैसे तो रोगी यह समझता है कि उसका भय अतार्किक व असंगत है परन्तु उसमे अगर और अधिक विश्वास व साहस उत्पन्न किया जाय तो उसे भयात्मक स्थिति के करीब लाया जा सकता है। मुक्त साहचर्य विधि से वह भयात्मक स्थिति के बारे मे बता सकता है। अगर दुर्भीति मे व्यक्ति अपनी चिन्ता को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त करता है तो इस स्थिति मे रोगी की स्थितियो व व्यक्तित्व-संरचनाओ का ज्ञान प्राप्त करके ही मनोचिकित्सा का उपयोग करना चाहिए।

22

मनोस्नायुशैथिल्य या मनःश्रान्ति
(ASTHENIC REACTION OR NEURASTHENIA)

मनोस्नायुशैथिल्य की प्रकृति
(Nature of Neurasthenia)

मन स्तप्त प्रतिक्रियाओं का आधुनिक वर्गीकरण क्रेपलिन (Krepelin) ने किया जिसने कि इसकी तीन श्रेणियों का उल्लेख किया :—

(i) मन श्रान्ति (Neurasthenia)
(ii) मनोदौर्बल्य (Psychasthenia)
(iii) क्षोभोन्माद (Hysteria)

क्योकि अधिकतर पुस्तकें 1950 के आसपास लिखी गई हैं अतः सभी विद्वान् लेखको ने क्रेपलिन के वर्गीकरण को ही आधार माना है। परन्तु आज तो केवल नाममात्र या ऐतिहासिक रुचि की ही दृष्टि से मन.श्रान्ति का महत्त्व रह गया है। सन् 1880 मे बीयर्ड (Beard) नामक अमेरिकन चिकित्सक ने मनःश्रान्ति (Neurasthenia) पद का प्रयोग अपनी पुस्तक *"A Practical Trea'ise on Nervous Exhaus'ion"* मे किया था। बीयर्ड ने इस पद का अर्थ 'अत्यधिक थकान' (Heightened fatigue) के रूप में किया था। उसके अनुसार मनःश्रान्ति में मुख्य रूप से स्वाद का अभाव (Lack of taste), शूल (Aches), पीड़ा (Pain) आदि की प्रधानता होती है। अन्य शब्दो मे, बीयर्ड ने इस पद का अर्थ स्नायुविक दुर्बलता से लगाया था। परन्तु उसके मत को बाद के विद्वानो ने स्वीकार कर दिया। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन.श्रान्ति निरन्तर होने वाली कुसमायोजित संवेगात्मक प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। अन्य शब्दों में, मन.श्रान्ति वह मानसिक असामान्यता है जो निरन्तर होने वाली संवेगात्मक तनावों के फलस्वरूप उत्पन्न

आराम करने के बावजूद भी समाप्त नही होती है और न ही इसकी उत्पत्ति अत्यधिक कार्य करने के फलस्वरूप होती है। इस प्रकार का रोगी लगातार कई घण्टो तक विश्राम करने के बाद भी थकान दूर नही कर पाता। वह रात्रि-भर गहरी निद्रा मे सोता है परन्तु प्रात काल उठने पर भी थकान को महसूस करता है। रोगी के अन्दर थकानावस्था सदैव विद्यमान होती है तथा वह इसका जिक्र प्रत्येक व्यक्ति से करता है।

(2) **सिर-दर्द** (Headache)—मन श्रान्ति का एक प्रमुख लक्षण रोगी मे निरन्तर सिर-दर्द का बना रहना भी है। इसके फलस्वरूप वह काफी बेचैन दिखाई पड़ता है तथा उसकी आँखें थकी व बोझिल हो जाती है। वह इस सिर-दर्द से अत्यधिक बेचैन होकर कभी एक डाक्टर के पास तो कभी दूसरे के पास जाता है।

(3) **परिश्रान्ति** (Exhaustion)—परिश्रान्ति भी मन श्रान्ति का प्रमुख लक्षण है। रोगी दुर्बलता का अनुभव करता है तथा उसे ऐसा आभास होने लगता है कि उसके शरीर मे रक्त ही नही है।

(4) **विषाद** (Sadness)—मन श्रान्ति का रोगी निरन्तर थकान, सिर-दर्द, परिश्रान्ति से पीडित होने के कारण वाह्य पर्यावरण के प्रति उदासीन हो जाता है। उसे किसी कार्य मे रुचि प्रतीत नही होती।

(5) **अजीर्ण या मन्दाग्नि** (Indigestion)—इस प्रकार के रोगी मे अजीर्ण का लक्षण भी पाया जाता है। रोगी की पाचन-शक्ति क्षीण हो जाती है, उसे भूख नही लगती है तथा कुछ खा लेता है तो हजम नही कर पाता। वह भूख बढाने के लिए अनेक प्रकार की औषधियो का सेवन करता है। कुछ रोगियो को जी मिचलाने या उल्टी करने की भी शिकायत हो जाती है। कभी-कभी रोगी पेट फूलने की भी शिकायत करता है।

(6) **अनिद्रा** (Insomnia)—मन श्रान्ति का एक अन्य लक्षण अनिद्रा है। रोगी शान्तिपूर्वक सो भी नही पाता है या कुछ रात गए ही उसे नीद आती है। कुछ रोगी सोने के एक-आधे घण्टे उपरान्त जाग जाते हैं तथा एक बार जाग जाने पर पुन सो नही पाते।

(7) **स्वार्थ व आलस्य** (Selfishness and Idleness)—मन श्रान्ति के रोगी स्वार्थी व आत्मलीन होते हैं। रोगी सदैव अपने ही बारे मे सोचा करता है। अन्य व्यक्तियो मे जब कभी वह मिलता है तो अपनी बातें अधिक कहता है और अन्य व्यक्तियो की कम सुनता है। वह अन्य व्यक्तियो से उनके स्वास्थ्य के बारे मे अधिक पूछताछ करता है। वह स्वार्थी होने के साथ ही साथ आलसी भी होता है। वह किसी भी कार्य को नही करता। कई दिनो तक स्नान न करना, कपडे न बदलना आदि की आम शिकायत इन रोगियो मे होती है। इन्हे इतना आलस्य होता है कि रात मे बिना बत्ती बुझाए ही सो जाते है। वह साधारण से साधारण कार्य करने मे भी आलस्य का प्रदर्शन करता है। अपनी स्त्री को वह सदैव अपने किसी न किसी

अत्यधिक संभोग को भी इसका कारण मानना न्यायसंगत नही है, क्योकि ऐसा देखा गया है कि अनेक व्यक्ति जो लैंगिक सभोग में रुचि तक नही रखते, वे भी मन श्रान्ति रोग से ग्रस्त हो जाते हैं।

(4) **दुर्बल केन्द्रीय स्नायुमण्डल** (Weak Central Nervous System)—कुछ शरीर-मनोवैज्ञानिको का मत है कि मन.श्रान्ति का कारण दुर्बल केन्द्रीय स्नायुमण्डल है। जैने (Janet) ने प्रमुख रूप से इस तथ्य को स्वीकार करते हुए बताया है कि केन्द्रीय स्नायुमण्डल के कमजोर होने के कारण व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं में अव्यवस्था आ जाती है, जिसके कारण व्यक्ति में आलस्य, थकान, विषाद आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु आधुनिक मनोवैहिक अध्ययनों से यह पता चलता है कि दुर्बल केन्द्रीय स्नायुमण्डल मन.श्रान्ति का कारण नहीं है, क्योकि जिन व्यक्तियों का यह स्नायुमण्डल सबल होता है, उनमे मन.श्रान्ति के लक्षण पाए जाते है।

(5) **लैंगिक विपर्यास** (Sexual Perversions)—प्रमुख मनोविश्लेषणवादी फ्रायड ने मन.श्रान्ति का कारण लैंगिक विपर्यास माना है। फ्रायड के अनुसार, विभिन्न लैंगिक विकृतियो, यथा—हस्तमैथुन (masturbation), समलैंगिकता (homosexuality) आदि से एक तरफ तो व्यक्ति में परिश्रान्ति (exchaustion) उत्पन्न होती है और दूसरी तरफ अन्तर्द्वन्द्व व अपराध भावना (guilt feeling) का जन्म हो जाता है, जो मन श्रान्ति के विभिन्न लक्षणों को उत्पन्न करने में सहायता पहुँचाते हैं।

(6) **अल्प परिश्रम** (Under Work)—मन श्रान्ति का एक मुख्य कारण, कुछ विद्वानो ने अल्प परिश्रम को माना है। ह्वाइट (White) ने इस मत का समर्थन करते हुए बताया है कि काम न करने से व्यक्ति निष्क्रिय हो जाता है तथा अपने आपको आराम देने का प्रयास करता है। इसी कारण उसे सदैव श्रान्ति का अनुभव होता है, परन्तु यहाँ अल्प परिश्रम से थकान, विषाद, श्रान्ति आलस्य आदि लक्षण उत्पन्न नही होते हैं।

(7) **कष्टदायक परिस्थिति से बचने की इच्छा** (Will to Escape from Uninterested Situation)—वोल्फ (Wolf) का मत है कि मन.श्रान्ति का कारण व्यक्ति की कष्टदायक परिस्थिति से बचने की इच्छा होती है। व्यक्ति जब समायोजन करने मे समर्थ नही होता या अप्रिय परिस्थिति मे समायोजन नही कर पाता तो इन कष्टदायक परिस्थितियो से बचने के लिए उसमे मन श्रान्ति के विभिन्न लक्षणों का प्रादुर्भाव हो जाता है। यह मत कुछ हद तक मन श्रान्ति पर उचित प्रकाश डालती है।

(8) **मानसिक विक्षोभ** (Mental Disturbances)—कॉरियट (Coriat) आदि कुछ विद्वानो का विचार है कि मन.श्रान्ति का मानसिक विक्षोभ भी एक मुख्य कारण है, क्योकि मानसिक विक्षोभ से व्यक्ति मे थकावट के भाव उत्पन्न हो जाते है जिसके फलस्वरूप थकान न रहते हुए भी थकान का अनुभव होता है।

(9) **अन्तर्मुखी व्यक्तित्व** (Introvert Personality)—कुछ विद्वानो का विचार है कि मन श्रान्ति रोग उन व्यक्तियो को शीघ्र हो जाता है जिनका व्यक्तित्व अन्तर्मुखी प्रकार का होता है। रोगी के लक्षणो को ध्यानपूर्वक देखने से इस विचार की सार्थकता कुछ अंश तक सिद्ध भी होती है, क्योकि इसका रोगी, अन्य व्यक्तियो की बातें कम सुनना चाहता है, अपनी तकलीफो का बयान अधिक करता है। वह अपनी राम-कहानी के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि अन्य कोई व्यक्ति, यहाँ तक कि उसकी पत्नी भी, उसका कोई ख्याल नही रखती। जब कभी भी कोई घटना घटित होती है तो रोगी अपनी इज्जत, सम्मान व आराम आदि का ही ख्याल रखता है। उसे प्रत्येक समय अपनी ही चिन्ता होती है तथा शनै शनै वह अपनी ही कठिनाइयो को बढाता रहता है।

(10) **स्वाग्रह हीनता व सामाजिक असुरक्षा** (Self-assertion, Inferiority and social insecurity)—प्रमुख नव्य-फ्रायडवादियो, जैसे—एडलर, युंग, हॉर्नी, फ्रॉम, सुलीवन आदि ने स्वाग्रह, हीनता व सामाजिक सुरक्षा के भाव को मन श्रान्ति का कारण माना है।

(1) **संवेगात्मक तनाव** (Emotional Tension)—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन श्रान्ति उत्पन्न होने का प्रमुख कारण सवेगात्मक तनाव है, क्योकि व्यक्ति मे जब इस स्थिति का जन्म हो जाता है तो व्यक्ति को श्रान्ति या थकान का अनुभव होने लगता है तथा यह स्थिति बराबर बनी रहने पर मन श्रान्ति का विकास हो जाता है।

(12) **पूर्वनिहित व तात्कालिक कारण** (Predisposing and Precipitating Causes)—प्रो० कोलमैन के मतानुसार, मन श्रान्ति के पूर्वनिहित कारण मे दोषपूर्ण व्यक्तित्व-विकास (fault development of personality) तथा तात्कालिक कारण वर्तमान जीवन की तीव्र व दबावपूर्ण स्थितियाँ हैं।

मनःश्रान्ति के प्रकार
(Kinds of Neurasthenia)

मनोचिकित्सको ने मन.श्रान्ति के दो प्रकार बताए हैं, यथा —

(1) तीव्र या गौण मन श्रान्ति (Acute or Secondary Neurasthenia),

(2) स्थायी या प्राथमिक मन.श्रान्ति (Chronic or Primary Neurasthenia)।

इन दोनो प्रकार के मन.श्रान्ति रोग मे केवल अश व लक्षणो की तीव्रता की दृष्टि से ही अन्तर है। संक्षेप मे यह दोनो प्रकारो के बारे में जानना आवश्यक प्रतीत होता है —

(1) तीव्र या गौण मनःश्रान्ति
(Acute or Secondary Neurasthenia)

इस प्रकार की मन·श्रान्ति मुख्य रूप से उन लोगों को होती है जो क्षीणकारी व शरीर में किसी प्रकार की विष छोडने वाली व्याधियो से ग्रस्त होते हैं। यह रोग

उन व्यक्तियो को भी हो जाता है जो आराम नहीं करते तथा निरन्तर कार्य में ही व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार के रोग में थकान के लक्षण को छोड़कर अन्य लक्षण दिखाई नही पडते। सैनिको में इस प्रकार की मन.श्रान्ति अक्सर दिखाई पड़ती है जिसका क्रमश विकास होता है। थकान प्रमुख लक्षण होता है परन्तु रोगी अनिद्रा, भूख की कमी आदि की भी शिकायत करता है। मनोवैज्ञानिक लक्षणों के अतिरिक्त कुछ शारीरिक लक्षण, जैसे—नाड़ी-गति मे परिवर्तन पसीना अधिक आना, हृदय गति मे वृद्धि आदि भी दिखाई पड़ती है।

(2) स्थायी या गौण मनःश्रान्ति
(Chronic or Primary Neurasthenia)

स्थायी मन श्रान्ति ग्रस्त रोगी का स्वभाव चिड़चिड़ा होता है। उसे निरन्तर थकान का अनुभव होता है तथा काफी आराम करने के वाद भी उसकी थकान में कमी नही होती है। उसके शरीर के अन्य भागों में दर्द रहता है तथा रोगी आत्म-केन्द्रित वेचैन रहता है। हस्त-मैथुन की क्रिया भी इन रोगियों में कभी-कभी दिखाई पड़ती है। ऐसा व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के वारे में अधिक चिन्तित रहता है छोटी-छोटी वातों पर वह लडने लगता है।

मनःश्रान्ति का एक उदाहरण
(An Example of Neurasthenia)

मनःश्रान्ति के विभिन्न लक्षणो, कारणों आदि को जानने के उपरान्त एक उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता है। एक तीस वर्षीय युवा प्रतिभाशाली प्रोफेसर मन श्रान्ति रोग का शिकार हो गया। उसे निरन्तर थकान व सिर-दर्द के लक्षणो ने इतना व्याकुल वना दिया था कि उसे सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे देना पडा। वह एम० ए० पास था पढाने मे वहुत कुशल था परन्तु वह शीघ्र ही थक जाता था। उसे रात्रि को वहुत देर से नींद आती थी, तथा नींद सुखद व शान्ति-दायक नही होती थी, क्योकि वह स्वप्न मे विकृत काम-सम्वन्धी दृश्य देखता था। उसे कब्ज की शिकायत थी तथा वह वार-वार पेशाव करने जाता था। पहले उसने कुछ दिनों की छुट्टी लेकर अपनी चिकित्सा करवाई, परन्तु कोई लाभ न होने के कारण वाद मे इस्तीफा दे दिया।

इस प्रोफेसर का जीवन अध्ययन करने से यह पता चलता है कि वह शुरू से अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह नहीं करता था। उसकी स्त्री उससे सन्तुष्ट नहीं थी, क्योंकि प्रोफेसर को समजाति-लैंगिकता (homo-sexuality) मे ही समय नहीं मिलता था। उसने अपनी पत्नी से विवाह के 3 वर्ष वाद प्रथम वार सम्भोग किया, जिससे कि एक वच्चे का जन्म हुआ। वच्चा होने के वोझ को उसने वहुत संकुचित दृष्टि से देखा तथा पत्नी को मायके भेज दिया। वह वार-वार यह कहता रहता था कि वच्चो की संख्या वढ़ने से उनका भार कौन वहन करेगा ? उसकी महत्वाकांक्षा

तो बडी-बडी थी परन्तु उसे उनके समान महत्त्व व सम्मान का पद नही मिला था। उसे एक वार हस्तमैथुन के लिए मारा भी गया था तभी से उसके मन मे अपराध भावना का जन्म हो गया था। उसका पालन-पोषण पिता के कडे नियन्त्रण मे हुआ था तथा माँ की सहानुभूति भी उसे प्राप्त नही हुई थी। कॉलेज मे भी वह कडे नियन्त्रण मे रहा। उसका इलाज मनोविश्लेषण द्वारा हुआ तथा उसने अपने लक्षणों की सार्थकता को समझा तथा वह बिल्कुल ठीक हो गया।

मनःश्रान्ति का उपचार या निदान
(Etiology or Treatment of Neurasthenia)

मन श्रान्ति के रोगियो का उपचार करना बडा कठिन है, क्योकि एक तरफ तो इसके उपचार मे अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है और दूसरी तरफ रोगी अक्सर नया इलाज ढूंढा करता है। यही कारण है कि रोगी उन चिकित्सको से पूर्ण उपचार नही करवा पाता जो कि उसके रोग को दूर करने मे सक्षम होते हैं। दूसरी प्रमुख कठिनाई इस रोग मे यह होती है कि रोगी आत्म-केन्द्रित होता है, वह चिकित्सको के निर्देशो को सुनता ही नही।

इनकी चिकित्सा करने के लिए प्रमुख रूप से यह कार्य करना चाहिए कि रोगी किसी प्रकार से विश्राम करते रहे, अपनी शक्ति को व्यर्थ मे नष्ट न करें। उसके सामने ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न नही होने देनी चाहिए कि वह उत्तेजित हो जावें। रोगी को पौष्टिक भोजन देना चाहिए तथा उन्हे किसी भी प्रकार के नशीले पदार्थो का सेवन नही करने देना चाहिए। रोगियो के सामने एक अनुकूल पर्यावरण को बनाये रखना चाहिए जिससे कि उन स्थितियो के निराकरण मे सहायता प्राप्त हो जो रोगी को विकृत रूप से उत्तेजित करती है। इनका उपचार मनोवैज्ञानिक प्रविधियो के द्वारा सम्भव है। सम्मोहन, मुक्त-साहचर्य, नैदानिक साक्षात्कार व मनोविश्लेषण आदि के द्वारा इसका उपचार करना आसान होता है।

अगर रक्त-शर्करा (blood-sugar) बहुत कम हो गई है तो एट्रोपीन (atropin) का इन्जेक्शन देना चाहिए, क्योकि एट्रोपीन के इन्जेक्शन से थकान, नैराश्य व अपराध आदि की भावना कम हो जाती है तथा मनोचिकित्सा की सफलता की आशा हो जाती है।

मूल्यांकन

सुविधा के दृष्टिकोण से हमने मन स्नायुविकृतियो को दो भागो मे विभाजित करके वर्णन प्रस्तुत किया है। पिछले कुछ अध्यायो मे कुछ मुख्य मनोविकृतियो का वर्णन किया गया। चिन्ता मनोस्नायुविकृति की प्रमुख विशेषता भय होती है। परन्तु सामान्य भय तथा इस रोग के भय मे अन्तर है। क्योकि सामान्य चिन्ता किसी न किसी कारण से उत्पन्न होती है जबकि असामान्य चिन्ता बिना किसी कारण से उत्पन्न होती है। चिन्ता मन स्नायुविकृति मे प्रमुख मानसिक लक्षण रोगी का आशंकित होना होता है जिसके कारण वह काफी चिन्तित रहता है तथा उसमे अत्यधिक मानसिक उत्तेजना पायी

जाती है। इन मानसिक लक्षणो के अतिरिक्त रोगी मे अनेक प्रकार के शारीरिक लक्षण भी पाये जाते है। इस रोग के उत्पन्न होने के कारण मनोवैज्ञानिको ने बताये है जैसे — अस्रवित लैंगिक शक्ति (undischarged libido) (फ्रायड), आत्म-प्रकाशन (self-assertion) की प्रवृत्ति का दमन (एडलर), मानसिक सघर्ष व विफलता (ओकेली आदि), इस प्रकार के रोगियो के उपचार के लिए प्राय समूह चिकित्सा व मनो-विश्लेषण का सहारा लिया जाता है।

पहले कुछ मनोवैज्ञानिक मनोग्रस्तता (obsession) व बाध्यता (compulsion) को दो विभिन्न प्रकार के रोग मानते थे। लेकिन बाद मे इन्हे एक ही मन-स्नायुविकृति के दो रूप माना जाने लगा। इस मानसिक रोग मे रोगी की मानसिक दशा इस प्रकार की हो जाती है कि वह यह जानते हुए कि यह कार्य असगत व अतार्किक है फिर भी वह उन क्रियाओ को करता रहता है। इस रोग का प्रमुख लक्षण विचारो का शिकार होना है। वह जानते हुए भी अपने को झक्की विचार से छुडा नही पाता। कभी-कभी एक विचार से छुटकारा पाने पर रोगी दूसरे विचार का शिकार हो जाता है। इसके उत्पत्ति के प्रमुख कारण लैंगिक इच्छा का दमन, पुनरावृत्ति वश-परम्परा आदि हैं। इस प्रकार के रोगियो का उपचार सरल नही है। प्राय इस प्रकार के रोगियो का उपचार संकेत, सम्मोहन, औषधिजन बेहोशी आदि का सहारा लिया जाता है।

क्षोभोन्माद (Hysteria) का रोग प्राचीनकाल से ही काफी प्रचलित है। पहले इसे केवल स्त्रियो का ही रोग माना जाता था परन्तु आज इसे स्त्री व पुरुष दोनो का रोग माना जाता है। इस प्रकार के रोग मे अनेक प्रकार के मानसिक लक्षण, जैसे—निद्राभ्रमण, आत्म-विस्मृति, स्मृतिलोप, सवेगात्मक अस्थिरता व मूर्छा आदि तथा शारीरिक लक्षण जैसे सवेदनात्मक व गत्यात्मक असमर्थता होते है। इस प्रकार के रोगियो के उपचार के लिए मनोविश्लेणात्मक पद्धति व सम्मोहन विधि का सहारा लिया जाता है।

दुर्भीति (Phobia) एक प्रकार का असगत भय है। सामान्य व्यक्ति भयात्मक व खतरनाक परिस्थितियो से अपने को बचाने के लिए उचित प्रतिक्रियाएँ करता है क्योकि वह उसके कारणो को समझता है। परन्तु दुर्भीति भय निराधार व अकारण होता है। दुर्भीति के अनेक प्रकार हैं। इसका प्रमुख लक्षण भय होता है परन्तु इस लक्षण के कारण अनेक अन्य शारीरिक मानसिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते है।

मनोस्नायुशैथिल्य या मन श्रान्ति मे रोगी को अत्यधिक थकान अनुभव होती है परन्तु इस थकान का कारण अधिक कार्य करना नही होता। इस मानसिक रोग के प्रमुख लक्षण थकान, सिर-दर्द, परिश्रान्ति, विषाद, अनिद्रा, स्वार्थ व आलस्य आदि हैं। इस प्रकार के रोगियो का उपचार करना सरल नही है। रोगी को पूर्ण विश्राम देने का प्रयास करना चाहिए।

23

अन्य मनःस्नायुविकृतियाँ
(OTHER PSYCHONEUROSIS)

पिछले अध्यायो मे हमने प्रमुख मन स्नायुविकृतियो के सम्बन्ध मे पढा। यहाँ हम सक्षेप मे इसके अन्य प्रकारो पर प्रकाश डालेगे।

(i) वियोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ (Dissociative Reactions)
  (अ) स्मृति-लोप (Amnesia)
  (ब) फ्यूग दशाएँ (Fuge States)
  (स) निद्राभ्रमण (Somnambulism)
  (द) वहु-व्यक्तित्व (Multiple Personality)
(ii) रोग-भ्रम (Hypochondrical Reaction)
(iii) विषादात्मक मन स्तापी प्रतिक्रियाएँ (Reactive Depression)
(iv) युद्ध मन स्नायुविकृति (War-Psychoneurosis)
(v) अभिघातज मन स्नायुविकृति (Traumatic Psychoneurosis)
(vi) व्यावसायिक मन स्नायुविकृति (Occupational Psychoneurosis)

वियोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ
(Dissociative Reactions)

वियोजनात्मक प्रतिक्रियाओ या व्यवहारो मे व्यक्तित्व के एक या एक से अधिक तत्त्व, (व्यक्तित्व अवस्था) से पृथक् हो जाते है। यह पृथकता अहम् की रक्षा करने के उद्देश्य से होती है, जिसमे चिन्ता उत्पन्न करने वाली क्रियाओ से छुटकारा प्राप्त होता है। अन्य मन स्नायुविकृतियो की अपेक्षा वियोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ विचित्र व नाटकीय प्रकार की होती है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओ मे स्मृतिलोप, फ्यूग दशाएँ, निद्राभ्रमण व वहु-व्यक्तित्व सम्बन्धी व्यवहार भी सम्मिलित होते है।

कोलमैन (Coleman) ने अनुसार, "प्रत्येक केस में रोगी अपने जीवन के कुछ अशों को सफलतापूर्वक चेतन संज्ञा से पृथक् कर देता है ।"[1]

कैमरॉन ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है, "वियोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ वे प्रयास हैं जिनसे अत्यधिक तनाव व चिन्ता से छुटकारा प्राप्त करने के लिए व्यक्तित्व-कार्यो के कुछ अंशों को शेष भाग से पृथक् कर दिया जाता है।"[2] इस प्रकार के व्यवहार मे अस्वीकरण (denial), दमन (repression) व अति अपवर्जन (over-exclusion) मुख्य रक्षात्मक युक्तियो का उपयोग होता है । इस प्रकार के रोगियो को परिचित स्थानो, वस्तुओ, व्यक्तियो आदि अपरिचित प्रतीत होते हैं । अस्वीकरण व दमन जैसे सुरक्षात्मक प्रयासो से इसका सम्बन्ध रूपान्तरित क्षोभोन्माद (conversion hysteria) से जुडता है तथा अहृ-पृथक्करण (ego splitting) व एकान्तता (isolation) इसे मनोग्रस्तता-बाध्यता मनोस्नायुविकृति से जोड़ती है ।

दमन (repression) व मनोविच्छेद (dissociation) मे अन्तर है । दमन वह प्रक्रिया है जिसमे किसी इच्छा, विचार या प्रवृत्ति को बलपूर्वक चेतन मन से निकालकर अचेतन मे ढकेल दिया जाता है, जबकि मनोविच्छेद मे व्यक्तित्व दो भागो मे विभाजित हो जाता है तथा इन दोनों व्यक्तित्व को पृथक्-पृथक् देखा भी जा सकता है । दमन मनोविच्छेद का कारण है जबकि मनोविच्छेद दमन का परिणाम । नीचे हम वियोजनात्मक व्यवहार की प्रत्येक स्थिति का पृथक्-पृथक् वर्णन प्रस्तुत करेंगे :—

(1) स्मृतिलोप
(Amnesia)

वियोजनात्मक व्यवहार की इस स्थिति मे रोगी की स्मृति का पूर्ण या आशिक रूप से ह्रास हो जाता है । रोगी अपना नाम, पता, व्यवसाय व प्रियजनो के साथ सम्बन्ध आदि को भूल जाता है । इस स्मृति ह्रास या लोप की स्थिति का कारण आगिक (organic) नही होता । क्योकि आगिक कारणो से उत्पन्न विस्मरण स्थिति मे व्यक्ति की धारण-शक्ति का वास्तव मे ह्रास हो जाता है तथा व्यक्ति को हमेशा के लिए स्मृति ह्रास हो जाता है । परन्तु इस मन स्नायुविकृति मे वास्तविक रूप से स्मृति नही होती है, क्योकि इस प्रकार की स्थिति मे रोगी प्रत्याह्वान न

1. "In each case, the patient successfully blocks off part of his life from conscious recognition."—**Coleman, J, C.,** · *Ibid*, p. 212.

2 "Dissociative reactions are attempts to escape from excessive tension and anxiety by separting off some parts of personality function from rest."—**Cameron, N, :** *Personality Development and Psychopathology* p. 341.

करने के कारण स्मरण नही कर पाता है। जब स्मृति ह्रास स्थिति समाप्त हो जाती है (सम्मोहन की अवस्था मे भी), तो रोगी की विस्मृति विषय-वस्तु पुन स्मृति हो जाती है।

लक्षण (Symptoms)—स्मृतिलोप (amnesesia) का प्रमुख लक्षण भूलना होता है। इस स्थिति में रोगी अन्य बातो के अलावा अपना नाम, पता, व्यवसाय तक भूल जाता है। वह स्मृतिलोप की स्थिति मे तो रहता है परन्तु उसका व्यक्तित्व सामान्य-सा लगता है, क्योकि रोगी अपनी भाषा, सस्कृति, शिष्टाचार की बातो को नही भूलता। स्मृतिलोप से सम्बन्धित एक उदाहरण कैमरॉन ने दिया है। एक युवक, जो काम करने वाले कपडे पहने था, एक अस्पताल मे आया तथा उसने यह शिकायत की कि उसे अपना नाम मालूम है, परन्तु और कुछ नही। उसकी परीक्षा की गई परन्तु इससे यह ज्ञात हुआ कि यह आदमी न तो नशे की स्थिति मे है और न ही मस्तिष्क या शरीर मे चोट ही है। फिर भी उसे अस्पताल मे भर्ती कर लिया गया। उसे अपने नाम के अतिरिक्त यह भी याद नही था कि वह कहाँ रहता है ? क्या करता है ? कौन-कौन उसके मित्र या सम्बन्धी हैं ? वह अपने दोनो हाथो से सिर पकडे रहता था तथा किसी अन्य व्यक्ति को देखकर उसे सहायता प्राप्त करने की याचना करता था। वह शनिवार व रविवार को अस्पताल मे रहा, परन्तु सोमवार को प्रात काल जब वह सोकर उठा तो अति चिन्तित था। उसने पूछा कि उसे अस्पताल क्यो लाया गया ? उसने अपना नाम व पता भी बताया तथा घर पहुँचने का अनुरोध किया। स्पष्ट है कि यह केस स्मृतिलोप का है।

कारण या निदान (Causes or Etiology)—अनेक अध्ययनो से यह ज्ञात हुआ कि रोगी इस प्रकार की स्थिति के माध्यम से अपनी दु खद सवेगात्मक स्थितियो का बचाव करता है। इस प्रकार के रोगियो का व्यक्तित्व-विकास उपयुक्त ढग से नहीं होता जिसके फलस्वरूप वह छोटी-से-छोटी समस्याओ का समाधान नही कर पाता। इसी कारण वह सवेगात्मक रूप से भी अपरिपक्व होता जाता है। इस प्रकार इन व्यक्तियो का पूर्वनिहित विकास अपरिपक्व ही होता है और अगर इस समय कोई अप्रिय या दु खद स्थिति और सामने आ जावे तो यही स्थिति इस असामान्यता का तात्कालिक कारण बन जाती है। स्मृतिलोप व रूपान्तरित क्षोभोन्माद (conversion hysteria), दोनों के गत्यात्मक स्वरूप में एकरूपता दिखाई पडती है परन्तु अन्तर केवल इस बात का है कि स्मृतिलोप मे रूपान्तरित क्षोभोन्माद के अनुसार कोई शारीरिक रोगो के लक्षण नही उत्पन्न होते है, बल्कि जीवन के कुछ अशो को भूल जाता है। इस प्रकार स्मृतिलोप के माध्यम से रोगी उन विषम, असह्य व दु खद सवेगात्मक स्थितियों से रक्षा करता है। परन्तु उसके अन्य कार्यों को देखने से ज्ञात होता है कि वह एक सामान्य व्यक्ति है।

(2) फ्यूग दशाएँ (Fuge States)

'फ्यूग' लैटिन भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है—'पलायन या भागना।

इस प्रकार की स्थितियो से कुछ समय के लिए दु:खद स्थितियो से छुटकारा मिल जाता है। स्मृतिलोप (amnesia) के समान फ्यूग मे भी स्मृति-ह्रास होता है परन्तु अपेक्षाकृत यह अधिक दीर्घकालिक होता है। फ्यूग अवस्था मे रोगी अपने वर्तमान पर्यावरण का त्याग करके अन्य स्थान पर चला जाता है। वह घर से तो पलायन कर जाता है और इधर-उधर भटकता रहता है, वह नया व्यवसाय कर लेता है, पुनः विवाह कर लेता है तथा इसी प्रकार की अनेक क्रियाएँ आदि करता है परन्तु इस स्थिति के समाप्त हो जाने के उपरान्त उसे इन सव कार्यो का कुछ भी स्मरण नही होता। फ्यूग की स्थिति कुछ घण्टो से लेकर कई महीनो व सालो तक चलती रहती है। इस सम्वन्ध मे रोचक उदाहरण **विलियम जेम्स** ने दिया है। एक पादरी जव वैंक से चैक भुनाने गया तो यकायक वह अपने नाम को भी भूल गया तथा घर से अन्य स्थान पर चला गया। वहाँ उसने सब्जी की दुकान खोली, विवाह किया तथा वच्चे पैदा किये। एक दिन अचानक उसे याद आया कि वह तो पादरी है तथा उसी समय से वह यह भूल गया कि वह सब्जी विक्रेता है, उसकी पत्नी व वच्चे भी हैं। अनेक विद्वान् इसे क्षोभोन्माद का एक प्रमुख लक्षण मानते हैं। फिशर के अनुसार—**"फ्यूग एक उन्मादी आक्रमण (दुर्घटना) है जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन को भूल जाता है तथा अपने पर्यावरण को भी भूल जाता है।"**[1]

लक्षण (Symptoms)—फ्यूग स्थिति का प्रमुख लक्षण भी विस्मरण या स्मृति-ह्रास है। परन्तु इस प्रकार की स्थिति मे स्मृति-ह्रास काफी लम्वे समय का होता है। व्यक्ति अपने अतीत को भूल जाता है तथा फ्यूग स्थिति समाप्त होने के उपरान्त उसे फ्यूग स्थिति मे की गई क्रियाओ आदि की याद नही होती है। इस प्रकार फ्यूग स्थिति मे आने के वाद रोगी को इससे पूर्व की वातो का विस्मरण हो जाता है तथा इस स्थिति को समाप्त होने के वाद इस स्थिति के दौरान घटित घटनाओ का विस्मरण हो जाता है। जेने (Janet), जो कि एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक था, उसने इस सम्वन्ध मे एक अति रोचक केस का जिक्र किया है :—

एक गरीव लडका अपनी माँ के साथ एक शहर मे निवास करता था तथा एक पसारी के यहाँ नौकरी करता था। कुछ समय के वाद उसे शराव पीने की अदत पड़ गई। वह शराव पीने के लिए शरावखाने जाता था, जहाँ नाविको के साथ वैठकर सामुद्रिक यात्राओ की कहानियो को वडी रुचि के साथ सुनता था। जव वह शराव पी लेता था तो अक्सर वह घर को लौटना ही भूल जाता था तथा पेरिस की गलियो मे भीख माँगता फिरता था। उसके दिमाग मे प्रत्येक समय यह वात विद्यमान रहती थी कि वह सामुद्रिक यात्रा करके मनोहर प्रदेशो मे पहुँच जावे।

---

1. "Fuge is a hysterical attack (accident) in which individual forgets his personal identity and leaves his physical surrounding."—Fisher : *Ibid.*

उसने एक बार घर से भागकर, अनेक कठिनाइयो को झेलने के बाद जहाज मे नौकरी कर ली। जब उसे घर से भागे कई महीने व्यतीत हो गये तो एक उत्सव मे मालिक ने थोडी-सी शराब दी। जब इससे तिथि को सुना तो चिल्ला उठा कि आज तो उसकी माँ की वर्षगाँठ है। इस प्रकार उसे घर की याद आ गई तथा वह इसी समय से यह भूल गया कि घर से भागने के बाद क्या था।

इस प्रकार फ्यूग की स्थिति मे विस्मरण अधिक स्थायी होता है। व्यक्ति वर्तमान पर्यावरण से पलायन तो कर जाता है परन्तु पलायन के उपरान्त भी वह एक सामान्य व्यक्ति-सा प्रतीत होता है। वह इस स्थिति के माध्यम से अपने वर्तमान जीवन की दुःखद स्मृतियो का दमन कर लेता है। यही कारण है कि इस रोग का मुख्य कारण सवेगात्मक परिस्थितियो का अत्यधिक दमन करना होता है।

(3) स्वप्न विचरण या निद्राभ्रमण

(Somanambulism)

वह भी एक लैटिन भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है—सोते मे चलना। अन्य शब्दो मे, इस स्थिति मे व्यक्ति सोते हुए ही विचरण करता है तथा इस निद्राभ्रमण से वह अपनी अचेतन इच्छाओ की पूर्ति करता है। वह निद्रा अवस्था मे अनेक कार्य करता है जिनकी चेतना उसे नही होती परन्तु इस अवस्था मे उसका अचेतन मन क्रियाशील रहता है रोगी की निद्राभ्रमण स्थिति जब समाप्त हो जाती है तब उन्हे इस स्थिति मे किये गये कार्यों का स्मरण नही होता। निद्राभ्रमण का रोगी प्राय रात्रि मे ही सोने मे चलता है तथा अत्यन्त कठिन व जटिल कार्य निद्रा की अवस्था मे करता है, उदाहरणस्वरूप—'नीलकमल' फिल्म मे नायिका रात्रि को सोते-सोते घर से चली जाती थी तथा निद्रा-स्थिति मे कार चलाती व नाव पर बैठकर नदी को पार करती थी। जागने पर उसे कुछ भी याद नही रहता कि उसने रात्रि मे कौन-कौन-सी क्रियाएँ की थी। कॉबेली के अनुसार, वियोजनात्मक प्रतिक्रियाओ मे इस रोग के रोगियो की सख्या सर्वाधिक होती है। जेन्नेस व जॉरगेन्सन (Janness and Jorgensen) ने अपने एक सर्वेक्षण मे 1808 नए प्रवेश करने वाले विद्यार्थियो मे से 5 प्रतिशत विद्यार्थियो मे निद्राभ्रमण की स्थिति पायी। ये घटनाएँ स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो को अधिक होती हैं।

लक्षण (Symptoms)

निद्राभ्रमण (somanambulism) रोगी का व्यवहार मुख्यत निम्न प्रकार का होता है —

सामान्य व्यक्तियो के ही समान रोगी सोने के लिए जाता है, परन्तु रोगी रात्रि मे किसी समय भी उठता है तथा निद्रा अवस्था मे ही कुछ कार्य करना आरम्भ कर देता है। इन कार्यो मे उसका यह कार्य भी सम्मिलित होता है कि रोगी एक कमरे से दूसरे कमरे मे या घर मे बाहर भी चला जाता है। निद्राभ्रमण की स्थिति मे रोगी सरल कार्यो के साथ ही साथ जटिल कार्य भी करता है। जैसे एक रोगी, जो बी०ए०

पास था, रात्रि को उठता था तथा निद्रावस्था में ही स्नान करता था, कपड़े आदि पहन कर घूमता था तथा लौट कर पुनः सो जाता था। प्रातःकाल उठने पर रोगी में रात्रि की किसी क्रिया का स्मरण नहीं रहता। निद्रावस्था में रोगी बोलता भी है तथा कभी-कभी निर्देशों का भी पालन करता है। अगर निद्राभ्रमण की स्थिति में उसे झकझोरा जाये या तेज आवाज देकर पुकारा जावे तो वह ठीक स्थिति में आ जाता है और वर्तमान स्थिति में अपने को पाकर आश्चर्य व्यक्त करता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जेने (Janet) ने एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

आइरीन नामक एक युवती थी जिसकी माँ की मृत्यु अत्यन्त दुःखद व नाटकीय परिस्थितियों में हुई थी। माँ टी० बी० की रोगिणी थी तथा आइरीन के साथ एक छोटे-से घर मे रहती थी मरने से पूर्व उसे खून की उल्टी व गले में भयानक घुटन हुई थी। आइरीन ने अपनी माँ की सेवा बड़े ही ध्यान से की थी। जीविका चलाने के लिए वह सिलाई का काम करती थी। माँ की मृत्यु हो जाने के बाद उसने शव को जलाने का प्रयास किया। उसने शव को खड़ा किया परन्तु वह पृथ्वी पर गिर गया तथा बड़ी कठिनाई से उसने शव को बिस्तर पर लिटाया था। माँ की अन्त्येष्टि क्रिया करने के बाद उसमें निद्राभ्रमण असामान्यता के लक्षण का विकास हो गया था। आइरीन कई घण्टों तक इस स्थिति में रहकर एक कुशल अभिनेत्री के समान माँ की मृत्यु के समय जो कुछ हुआ था, उसका अभिनय करती थी। इस अभिनय में वह प्रश्नोत्तर रूप मे समस्त घटनाओं का वर्णन करती थी। इसी स्थिति में वह मृत्यु के विचार से प्रेरित होकर आत्महत्या के लिए भी तत्पर हो जाती थी। वह रेल से कट कर मरने की कल्पना करती हुई फर्श पर लेट जाती थी तथा बेचैनी व भय मे मौत का इन्तजार करती थी। टकटकी बाँधकर गाड़ी देखना फिर चीख मारकर निर्जीव हो जाने आदि का पूर्ण अभिनय वह निद्राभ्रमण की स्थिति में करती थी। कुछ समय बाद वह सामान्य स्थिति में आ जाती थी तथा उसे अपने अभिनय की घटना की चेतना नही रहती थी।

रोगी में निद्राभ्रमण की स्थिति में कुछ शारीरिक कष्ट भी उत्पन्न हो जाते हैं। सैण्डलर (Sandler, 1945) ने निद्राभ्रमण के 22 रोगियों का अध्ययन करने के बाद 18 रोगियों को अस्पताल भेजा, क्योंकि ये रोगी शारीरिक कष्टों से पीड़ित थे तथा इन शारीरिक क्रियाओं का कारण निद्राभ्रमण की स्थिति ही था।

सामान्यतः लोगों का विचार है कि इस प्रकार के रोगियों को निद्राभ्रमण करते समय जगाना नही चाहिए क्योंकि उन्हें जगाने से हानि पहुँचती है। परन्तु अगर रोगी को ठीक ढंग से जगाया जावे तो जगाने से विशेष हानि नहीं पहुँचती। अनेक बार स्वप्न विचरण की अवस्था में अनेक दुःखद घटनाएँ भी हो जाती हैं। जैसे, सड़क पार करते समय दुर्घटनाग्रस्त हो जाना, युद्ध के दौरान रात्रि में निद्राभ्रमण से ग्रस्त सिपाही का गोली चलाना आदि। इस प्रकार के रोगियों में भ्रमण के अतिरिक्त कुछ शारीरिक कष्ट भी उत्पन्न हो जाते हैं।

कारण या निदान (Causes or Etiology)

निद्राभ्रमण की स्थिति के माध्यम से रोगी उन इच्छाओ की पूर्ति करता है जो चेतनावस्था या जागृतावस्था मे नही कर सकता। इस स्थिति के माध्यम से रोगी की द्वन्द्वात्मक परिस्थिति से पलायन की अभिव्यक्ति होती है। इन क्रियाओ का चेतन रूप से रोगी को कुछ याद नही होता क्योकि इस स्थिति से उसका अचेतन मन क्रियाशील रहता है। कुछ विद्वान् इसका कारण कामविकृति मानते है, जैसे—हस्तमैथुन से उत्पन्न अपराध व अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति। प्रौढावस्था के रोगियो मे इसका मुख्य कारण अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति से बचाव करना होता है। यह अन्तर्द्वन्द्व स्थिति अनेक कारणो से उत्पन्न हो सकती है।

प्रो० केमरॉन ने निद्राभ्रमण की स्थिति को एक विशेष प्रकार की स्वप्नावस्था माना है। क्योकि इस दशा मे रोगी स्वप्न मे कल्पना की गई वस्तु को ढूँढने का प्रयास करता है या अन्तर्द्वन्द्व को समाप्त करने का प्रयास करता है या भयावह स्थिति से पलायन करना चाहता है।

कभी-कभी रोगी निद्राभ्रमण स्थिति मे अपनी दमित या अचेतन की इच्छाओ की पूर्ति करने का प्रयास करता है। कोलमैन ने इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। उसने एक ऐसे रोगी का वर्णन किया है जो अपने कमरे से उठकर अपनी माँ के कमरे मे जाती थी तथा उसका चुम्बन लेकर पुन. सो जाती थी। जब इस रोगिणी का विश्लेषण किया गया तो ज्ञात हुआ कि लड़की का माँ से चार मास से झगडा हो गया तथा एक घर मे रहते हुए भी बातचीत नहीं होती थी। इस प्रकार के रोगियो के उपचार के लिए स्थायी रूप से चिकित्सा व्यवस्था करनी चाहिए।

(4) बहु-व्यक्तित्व
(Multiple Personality)

वियोजनात्मक व्यवहार का एक प्रकार बहु-व्यक्तित्व है जिसमे रोगी एक से अधिक व्यक्तित्व का प्रदर्शन करता है। दोनो प्रकार के व्यक्तियों मे समानता नही दिखायी पड़ती है।[1] आजकल अनेक चलचित्रो के कथानक का आधार द्वय-व्यक्तित्व या बहु-व्यक्तित्व होता है। इस प्रकार के रोगियो की सख्या बहुत कम होती है। इस प्रकार के दो व्यक्तियों का विकास पृथक् रूप से होता है। रोगी व्यक्तित्व को परिवर्तित करता रहता है। दोनो प्रकार के व्यक्तित्व प्राय. एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, जैसे—अगर एक व्यक्तित्व प्रसन्न व सक्रिय है तो दूसरा व्यक्तित्व दु खी व निष्क्रिय होता है। रोगी को इस व्यक्तित्व-परिवर्तन के बारे मे कोई ज्ञान नहीं होता है। कभी-

1 "Multiple personality is a form of dissociative reaction in which patients develop two or more separate and usually marked by different personalities"—Coville, *et al* : *Abnormal Psychology*, p. 110

कभी ऐसा हो जाता है कि एक व्यक्ति चेतन रूप से कार्य करता है तो दूसरा व्यक्तित्व अचेतन रूप से कार्य करता है। बहु-व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे हम आगे '**मनोविकृत व्यक्तित्व**' (Psychopathic Personality) नामक अध्याय में विस्तृत विवेचना करेंगे।

उपचार (Treatment)

इस प्रकार के रोगियों को अस्थायी आराम प्रदान करने के लिए सम्मोहन, मुक्त-साहचर्य, या औषधिजन्य बेहोशी आदि विधियो का प्रयोग किया जा सकता है। कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि अगर रोगी से उचित ढंग से वार्तालाप किया जावे तो विस्मृति विषय-सामग्री को चेतना मे लाया जा सकता है। स्मृति ह्रास व फ्यूग स्थितियो मे प्राय ऐसा सम्भव भी है। कभी-कभी विद्युत आघात पद्धतियो का भी प्रयोग करना लाभदायक सिद्ध होता है। मनोचिकित्सा (Psychotherapy) पद्धति भी लाभदायक सिद्ध होती है।

रोग-भ्रम या अति-स्वास्थ्य चिन्ता
(Hypochondriacal Reaction)

इस प्रकार की मन स्नायुविकृति मे रोगी को यह वहम या सनक सवार हो जाती है कि उसे कोई विशेष रोग है। वह अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे अति चिन्तित रहता है। यह रोग-भ्रम प्राय 40 वर्ष की आयु के उपरान्त होता है तथा पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को अधिक होता है। असामान्य व्यवहार के नवीन वर्गीकरण मे इसे एक स्वतन्त्र रोग नही माना गया है। यही कारण है कि कुछ विद्वान् इसे मन.श्रान्ति का एक लक्षण मानते हैं। परन्तु हम यहाँ इसे पृथक् रूप से इसलिए वर्णन कर रहे हैं कि प्राय दैनिक जीवन मे ऐसे अनेक व्यक्ति दिखाई पडते है जो अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे अत्यधिक चिन्तित रहते है। ये व्यक्ति अनेक प्रकार की पुस्तके पढते है तथा अनेक प्रकार के उपचार कराया करते हैं। अगर इनसे कोई यह कह दे कि आपको कोई रोग नही है तो ये काफी बहस करते है क्योकि इन्हे पर्याप्त रोग विषयक ज्ञान होता है। वास्तव मे इन्हे कोई रोग नही होता जबकि वह व्यक्ति काफी बढा-चढा कर अपने रोग का वर्णन करता है।

लक्षण (Symptoms)

इस प्रकार के रोगी अनेक प्रकार के शारीरिक कष्टो का वर्णन करते है। इन्हें अपने रोग के सम्बन्ध में काफी भय होता है तथा ये अपना अधिकाश समय अपने रोग के बारे मे सोचने मे व्यतीत करते हैं। वह छोटे से छोटे शारीरिक कष्ट को बढा-चढा कर केवल वर्णन ही नही करते बल्कि उसके उपचार आदि के बारे मे भी चिन्तित रहते है। फ्रायड (Freud) ने इस रोग-भ्रम (hypochondria) का दो प्रकारो मे वर्णन किया है। प्रथम प्रकार मे चिन्ता की प्रधानता पायी जाती है तथा दूसरे में रोगी केवल शारीरिक क्रियाओ मे अत्यधिक रुचि लेते हैं। इसमे रोगी प्राय:

अन्य व्यक्तियो से कम मिलता-जुलता है। उसे किसी व्यक्ति से सहानुभूति नही होती और न ही प्रेम। वह शरीर के विभिन्न भागो मे दर्द होने की शिकायत करता है। उसे अपनी पाचन-क्रिया के सम्बन्ध मे सर्वाधिक चिन्ता रहती है।

कारण या निदान (Causes or Etiology)

सामान्यत सभी लोग अपने स्वास्थ्य की चिन्ता करते हैं। परन्तु इस विकृति मे रोगी को वास्तव मे तो कोई रोग या शारीरिक कष्ट नही होता परन्तु रोगी को इस रोग के सम्बन्ध मे अत्यधिक चिन्ता रहती है। कुछ विद्वानो का मत है कि इस प्रकार के रोग मे रोगी अपनी समस्याओ का समाधान करने मे असमर्थ होता है तथा अपनी इस असमर्थता की परिपूर्ति अपने स्वास्थ्य मे अत्यधिक रुचि लेकर करता है। ऐसा करने से उसे सुख व सुरक्षा प्राप्त होती है। कुछ विद्वान् इसका कारण यह मानते हैं कि रोगी को समाज मे मान, स्नेह व सहानुभूति की अत्यधिक आवश्यकता होती है परन्तु प्रत्यक्ष रूप से वह ऐसा प्राप्त नही कर पाता। अत वह इस प्रकार का व्यवहार करता है जिससे कि आसपास के लोग अपनी ओर आकर्षित हो। कोलमैन के अनुसार इस विकृति के निम्न कारण हैं —

(अ) **पूर्वनिहित कारण (Predisposing Causes)**—कोलमैन के मतानुसार इस मन.स्ताप की उत्पत्ति के प्रमुख कारण वशानुक्रम से सम्बन्धित हैं। जिन व्यक्तियो के माँ-बाप इस मन स्ताप से ग्रस्त होते हैं या माँ-बाप इनके स्वास्थ्य की अत्यधिक चिन्ता करते है, उन्हे अति-स्वास्थ्य चिन्ता या रोग-भ्रम अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसके अतिरिक्त पूर्व-निहित कारणो मे शैशवावस्था या बाल्यावस्था मे भयकर रोग होना या गहरी चोट लग जाना आदि कारण भी आते हैं।

(ब) **तात्कालीन परिस्थितियाँ (Precipitating Cau.es)**—कुछ ऐसी तात्कालिक परिस्थितियाँ व्यक्ति के सामने आ जाती हैं जिन्हे वह सन्तुलित रूप मे समायोजित नही कर पाता या जिनसे उसका व्यक्तित्व-विकास दोषपूर्ण हो जाता है। इसके फलस्वरूप वह आत्म-केन्द्रित, सवेगात्मक रूप से अपरिपक्व या शीघ्र विचलित होने वाला व्यक्ति हो जाता है। ये सभी इस रोग की तात्कालिक परिस्थितियाँ होती हैं।

उपचार या चिकित्सा (Treatment of Therapy)

इस प्रकार के रोगियो की चिकित्सा करना बहुत कठिन हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस प्रकार का रोगी दूसरो की बात को कम सुनता है, अपनी बात अधिक कहता है जिसके फलस्वरूप वह चिकित्सक से न सहयोग ही कर पाता है और न ही उसके निर्देशो का पालन ही करता है। अक्सर रोगी नया इलाज ढूंढता है जिसके फलस्वरूप योग्य चिकित्सक के इलाज से वह वचित रह जाता है। क्योकि इस प्रकार के रोगी अपने को अत्यधिक योग्य साबित करने का प्रयास करता है अत. इस प्रकार के रोगियो की चिकित्सा मनोविश्लेषण पद्धति द्वारा करनी चाहिए। रोगी के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार चिकित्सा के लिए बड़ा सहायक सिद्ध होता है।

विषादात्मक मनस्तापी प्रतिक्रियाएँ
(Neurotic Depressive Reaction or Reactive Depression)

कोलमैन[1] के अनुसार, इस प्रकार की प्रतिक्रियाओ मे व्यक्ति कुछ दु खद प्रतिवल परिस्थिति के प्रति आवश्यकता से अधिक दु ख व निराशा से परिपूर्ण प्रति-क्रिया करता है तथा विस्तृत अवधि मे पूर्व सामान्य स्थिति मे नही आ पाता। यद्यपि इस प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्तियो मे सप्ताह से महीनो तक रहती है परन्तु फिर भी उनमे दु ख व निराशा के लक्षण समाप्त नही होते, कभी-कभी ये लक्षण शीघ्र समाप्त भी हो जाते हैं तथा कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रोगी मे इसके लक्षण तो समाप्त हो जाते है परन्तु वह हल्का विषाद (mild depression) बना रहता है।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए कि मनस्नाप प्रकार का विषाद (neurotic depression) व मनोविक्षिप्त विषाद (psychotic depression) मे अन्तर है। यह अन्तर प्रकार (kind) का न होकर केवल तीव्रता (degree) का है। मनोविक्षिप्त विषाद अपेक्षाकृत, तीव्रता व अवधि (degree and duration) दोनो की दृष्टि से अधिक तीव्र होते है।

केमरॉन के अनुसार, "विषादात्मक मनस्तापी प्रतिक्रियाएँ भाव विकृतियाँ (mood disorders) हैं जिनमे तनाव व चिन्ता, निराशा व आत्म अवमूल्यन, शारीरिक कष्टो तथा बार-बार स्वय को हीन समझने की शिकायत, हतोत्साहित व व्यर्थ समझने के रूप मे अभिव्यक्त होती है।"[2] इस प्रकार के रोगियो मे अपराध भावना अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अमरीका मे इस प्रकार के रोगियो की सख्या अनुमानत समस्त मनस्ताप रोगियो की करीब 20 से 30 प्रतिशत तक है।

लक्षण (Symptoms)

इस प्रकार के रोगी अत्यन्त दु खित व चिन्तित दिखाई पडते हैं। ये व्यक्ति किसी कार्य मे अधिक रुचि नही लेते तथा इनमे आत्म-विश्वास की पर्याप्त रूप से कमी पायी जाती है। किसी भी नये कार्य को करने मे इनकी रुचि नही होती। रोगी किसी कार्य पर अधिक देर तक ध्यान केन्द्रित नही कर पाता जबकि उसकी विचार-प्रक्रिया मे किसी प्रकार की कमी नही उत्पन्न होती। नीद न आने की इन्हे अक्सर

1. "In neurotic depressive reactions, the individual reach to some distressing stress situation with more than the usual amount of sadness and defection and often fails to return to normal after a reasonable period of time."—**Coleman** : *Ibid*, p 227.
2. "Neurotic depression reaction are mood disorders in which tension and anxiety are expressed in the form of defection self-depreciation, somatic disturbance and repetitive complaints of feeling, inferior, hopeless and worthless."—**Gameron, Norman** : *Personality Development and Psychopathology*, p. 413.

शिकायत होती है तथा एक बार अगर ये नींद से जाग गये तो पुनः इन्हें नींद बड़ी कठिनाई से आती है। इनमें तनाव, चिन्ता, बेचैनी आदि की अस्पष्ट भावनाएँ निहित रहती हैं। विषादात्मक मनःस्तापी प्रतिक्रियाओं से सम्बन्धित लक्षण दैनिक जीवन के कार्य सम्पादन पर प्रभाव डालते हैं। कभी-कभी रोगी को यह लक्षण गम्भीर रूप से परेशान कर देते हैं जिनके फलस्वरूप वह कोई कार्य नहीं कर पाता तथा सदैव बैठा रहकर यह सोचा करता है कि उसका जीवन तो व्यर्थ है या पूर्ण रूप से उसका जीवन अन्धकारमय है। ऐसे रोगियों को अस्पताल में रखना अति आवश्यक है, क्योंकि इस प्रकार का रोगी कभी भी आत्महत्या कर सकता है।

कारण (Etiology)

सामान्य व्यक्तियों में भी इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ पायी जाती हैं, जैसे—किसी प्रियजन की मृत्यु, प्रेम में निराशा, दुर्घटना, व्यवसाय में अत्यधिक हानि आदि। ये ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनके दबाव से सामान्य व्यक्ति दुखित व चिन्तित दिखाई पड़ता है। परन्तु इस प्रकार का विषाद अस्थायी होता है तथा घटना होने के कुछ समय उपरान्त सामान्य व्यक्ति स्वतः ही इन प्रतिक्रियाओं को नहीं करता। परन्तु इस प्रकार के मनःस्ताप में व्यक्ति छोटी-छोटी कठिनाइयों व विपत्तियों के प्रति अपेक्षाकृत अत्यधिक चिन्ता व दुःख की प्रतिक्रियाएँ प्रकट करता है। वह साधारण-सी-साधारण कठिनाई का सामना करने में असमर्थ होता है। इसका मुख्य कारण यह होता है कि उनकी अहम् की शक्ति (power of ego) अत्यन्त क्षीण हो जाती है। *कॅटिस व अन्य* (1962) ने कम अहम् शक्ति, अन्तरात्मा की आवाज का अत्यधिक विकास व अपराध भावनाओं के प्रति अधिक उन्मुखता को इसका मुख्य कारण माना है। इस प्रकार के रोगी की प्रवृत्तियों एवं मनोभावों (moods) में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होता है तथा जब कभी भी बाह्य दबावपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तब ये व्यक्ति इन स्थितियों का सामना नहीं कर पाते हैं तथा विषादात्मक प्रतिक्रियाएँ जन्म लेती हैं।

इस प्रकार के मनस्तापी रोगियों में पहले से ही दोषपूर्ण व्यक्तित्व-विकास विद्यमान होती है तथा तात्कालिक दबावपूर्ण परिस्थितियाँ अगर और सामने आ जावें तो इनका व्यक्तित्व अत्यधिक असन्तुलित हो जाता है। प्रो० केमरॉन के अनुसार प्रधानतः तीन तात्कालिक परिस्थितियाँ हैं—(1) प्रेम पात्र या संवेगात्मक आश्रय की क्षति, (2) व्यक्तिगत या आर्थिक हानि, व (3) नवीन उत्तरदायित्वों या उनसे सम्बन्धित भय। इस प्रकार का रोगी कभी-कभी अन्य व्यक्तियों की सहायता या सहानुभूति प्राप्त करने के लिए भी अपने लक्षणों का उपयोग करता है; जैसे—एक रोगिणी ने अपने चिकित्सक को टेलीफोन पर सूचना दी कि वह आत्महत्या करने जा रही है। डाक्टर ने उसकी निगरानी करने हेतु विशेष व्यवस्था की, परन्तु रोगी ने आत्महत्या का किसी भी प्रकार से प्रयास नहीं किया। उपचार के दौरान पता चला कि वह रोगिणी चाहती थी कि डाक्टर उसके प्रति अधिक सहानुभूति प्रकट करे। इस प्रकार

के लक्षणों का उपयोग रोगी प्रायः अन्य व्यक्तियों की सहायता व सहानुभूति प्राप्त करने के लिए करता है।

उपचार (Treatment)

इस प्रकार के रोगियों को अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की आवश्यकता होती है। इनके उपचार के लिए सर्वप्रथम यह करना चाहिए कि इनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। रोगी के लक्षणों को अस्थायी रूप से दूर करने के लिए कम उत्तेजना पैदा करने वाली औषधियों आदि का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु स्थायी रूप से ठीक करने के लिए इन्हें प्रभावपूर्ण मनोचिकित्सा की आवश्यकता होती है। विद्युत आघात पद्धति से भी इनके लक्षण दूर किये जा सकते हैं।

युद्ध मनःस्नायुविकृति
(War-Psychoneurosis)

युद्ध मनःस्नायुविकृतियाँ प्रायः सैनिकों में पायी जाती हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है कि सैनिकों व सामान्य व्यक्तियों में होने वाली मानसिक विकृतियों में कोई अन्तर है या नहीं। कुछ विद्वानों के मतानुसार युद्धकाल में होने वाली, सैनिक व गैर-सैनिक, मानसिक विकृतियों तथा शान्तिकाल में होने वाली मानसिक विकृतियों में कोई वास्तविक अन्तर नहीं होता। क्योंकि दोनों प्रकार के व्यक्तियों में पहले से कुछ पूर्व-प्रवृत्यात्मक लक्षण विद्यमान रहता है तथा तात्कालिक परिस्थितियों (युद्धकाल में जीवन-निर्वाह करने का परिवर्तित स्वरूप या अत्यन्त दबावपूर्ण मानसिक तनाव आदि) के उत्पन्न हो जाने के कारण सामान्य व्यक्तियों व सैनिकों में इस प्रकार की मनःस्नायुविकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। अतः वास्तविक रूप से इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

प्रथम महायुद्ध के दौरान इसे गोलाघात (shell shock) तथा द्वितीय महायुद्ध के दौरान युयुत्सा या लड़ाई थकान (combat fatigue) कहते थे। परन्तु वास्तव में यह दोनों पद ही युद्ध मनःस्नायुविकृति के लिए अनुपयुक्त हैं। क्योंकि ये दोनों पद इस तथ्य पर अधिक जोर देते हैं कि इनका कारण भौतिक है क्योंकि ये विकृतियाँ बम फटने या लड़ाई की थकान से उत्पन्न होती हैं। परन्तु वास्तव में इसका कारण शारीरिक या भौतिक नहीं है बल्कि युद्ध स्थिति का मानसिक प्रभाव है।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान किये गये अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि युद्ध मनःस्नायुविकृति के रोगियों को दो वर्गों में रखा जा सकता है :

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे रोगी आते हैं जिनका व्यक्तित्व (नागरिक व सैनिक जीवन दोनों में) पहले सन्तुलित था परन्तु युद्धजन्य ऐसी तीव्र व गम्भीर परिस्थितियाँ उसके सामने आईं जिससे कि वह युद्ध के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार नहीं हो पाया तथा उसमें कुछ विशेष प्रकार के लक्षण विकसित हो गये। इस प्रकार के रोगियों में प्रमुख लक्षण—अनिद्रा, भयंकर स्वप्न, आन्तरिक घबराहट व व्याकुलता,

तेज आवाज को सुनकर यकायक युद्ध के लिए तैयार हो जाना, कांपना, शून्य-दृष्टि से देखना, शारीरिक शक्ति का ह्रास, अरुचि आदि पाए जाते है। इन्हे अपेक्षाकृत मामूली उपचार से सामान्य बनाया जा सकता है।

द्वितीय वर्ग मे वे रोगी आते हैं जो अपने अतीत इतिहास, लक्षण व फलानुमान (prognosis) की दृष्टि से शान्तिकालीन नागरिक रोगियो के समान होते हैं। इस प्रकार के रोगी प्राय डरपोक, लज्जालु, आत्मकेन्द्रित, साहस व आक्रामक प्रकृति से हीन होते हैं। इस प्रकार के रोगियो की दीर्घकालिक चिकित्सा की व्यवस्था की आवश्यकता होती है।

युद्ध मनःस्नायुविकृति के आँकड़े
(Data of War Neurosis)

युद्ध मन स्नायुविकृति सम्बन्धी आँकडो का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि बहुत थोड़े-से सैनिको को ही इस प्रकार की विकृति होती है। डायन्स (Dynes), स्प्रिंगर (Springer) व पील (Peal) की रिपोर्टों से यह पता चलता है कि केवल 2% सैनिको मे इस प्रकार की तीव्र प्रतिक्रियाएँ होती है। युद्ध के दौरान किसी भी दिन इस विकृति से पीडित रोगियो की सख्या 10% से अधिक नही थी। द्वितीय महायुद्ध के दौरान रजिस्टर्ड सैनिको मे से 5% को मनोविकृति के कारण प्रशिक्षण काल मे ही निकाल दिया गया था। जिलेस्पी (Gillespie), रैन्स (Raines) व कोल्ब (Kolb) ने अपने अध्ययन-परिणामो के आधार पर बताया कि युद्ध मनोस्नायु-विकृति उन व्यक्तियो को अपेक्षाकृत अधिक व शीघ्र होता है जो सैनिक अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित होते है या थके, निष्क्रिय या भागे हो या दीर्घकाल से ही युद्ध मे रत होते हैं। ब्रिटिश व अमेरिकन निरीक्षको के अनुसार युद्ध मन स्नायुविकृति निम्न प्रकार के लोगो मे अधिक होता है —

(1) अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित नए सैनिको मे।
(2) वे व्यक्ति जो घर या परिवार के सम्बन्ध मे अधिक चिन्तित होते है।
(3) निष्क्रिय, पराजित या पीछे हटते हुए सैनिको मे।
(4) कड़े नियन्त्रण के कारण।
(5) नीरसता, थकान या मृत्यु से अधिक डरने वाले व्यक्तियो मे।
(6) दीर्घकालीन युद्ध या घमासान युद्ध से थके हुए सैनिको मे।
(7) ऐसी सैनिक टुकडियो मे जिनमे या तो सामूहिक प्रवृत्ति का अभाव हो या नेतृत्व की कमी हो।
(8) ऐसे व्यक्तियो मे जो पराधीन हो तथा जो आक्रमण होने पर न तो लड सकते हैं और न पीछे हट सकते है।

युद्ध मनःस्नायुविकृति के लक्षण
(Symptoms of War Neurosis)

आर० डी० जिलेस्पी (R. D. Gillispie) के अनुसार, इस मन स्नायुविकृति के अग्रलिखित लक्षण हैं —

(1) भय प्रतिक्रियाएँ (Fear Reactions)—युद्ध मन स्नायुविकृति में रोगी मे अनेक प्रकार के ऐसे लक्षण उत्पन्न हो जाते है, जो भय प्रतिक्रियाओ से सम्बन्धित होते हैं। इसके प्रमुख लक्षण है—हृदय गति मे वृद्धि, काँपना, विभिन्न अंगो मे शिथिलता, टकटकी आदि लगाकर देखना आदि। इन लक्षणों के अतिरिक्त कुछ रोगियो मे वाकहीनता, गतिहीनता आदि भय के लक्षण दिखाई पडते हैं।

(2) मनोशारीरिक लक्षण (Psychosomatic Symptoms)—इस प्रकार के रोगियो मे कुछ इस प्रकार के शारीरिक लक्षण विद्यमान होते है, जिनका कोई वास्तविक शारीरिक आधार नही होता, जैसे—सिर-दर्द, दिल की क्रिया मे व्यतिक्रम, श्वास-क्रिया मे व्यतिक्रम, शरीर के विभिन्न अगो मे तीव्र पीडा आदि।

(3) साहचर्यात्मक या सम्बद्ध प्रतिक्रियाएँ (Associative or Conditioned Reactions)—अगर एक परिस्थिति मे किसी व्यक्ति को आघातिक या अप्रिय अनुभव हो गया हो तो उसी के समान अन्य परिस्थितियो मे भी वही शारीरिक व सवेगात्मक लक्षण उत्पन्न हो जाते है, जैसे—अगर बम विस्फोट में एक रोगी का हाथ घायल हो गया हो, तो बाद में केवल तीव्र आवाज सुनने पर ही हाथ से पक्षाघात जैसी निष्क्रियता आ जाती है।

(4) स्मृतिलोप (Amnesia)—अनेक रोगियो में प्राय: यह देखा गया है कि उन्हे आघातिक घटनाओ से सम्बन्धित स्मृतियो का ह्रास हो जाता है। इस प्रकार के स्मृतिलोप का उद्देश्य व्यक्ति को अप्रिय या दु:खद स्मृति से वचित रखना होता है। इसके भावात्मक रूप मे आकुलता, विषाद आदि भावो की पूर्ति होती है।

(5) थकान संलक्षण (Fatigue Sondrome)—युद्धस्थल पर लम्बी अवधि तक रहने के कारण अनेक सैनिकों मे थकान के स्पष्ट लक्षण दिखाई पड़ते हैं जबकि वास्तव मे उन्हे किसी प्रकार की थकान नही होती। ऊँघना, निष्क्रियता, दूसरो से घृणा की प्रवृत्ति या न मिलने की प्रवृत्ति, बेचैनी, अत्यधिक आलोचना करने की अभिवृत्ति, आत्म-विश्वास का अभाव, अनिद्रा, चिड़चिड़ापन, भयकर व अत्यधिक बुरे स्वप्न आना आदि इस अवस्था के प्रमुख लक्षण हैं।

उपचार (Treatment)

युद्धजन्य मन स्नायुविकृति-ग्रस्त सैनिको की चिकित्सा सामान्य रोगियो की चिकित्सा के अनुसार की जाती है। जैसे ही लक्षण दिखाई पड़े, अगर वैसे ही सैनिको को मानसिक अस्पतालो मे भरती करवा दिया जावे तो बहुधा अधिक लाभ होता है। रोग के प्रारम्भिक तथा गम्भीर दोनो ही अवस्था में आराम, नियन्त्रित निद्रा, पौष्टिक भोजन आदि का विशेष प्रबन्ध रखना चाहिए। अगर रोगी अधिक गम्भीर स्थिति मे हो जावे तो इन्हे मर्फिया (morphia) या हाइयोसीन (hyoscine) के इन्जेक्शन का उपयोग करना चाहिए। इन्हें पूर्ण रूप से ठीक करने के लिए सम्मोहन व मादक चिकित्सा (narcotherapy) को उपयोग में लाना चाहिए। सम्मोहन विधि के माध्यम से रोगी के अन्तर्द्वन्द्व या युद्ध के भयंकर अनुभवों का पुन:

स्मरण कराया जा सकता है जिसमे कि रोगी की वास्तविक कठिनाइयो को दूर करने मे सहायता प्राप्त होती है। स्मरण रहे कि युद्धजन्य मनोविकृति की चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य रोगियो को पुन युद्धस्थल पर लौटाने के योग्य बनाना होता है। प्राय: कुछ समय तक चिकित्सा करने के उपरान्त अधिकतर रोगी युद्धस्थल पर लौट जाने का निश्चय कर लेते हैं।

अभिघातज मनःस्नायुविकृति
(Traumatic Psychoneurosis)

इस प्रकार की मन स्नायुविकृति का जन्म प्राय किसी गहरी चोट या शारीरिक क्षति के फलस्वरूप होता है। प्राय ऐसा देखा गया है कि किसी दुर्घटना के उपरान्त हजारो लोग अनेक प्रकार के शारीरिक कष्टो का अनुभव करते हैं। अभिघातज मन स्नायुविकृति प्राय पुरुषो मे अधिक पायी जाती है। इसका कारण शारीरिक या स्नायुविक हो भी सकता है और नही भी। परन्तु इस प्रकार की विकृति के मूल में व्यक्तित्व की विच्छिन्नता होती है।

लक्षण (Symptoms)

इस प्रकार के मन स्नायुविकृति के अनेक लक्षण होते हैं, जैसे—डरावने स्वप्न, हिस्टीरिया या क्षोभोन्माद, लकवा, स्वर-विकार आदि, परन्तु इस बात का निश्चय करना बडा कठिन होता है कि रोगी के लक्षण का कारण आगिक क्षति है या नही। क्योकि कभी-कभी गहरी चोट लगने पर भी क्षीण स्नायुविकृत प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं जबकि कभी-कभी केवल चोट लगने की सम्भावना मात्र से ही तीव्र स्नायु-विकृत प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

कारण (Etiology)

इस प्रकार के मन.स्नायुविकृति के कारणो का पता लगाना अत्यन्त कठिन कार्य होता है। वैसे सामान्यत रोगी मे पहले से ही स्नायुविकृति विकसित करने वाले तत्त्व विद्यमान होते हैं तथा आघात केवल उन्ही तत्त्वो को लक्षणो के रूप मे प्रकट करने का कार्य करता है। इस रोग का मुख्य कारण आत्म-स्वार्थ भी होता है।

इस प्रकार के रोगियो की चिकित्सा मुक्त-साहचर्य व सम्मोहन विधि के द्वारा की जाती है।

व्यावसायिक मनःस्नायुविकृति
(Occupational Psychoneurosis)

जिन व्यक्तियो को यह रोग होता है, वे अपनी व्यवसाय-दक्षता खो बैठते हैं, जैसे लेखक की बाँह व हाथ कार्य नही करते। इस प्रकार की मन स्नायुविकृति का मुख्य कारण यह होता है कि रोगी के मन मे कार्य के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से वह कार्य को छोड नही पाता। अत उसमे इस प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार की मन स्नायुविकृति से व्यक्ति को कुछ समय के लिए घृणित व्यवसाय से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। अन्य शब्दो मे, इस प्रकार के लक्षण रोगी की आन्तरिक संघर्ष की पूर्ति करते है।

24

आंगिक या विषजन्य मनोविकृतियाँ
(ORGANIC OR TOXIC PSYCHOSES)

पिछले अध्यायों में हमने विस्तृत रूप से मनःस्नायुविकृतियों (Psychoneurosis) के सम्बन्ध में अध्ययन किया। इस अध्याय तथा अगले कुछ अध्यायों में हम मनोविकृतियों के सम्बन्ध में विस्तृत व्याख्या करेंगे। मनोविकृति उस गम्भीर या तीव्र स्थिति को कहते हैं जिसमें रोगी की मानसिक व शारीरिक क्रियाएँ अस्त-व्यस्त हो जाती हैं तथा उसकी पर्यावरण के साथ समायोजन क्षमता भी पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है। सरल शब्दों में, मनोविकृति से ग्रस्त रोगी को हम पागल कह सकते हैं। इस प्रकार के रोगियों का सामंजस्य सन्तुलन (harmonious balance) पूर्ण रूप से बिगड़ जाता है। उसके अहम्, इदम् व परम अहम् व बाह्य वास्तविकता में किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं रहता। अहम् की शक्ति क्षीण हो जाती है तथा उसका सम्बन्ध इदम् से नहीं रहता जबकि एक सामान्य व्यक्ति के अहम्; इदम् व परम अहम् के बीच एक सन्तुलित सामंजस्य होता है तथा सामान्य व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक व सरचनात्मक प्रकार का होता है। परन्तु मनोविकृति के रोगी का व्यवहार ऐसा होता है जिसे समाज कभी भी स्वीकार करने को तैयार नहीं होता। स्मरण रहे कि मनःस्नायुविकृति (psychoneurosis) व मनोविकृति (psychoses) में प्रकार (kind) का अन्तर नहीं है, बल्कि इन दोनों में तीव्रता या अंशों (intensity or degree) का ही अन्तर होता है। अन्य शब्दों में मनोविकृति मनःस्नायुविकृति का अतिरंजित रूप ही होता है।

असामान्य मनोविज्ञान का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि कुछ मानसिक बीमारियों का सम्बन्ध शारीरिक विकारों व विक्रियाओं से जोड़ा गया है। हिप्पोक्रेटीज व गैलन ने तथा इनके समय में अनेक मनोवैज्ञानिकों ने आंगिक हेतुकी (organic aetiology) में रुचि ली। परन्तु फ्रायड के प्रभाव के कारण आंगिक दृष्टिकोण की

उपेक्षा की गयी तथा मनोगतिक (psychodynamic) सम्बन्धो की ओर विशेष ध्यान दिया गया। परन्तु सन् 1950 के उपरान्त व्यवहार एवं व्यक्तित्व-विक्षोभो को समझने के लिए सक्रिय रूप से आंगिक दृष्टिकोण पर ध्यान दिया गया।

सामान्य व मनोविकृति व्यक्तित्व में तुलना
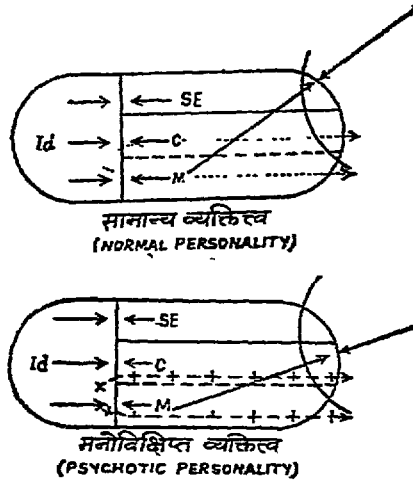
चित्र—30

→←——सामंजस्य सन्तुलन (Harmonious Balance)

→←——असामंजस्य सन्तुलन (Inharmonious Balance)

बड़ा तीर समग्र रूप से पर्यावरण के साथ सापेक्षिक सन्तुलित व्यक्तित्व को सम्बोधित करता है।

छोटा तीर व्यक्तित्व के अन्तर्गत ही सापेक्षिक सन्तुलन करके सम्बोधित करता है।

..... . →सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यवहार (Socially Acceptable Behaviour)

—+—+—++→अस्वीकृति होती है लेकिन छद्मवेश रूप मे

—×·‥—+→छद्मवेश मे, परन्तु आंशिक रूप से स्वीकृति।

SE परम अहम् (Super Ego)

C व M अहम् का ज्ञानात्मक (Cognitive) व गत्यात्मक (Motor) पक्ष।

मनोविकृतियों या मनोविक्षिप्तियो का वर्गीकरण
(Classification of Psychoses)

मनोविकृतियो का वर्गीकरण प्राय निम्न रूप से किया जाता है :—

(क) आंगिक या विषजन्य मनोविकृतियाँ (Organic or Toxic Psychoses)—

(i) सामान्य उपदंशज मनोविकृति (General Paresis Psychoses)

(ii) जराजन्य मनोभ्रश मनोविकृति (Senile Dementia Psychoses)

(iii) प्रामस्तिष्क धमनी काठिन्य युक्त मनोविक्षिप्त (Cerebral Arterio-sclerosis)
(iv) मद्यसारिक मनोविकृति (Alcoholic Psychoses)
(v) नशीली वस्तुओं के सेवन से उत्पन्न मनोविकृतियाँ (Psychoses due to Drug)
(vi) धातुओं के कारण उत्पन्न मनोविकृतियाँ (Psychoses due to Metals)
(vii) कोरिया मनोविकृति (Chorea Psychoses)
(viii) अपस्मार या मिरगी (Epilepsy)

(ख) कार्यपरक मनोविकृतियाँ (Functional Psychoses)—
(i) मनोविदलता (Schizophrenia)
(ii) उत्साह विषाद मनोविकृति (Manic-Depressive Psychoses)
(iii) संभ्रान्ति (Paranoia)
(iv) अन्य कार्यपरक मनोविकृतियाँ (Other Functional Psychoses)

इस अध्याय में हम विभिन्न आंगिक या विषजन्य-मनोविकृतियों का वर्णन करेंगे :—

आंगिक या विषजन्य मनोविकृतियाँ
(Organic or Toxic Psychoses)

जैसाकि इसके नाम से स्पष्ट है कि इस प्रकार की मनोविकृतियों की उत्पत्ति आंगिक या विषजन्य कारणों से होती है। अन्य शब्दों में, ये मनोविकृतियाँ शारीरिक रचना या उसके किसी अंग की क्षति, विकार आदि के कारणों से उत्पन्न होती हैं। वैसे असामान्य मनोविज्ञान में इस प्रकार की मनोविकृतियों का विस्तृत वर्णन आवश्यक नहीं है परन्तु फिर भी हम यहाँ संक्षेप में इनका वर्णन प्रस्तुत करेंगे। चिकित्सालयों में प्रवेश करने वाले मानसिक रोगियों में से 40% इस मनोविकृति के रोगी होते हैं।

इसे कुछ लेखक **मस्तिष्क विकार** (*Brain Disorder*) या **वृद्धावस्थाजन्य मनोविकृतियाँ** (*Psychoses of the Aged*) भी कहते हैं।। जब मस्तिष्क की किसी व्याधिकीय बाधा के कारण कोई मानसिक विकार या व्यक्तित्व विक्षोभ उत्पन्न होता है तो उस दशा को **मस्तिष्क संलक्षण** (brain syndrome) कहते हैं। आंगिक मस्तिष्क सलक्षण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1 तीव्र मस्तिष्क संलक्षण (Acute brain syndrome)
2. दीर्घकालिक मस्तिष्क संलक्षण (Chronic brain syndrome)

जब लक्षण अस्थायी व परिवर्तनीय (reversible) होते हैं तो उसे तीव्र मस्तिष्क सलक्षण कहते हैं। परन्तु जब लक्षण दीर्घकालिक व अपरिवर्तनीय होते हैं तब उसे दीर्घकालिक मस्तिष्क संलक्षण कहते हैं।

यह बीमारियाँ प्रायः वृद्धावस्था में ही होती हैं। अत: इन्हें वृद्धावस्था मनोविकृतियों की संज्ञा दी जाती है। आयु की वृद्धि के साथ ही साथ अनेक समस्याओं का

स्वत ही जन्म हो जाता है। मानसिक चिकित्सालयो मे 25% रोगी इस रोग से ग्रस्त होते है। इसी प्रकार 65 वर्ष की आयु मे ऊपर के रोगियो मे से 30% से 40% मानसिक रोगी इसी मनो स्नायुविकृति से ग्रस्त होते हैं।

वृद्धावस्था मे शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है, पेशियो का समन्वय शिथिल हो जाता है तथा उसमे तनाव, विफलता आदि का सामना करने की क्षमता कम हो जाती है। इन सभी का प्रभाव उसके मस्तिष्क पर भी पडता है। इस प्रकार के व्यक्तियो मे समाज से पृथक रहने की प्रवृत्ति बढती है। वह उचित समायोजन नही कर पाता जिसके परिणामस्वरूप अनेक मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती हैं।

सामान्य उपदंशज मनोविकृति
(General Paresis Psychoses)

यह एक प्रकार का सक्रामक यौन-रोग (vinereal disease) है जो कि मस्तिष्क पर उपदश (syphilis) के दूषित प्रभाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। इनके उत्पन्न रोगाणु व सक्रामक विष मस्तिस्क मे पहुँच जाते हैं जोकि स्नायुओ को नष्ट कर देते हैं तथा मानसिक क्रियाओ को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। उपदश के सक्रमण से कई प्रकार की मनोविकृत अवस्थाएँ उत्पन्न हो जाती है। इनका आरम्भ तो युवावस्था से ही हो जाता है परन्तु उपदशज मनोविकृति का जन्म मध्य अवस्था के लगभग होता है। अपेक्षाकृत यह रोग पुरुषो को अधिक होता है। उपदंश से वैसे तो अनेक प्रकार के गम्भीर मानसिक व स्नायुविक विक्षेप उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु निम्न तीन विकृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं —

(i) **आंशिक पक्षाघात या अधलकवा** (Paralysis)—मस्तिष्क मे उपदंश-जन्य नष्ट हो जाने से इस प्रकार ही विकृति हो जाती है। यह आशिक पक्षाघात उपदश के केवल 2 या 3 प्रतिशत रोगियो मे भी होता है तथा उपदश के सक्रमण के 5 वर्ष से 25 वर्ष उपरान्त यह अवस्था उत्पन्न हो सकती है। अगर इस प्रकार के रोगियो की उचित चिकित्सा न की जावे तो साल-डेढ साल बाद रोगी की मृत्यु हो सकती है।

आंशिक पक्षाघात एक आगिक रोग है तथा यह तब उत्पन्न होता है जबकि सूक्ष्म विषाणु (viruses), जो कि उपदश के सक्रामण से उत्पन्न होते हैं, शरीर मे प्रवेश कर जाते हैं तथा तीव्रता के साथ फैलने लगते है। इस प्रकार के लक्षण उस समय उत्पन्न होते हैं जबकि उपदश के सूक्ष्म विषाणु मस्तिष्क के पहुँच जाते हैं। यह रोग मस्तिष्क मे सूजन एव अपकर्षण (degeneration) के कारण उत्पन्न होता है। जैसे-जैसे शरीर मे उपदश के विषाणु फैलते जाते हैं वैसे-वैसे ही मानसिक क्षति बढती जाती है।

इसके लक्षण बहुत ही स्पष्ट होते है तथा इस विकृति का पता कभी-कभी रोगी को देखकर ही लगाया जा सकता है। इसके प्रमुख शारीरिक लक्षण सिर-दर्द, चक्कर आना, थकान आदि हैं। इस प्रकार के व्यक्तियो की मुखाकृति एक विशेष रूप धारण कर लेती है। अस्पष्ट ध्वनियो सहित वह बोलता है तथा लिखते समय वह कई अक्षरो को छोड़ता जाता है व पक्तियाँ काँपती-सी प्रतीत होती हैं। इसमे अनेक

मानसिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते है। जैसे इस प्रकार के रोगियो के व्यक्तित्व व व्यवहार दोनो मे मर्यादा व नैतिकता का अभाव आ जाता है। वह अपने कार्यों को बडी लापरवाही के साथ करता है। उसके लिए छोटी-छोटी चोरियाँ आदि करना बडा आसान कार्य होता है, वह कभी-कभी नगा हो जाता है। उसकी स्मरण-शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है। जैसे-जैसे इस रोग की तीव्रता मे वृद्धि होती है वैसे-वैसे मानसिक लक्षण भी अधिक तीव्र हो जाते है। उसे अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ परेशान करती हैं। उसकी बौद्धिक शक्तियाँ अत्यन्त क्षीण हो जाती हैं। अनेक स्थितियो मे रोगी इतना विषादग्रस्त हो जाता है कि वह चुपचाप बैठा रहता है, अपने आपको काटने व आत्महत्या करने तक का प्रयास करता है। कभी-कभी रोगी मे अत्यधिक उल्लास के लक्षण भी दिखाई पड़ते है। वह अपने आपको स्वस्थ मानता है तथा सदैव महानता व्यामोह से ग्रस्त होता है। इस प्रकार कभी तो रोगी मे अत्यधिक विषाद के लक्षण दिखाई पडते हैं तो कभी अत्यधिक उल्लास के।

उपदशज विषाणुओ की उपस्थिति की जाँच अनेक विधियो से की जा सकती है। **वासरमैन परीक्षा** (Wasserman Test) के द्वारा जैवरासायनिक लक्षणो (bio-chemical symptoms) की जाँच सम्भव है। इसके कोपो की सख्या की गणना अणुवीक्षण (microscope) यन्त्र द्वारा की जा सकती है।

(ii) **मस्तिष्क-सुषुम्ना उपदंश** (Cerebro-spinal Syphilis)—इस प्रकार की मानसिक विकृति मे उपदंश (syphilis) की प्रधानता होती है। सक्रमण से 6 माह उपरान्त इसके लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार के उपदश के प्रमुख शारीरिक लक्षण सिर-दर्द, मूर्च्छित होना, कै या उल्टी करना आदि है। इसके प्रमुख मानसिक लक्षण घबराहट, स्मृतिलोप, चिड़चिडापन आदि हैं।

(iii) **गयात्मक निर्बलता व शिथिलता** (Motor Ataxia)—यह तीसरे प्रकार की उपदशजन्य मनोविकृति है, जिसमे सुषुम्ना के पृष्ठ भाग मे गड़वडी आ जाती है। इस प्रकार के रोगियो को प्राय बाद मे सामान्य लकवा (general paralysis) हो जाता है। इस प्रकार की मनोविकृति मे रोगी सवेदना, सहज-क्रिया आदि मे वड़ी गड़वडी आ जाती है। उसके शरीर के भिन्न-भिन्न अगो मे समन्वय नही रह जाता।

उपचार (Treatmet)—सामान्य उपदशज मनोविकृति रोगी की अगर सक्रमण के प्रथम व द्वितीय चरण मे ही चिकित्सा करवा ली जावे तो इसकी उत्पत्ति को रोका जा सकता है। चिकित्सा मे जितनी अधिक देरी की जावेगी, उतने ही अधिक घातक परिणाम होने की आशंका होगी। उपदंशज मनोविकृति की चिकित्सा के लिए तीन प्रमुख विधियाँ प्रयोग मे लाई जाती है।

प्रथम—**ज्वरात्मक चिकित्सा** (Fever Therapy) है। इसमे चिकित्सा के लिए विभिन्न औषधियो के माध्यम से रोगी को तेज बुखार चढाया जाता है। कृत्रिम बुखार चढाने के दो उपाय है—**मलेरिया का संक्रमण**—इसमे मलेरिया के रोगी के शरीर से खून लेकर मनोविकृत के रोगी को सुई के माध्यम से दिया जाता है

जिससे कि रोगी को कुछ समय उपरान्त तेज बुखार चढ जाता है तथा शार्ट-वेव यन्त्र (short-wave apparatus), जिससे रोगी मे छह घण्टे तक 104° ताप बना रहता है। परन्तु इस प्रकार की उपचारात्मक पद्धति से रोगी का स्थायी इलाज नही हो पाता।

द्वितीय उपचार पद्धति मे रोगी को संखिया का उपयोग कराया जाता है। सखिया द्वारा निर्मित ट्रिपार्समाइड (Tryparsamide) को प्राय इन्जेक्शन द्वारा रोगी को दिया जाता है।

तीसरी पद्धति मे पेनसिलिन की सुई का उपयोग किया जाता है।

जराजन्य मनोभ्रंश मनोविकृति
(Senile Dementia Psychoses)

कुछ मनोवैज्ञानिको ने इसे वृद्धावस्था जन्य मस्तिष्क रोग (Senile Brain Disease) कहा है। वृद्धावस्था मे कुछ मानसिक परिवर्तन होते हैं। वैसे तो 48 वर्ष की अवस्था के उपरान्त मनुष्य की मानसिक व शारीरिक शक्तियो मे ह्रास होना आरम्भ हो जाता है। वास्तविक रूप से जरावस्था की शुरूआत 60 वर्ष के उपरान्त होती है। परन्तु जरावस्था पर व्यक्तिगत विभेदो का प्रभाव पडता है। क्योकि जरावस्था पर जीवन की विभिन्न घटनाओ का भी प्रभाव पडता है। जरावस्था के प्रमुख परिवर्तनो के अन्तर्गत स्मृतिक्षीणता, सवेदनशीलता, रुचि सकीर्णता, अत्यधिक स्वार्थ-परायणता, चिन्ता, मृत्यु का भय आदि आते है।

वैसे तो यह रोग 60 वर्ष की आयु के उपरान्त होता है परन्तु दोनो लिंगो के लिए औसत आयु 75 वर्ष है। क्रमिक रूप से इस रोग का विकास होता है। मानसिक चिकित्सालयो मे प्रथम प्रवेश के समय 8% रोगी इसी विकृति के होते है।

जराजन्य मनोभ्रंश मनोविकृत को 5 भागो मे बाँटा जाता है—

(1) **साधारण ह्रास** (Simple Deterioration)—यह इस विकृति का एक सरल रूप है। वृद्धावस्था मे होने वाले परिवर्तनो का एक विकृत रूप है। इसमे रोगी का पर्यावरण के साथ सम्पर्क समाप्त-सा होने लगता है, स्मृति-शक्ति कमजोर होती है तथा उसमे व्यग्रता, अनिद्रा व निर्णय करने मे असफलता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है। 50% रोगी इस प्रकार के रोगी होते है।

(2) **स्थिर व्यामोहात्मक प्रतिक्रियाएँ** (Paranoid Reactions)—इस प्रकार के रोगी के अन्दर प्रमुख लक्षण व्यामोह (delusion) होता है, जिसका सम्बन्ध प्रमुख रूप से दण्डात्मक, कामुक व महानता से होता है। कभी-कभी उसमे विचित्र प्रकार के विभ्रम उत्पन्न हो जाते है, जैसे—भोजन मे विष का स्वाद आना आदि। प्राय इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उन्ही रोगियो मे होती है, जिनके व्यक्तित्व मे पहले से ही स्थिर व्यामोह के लक्षण विद्यमान होते हैं।

(3) **भ्रान्तिचित्त व व्यग्र प्रकार** (Deligious and Confused Type)—इस प्रकार के रोगियो मे तीव्र मानसिक व्यग्रता देखी जा सकती है। उसमे व्याकुलता अधिक होती है। उसकी स्मृति काफी कमजोर हो जाती है। उसे समय व स्थान तक का ध्यान नही होता और वह किसी को पहचानता भी नही है।

(4) **अविषादित एवं उत्तेजित प्रकार** (Depressed and Agitated Types)—इसमे रोगी को अत्यधिक विषदित अवस्था मे देखा जाता है। वह सोचता व चिन्तित रहता है कि उसे केन्सर या अन्य कोई रोग हो गया है उसमे कभी-कभी निर्धनता व अपराधी सम्बन्धी व्यामोह उत्पन्न हो जाते है। वृद्धावस्थाजन्य मनोविकृतियो मे इस प्रकार के रोगी केवल 10% ही होते हैं।

इस मनोविकृति का प्रमुख लक्षण—स्मृति ह्रास व धारण-शक्ति की कमी है। इस प्रकार के व्यक्तियो को पुरानी बातें तो याद रहती है परन्तु हाल की बातो का स्मरण नही होता है। ये किसी भी वस्तु, घटना या विचार पर अधिक देर तक ध्यान केन्द्रित नही कर पाते। इस प्रकार के व्यक्तियो को उस समय चिकित्सालयो मे भरती किया जाता है जबकि उसकी मानसिक व व्यक्तित्व सम्बन्धी कठिनाइयाँ इतनी अधिक बढ़ जाती हैं कि वह अपनी आत्म-व्यवस्था को बनाये रखने में भी असमर्थ होता है। जरा-मनोविकृति मे स्मरण, निर्णय व तर्क-शक्ति मे तीव्र व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी ऐसा रोगी इतना बेचैन हो जाता है कि उसे नीद तक नही आती है। वह अश्लील बातें करने लगता है तथा कभी-कभी नगा हो जाता है। रोगी इस प्रकार की मनोविकृति के अन्तर्गत स्वार्थी व आत्म-केन्द्रित हो जाता है।

जराजन्य मनोभ्रंश मनोविकृति का उदाहरण (An Example of Senile Dementia Psychoses)—"एक 80 वर्षीय विधवा वृद्धा को मानसिक अस्पताल मे इसलिए प्रवेश लेना पडा क्योकि उसका घर में रहना असम्भव था। वह सदैव चकराई रहती थी तथा निकटतम सम्बन्धियो को भी नही पहचान पाती थी। वह अपने लडके को अपना पिता समझने लगती थी। कभी-कभी वह अधिक उत्तेजित होकर शोर मचाने लगती थी तथा अश्लील भाषा का प्रयोग करती थी। वह चिकित्सक को सहयोग देती थी परन्तु उसकी दशा बड़ी व्याकुल रहती थी। कभी-कभी वह बहुत ऊटपटाँग बातें करने लगती थी। वह पिता के सम्बन्ध मे कुछ सूचनाएँ भी देती थी। वह अपना नाम जानती थी। कभी-कभी कुछ बातें कहकर भूल जाती थी। वह तर्कपूर्ण बातें नही कर पाती थी।"

इस प्रकार के रोगी का उपचार प्राय देखरेख तक ही सीमित होता है। उसे समय-समय पर पोषक भोजन, विश्राम आदि करने को कहा जाता है। इस रोग से ग्रस्त रोगियो मे से केवल 10% रोगी ही बचते है।

प्रामस्तिष्क धमनी-काठिन्य युक्त मनोविकृति
(Cerebral Arteriosclerosis Psychoses)

जैसे-जैसे मनुष्य की अवस्था मे वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे ही उसके मस्तिष्क व उसकी क्रियाओ मे ह्रास होने लगता है। स्मरण रहे कि मानव मस्तिष्क असख्य जीवित कोषो द्वारा बनता है जिनका पोषण मस्तिष्कीय रक्तवाहिनी धमनियो के जटिल जाल के माध्यम से होता है। कुछ व्यक्तियो की मस्तिष्कीय धमनियाँ 45-50 वर्ष की अवस्था मे कडी होने लगती है जिसके फलस्वरूप ये धमनियाँ विभिन्न मस्तिष्कीय कोषो मे पर्याप्त मात्रा मे रक्त नही पहुँचा पाती। पोषण तत्त्व के अभाव

मे कोष प्राय नष्ट हो जाते हैं तथा प्रामस्तिष्क धमनी काठिन्य युक्त मनोविकृति (cerebral arteriosclerosis psychoses) उत्पन्न होने के यही कारण बन जाते हैं। सक्षेप मे इस प्रकार की मनोविकृति का मुख्य कारण यह होता है कि जब मस्तिष्क मे पर्याप्त मात्रा मे रक्त नही पहुँच पाता तो मस्तिष्क के विभिन्न व्यापारो मे विक्षिप्तता आ जाती है। इस प्रकार के रोगियो की सख्या, घटनाक्रम (Incidence) की दृष्टि से मनोविदलता के बाद है। अमरीका मे इस रोग से ग्रस्त 20 लाख व्यक्ति हैं। प्रथम प्रवेश के समय औसतन आयु (दोनो लिंग के लिए) 74 वर्ष है।

लक्षण (Symptom)—इस प्रकार की मनोविकृति के प्रमुख शारीरिक लक्षण, सिर-दर्द, अनावश्यक थकान, अनिद्रा आदि हैं। इस मनोविकृति की आरम्भिक अवस्था मे रोगी किसी भी नये कार्य को आरम्भ करने मे हिचकिचाता है तथा उसमे ध्यान की कमी, चिडचिड़ापन, विषाद आदि मानसिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस अवस्था मे रोगी की स्मरण-शक्ति प्राय क्षीण हो जाती है उसके रागात्मक व्यवहार मे अस्थिरता आ जाती है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार के रोगी थोड़े समय पूर्व की घटनाओ को भूल जाते हैं, अधिक व लगातार परिश्रम नहीं कर पाते तथा उनमे सवेगात्मक अस्थिरता व बुद्धि भ्रशता आदि के लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं।

इस प्रकार के रोगियो के उपचार के सम्बन्ध मे अभी तक कोई विशेष जानकारी प्राप्त नही हुई। इस रोग से मृत्यु अपेक्षाकृत काफी अधिक होती है। रोगी को उस समय अवश्य मानसिक अस्पतालो मे प्रवेश करा देना चाहिए जबकि रोग के लक्षण अधिक गम्भीर हो। वैसे यह दुर्भाग्य ही है कि मनोवैज्ञानिको व मनोरोग चिकित्सको ने वृद्धो की मनोचिकित्सा के सम्बन्ध मे विशेष अध्ययन व अनुसधान किया हो।

मद्यसारिक मनोविकृति
(Alcoholic Psychoses)

शराब आज के युग मे काफी लोकप्रिय है। समाज के प्रत्येक वर्ग मे इसका उपयोग होता है। जीवन की विभिन्न समस्यो से थककर थोडी-सी शराब इसलिए पी ली जाती है कि कुछ उल्लास के भाव उत्पन्न हो, थोड़ी भूख बढ़े। मद्यपान का यह सामान्य रूप है। लेकिन कुछ लोग इसका सेवन अधिक मात्रा मे करते हैं। धीरे-धीरे इन्हे शराब पीने की लत पड़ जाती है तथा अगर पीने को नहीं मिले तो इनका मन व्याकुल हो उठता है। उन व्यक्तियो को भी मद्यसेवी नहीं कहा जा सकता जो सामान्य रूप से पीते हैं क्योकि इस प्रकार का व्यक्ति न तो अधिक मात्रा का ही उपयोग करता है और न ही उसे मदिरा की तीव्र उत्तेजना ही होती है। इसके विपरीत कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो नियमित रूप से मदिरा सेवन करते हैं तथा इसके लिए उत्तेजित व व्याकुल रहते हैं।

वैसे तो किसी मानसिक रोग का प्रत्यक्षत मद्य सेवन ही एकमात्र कारण नही होता। परन्तु कुछ ऐसे विशेष लक्षण ही होते हैं जो वस्तुत मद्यपान के कारण ही उत्पन्न होते हैं। इन्हे ही मद्यसारिक मनोविकृति कहते हैं। इस मनोविकृति के

अन्तर्गत विकृत मादकावस्था (pathological intoxication), डिलिरियम ट्रेमेन्स (delirium tremens), कॉर्साकोफ मनोविकृति (korsakoff psychoses), तीव्र विभ्रमावस्था (acute hallucıosis) व मद्यज अपकर्षण (alcoholic deterioration) आदि मनोविकृतियाँ आती हैं ।

लोग क्यों पीते हैं ?
(Why People Drink ?)

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि लोग शराब क्यों पीते हैं ? शराब पीने के अनेक कारण हैं । योरोप व अमरीका मे खाने के समय थोड़ी-सी शराब पीने का रिवाज है । अन्य देशो मे, जिनमे भारत भी सम्मिलित है, लोग फैशन के दबाव के कारण मदिरापान करते है । कुछ लोग जीवन की दु खद समस्याओं या सघर्षात्मक परिस्थितियो से बचाव करने के लिए शराब पीते हैं । इससे उनके अन्दर कुछ इस प्रकार की मानसिक व शारीरिक व उत्तेजना उत्पन्न होती है कि उनके भय, चिन्ता, तनाव, दु:ख आदि दूर हो जाते हैं । वे अपनी आत्मग्लानि व आत्मदोषण पर काबू प्राप्त कर लेते हैं तथा उनके अन्दर दबगपन, गौरव, सम्मान आदि के भावो एवं वृत्तियो का जन्म हो जाता है ।

लोग शराब क्यों पीते है ? इस प्रश्न का उत्तर हमे प्राप्त हो गया । परन्तु यहाँ कुछ और प्रश्न भी उठ खडे होते है, जैसे कुछ खास व्यक्ति ही शराब क्यो पीते हैं ? वशानुक्रम का हाथ इसमे है या नही ? इसका मनोविकृति या मनोवैज्ञानिक आधार क्या है ? यहाँ यह उचित प्रतीत होता है कि हम इन प्रश्नो का समाधान प्रस्तुत करें ।

वंशानुक्रम (Heredity)—अमरीका मे किये गये अध्ययनो के अनुसार 65 से 82% मनोविकृति का मद्यपान करने का कारण दूषित वशानुक्रम था । इसी तरह एक अध्ययन मे यह देखा गया कि 35 से 40 प्रतिशत मद्यपान करने वालो के अन्दर कुछ मनोजैविक दोष अन्तर्निहित होते हैं जो मदिरापान के लिए उपयुक्त आधार की भूमिका निभाते हैं । परन्तु मद्यपान का एकमात्र कारण वशानुक्रम को मानना उचित नही प्रतीत होता क्योंकि मदिरा का प्रभाव बीजकोष पर नही पड़ता ।

मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological Bases)—मद्यज मनोविकृतियो का मनोवैज्ञानिक आधार यह है कि मद्यपान एक आदत के रूप मे आने से पूर्व ही व्यक्ति का व्यक्तित्व विकृत हो जाता है तथा उसके सवेगात्मक समायोजन मे विक्षिप्तता विद्यमान होती है । मद्यपान के माध्यम से रोगी दीर्घकालिक असुरक्षा की भावना से बचाव करता है तथा इस प्रकार स्वय को उत्तरदायित्वो से मुक्त कर लेता है । इस प्रकार मद्यमान के माध्यम से व्यक्ति थोडे समय के लिए वास्तविक जगत की असफलताओ व निराशाओ मे अपने को मुक्त करके काल्पनिक दुनियाँ मे पहुँच जाता है, जहाँ उसके दु ख व चिन्ता, प्रसन्नता व उल्लास मे परिवर्तित हो जाते है ।

मद्यसारिक मनोविकृति के मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रकाश डालते हुए यहाँ यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध मे मनोविश्लेषणात्मक मनोवैज्ञा-

निको का क्या मत है ? मनोविश्लेषणवादियो के मतानुसार मद्यसारिक मनोविकृति का मुख्य कारण लैगिक भावना का दमन है। अन्य शब्दो मे, इस प्रकार से मनोविकृतियो व समजाति-लैगिकता (homo-sexuality) का दमन हो जाता है जिसके फलस्वरूप वह मदिरापान करता है।

परन्तु मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त इस सम्बन्ध मे ठीक प्रतीत नही होता क्योकि अनेक मद्यव्यसनी एकान्त मे ही पीना पसन्द करते है। जहाँ तक स्त्रियो का सम्बन्ध है, उन पर भी यह सिद्धान्त ठीक प्रतीत नही होता, क्योकि स्त्रियाँ भी स्त्रियो के साथ बैठकर पीने की अपेक्षा पुरुषो के साथ बैठकर पीना पसन्द करती है।

मद्यपान के सम्बन्ध मे एक और सिद्धान्त प्रचलित है जिसे त्वक्षीय अवरोध का सिद्धान्त (Cortical Inhibition Theory) कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मदिरा से मस्तिष्क के त्वक्ष मे क्रियाशून्यता उत्पन्न हो जाती है। क्योकि त्वक्ष मे ही स्मरण तथा उच्च मानसिक सवेगो को अवरुद्ध करने वाली क्रियाएँ स्थित रहती है। अत इसमे क्रियाशून्यता उत्पन्न होने के फलस्वरूप व्यक्ति को दुखद व अन्य अप्रिय विचारो से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। परन्तु आज तक इस सिद्धान्त के सम्बन्ध मे तीव्र मतभेद है।

व्यक्तित्व सम्बन्धी तत्व (Personality Factors)—ऐसा कहना गलत होगा कि अमुक व्यक्तित्व प्रकार के मनुष्य अधिक मद्यपान करते हैं। क्योकि पीने वालो मे सभी प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति होते हैं। परन्तु सामान्यत ऐसा देखा गया है कि जो लोग सामाजिक शिष्टाचारवश ही मदिरापान करते हैं, उनमे अधिक सख्या वहिर्मुखी व साइक्लोथिमिक प्रवृत्ति के लोगो की ही होती है।

सामाजिक तत्व (Social Factors)—मद्यपान सामान्यत वहाँ अधिक होता है जहाँ उपलब्ध हो, उदाहरणस्वरूप, जहाँ शराव अधिक निर्मित या उपलब्ध होती है, वहाँ उसका प्रचलन अपेक्षाकृत काफी अधिक होता है।

मद्यसारिक मनोविकृति के प्रकार
(Kinds of Alcoholic Psychoses)

मद्यसारिक मनोविकृति के अनेक प्रकार हैं, यहाँ हम सक्षेप मे मुख्य प्रकारो के वारे मे वर्णन प्रस्तुत करेंगे —

(1) विकृत मादकावस्था (Pathological Intoxication)

रोगी मे विकृत मादकावस्था कुछ मिनट से लेकर कभी-कभी घण्टो तक बनी रहती है। इस प्रकार की स्थिति मे उसकी मानसिक क्रियाएँ यहाँ तक समाप्त हो जाती हैं कि वह कभी-कभी अपराध, आत्महत्या या हत्या तक करने को तैयार हो जाता है। जब रोगी मे इस स्थिति की समाप्ति हो जाती है तो उसे दौरे की अवस्था मे किसी भी घटना का स्मरण नही होता। इस प्रकार की स्थिति के सम्बन्ध मे कुछ विद्वानो का मत है कि यह उन्ही व्यक्तियो मे होता है, जिन्हे मिरगी, मनोविदलता या उन्माद आदि रोग होता है।

(2) नशे से ज्ञान-भ्रान्ति या डिलिरियम ट्रमेन्स (Delirium Tremens)

इस प्रकार की स्थिति प्राय उन पियक्कड़ो की होती है जिन्हे आघात, दुर्घटना या तेज बुखार हो चुका हो। कभी-कभी इस प्रकार की स्थिति स्वत ही 30 वर्ष की आयु के उपरान्त हो जाती है। यकायक मद्यपान छोड़ना भी इसका कारण हो सकता है। इस विकार का सर्वप्रथम वर्णन **टॉमस सूटन** (Thomas Sutton) ने 1813 मे किया था।

शारीरिक लक्षण (Physical Symptoms)—इस प्रकार की स्थिति आरम्भ होते ही व्यक्ति को नीद नही आती तथा उसमे व्याकुलता एवं भूख की कमी के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इसके पश्चात् उसे तेज बुखार आता है, कब्ज की शिकायत रहती है तथा धीरे-धीरे नाड़ी की गति में भी मन्दता आती जाती है। इनके अतिरिक्त कुछ गत्यात्मक क्षीणता के लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं।

मानसिक लक्षण (Mental Symptoms)—रोगी को अनेक प्रकार के भ्रम व विभ्रम (illusion and hallucination) सताते हैं। उसे ऐसा प्रतीत होता है की उसकी त्वचा पर कीड़े रेंग रहे हैं या उसकी त्वचा पर लकवा मार गया है। उसकी प्राय समस्त सवेदनाएँ असन्तुलित हो जाती हैं। वह विभ्रमावस्था मे बड़ी तीव्रता के साथ डरता है। वह सदैव ही इस भय से आशंकित रहता है कि उसे कोई जान से मार डालेगा या कोई दु खद घटना घटित होने वाली है। इस प्रकार के रोगियो मे ससूचनशीलता (suggestible) अधिक होती है जिसके कारण अगर रोगी को कोरा कागज भी दे दिया जावे तो वह उसे भी पढने लगता है तथा उसे जो कुछ भी कहा जावे; वह उसे स्वीकार कर लेता है।

उदाहरण (Example)

एक 40 वर्षीय पुरुष विवाहित था तथा मद्यपान के कारण मानसिक चिकित्सालय मे भरती हुआ था रोगी अत्यधिक मदिरापान करता था तथा वह उसे किसी भी कीमत पर छोड़ना नही चाहता था। रोगी ने चिकित्सालय मे प्रवेश के तीन माह पूर्व बहुत अधिक मद्यपान करना प्रारम्भ कर दिया था। एक रात्रि को वह अपने बिस्तर से उठकर बैठ गया तथा पत्नी से कहने लगा कि वह छत पर जाना चाहता है तथा वायुयान के चालक 10 डालर इसलिए देना चाहता है कि वह उसके घर मे वायुयान की आवाज न करे। दूसरी रात्रि उसने अपनी पत्नी से कहा कि कुछ स्त्रियाँ उसके कान में बातें कर रही हैं तथा वह उन्हे मना करने जा रहा है। जब उसकी पत्नी ने बताया कि उसके मकान में तो कोई भी स्त्री नही है तो उसने अपनी पत्नी को पीट दिया। वह अपनी इच्छा के आधार पर चिकित्सालय मे भरती हुआ परन्तु जब उसे इस रोग की घटनाओ का अनुभव हुआ तब अत्यधिक चिन्तित अवस्था मे बैठ गया। उस समय उसके हाथ काँप रहे थे तथा वह निरन्तर यह कह रहा था कि वह मर रहा है। वह अत्यधिक भयपूर्ण विचारो मे मग्न रहता था।

उपचार (Treatment)—इस प्रकार की स्थिति प्रायः 1 सप्ताह तक चलती है। इस प्रकार के रोगियो को, अगर सम्भव हो तो, अँधेरे कमरे मे अकेला व शान्त

पडा रहने दिया जाना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, इस प्रकार के रोगी को ऐसे स्थान पर रखना चाहिए, जहाँ शोरगुल न हो। 'उसे गर्म पानी से नहलाना चाहिए तथा नींद की दवाइयाँ देनी चाहिए। पौष्टिक भोजन व विटामिन 'बी' कॉम्पलेक्स देने से 99% रोगी प्राय ठीक हो जाते है।

(3) दीर्घकालिक मद्यसारिक मनोविकृति (Chronic Alcoholic Psychoses)

धीरे-धीरे शराब पीने की लत पड जाती है अत जो व्यक्ति अनेक वर्षों मे मद्यपान करते आ रहे हैं, वे इस विकृति के शिकार हो जाते हैं। यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि शराब का मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। जो लोग कई वर्षों से शराब पीते चले आ रहे हैं, उनका शरीर व मन—दोनो का ह्रास होना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के रोगियो मे अनेक प्रकार के लक्षण प्रकट होने लगते हैं, जैसे—शरीर का काँपना, चेहरा चौडा हो जाना, शरीर मे दर्द या अर्द्ध-लकवा की शिकायत, पेट व आँतो की खराबी, हृदय रोग आदि इस विकृति के प्रमुख शारीरिक लक्षण हैं। रोगी मे अनेक प्रकार के मानसिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु उसे जब भी उमग आती है, वह जो चाहता है, वही कार्य करता है। ऊपर से देखने मे वह बडा खुशमिजाज व मधुर स्वभाव का दिखाई पडता है, परन्तु वास्तव मे वह असभ्य होता है। वह झूंठ बोलता है, ऊँचे-ऊँचे आदर्शो का निर्माण करता है तथा अपनी नेकी की हवा बाँधने का असफल प्रयास करता है।

(4) कॉर्सकॉफ मनोविकृति (Korskoff Psychoses)

कॉर्सकॉफ मनोविकृति प्राय प्राचीन मद्यपान पर आधारित होती है तथा मानसिक चिकित्सालयो मे भरती होने वाले रोगियो मे से 10% प्राय इस प्रकार के रोगी होते है। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को यह रोग अधिक होता है। इस रोग का सर्वप्रथम वर्णन सन 1887 मे सर्जो कोर्साकोफ ने किया था।

प्रमुख लक्षण (Main Symptom)—इस प्रकार के रोग का प्रमुख लक्षण है कि रोगी की स्मृति इतनी क्षीण हो जाती है कि उसे हाल की घटनाओ तक का स्मरण नही होता। वह नवीन जान-पहचान करने मे असमर्थ रहता है, जैसे—रोगी एक ही चिकित्सक से अनेक वर्षों तक इलाज करवाता है परन्तु उससे प्रत्येक बार मिलने पर वह प्रथम मिलन ही समझता है। कुछ रोगियो को अपनी स्मृतिहीनता का ज्ञान होता है परन्तु कुछ को इस सम्बन्ध मे कुछ भी पता नही होता। दूसरा प्रमुख लक्षण यह है कि रोगी मनगढन्त बातें बहुत अधिक करता है। इसके अतिरिक्त उसे अनेक प्रकार के विभ्रम सताते हैं। रोगी सवेगात्मक रूप से अस्थिर होता है जिसके फलस्वरूप कभी तो बहुत प्रसन्न व मिलनसार दिखाई पडता है, तो कभी लडने व गाली-गलौज पर उतर आता है। त्वक स्नायुओ (peripheral nerves) की क्रिया क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप रोगी हाथ-पैर से कमजोरी व दर्द का अनुभव करता है।

उपचार (Treatment)—रोगी के पूर्ण विश्राम की व्यवस्था करनी चाहिए। मद्यपान का पूर्ण निषेध तथा विटामिन बी–1 से युक्त पौष्टिक भोजन देना अति

आवश्यक होता है। त्वक स्नायुओं में क्रियाशीलता लाने के लिए गैलवनिक प्रवाह (galvanic current) तथा मालिश व व्यायाम आदि का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार के रोगियो की चिकित्सा से सफलता बहुत कम प्राप्त होती है।

(5) तीव्र विभ्रमावस्था (Acute Helluciosis)

इस प्रकार की अवस्था उन्ही व्यक्तियो मे हो सकती है जिनके व्यक्तित्व मे मनोविदलतात्मक प्रवृत्तियाँ निहित रहती है। इस प्रकार के रोगी मे अनिद्रा, अत्यधिक सवेदनशीलता, विभ्रम आदि के लक्षण पाए जाते हैं। स्मरण रहे कि ये लक्षण डिलीरियम ट्रेमेन्स के रोगी में भी पाए जाते है। परन्तु इन दोनो अवस्थाओं मे एक प्रमुख अन्तर यह होता है कि जहाँ डिलीरियम ट्रेमेन्स के विभ्रम दृश्य होते हैं, वहाँ तीव्र विभ्रमावस्था के विभ्रम श्रव्य होते हैं। इस प्रकार के रोगी को बहुधा ऐसी आवाजें सुनाई पड़ती हैं जिनका सम्बन्ध उसके व्यक्तिगत जीवन मे होता है। वह इन धमकी भरी आवाजो को सत्य मानता हैं, कभी-कभी इतना अधिक भयभीत हो जाता है कि आत्मरक्षा के लिए हथियार खरीदता है तथा कभी-कभी पुलिस की सहायता माँगता है।

इस प्रकार के रोगियो को मानसिक अस्पताल में भरती करवाना अति आवश्यक होता है। अगर सतर्कता के साथ इनका उपचार किया जावे तो कुछ दिनो या सप्ताहों के बाद ऐसे रोगी ठीक हो जाते हैं।

नशोली वस्तुओं के सेवन से उत्पन्न मनोविकृतियाँ
(Psychoses Due to Drugs)

कुछ ऐसी नशीली वस्तुएँ होती हैं जिनके सेवन से कुछ विशेष प्रकार की मनोविकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। परन्तु इससे यह नही समझना चाहिए कि सभी व्यक्तियो को, जो नशीले पदार्थ का सेवन करते हैं, मनोविकृति हो जाता है। नशीली वस्तुओ के अन्तर्गत अफीम (morphine), कोकीन (cocaine), सखिया आदि आते हैं। अफीम के खाने से मनुष्य की चिन्ताएँ व कष्ट कुछ समय के लिए दब जाते हैं और सुख व कल्याण के भाव उत्पन्न हो जाते है। कोकीन के उपयोग से रोगी को पूर्ण रूप से शान्ति व स्थिरता प्राप्त होती है तथा थकान आदि दूर हो जाती है।

नशीले पदार्थों के निरन्तर उपयोग से व्यक्ति की आत्म-संयमता पर हानिकारक प्रभाव पडता है तथा उसके जीवन मे नैतिक मर्यादाओ का कोई मूल्य नही होता। उसके लिए धोखा, चोरी, बेईमानी आदि से सम्बन्धित कार्य करना बड़ा ही सरल होता है। इनके प्रयोग से व्यक्ति की त्वचा शुष्क होती है, भूख नही लगती, मुँह सूखता है तथा नपुंसकता आती है। उसकी स्मरण-शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है। अगर अफीमची को अफीम न मिले तो वह सो नही पाता, बेचैनी, दुःख, थकान आदि सताते हैं। कोकीन के सेवक से व्यक्ति अत्यधिक वातूनी हो जाता है।

उपचार (Treatment)—ट्रेडवे (Treadway) ने इस प्रकार के दुर्व्यसनो के उपचार को अग्रलिखित तीन भागो में विभाजित किया है :—

(1) व्यक्ति को नशीले पदार्थ का सेवन न करने देना तथा उसकी इस आदत को छुडाना तथा फिर इनसे उत्पन्न शारीरिक दोषो का उपचार करना।
(2) सवेगात्मक रूप से इन्हे स्थिर करना तथा फिर पुन शिक्षण करना।
(3) सामाजिक सुविधाएँ व उचित देखभाल करना।

स्मरण रहे कि इस प्रकार के व्यक्ति आसानी से अपने इस दुर्व्यसन को नही छोड़ पाते। काफी दवाव के वाद ही उपचार कराने को तैयार होते हैं।

धातुओं के कारण उत्पन्न मनोविकृतियाँ
(Psychoses Due to Metals)

अगर मानव-शरीर मे शीशा, पारा, आर्सेनिक या मैगनीज का प्रवेश अधिक मात्रा मे हो जावे तो अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक व स्नायुविक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। शरीर मे इन धातुओ का प्रवेश भोजन, पानी या अन्य वस्तुओ के द्वारा होता है। कभी-कभी इन विषैली धातुओ का प्रवेश धूल कणो या भाप के रूप मे श्वास द्वारा होता है। सीसे के विष के फलस्वरूप मन भ्रान्ति, थकान, आलस्य, चिडचिडापन आदि लक्षण उत्पन्न होते है। इस प्रकार की मनोविकृतियो के उपचार के लिए ऐसी औषधियो का प्रयोग किया जाता है जिनसे कि रक्त व शरीर से शीशा निकल सके। अगर शीशे से केन्द्रीय स्नायुमण्डल प्रभावित नही हुआ है तो रोगी के ठीक होने की सम्भावना काफी वढ जाती है।

पारे के विष के द्वारा व्यक्ति के स्वभाव मे चिड़चिड़ापन, आलस्य, तीव्र सवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ, विस्मृति आदि के लक्षण जन्म ले लेते है। इन सभी का एकमात्र उपाय यह है कि रोगी के शरीर मे से इन धातुओ के विष को औषधियो के माध्यम से बाहर निकाला जाए।

कोरिया मनोविकृति
(Chorea Psychoses)

इसे हन्टिगटन-कोरिया (Huntington's Chorea) व सेन्ट व्हाइट्स डान्स (St Whites Dance) भी कहते हैं। इस रोग का मुख्य कारण केन्द्रीय मस्तिष्क मे सक्रमण उत्पन्न हो जाना है। यह एक वशानुगत रोग है जिनसे लडकियाँ व स्त्रियाँ अधिक प्रभावित होती हैं। वयस्को की अपेक्षा यह रोग बालको को अधिक होता है। इस रोग से माँसपेशियाँ सर्वाधिक रूप से प्रभावित होती हैं। माँसपेशियो की क्रियाओ मे एकरूपता के स्थान पर अनैच्छिकता, आकस्मिकता व अनियमितता आ जाती है। रोगी सदैव सिर-दर्द की शिकायत करता है। इसके प्रमुख मानसिक लक्षण विभ्रम, धुँधलापन, चिडचिडापन, तीव्र सवेग आदि हैं। इस रोग का कोई प्रभावकारी उपकार सम्भव नही हैं।

अपस्मार या मिरगी
(Epilepsy)

इस मनोविकृति का परिचय मनुष्य को आज से तीन हजार वर्ष पूर्व का है। क्योकि ससार के प्रत्येक देश मे यह रोग विद्यमान है। इस प्रकार की विकृति मे

अनेक प्रकार के आकस्मिक व आवर्तक दौरे पड़ते है। अन्य शब्दो मे, रोगी का शरीर इस मनोविकृति मे इतनी बुरी तरह ऐंठ जाता है तथा रोगी गिर जाता है। रोगी को इस तरह के दौरे आकस्मिक रूप मे होते हैं तथा कभी-कभी ये दौरे अल्पकालीन होते हैं, तो कभी दीर्घकालीन। दौरा पडने पर रोगी गिर जाता है, उसके हाथ-पैर काँपने लगते है तथा दाँत भिच जाते है। अन्य व्यक्ति भय व अविश्वास के कारण इन रोगियो की सहायता चाह कर भी नही कर पाते। वैसे तो यह रोग किसी भी अवस्था मे हो सकता है परन्तु दौरे की अवधि अलग-अलग व्यक्तियो मे भिन्न होती है। कुछ व्यक्तियो को थोडी बार दौरे आते है तो कुछ को साल मे सैकडों बार।

अपस्मार का वर्गीकरण
(Classification of Epilepsy)

इस प्रकार के रोगियो को मुख्यत. दो प्रकार के दौरे पड़ते हैं—(1) लाक्षणिक (symptomatic), व (2) अनिवार्य (essential)। लाक्षणिक प्रकार का अपस्मार मुख्यत' निदान के माध्यम से प्रकट होता है तथा इस प्रकार के दौरो का सम्बन्ध किसी निश्चित मस्तिष्क-विकृति से होता है। अनिवार्य अपस्मार प्रकार के दौरो का सम्बन्ध अन्तरस्थ शरीर-रचना सम्बन्धी दोष होता है।

अपस्मार का औपचारिक वर्गीकरण
(Clinical Types of Epilepsy)

अपस्मार के दौरे तीन प्रकार के होते है :

(1) **बड़ा दौरा (Grand Mal)**—इस प्रकार का दौरा बडी गम्भीर स्थिति उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार के दौरे की चार क्रमिक अवस्थाएँ हैं, यथा :—

(अ) रोगी बहुत जोर से चीखता है। तत्पश्चात पूर्ण रूप से चेतनाशून्य होकर गिर पडता है। उसके शरीर मे कठोरता, जबडो का जकड जाना व भुजाओ व टाँगो का फैल जाना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

(ब) प्रथम अवस्था के तुरन्त बाद ही रोगी के समस्त शरीर व माँसपेशियो मे एक प्रकार का सकुचन (spasm) होना शुरू हो जाता है जिसके फलस्वरूप कभी-कभी श्वास-प्रश्वास क्रिया भी अवरुद्ध हो जाती है। इसे **टॉनिक संकुलन अवस्था** भी कहते हैं। यह स्थिति 30 सेकण्ड से 1 मिनट तक रहती है।

(स) तीसरी अवस्था मे माँसपेशियो मे तालबद्ध रूप से झटके, मुँह से झाग निकलना, अनजाने मे ही मल-मूत्र वाहर आना आदि क्रियाएँ शुरू हो जाती है। वह अवस्था 4 या 5 मिनट तक होती है।

(द) इस अवस्था मे आकर रोगी को या तो वेहोशी आ जाती है या वह कुछ जटिल यन्त्रवत् व्यवहार करने लगता है। यह अवस्था 1 या दो घण्टे तक बनी रहती है।

रोगी को इन दौरो के बाद यह स्मरण नही रह जाता कि उसने दौरे की अवस्था में कौन-कौन-से कार्य किये थे। 50 प्रतिशत रोगियों मे दौरे पड़ने से पूर्व

एक प्रकार की भावना (aura), जैसे—दर्द, गर्मी-सर्दी की सवेदना, हृदय बैठना, दम बैठना आदि का अनुभव होता है ।

(2) हल्का दौरा (Petit Mal)—मिरगी का यह हल्का रूप है जिसमे रोगी की चेतना का क्षणिक ह्रास हो जाने के साथ ही साथ उसका रग पीला हो जाता है, चेहरा भावशून्य हो जाता है, कुछ बुदबुदाने लगता है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि उसके मुँह से आवाज निकल रही है । ये दौरे अल्पकालीन होते हैं तथा दौरा समाप्त हो जाने के उपरान्त रोगी इस प्रकार से कार्य करने लगता है कि मानो कुछ हुआ ही नही था । इस प्रकार के दौरे 20 वर्ष की आयु के उपरान्त होते हैं । लडको की अपेक्षा लडकियो को अधिक होता है । इसमे रोगियो का पूर्वाभास (aura) नही होता । कभी-कभी मृदु या हल्के दौरे में परिवर्तित हो जाते हैं ।

अपस्मार या मिरगी का मानसिक या मनोगत्यात्मक प्रकार
(Psychic or Psychomotor-equivalent Type of Epilepsy)

इस प्रकार मे प्रत्येक रोगी के अन्दर भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं । इस प्रकार मे रोगी की चेतना मे अनेक व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाते हैं । वह अपने कार्यो को यन्त्रवत् रूप से करता है । उसके व्यवहार मे विचित्रता दिखाई पडती है, जैसे—यदि इस प्रकार का रोगी टाइप कर रहा होता है तो वह धीरे-धीरे एक ही वाक्य को अनेक वार टाइप कर डालेगा । उसके अनेक कार्य इसी प्रकार अव्यवस्थित होते हैं । दौरा पडने के बाद रोगी अपने आपको एक नये स्थान में पाता है । इस रोग के तीव्र आवेग मे रोगी अचानक ही क्रोधित हो जाता है, वस्तुओ को इधर-उधर फेंकने लगता है या स्वयं इधर-उधर दौडता है । कभी-कभी इस प्रकार का रोगी हिंसक अपराध भी कर डालता है । कभी-कभी समस्यात्मक वालको को भी इस प्रकार के दौरे पड़ते हैं ।

जैकसोनियन अपस्मार या मिरगी
(Jacksonian Epilepsy)

यह गत्यात्मक अपस्मार का ही एक प्रकार है । जैक्सन अपस्मार का सर्वप्रथम वर्णन जे० हुगलिंग्ज जैकसन (J Hughlings Jackson 1834-1911) ने किया था । इस प्रकार के अपस्मार मे सकुचन के दौरे शरीर के किसी एक भाग तक ही सीमित रहते हैं । रोगी मे प्राय चेतना रहती है परन्तु चेतना रहने पर भी वह नि.सहाय होता है । इस प्रकार के अपस्मार की उत्पत्ति प्राय शरीर के किसी भाग पर दवाव पडने या मस्तिष्क के त्वक्ष किसी स्थान-विशेष पर रुग्ण हो जाने पर होती है । इसका उपचार प्राय· शल्य-क्रिया द्वारा होता है ।

घटनाक्रम (Incidence)

हमारे देश मे इस सम्बन्ध मे विशेष आँकड़े या साख्यिकी उपलब्ध नहीं हैं फिर भी अन्य देशो मे किये गये अध्ययनो के आधार पर यह ज्ञात होता है कि प्रति 1,000 व्यक्तियो मे से 5 व्यक्ति इस रोग से ग्रस्त होते हैं । परन्तु इनमे से बहुत कम लोगों

की चिकित्सा अस्पतालो मे होती है । अधिकतर रोगियो को बड़ा दौरा ही पड़ता है । जिन व्यक्तियो को छोटा दौरा पड़ता है, उन्हे प्राय. बड़ा दौरा भी पड़ता है । प्रथम बार यह दौरा किशोरावस्था में पड़ता है । मनोगत्यामक अपस्मार केवल साठ प्रतिशत लोगो को ही होता है ।

कारणात्मक एवं पूर्व-प्रवृत्यात्मक कारक
(Etiological and Predisposing Factors)

(1) **वंशानुक्रम**—अनेक परिवारो व यमजो (twins) के अध्ययनों के आधार पर यह प्रमाणित हो गया ह कि अपस्मार मे वशानुक्रम एक प्रमुख कारण होता है । इस प्रकार के रोगी वशानुक्रम के माध्यम से, कुछ ऐसे तत्व ले जाते है जो इस रोग को उत्पन्न करने मे सहायक होते है । इलेक्ट्रो-एन्सेफलोग्राम (electro-encephe-logram), जो कि एक प्रकार का विद्युत यन्त्र है, के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि रोगी कुछ अस्थिर स्नायुमण्डल को प्राप्त करते है । परन्तु इस रोग का एकमात्र पूर्व-प्रवृत्यात्मक तत्त्व वंशानुक्रम को नही माना जा सकता क्योकि अनेक व्यक्ति ऐसे भी हैं जिन्हे इस प्रकार के तत्त्व वंशानुक्रम से तो प्राप्त होते हैं परन्तु उन्हें अपस्मार रोग नही होता ।

(2) **संवेगात्मक कारण**—अपस्मार में सवेगात्मक विक्षोभो (emotional disturbances) का भी हाथ रहता है । यही कारण है कि अपस्मार के रोगियों को प्राय. उत्तेजित होने से बचाव करने का परामर्श दिया जाता है । स्नायु-मण्डल की अस्थिरता भी संवेगात्मक विक्षोभों को उत्पन्न करने मे सहायक होती है ।

उपचार (Treatment)—अपस्मार से ग्रस्त रोगियो का उपचार अस्पताल से बाहर भी सम्भव है । वैसे इस प्रकार के रोग का आज तक कोई सन्तोषजनक उप-चार नहीं निकला है । परन्तु साधारणतया जिस समय रोगी दौरे की अवस्था मे हो तो कुछ विशेष सावधानियो का पालन करना चाहिए, जैसे—चोट आदि से बचाने के लिए सिर के नीचे तकिया, मुँह मे रूमाल डाल देना चाहिए जिससे कि ओठ या जुबान न कटे, आदि । अगर रोगी को लगातार दौरे पड़ें तो 'ब्रोमाइड्स' की काफी मात्रा देनी चाहिए ।

दौरो की सख्या मे कमी करने के लिए भी विभिन्न औषधियों का प्रयोग किया जाता है, जैसे—बड़े दौरे मे 'डाइलेटिन' (dilantin) तथा छोटे दौरे मे 'ट्रिडीयन' नामक औषधियो का उपयोग करना चाहिए । इन दवाइयों के साथ ही साथ मनो-चिकित्सा मे भी लाभ होता है ।

25
मनोविदलता
(SCHIZOPHRENIA)

कार्यपरक मनोविकृतियों का अर्थ
(Meaning of Functional Psychoses)

कार्यपरक मनोविकृतियो की मुख्य विशेषता यह होती है कि इनमे आगिक आघात, विक्षेप व विषजन्य दोष नहीं पाये जाते बल्कि आनुवशिकता, अप्रिय अनुभवों, सक्रामक रोग व मस्तिष्क के अज्ञात आघातो के कारण इनकी उत्पत्ति होती है। अनेक अध्ययनो के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि वशानुक्रम, शारीरिक रचना, स्नायुमण्डल के रोग, सक्रामक रोग, शरीर के रासायनिक व जैविक परिवर्तन अत-स्रावी ग्रन्थियाँ, मनोजात व मानसिक तत्व आदि मे ही कार्यपरक मनोविकृतियो के कारण मौजूद होते हैं। असामान्य मनोविज्ञान के इतिहास पर ध्यान देने से यह पता चलता है कि अनेक वार कार्यपरक मनोविकृतियों का सम्बन्ध मस्तिष्क विकारो व रोगो से जोड़ने का प्रयास किया गया। क्रेशमर ने इस सम्बन्ध मे काफी कुछ कहा तथा अन्य अनेक वैज्ञानिको ने तो यहाँ तक दावा किया कि केवल मस्तिष्क विचारो व परिवर्तनो के आधार पर ही कार्यपरक विकृतियो की जानकारी सम्भव है। अनेक विद्वानो का यह भी मत है कि कार्यपरक मनोविकृतियो का उपचार मस्तिष्क के आपरेशन (यथा-मनोशल्य-चिकित्सा (Psycho-surgery), लोत्र विज्ञान (Lobotomy) आदि के द्वारा सम्भव है।

अनेक विद्वानो ने अपने शोधात्मक अध्ययनो के आधार पर यह वताया है कि शारीरिक परिवर्तन व अन्तःस्रावी ग्रन्थियो के कारण कार्यपरक मनोविकृतियाँ उत्पन्न होती है। क्रेपलिन, मॉट (Mott), लेविस (Lewis) आदि विद्वानो ने इस मत का समर्थन किया है।

मनोविकृतियों के निदान में मनोजात तत्वों का अत्यधिक महत्त्व है। स्मरण रहे कि मनोविकृतियों में अचेतन मन के विभिन्न घटकों का बहुत बड़ा हाथ होता है। मेयर (Meyer) ने कार्यपरक मनोविकृतियों को एक प्रकार की व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ बताया है जिनका सम्बन्ध सामाजिक पर्यावरण व व्यक्तिगत अभिवृत्तियों से होता है। हम इन मनोविकृतियों के निदान में रोगी के व्यक्तित्व को समग्र रूप में रखकर अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में तथा अगले अध्यायों में हम विभिन्न प्रकार की कार्यपरक मनोविकृतियों के सम्बन्ध में विशद विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

मनोविदलता का स्वरूप
(Nature of Schizophrenia)

इतिहास—सन् 1860 में बेल्जियन मनोचिकित्सक मोरेल (Morel) ने एक तेरह वर्षीय बालक का वर्णन किया, जो कि अपनी कक्षा व स्कूल में पढ़ने में बड़ा कुशाग्र बुद्धि वाला था, परन्तु कुछ समय के उपरान्त उसकी रुचि पढ़ने में नहीं रही. वह उदासीन रहने लगा तथा उसकी स्मृति पूर्णतः समाप्त हो गई। वह बिना झिझक के अपने पिता को मारने आदि के सम्बन्ध में बात करता था। बालक की इस स्थिति को मोरेल ने 'मानसिक ह्रास' (*Demence Precoce*) पद की संज्ञा दी। इसके बाद इस पद को क्रेपलिन (Kraepelin) ने 'असामयिक मनोह्रास' या डिमेन्सिया प्रिकाक्स' (*Demence praecox*) का नाम दिया। 1911 में ब्लूलर (Bleuler) ने, जो कि स्विस का प्रमुख मनोचिकित्सक था, सर्वप्रथम मनोविदलता के अंग्रेजी रूपान्तर '*Schizophrenia*' पद का प्रयोग किया। उसने इसका अर्थ व्यक्तित्व विच्छेद या विदलन बताया। परन्तु मनोविदलता के इस अर्थ को आज स्वीकार नहीं किया जाता।

अर्थ—मनोविदलता का शाब्दिक अर्थ, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, व्यक्तित्व का विच्छेद या अस्त-व्यस्त होना है। परन्तु वास्तव में इसका अर्थ 'यथार्थता से सम्बन्ध-विच्छेद' है। इसका मुख्य कारण यह है कि मनोविदलता का रोगी वास्तविक दुनिया से अपने सम्बन्ध को पूर्ण रूप से तोड़ देता है तथा अपनी बनाई हुई दुनियाँ में ही विचरण करता रहता है। मनोविदलता में अनेक प्रकार के विकार सम्मिलित होते हैं। यही कारण है कि प्रो० कोलमैन[1] ने इसे असामान्य व्यवहारों का एक समूह बताया है, जिसमें रोगी की वास्तविकता के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता एवं उसकी संवेगात्मक व बौद्धिक प्रतिक्रियाओं में आधारभूत विक्षोभ उत्पन्न हो जाते हैं। प्रो० केमरॉन के मतानुसार, "मनोविदलता सम्बन्धी प्रतिक्रियाएँ

1. "The term 'schizophrenia' is now used to include a group of psychotic reactions in which there are fundamental disturbances in reality relationships and in emotional and intellectual processes."—Coleman : *Abnormal Psychology and Modern Life*, p. 275.

प्रतिगमनात्मक प्रयास है जिसमें रोगी वास्तविक अन्तर्वैयक्तिक पदार्थ सम्बन्धो व व्यामोहो एवं विभ्रमो के निर्माण के माध्यम से अपने तनावों व चिन्ताओ से बचाव करता है।"[1]

इन परिभाषाओ से मनोविदलता के सम्बन्ध मे यह ज्ञात होता है कि इसमे अनेक प्रकार के विचार सम्मिलित होते हैं तथा इस प्रकार के रोगियो का व्यक्तित्व विच्छिन्न (dissociated) हो जाता है जिससे इनके विचारो, सवेगो आदि मे अतार्किकता व अनुपयुक्तता पायी जाती है। जेम्स डी० पेज के अनुसार, "मनोविदलता व्यक्तित्व-विघटन के द्वारा परिलक्षित अनेक मनोविकारो के समूह का बोध कराने वाला सामान्य पद है।"[2]

घटनाक्रम
(Incidence)

विभिन्न प्रकार की मनोविक्षिप्तताओ मे से मनोविदलता एक जटिल प्रकार की मनोविकृति है। इस मनोविकृति से ग्रस्त व्यक्तियो की सख्या बहुत अधिक पायी जाती है। सामान्य जनसख्या का 1 या 2 प्रतिशत व्यक्ति इस रोग से ग्रस्त होता है। भारत मे इस प्रकार के रोगियो की निश्चित सख्या ज्ञात नही है। परन्तु अमरीका मे मानसिक अस्पतालो मे प्रथम प्रवेश करने वाले रोगियो मे से लगभग 23·1% व पुन. प्रवेश करने वालो मे से लगभग 30% रोगी मनोविदलता के होते हैं। रोगियो की इतनी अधिक संख्या होते हुए भी इस रोग से मुक्त एव मृत्यु होने वाले रोगियो की सख्या अपेक्षाकृत बहुत कम ही है। पोल्लॉक (Pollock) का मत है कि मनोविदलता का रोग स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो को अधिक होता है तथा 15 से 30 वर्ष की आयु वालो को यह रोग अधिक होता है। चिकित्सालयो मे प्रथम प्रवेश के समय पुरुष रोगियो की औसत आयु 30 वर्ष व स्त्री रोगियो की 34 वर्ष होती है। सबसे अधिक रोगी (60%) 20-40 वर्ष के आयु के होते है। 20 वर्ष से कम आयु मे 10 प्रतिशत व 40 वर्ष से अधिक आयु के 25 प्रतिशत ही रोगी होते हैं।

---

1. "Schizophrenic reactions are regressive attempts to escape tension and anxiety by abandoning realistic interpersonal object relations and constructing delusions and hallucinations." —Cameron, N.. *Personality Development and Psychopathology*, p. 584.
2. "Schizophrenia is a general term referring to a group of severe mental disorder method by a splitting, or disintegration of the personality."—Page, J. D. : *Abnormal Psychology*, p. 236.

मनोविदलता तथा अन्य मनोविकृतियो का घटनाक्रम
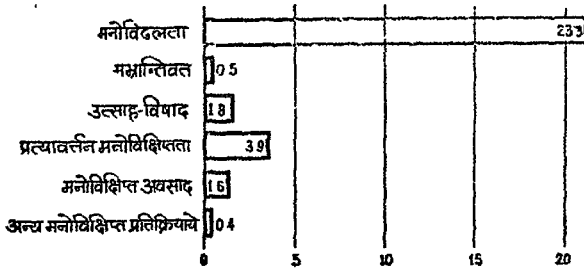
चित्र—31

(किसकर (Kisker)[1] के अनुसार, अमरीका के अस्पतालो मे प्रथम प्रवेश करने वालो मे सर्वाधिक घटनाक्रम मनोविदलता रोगियों का होता है।)

मनोविदलता के सामान्य लक्षण
(General Symptoms of Schizophrenia)

वैसे तो प्रत्येक मनोविदलता प्रकार मे एक विशिष्ट प्रकार के लक्षण पाए जाते है परन्तु सामान्य रूप से मनोविदलता के लक्षणो का निम्न प्रकार से सक्षिप्ती-करण कर सकते है[1] :—

(i) वास्तविकता से प्रत्याहरण (Withdrawal from Reality)
(ii) अपनेपन की भावना (Autism)
(iii) सवेगात्मक विकृतता (Emotional Blunting aud Distortion)
(iv) व्यामोह व विभ्रम (Delusions and Hallucinations)
(v) व्यवहार की असंगतिता (Anomalies of Behaviour)
(vi) आन्तरिक नियन्त्रणो की कमी व विघटन (Disorganisation and Lack of Inner Controls)

नीचे हम इसके सामान्य लक्षणो को बतायेगे .—

(1) **संवेगात्मक विकृतियाँ** (Emotional Disorders)—मनोविदलता का प्रमुख लक्षण रोगी मे सामान्य सवेगात्मक प्रतिक्रियाओ का अभाव होता है। रोगी मुख्य रूप से सवेगात्मक परिस्थितियो के प्रति उदासीन रहता है। यहाँ तक कि वह अपने प्रियजन की मृत्यु या दुर्घटना पर भी दु ख प्रकट नही करता। वह किसी भी प्रश्न का उत्तर नही देना चाहता। रोगी अपने प्रति भी इतना उदासीन होता है कि भूख या प्यास लगने पर भी इनके प्रति ध्यान नही देता। उन्हे एकान्त मे रहना

1. Adapted from the Report of World *Health* Organization study group on Schizoph renia, 1959.

अधिक पसन्द होता है। रोग की तीव्रता की वृद्धि के साथ ही साथ उदासीनता मे भी वृद्धि होती जाती है। सामाजिक भावना का पूर्णत. अभाव रहता है। अस्पताल के एक ही वार्ड मे मनोविदलता के दो रोगी वर्षों तक रहने के बावजूद एक-दूसरे का नाम तक नही जानते। कभी-कभी रोगी बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के अचानक हँसने लगते है, रोने लगते है या नाचना शुरू कर देते हैं। कभी-कभी अकारण ये इतने क्रुद्ध हो जाते हैं कि किसी भी व्यक्ति को मार बैठते है। कभी-कभी रोगी मे एक समय दो परस्पर विरोधी सवेग भी दिखाई पडते है। ब्लूलर (Bleuler) ने एक ऐसी महिला का वर्णन किया है जो एक साथ ही आँखो से आँसू बहाती थी तथा मुँह से हँसती रहती थी। इस प्रकार मनोविदलता के रोगी की सवेगात्मक प्रतिक्रियाओ मे अनुपयुक्तता, अप्रत्याशितता व उभयात्मकता (ambivalence) पायी जाती है।

(2) **मानसिक ह्रास** (Mental Deterioration)—मनोविदलता के रोगियो की विभिन्न मानसिक क्रियाओ मे विकृतिता पायी जाती है। उसकी विचार-प्रक्रिया दोषपूर्ण हो जाती है तथा उनके विचारो मे स्पष्टता, सम्बद्धता, सार्थकता, समन्वय व संगठन आदि का अभाव होता है। उनके चिन्तन मे अनेक प्रकार के दोष होते हैं। रोगी की विकृत विचार-प्रक्रिया के सम्बन्ध मे अनेक विद्वानो ने मत प्रकट किए है। ब्लूलर ने इसका कारण स्मृतिक्षीणता बताया है जबकि **स्टार्च व ह्वाइट** (Starch and White) के अनुसार इस प्रकार के रोगियो की विचार-प्रक्रिया एव आदिम व्यक्तियो की विचार-प्रक्रिया मे कोई विशेप अन्तर नही है। **हैण्डरसन व गिलिस्पी** (Hendersen and Gellespie) ने विचार सम्बन्धी विकृतियो के निम्न कारण बताए हैं—

(अ) इस प्रकार का रोगी वास्तविकता से अन्तर्मुखी हो जाता है।

(ब) भावना ग्रन्थियों की सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक प्रधानता होती है।

(स) मनोविदलता के रोगी मे बाल्यकालीन, शैशविक या आदिम अवस्था की विचार-पद्धति का परावर्तन हो जाता है।

(द) इस प्रकार के रोगियो का व्यक्तित्व क्रमश. विघटित हो जाता है।

रोगी मूर्त व अमूर्त के बीच अन्तर करने मे असमर्थ होता है तथा एक ही प्रत्यय मे अन्य प्रत्ययो के अर्थों को भी जोड देता है जिसमे कि प्रत्यय का वास्तविक अर्थ ही समाप्त हो जाता है। वह यथार्थता की दुनियाँ मे तो रहता ही नही है अत उसके विचारो मे यथार्थता के स्थान पर कल्पना का अधिक महत्त्व होता है। रोगी के विचारो मे इस अस्पष्टता का एक प्रमुख कारण यह भी है कि रोगी अन्तर्मुखी होता है जिसके फलस्वरूप वह समाज के साथ कोई समन्वय ही नही रखना चाहता है। विचार-प्रक्रिया की इस विकृतिता के साथ ही साथ रोगी मे सीखना, ध्यान देना, कल्पना करना आदि मानसिक क्रियाओ मे भी दोष पाया जाता है। अधिकाश मनोविदलता के रोगियो मे औसत बुद्धि-लब्धि (I Q) पायी जाती है। परन्तु यह बौद्धिक ह्रास स्थायी नही

होता, क्योंकि उपचार के साथ ही साथ उसकी बौद्धिक क्षमता में भी क्रमशः वृद्धि होती जाती है।

(3) वाक्-विकृति (Speech Disorder)—वैसे तो अधिकांश मनोविदलता के रोगी चुपचाप ही रहते हैं परन्तु जब कभी भी बात करते हैं तो उसमें अनेक प्रकार के वाक्दोष पाए जाते हैं। इनके वाक्य लम्बे तथा निरर्थक होते हैं तथा व्यक्त शब्दों व विचारों में कोई सम्बन्ध नहीं होता। कभी-कभी रोगी इतनी शीघ्रता से बोलते हैं कि अन्य व्यक्तियों को कुछ सुनाई ही नहीं पड़ता। इस प्रकार के रोगियों को कभी-कभी यह आशंका होती है कि उनके बोलने से उनकी श्वास के कारण सम्पूर्ण पर्यावरण ही दूषित न हो जावे। इसी प्रकार कभी-कभी उन्हें यह लगता है कि अगर वे बोलेंगे तो उनके शब्द इतने चुभते होंगे कि अन्य लोग बुरा मान जावेंगे। मनोविदलता का रोगी जब अधिक बोलने लगता है तो नए-नए शब्दों की रचना (neulogisms) करता है; जैसे—'फीर-मलवा' (खीर-हलवा)। सामान्य व्यक्ति जो शब्द-रचना करते हैं, उसका आधार तार्किक होता है जबकि मनोविदलता के रोगी इस प्रकार के शब्दों की रचना करता है जिसका अर्थ वही समझ सकता है।

(4) व्यामोह (Delusions)—रोगी में व्यामोह या भ्रान्ति के लक्षण भी विद्यमान होते हैं। व्यामोह एक प्रकार के झूठे विश्वास होते हैं जो व्यक्ति के मस्तिष्क में इस प्रकार अंकित हो जाते हैं कि अनेक प्रमाण देने पर भी वह इन्हें सत्य ही मानता है। मनोविदलता के रोगी में उत्पीड़न व्यामोह (delusion of persecution) अधिक पाए जाते हैं। इन्हें ऐसा भान होता है कि अन्य व्यक्ति उनको जान से मारने की योजना बना रहे हैं। अपनी तरफ किसी भी व्यक्ति को आता देखकर ये अनुभव करते हैं कि यह व्यक्ति उनकी हत्या करने के लिए आ रहा है। दवा को विष समझते हैं तथा चिकित्सक को भी अपना शत्रु समझते हैं। उत्पीड़न भ्रान्ति के अतिरिक्त इन्हें महानता (grandeur), स्व-सन्दर्भ (reference) आदि के व्यामोह भी होते हैं। मनोविदलता रोगी के व्यामोह व पैरानोइया के रोगी के व्यामोहों में पर्याप्त अन्तर होता है। मनोविदलता रोगी के व्यामोह अतार्किक व विचित्र होते हैं। पेज (Page) ने इस सम्बन्ध में एक अविवाहित स्त्री रोगिणी का रोचक उदाहरण दिया है। यह स्त्री फटे-चिथड़ों को अपना बच्चा तथा उस वार्ड के डॉक्टर को उस बच्चे का पिता मानती थी। जैसे ही डाक्टर वार्ड में प्रवेश करता था, वह फटे-चिथड़ों को चूमने लगती थी तथा डॉक्टर को प्यार करने के लिए कहती है। वह अपने इस कल्पित बच्चे को किसी भी अन्य व्यक्ति को छूने तक नहीं देती थी।

(5) विभ्रम (Hallucination)—मनोविदलता के रोगियों में विभ्रम के भी लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकार के रोगी में सुनने या श्रव्य विभ्रम (auditory hallucination) सर्वाधिक रहते हैं। रोगी को विभिन्न प्रकार की धमकी भरी आवाजें सुनाई पड़ती हैं, कभी-कभी वे अपने कपड़े आदि उतार कर मारपीट करने

तक के लिए तैयार हो जाते हैं। इन्हें कभी ऐसा भी अनुभव होता है कि कोई इन्हें बुला रहा है। इनके अधिकांश विभ्रम दुःख होते हैं परन्तु कभी-कभी सुखद विभ्रम भी होते हैं जिन्हें रोगी काफी समय तक एकान्त में बैठकर सुना करते हैं। श्रवण के अतिरिक्त इस प्रकार के रोगियों को दृष्टि, गंध, स्पर्श आदि से सम्बन्धित विभ्रम भी होते हैं। तीव्र मनोविदलता रोगियों को कभी-कभी भयानक आवाजें सुनाई पड़ती हैं जिनसे वह अक्सर क्रुद्ध हो जाता है तथा चिल्लाना आरम्भ कर देता है। इन्हें प्रायः विचित्र दृश्य, विभिन्न प्रकार के जीव व देवी-देवताओं, मृत व्यक्तियों आदि के दर्शन होते हैं। इन्हें कभी-कभी स्पर्श सम्बन्धी विभ्रमों का भी अनुभव होता है जिससे उन्हें ऐसा महसूस होता है कि किसी ने शरीर में बिजली लगा दी हो या किसी शत्रु ने रहस्यमय विष आदि की सुई लगा दी है। कभी-कभी इन्हें घृणित वस्तुओं की गन्ध संवेदना भी होती है।

(6) लेखन विलक्षणता (Writing Peculiarities)—मनोविदलता के रोगी या तो लिखते ही नहीं या अत्यधिक लिखते हैं। इनके लिखने में अनेक प्रकार की विलक्षणता दिखाई पड़ती है। जैसे एक ही शब्द या वाक्य को बार-बार लिखना, निरर्थक बातों को ही लिखना, व्याकरण व विराम चिह्न आदि का कोई ध्यान नहीं देना आदि। इनकी लिखावट में प्रतीकों, रेखाओं, चिन्हों, संख्याओं व शब्दों की विचित्रता पायी जाती है।

(7) व्यवहार सम्बन्धी विकृतियाँ (Behavioural Disorders)—मनोविदलता के रोगी का व्यवहार सामाजिक प्रतिमान से पूर्णतः भिन्न होता है। इस प्रकार के रोगी अपने शरीर को विचित्र प्रकार से मोड़ कर खड़े या बैठ जाते हैं, एक ही मुद्रा या आसन में कई दिनों तक बैठे रहते हैं, विचित्र रूप से हँसते हैं तथा टकटकी लगाकर शून्य की ओर काफी देर तक देखते रहते हैं।

(8) शारीरिक दशा (Physical Condition)—इस प्रकार के रोगी शारीरिक रूप से इतने दुर्बल होते हैं कि किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम करने में असमर्थ होते हैं। नींद न आना तथा सर्दी-गर्मी से ये रोगी अपना बचाव नहीं करते।

मनोविदलता के नैदानिक प्रकार
(Clinical Types of Schizophrenia)

विभिन्न प्रकार के मनोविदलता सम्बन्धी लक्षण या लक्षणों के समूह के आधार पर मनोविदलता के नैदानिक प्रकारों की व्याख्या की गई है। प्राचीन वर्गीकरण के आधार पर मनोविदलता के चार प्रकार तथा नवीन वर्गीकरण[1] के आधार पर इनके 9 प्रकार बताये गये हैं :—

---

1. According to '*American psychiatric Association*' & classification of mental disorder.
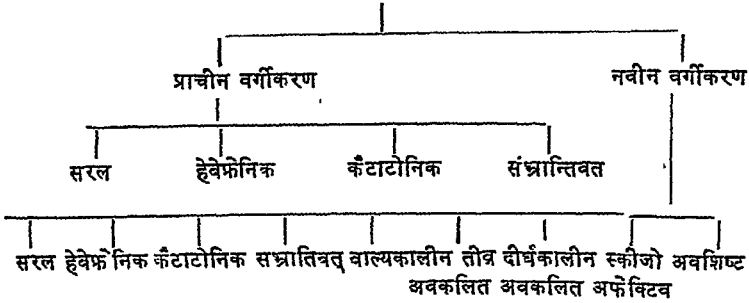
नीचे हम प्रत्येक प्रकार का सक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं :—

(1) **सरल मनोविदलता**

(Simple Schizophrenia)

इस प्रकार के मनोविदलता के रोगी का व्यवहार प्राय अन्य प्रकारो मे कम विचित्र व अतार्किक होता है। इस प्रकार के रोगियो की पहचान उदासीनता (apathy) के आधार पर ही की जा सकती है क्योकि इस प्रकार के रोगी अनेक दिनो तक विस्तरो पर पड़े रहते है । वे एकान्त मे रहना चाहते हैं, इनकी रुचियाँ कम होती जाती हैं, कम बोलते है कुछ पूछने पर केवल सिर हिलाकर जवाब देते हैं तथा इन्हे अपने शरीर की सफाई का भी ध्यान नही होता है। इन्हे सफलता व असफलता की कोई परवाह नही होती । ये तो स्व-निर्मित दुनियाँ मे ही विचरण करते हैं। इस प्रकार के रोगियों को अपने परिवार के सदस्यो, मित्रो, सम्बन्धियों आदि का कोई ख्याल नही होता। उनके स्वभाव मे चिड़चिड़ापन आ जाता है तथा उनकी महत्त्वा-काक्षाएँ एव भावनाएँ मद हो जाती है। उन्हे अपनी जीविका आदि की भी कोई परवाह नही होती।

इस प्रकार की मनोविदलता मे मुख्य लक्षणो के सम्बन्ध में कान्ट (Kant : 1948) ने 64 रोगियो का अध्ययन किया। इसके आधार पर उसने निम्नलिखित लक्षणो को महत्त्वपूर्ण बताया :—

व्यवहार प्रकार	घटित होने का प्रतिशत
आक्रामक व्यवहार	65 0
व्यामोहात्मक और/या विभ्रमात्मक अनुभव	42 9
लैंगिक और/या मद्यपान	39·7
अत्यन्त विघटित व्यवहार	34·9
अतिस्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्ताएँ	30·2
ससार से विमुखता	22·2

जेम्स डी० पेज के अनुसार, बाल्यावस्था मे इस प्रकार के रोगी विनम्र व सुशील स्वभाव के होते हैं। घर तथा विद्यालय मे ठीक प्रकार का व्यवहार करते हैं परन्तु धीरे-धीरे यह लक्षण बदल जाते है। इस प्रकार के रोगियो मे शुरू से ही अभिरुचि, शक्ति व स्वाग्रह का अभाव रहता है। अगर इन्हे किसी कार्य पर लगाया जावे तो उसे ठीक प्रकार से नहीं करते। इनके लैंगिक व्यवहार में आक्रामकता होती है। कुछ लोग वेश्यागामी व अपराधी भी हो जाते हैं। अगर रोग की प्रथमावस्था मे ही पर्याप्त ध्यान दिया जावे तो इनके स्वस्थ होने की काफी सम्भावना होती है। इन्हें घर पर ही रखकर सुधारा जा सकता है। परन्तु कुछ रोगियो को मानसिक चिकित्सालय व सुधारगृह (reformatory home) मे रखने की भी आवश्यकता होती है।

सरल मनोविदलता का उदाहरण

एक 21 वर्षीय नवयुवती हाईस्कूल पास करने के दो वर्ष उपरान्त पढ़ने के उद्देश्य से कॉलिज गई। वह कॉलिज में हतोत्साह व चिन्तित रहती थी। वह उदास रहती थी तथा उसका व्यवहार बड़ा ही विचित्र रहता था। वह प्राय. घर से गायब हो जाती थी। चिकित्सालय मे प्रवेश के बाद वहाँ उसका समायोजन ठीक नहीं था। वह कोई भी कार्य नही कर पाती थी तथा सुस्त रहती थी। कभी-कभी कमरे के कोने मे बैठ कर चुपचाप रोया करती थी। उसका कहना था कि उसकी यह मानसिक हालत 14 वर्ष की अवस्था से पूर्व नही थी। उसका कहना था कि उसका पढने मे मन नही लगता था। जब वह 16 वर्ष की अवस्था मे थी तब उसका परिचय एक नवयुवक से हुआ जिसने उसे घर तक पहुँचाया तथा विदाई लेते समय चुम्बन ले लिया। वह चाहती थी कि वह नवयुवक पुन. लौट आवे तथा उससे मिले। वह प्रश्नो का उत्तर शान्त व शीघ्र देती थी। कभी-कभी उसके उत्तर असंगत भी होते थे। उसकी स्मृति ठीक थी तथा विभ्रमों के प्रमाण नही मिलते थे।

(2) हेबेफ्रेनिक मनोविदलता
(Hebephrenic Schizophrenia)

मनोविदलता के इस प्रकार का सर्वप्रथम वर्णन सन् 1871 मे जर्मनी के मनोरोगचिकित्सक एडवॉल्ड हैकर (Edwald Hacker) ने किया था। *'Hebephrenia'* शब्द यूनानी भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ है—युवा मन (Youthful mind)। इस प्रकार की मनोविदलता कम आयु वालो को होती है। इस प्रकार के रोगी के प्रमुख लक्षण—संवेगात्मक अस्थिरता, विभ्रम, असंगत भ्रान्ति व चिन्तन, वाक्दोष तथा अत्यन्त व्यापक रूप से विघटित व्यक्तित्व (split personality) होते हैं। इनके जीवन-इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि इनका व्यवहार विचित्र होता है तथा वे व्यक्ति प्रायः धार्मिक, सामाजिक या दार्शनिक चिन्तन मे लीन होते हैं। रोगी अपने व्यक्तिगत भावों में अधिक प्रभावित होते हैं। वे अपने काल्पनिक पात्रों से घण्टो बातें करते रहते हैं। इन्हें मुख्यतः ईश्वरीय शक्ति

देखने या इनके आदेशो को सुनने सम्बन्धी विभ्रम होता है। रोगी की तीव्रता में वृद्धि के साथ ही साथ रोगी की क्रियाओ मे विचित्रता व अतार्किकता भी बढती जाती है। कभी-कभी रोगी को यह विभ्रम हो जाता है कि उन्हे किसी जहरीले कीडे आदि ने काट खाया है जिसके परिणामस्वरूप उसके पेट के अन्दर विषाक्त गैस भरी है तथा अगर वे मुंह खोलेंगे तो आस-पास के लोग मर जावेंगे। इसी प्रकार कभी-कभी वे अपने को ससार-निर्माता, राष्ट्रपति, प्रधानमत्री, मुख्यमत्री, प्राचार्य आदि मान बैठते हैं। रोग की तीव्रता की वृद्धि के साथ ही साथ रोगी मे भय या सकोच की भावना समाप्त होती जाती है। कोलमैन के अनुसार, इस प्रकार के रोगी का व्यवहार एक बच्चे के व्यवहार के समान हो जाता है। एक 32 वर्षीय रोगिणी की चिकित्सक के साथ वार्तालाप को कोलमैन ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

डा०—आज आप कैसा अनुभव कर रही है ?

रोगिणी—अच्छा।

डा०—आप यहाँ कब आई ?

रोगिणी—1416, आपको याद है डा० (अस्फुट हँसी)।

डा०—क्या आपको यह जानकारी है कि आप यहाँ क्यो आई है ?

रोगिणी—अच्छा, 1951 मे, मैं दो आदमियो मे परिवर्तित हो गई तथा राष्ट्रपति ट्रूमैन मेरे मुकदमे के जज थे। मुझे फाँसी दी गई थी (अस्फुट हँसी)। मुझे व मेरे भाई के सामान्य शरीर को 5 वर्ष पूर्व लौटा दिये गए। मै एक पुलिस महिला हूँ। मैने गुप्त टेलीफोन छिपा रखा है।

(3) कैटाटोनिक मनोविदलता
(Catatonic Schizophrenia)

मनोविदलता के इस प्रकार का सर्वप्रथम वर्णन जर्मनी-चिकित्सक कार्ल कह्लबॉम (Karl Kahlbaum) ने 1868 मे किया था। कैटाटोनिक मनोविदलता की उत्पत्ति बडे ही नाटकीय ढग से होती है। ये रोगी वास्तविकता से बहुत दूर होते हैं तथा इनसे जो कुछ करने को कहा जाय, उसका उल्टा ही कार्य ये करते है। रोगी घण्टो तक ही स्थिति मे बैठा रहता है या खडा रहता है। रोगी अपने शरीर को इतना कडा कर लेता है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। कभी-कभी वे अपनी मुट्ठी इतनी कड़ी बाँध लेते है कि उसे खोलना मुश्किल हो जाता है। शारीरिक कठोरता के साथ ही साथ इनके शरीर मे लचीलापन पाया जाता है। इस प्रकार के मनोविदलता की दो स्थितियाँ होती है—मूर्च्छित व उत्तेजित, जिनमे रोगी बार-बार आता-जाता रहता है। मूर्च्छित अवस्था (stuporous stage) मे रोगी अत्यन्त शान्त प्रकृति का होता है तथा एक ही आसन पर काफी देर तक बैठा रहता है जिसके कारण इनके हाथ-पैर नीले पड़ जाते है तथा सूजन भी आ जाती है। अगर उसकी शारीरिक मुद्रा मे तनिक परिवर्तन का प्रयास किया जावे तो वह और भी दृढ़ता के साथ उसी आसन पर ही बैठा रहेगा। बिना किसी पूर्व सकेत के इस अवस्था के

प्रकार के रोगियों व पैरानोइया (paranoia) के रोगियो मे एक प्रमुख अन्तर यह होता है कि मनोविदलता के रोगियों के व्यामोह अतार्किक एव परिवर्तनशील होते हैं वहाँ पैरानोइया के रोगियो के व्यामोह तार्किक व स्थायी होते है।

(5) बाल्यकालीन मनोविदलता
(Childhood Schizophrenia)

इस प्रकार की मनोविदलता का जन्म बाल्यावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के रोगियो मे मुख्य लक्षण, लोगो से दूर भागना, विचार-प्रक्रिया का विघटन, दोपित होना, आनियन्त्रित काम व आक्रामक प्रवाहो (aggressive impulses) का होना आदि होते है। बेन्डर (Bender : 1953, 1955, 1961) ने 2 से 13 वर्ष 600 मनोविदलता रोगियो के अध्ययन के आधार पर बताया कि इस प्रकार के रोगियो का अवरोध वह अनियमित विकास (retarded and irregular development) होता है। कोलमैन के शब्दो मे, बेन्डर ने अपने इस अध्ययन से ज्ञात किया :—

"...........the Schizophrenic child typically has difficulty in developing a sense of self-identity, is unable to make adequate identification with parental or other role models, shows implement in obtaining a structured view of reality, and lacks adequate development of ego defenses to deal effectively with anxiety."[1]

वैल (Well, 1963) के अनुसार इस प्रकार के बच्चों मे अहम् के विकास मे अनियमितता, भोजन, निद्रा व अन्य आदतो मे अव्यवस्था, चिन्ता आदि उपस्थित होते है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने *'Childhood Schizophrenia'* शब्द को प्रयुक्त करने में आपत्ति की है। इस आपत्ति का प्रमुख प्रमाण उनका अनुभव है जिसके अनुसार बाल्यकालीन व्यक्तित्व विकार व मनोविदलन के वयस्क प्ररूप के मध्य पर्याप्त सम्बन्ध नही था। यही कारण है कि कुछ लेखको ने इस शब्द के स्थान पर 'Childhood Psychosis' या 'Infantile Autoism' का प्रयोग किया है।

(6) तीव्र अवकलित मनोविदलता (अभेदीकृत मनोविदलता)
(Acute undifferentiated Schizophrenia)

जब इस प्रकार के रोगियो मे ऐसे मिले-जुले लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं कि उन्हे किसी नैदानिक श्रेणी मे रखना कठिन हो जाता है तो उसे अभेदीकृत मनोविदलन (Undifferented schizophrenia) मे रखा जाता है। इस प्रकार के मनोविदलता रोगियो मे विस्तृत व विभिन्न प्रकार के मनोविदलता सम्बन्धी लक्षण अचानक उत्पन्न हो जाते हैं तथा थोड़े समय मे ही समाप्त हो जाते है तो उसे तीव्र अवकलित मनोविदलता कहते हैं। ये लक्षण या तो एक सप्ताह बाद समाप्त हो जाते हैं या मनोविदलता के अन्य प्रकारो मे परिवर्तित हो जाते हैं।

1. Coleman . *Ibid*, p. 284.

नही रह सकती। कृपा करके आप मुझे बुला लीजिए तथा मुझसे बातें करिए, क्योंकि मैं आपसे प्रेम करती हूँ।" —प्रेम

एक अन्य लिफाफे मे उसने लिखा था—

"चुम्बन के साथ बन्द किया गया। यह सब दोष आपका है।" —प्रेम

इस प्रकार के विदलित भावात्मक प्ररूप मे रोगी की मानसिक अन्तर्वस्तु (content) मनोविदलित हो जाती है परन्तु उसमे सवेगात्मक रूप से हलचल मची रहती है। कभी-कभी रोगी इतने विक्षुब्ध हो जाते है कि वे अपने एव दूसरो के लिए खतरनाक साबित होते हैं।

(9) अवशिष्ट मनोविदलता

(Residual Schizophrenia)

इस श्रेणी मे वे रोगी आते हैं जो उपचार से ठीक तो हो जाते है परन्तु फिर भी मनोविदलता के लक्षण कभी-कभी हल्के रूप मे प्रकट हो जाते हैं।

मनोविदलता के सामान्य कारण
(General Etiology of Schizophrenia)

मनोविदलता के कारणो के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिक एकमत नही है। परन्तु फिर भी हम मनोविदलता के विभिन्न सामान्य कारणो का नीचे वर्णन प्रस्तुत करेंगे—

(अ) जैविक कारक (Biological Factors)

जैविक कारको के अन्तर्गत मुख्यत निम्न तत्त्व प्रमुख रूप से आते है —

(1) **वंशानुक्रम** (Heredity)—कुछ मनोवैज्ञानिक दोषित वशानुक्रम को मनोविदलता का कारण मानते है। **क्रेपलिन** ने 1054 मनोविदलता रोगियो के परिवारो मे 53 8% असामान्यता की घटनाएँ पायी। **कालमैन** (Kallmann) ने 1,000 से अधिक मनोविदलता रोगियो के परिवारो का अध्ययन किया। उसका मत है कि सामान्य जनसख्या मे मनोविदलता का घटनाक्रम का प्रतिशत केवल 0 85 है। अगर माँ-बाप मे से एक इस रोग से ग्रस्त है तो उनके बच्चो मे मनोविदलता की घटनाएँ 16 4% घटित होती है और अगर माँ-बाप दोनो ही मनोविदलता से ग्रस्त हैं तो 68 1% उनके बच्चे भी इस विकृति से ग्रस्त हो सकते है। **कालमैन** ने कुछ ऐसे जुडवाँ बच्चो को अध्ययन के लिए चुना, जिनमे से एक बच्चा मनोविदलता से ग्रस्त था। उसने अपने इस अध्ययन के द्वारा यह ज्ञात किया कि 86% जुडवा भाइयो को भी मनोविदलता रोग था। **रोसनॉफ** (Rosanoff) ने 142 जुडवाँ बच्चो का अध्ययन करने के बाद यह बताया कि इस रोग का कारण वशानुक्रम है। **ह्वाइट** (White) ने मनोविदलता के रोगियो का अध्ययन किया तथा बताया कि 90% इस रोग का कारण वशानुक्रम है। **स्टोडर्ट** (Stoddart), **पेस्टोरे** (Pastore), **ग्रेगरी** (Gregory) आदि मनोवैज्ञानिको ने भी मनोविदलता रोग का कारण वशानुक्रम बताया।

(2) शारीरिक बनावट (Physical Constitution)—कैसे शारीरिक बनावट पर सर्वाधिक प्रभाव वंशानुक्रम का पड़ता है। अगर शारीरिक बनावट विकृत है तो इसका प्रमुख कारण व्यक्ति का दोषपूर्ण वंशानुक्रम है, परन्तु कुछ बाल्यावस्था के समय पर्यावरण के प्रभाव के कारण भी शारीरिक बनावट पर प्रभाव पड़ता है। क्रेशमर, शेल्डन आदि विद्वानों ने मनोविदलता को एक विशेष प्रकार के शारीरिक बनावट वाले व्यक्तियों के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। क्रेशमर का मत है कि जो व्यक्ति एस्थेनिक प्रकार के होते हैं, उनमें ही मनोविदलता उत्पन्न होती है। परन्तु इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में तीव्र मतभेद है।

(3) केन्द्रीय स्नायु-मण्डल (Central Nervous System)—अनेक विद्वानों ने मनोविदलता रोग का कारण केन्द्रीय स्नायु-मण्डल को माना है। अनेक अध्ययनों में सामान्य व मनोविदलता के रोगियों के मस्तिष्क का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा यह देखा कि दोनों के मस्तिष्क कोषों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है। परन्तु इस परिणाम के सम्बन्ध में आज तक कोई निश्चित मत प्राप्त नहीं हुए हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक इस रोग का अन्य कारण दिल का छोटा होना, नलिका-विहीन ग्रन्थियाँ आदि मानते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में अभी तक कोई स्पष्ट प्रमाण ज्ञात नहीं हो सका है।

(ब) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)

अनेक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक कारक होते हैं जो मनोविदलता की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। क्रेपलिन व ब्लूलर, जो कि वंशानुक्रम के महत्त्व के प्रतिपादक माने जाते हैं, उन्होंने भी मनोवैज्ञानिक कारक को मनोविदलता का कारण माना है। ब्लूलर ने नैराश्य व अन्तर्द्वन्द्व को, फ्रायड ने अचेतन को, एडॉल्फ मेयर ने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को मनोविदलता का प्रमुख कारण बताया है। इन अध्ययनों से यह तथ्य पूर्ण रूप से सिद्ध हो जाता है कि मनोविदलता रोग की उत्पत्ति में मनोवैज्ञानिक कारक महत्त्वपूर्ण कारण होते हैं। प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारक निम्न हैं :—

(1) व्याधिजन्य पारिवारिक प्रतिरूप (Pathogenic Family Patterns)—मनोविदलता की उत्पत्ति में उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। रोगी अपने परिवार से ही अनेक दोषपूर्ण अभिवृत्तियों, प्रतिक्रियाओं, दोषपूर्ण समाजीकरण आदि को सीखता है।

रोगी पर परिवार के अन्तर्गत सबसे अधिक प्रभाव उसके माँ-बाप का पड़ता है। इस सम्बन्ध में अनेक अध्ययन परिणाम इस तथ्य के साक्षी हैं कि मनोविदलता के रोगियों पर सर्वाधिक प्रभाव माँ-बाप का पड़ता है। 1960 में काफमैन व अन्य (Kaufman et. al) ने अपने एक अध्ययन में यह देखा कि 80 मनोविदलता के रोगियों की माँ भी अपनी समस्याओं का समाधान मनोविक्षिप्तियों के समान ही करती है। मनोविदलता के रोगियों का माँ के साथ परस्पर सम्बन्ध विकृत होते हैं

जिसके फलस्वरूप वह एक चिन्तित व अपरिपक्व युवा बन जाता है। वह अपनी समस्याओ का समाधान नही कर पाता क्योंकि वह अपने को एक स्वतन्त्र व्यक्ति नही समझता। इन रोगियो पर माँ के प्रभाव के साथ ही साथ पिता का भी प्रभाव पड़ता है। वाह्ल (Wahl, 1956) ने 568 पुरुष मनोविदलता रोगियो के परिवारो के इतिहास के अध्ययन पर यह ज्ञात किया कि 50 3% रोगियो को माँ या बाप अथवा दोनो ने गम्भीर रूप से तिरस्कार (rejection) या अति-सरक्षण (over protection) प्रदान किया था। काफमैन व अन्य (1960), लिड्ज (Lidez, 1957), फ्लेक (Fleck, 1960, 1963) आदि ने अपने अध्ययनो मे पाया कि मनोविदलता के रोगियो के पिता मे भी असामान्य व्यवहार के लक्षण विद्यमान थे। इस प्रकार मनोविदलता का एक कारण यह भी है कि माँ-बाप एक अच्छे पर्यावरण का निर्माण नही कर पाते जिससे कि इनमे ऐसी स्थितियो का जन्म हो जाता है जो अपरिपक्व, अनुपयुक्त व बाह्य जगत् का दोषपूर्ण ज्ञान आदि कराने मे सहायक होती हैं। माता-पिता के प्रभाव के अतिरिक्त मनोविदलता के रोगियो का परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भी अनुपयुक्त सम्बन्ध होता है। परिवार के सदस्यो के साथ उचित सम्बन्ध न होने के कारण रोगी मे अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाते हैं जिनका समाधान करना इनके बस के बाहर होता है। इससे उनके अन्दर तीव्र चिन्ता आदि उत्पन्न हो जाती है जो व्यक्ति को इस रोग तक पहुँचाने मे सहायता प्रदान करती है।

(2) **पूर्व मनोघात व वंचितता** (Early Psychic Trauma and Deprivation)—अनेक मनोवैज्ञानिको ने मनोविदलता का कारण रोगी को शैशवकालीन आघात बताया है। वाह्ल (Wahl) ने 1956 मे 568 पुरुष मनोविदलता रोगियो का अध्ययन किया जिसके आधार पर उसने बताया कि 41% रोगियो के माँ-बाप की या तो मृत्यु उनकी बाल्यावस्था मे हो गई थी या वे तलाक आदि कारणो से उनसे अलग हो गये थे। रोगी इस प्रकार के पारिवारिक आघातों को सहन नहीं कर पाते तथा उनके मन मे ऐसे घाव उत्पन्न हो जाते हैं कि वे जीवन की दबावपूर्ण परिस्थितियो का सामना नही कर पाते। बड़े होकर जीवन की यथार्थ परिस्थितियो से बचने के लिए शैशवकालीन जैसी सुरक्षित अवस्था का सहारा लेते हैं।

(3) **नैराश्य व अन्तर्द्वन्द्व** (Frustration and Conflict)—वैसे तो प्रत्येक असामान्यता के पीछे नैराश्यताएँ मुख्य भूमिका निभाती हैं। परन्तु मनोविदलता के रोगियो मे तो विशेष रूप से जीवन की असफलता व वर्तमान परिस्थिति मे समायोजना की असामर्थ्यता विद्यमान होती है। इस प्रकार का रोगी विभिन्न नैराश्यो व अन्तर्द्वन्द्वो के प्रति उचित प्रतिक्रिया नही कर पाता। आरम्भ से ही उसके व्यक्तित्व का दोषपूर्ण विकास होना शुरू हो जाता है जिसके फलस्वरूप जब उसके सम्मुख किशोरावस्था या पूर्व-प्रौढावस्था की अनेक समस्याएँ आती है तो वह उनसे दूर भागने का प्रयास करता है। इस प्रकार रोगी का इस रोग से ग्रस्त होना एक सुरक्षात्मक उपाय होता है तथा नैराश्यताएँ व अन्तर्द्वन्द्व इन रोगियो के लिए तात्कालिक कारण होते हैं।

(4) प्रतिगमनात्मक स्वरूप (Regressive Pattern)—कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि मनोविदलता प्रतिगमन की चरम सीमा है। अन्य शब्दो मे, मनोविदलता का मुख्य कारण मनोग्रन्थियों का दमन व लैंगिक इच्छा का प्रतिगमन है (युग)। कुछ मनोवैज्ञानिक मनोविदलता तो शैशवावस्था तक प्रतिगमन मानते हैं, क्योकि मनोविदलता के रोगियो मे भी शैशवावस्था के समान ही इदम् से सम्बन्धित आवेगो की प्रधानता रहती है तथा रोगी का व्यवहार वास्तविकता से पूर्णत. परे होता है। रोगी का सवेगात्मक व बौद्धिक स्वरूप भी शिशु की भाँति अतार्किक व अस्पष्ट होते हैं। फ्रायड के अनुसार मनोविदलता अचेतन मे छिपी समलैंगिकता का परिणाम है। रोगी प्रतिगमन के माध्यम से इन अचेतन की असामान्य इच्छाओ से अहम् की रक्षा करता है। युंग ने मनोविदलता का कारण बाल्यावस्था की ओर पलायन (flight into childhood) माना है।

(5) अन्य मनोवैज्ञानिक कारण (Other Psychological Causes)—कुछ मनोवैज्ञानिक मनोविदलता के अन्य कारणो पर जोर देते हैं। एडलर (Adler) के मतानुसार, मनोविदलता का कारण हीनता का भाव (inferiority feeling) है। एडलर के अनुसार हीनता के भाव के कारण व्यक्ति समायोजन करने मे असफल होता है जिसके फलस्वरूप उसमे विभिन्न प्रकार के व्यामोह, विभ्रम, भय आदि के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक मनोविदलता का कारण अन्तर्मुखी व्यक्तित्व को मानते हैं। इसी प्रकार फ्रायड का मत है कि मनोलैंगिक विकास (psychosexual development) का प्रभाव मनोविदलता की उत्पत्ति पर पड़ता है।

(स) सामाजिक कारण (Sociological Factors)

अभी तक हमने मनोविदलता के वशानुक्रम व मनोवैज्ञानिक कारणो पर प्रकाश डाला। परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिको ने मनोविदलता का कारण सामाजिक व सांस्कृतिक प्रभावों को माना है। कुछ अध्ययनो के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि कुछ सामाजिक समूहो मे अपेक्षाकृत मनोविदलता के रोगी अधिक पाये जाते हैं। हॉलिंगशेड व रेडलिक (Hollingshead and Redlich, 1954) ने एक अध्ययन के आधार पर बताया कि मनोविदलता का रोग अपेक्षाकृत निम्न सामाजिक व आर्थिक स्तर के व्यक्तियो मे अधिक घटित होता है। नव्य-फ्रायडवादियो ने भी इस रोग का कारण सामाजिक व सांस्कृतिक माना है। कैरेन हार्नी (Karen Horney) ने मनोविदलता का कारण सामाजिक असमायोजन माना है।

मनोविदलता का उपचार
(Treatment of Schizophrenia)

आज से तीन दशक पूर्व मनोविदलता को एक असाध्य रोग समझा जाता था। उस समय केवल 30% रोगियो को ही उपचार हेतु चिकित्सालयों मे छोड़ा जाता था जिसमे से 7% रोगियो की स्थिति मे कुछ सुधार नही होता था, शेष

23% रोगियो का कुछ सुधार हो जाता था। परन्तु आज इस प्रकार के रोगियो के उपचार के लिए अनेक प्रकार की नवीन पद्धतियो का विकास हो गया है।

वर्तमान समय मे मनोविदलता के रोगियो के उपचार के लिए मुख्यत. आघात-चिकित्सा (shock-therapy), इन्सुलीन पद्धति (insulin method), शल्य चिकित्सा, व्यावसायिक चिकित्सा (occupational therapy) आदि का उपयोग किया जाता है। 40 से 60 प्रतिशत तक रोगी विद्युत आघात से ठीक हो जाते हैं। कुछ रोगियों का सफल उपचार विद्युत व इन्सुलिन पद्धति के माध्यम से हो जाता है। सन् 1940 मे इन्सुलिन-कोमा चिकित्मा का उपयोग इस प्रकार के रोगियो के उपचार के लिए किया गया। परन्तु इस प्रकार की चिकित्सा मे काफी कठिनाइयाँ व जोखिम थी। अत मनो-रोग चिकित्सको ने विद्युत-आक्षेपी चिकित्सा (Electroconvulsive therapy, ECT) को पसन्द किया। 18 वर्ष से कम उम्र वाले रोगियो का उपचार अगर इन पद्धतियों के द्वारा किया जावे तो कोई लाभदायक परिणाम प्राप्त नही होते।

कुछ अन्य नवीन चिकित्सा-विधियो का भी आविष्कार हुआ है, जिनका सक्षिप्त वर्णन करना यहाँ न्यायसगत प्रतीत होता है; जैसे—शल्य-चिकित्सा (surgery) के माध्यम से मस्तिष्क कॉर्टेक्स (cortex) व थेलेमस (thalamus) के बीच की नसें काट दी जाती है जिससे रोगी का सवेगात्मक तनाव कम हो जाता है। परन्तु इस प्रकार के ऑपरेशन से रोग पूर्ण रूप से दूर नही होता, बल्कि रोगी को समायोजन प्राप्त करने मे सहायता अवश्य प्राप्त होती है।

मनोविदलता के रोगियो के उपचार मे उस समय काफी क्रान्ति उत्पन्न हुई जबकि 1953 मे क्लोरप्रोमाजीन (Chlorpromazine) तथा अन्य अनेक प्रकार के उपशामको (Tranquilizers) का उपयोग प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ मे तो इनके प्रयोग से आक्रमणकारी व्यवहार को रोकने मे काफी सहायता प्राप्त हुई परन्तु बाद मे यह ज्ञात हुआ कि इनके उपयोग के द्वारा विभ्रमो, भ्रान्तियो, विवेकहीन चिन्तन, चिन्ता तथा अनुपयुक्त भावो को भी कम किया जा सकता है। इस जानकारी से अनेक अस्पतालो मे इन्सुलिन-कोमा-चिकित्मा व मन.शल्य-चिकित्सा (psychosurgery) को बन्द कर दिया गया। कुछ वर्षो के उपरान्त समूह चिकित्सा के माध्यम से मनोविदलता के रोगियो का इलाज आरम्भ हुआ।

अगर मनोविदलता को प्रारम्भिक अवस्था मे ही पहचान कर उपचार किया जावे तो रोग को आसानी से दूर किया जा सकता है। वैसे सामान्यतः इस प्रकार के रोगियो का उपचार अस्पतालो से ही करना चाहिए, घर पर नही। पर्यावरण में परिवर्तन से भी रोगी को लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार के रोगियो से घर वालो को किसी प्रकार का तर्क-वितर्क नही करना चाहिए।

रोग फलानुमान
(Prognosis)

वैसे तो भिन्न-भिन्न रोगियो के उपचार भविष्य के सम्बन्ध में कुछ कहना बड़ा कठिन है, परन्तु निम्न ऐसी दशाएँ हैं जो रोगी को शीघ्र ठीक हो जाने की ओर संकेत करती हैं :—

1. अगर 18 माह के उपरान्त रोगी का उपचार शुरू कर दिया जावे।
2. रोग का क्रमिक विकास से यकायक बढ़ना लाभदायक होता है।
3. अगर रोग की उत्पत्ति का कारण जानी-पहचानी तात्कालिक परिस्थिति हो।
4. रोगी को रोग के सम्बन्ध मे सूझ (insight) हो।
5. अगर रोगी के लक्षण सोडियम अमीटॉल से दूर हो जावें।

26

उत्साह-विषाद मनोविकृति
(MANIC DEPRESSIVE PSYCHOSES)

प्राचीन ग्रीक आदि के लेखों मे उत्साह-विषाद मनोविकृति का वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिको का मत था कि अधिक प्रसन्न रहना (mania) व अधिक उदास रहना (depression) दो अलग-अलग प्रकार के मानसिक रोग हैं। लेकिन सर्वप्रथम फॉलरेट तथा बैलार्जर (Falrat and Baillarger, 1850-1954) ने बताया कि ये दो भिन्न मानसिक रोग नही है, बल्कि एक ही मानसिक रोग के दो लक्षण है। फॉलरेट ने इस विकृति को *'Folie Circulaire'* (Circular insanity) का नाम दिया तथा बैलार्जर ने इस *'Folie A Double Forme'* (insanity in a double guise) के नाम से सम्बोधित किया। इस विचार के सम्बन्ध में क्रेपलिन (Kraeplin) का ध्यान गया तथा उसने 1889 मे उत्साह-विषाद मनोविकृति शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे किया। क्रेपलिन के अनुसार इसमे रोगी एक ही रोग से ग्रस्त होता है। लेकिन इस रोग के दो विरोधी लक्षण होते हैं। अत्यधिक प्रसन्नता की अवस्था मे विचारों की उड़ान, मनोगत्यात्मक सक्रियता (psycho-motor activity) व उत्साह (elation) के लक्षण प्रकट होते हैं। लेकिन इसके विपरीत उदासीनता की अवस्था मे रोगी मे मानसिक अवरोध, विचारों में तर्कहीनता, मनोगत्यात्मक सक्रियता की कमी आदि के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। क्रेपलिन के इस विचार में अनेक अध्ययनों के आधार पर परिवर्तन हुए हैं लेकिन मूल स्वरूप के सम्बन्ध में कोई परिवर्तन नही हुआ है।

उत्साह-विषाद मनोविकृति का इतिहास
(History of Manic-Depressive Psychoses)

सन् 1854 में फालरेट तथा बैलार्जर (Falrat and Bailiarger) ने इस रोग के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम व्याख्या प्रस्तुत की। फॉलरेट ने 1879 मे एक ऐसे रोगी

का उल्लेख किया जिसमे उत्साह व विषाद दोनो लक्षणो की मिश्रित अवस्था थी। इस अवस्था को उसने सक्रमणकालीन अवस्था कहा। 1882 मे कॉलबौम (Kall-baum) ने निश्चित रूप से वताया कि उत्साह व विषाद दो अलग-अलग विकृतियाँ नही है वल्कि एक ही विकृति के दो लक्षण हैं। कालबौम ने चिकित्सा के दृष्टिकोण से रोग के मन्द एव ठीक हो जाने वाले रोगियो के लिए 'साइक्लोथीमिया (cyclothemia) तथा तीव्र व अधिक दिनो तक वने रहने के कारण दीर्घ स्थायी प्रकार के लिए 'वेर्सानिया टिपिका सर्कुलेरियस' (*versania typica cercularis*) शब्द का प्रयोग किया। हेकर (Hecker) ने इस मत का समर्थन किया। 1869 में क्रेपलिन ने उत्साह-विषाद मनोविकृति के सम्बन्ध मे अपने सिद्धान्त की व्यवस्था की, जिसमे आज तक मूल रूप से कोई परिवर्तन नही हुआ।

घटनाक्रम
(Incidence)

कोलमैन (Coleman · 1964) के अनुसार वे रोगी जो सर्वप्रथम मानसिक अस्पताल मे प्रवेश करते है, उनमे मे लगभग दो प्रतिशत रोगी उत्साह-विषाद मनोविकृति के रोग से पीड़ित होते हैं। यह सख्या 1950 मे लगभग 6 प्रतिशत थी। मानसिक अस्पतालो मे प्रथम प्रवेश के समय इन रोगियो की मध्याक आयु (median age) करीव 44 वर्ष की होती है परन्तु अधिकाश रोगियो की आयु 25 से 66 वर्ष के बीच होती है। रेनी व फाउलर (Rennie & Fowler) के अनुसार यह रोग प्रथम वार करीव 14 से 65 की आयु-सीमा मे उत्पन्न होता है जिनकी विवेचना निम्न ढग से की जा सकती है :—

50% रोगियो को प्रथम वार उत्पन्न होने की आयु-सीमा = 30 से 40 वर्ष
25% रोगियो को प्रथम वार उत्पन्न होने की आयु-सीमा = 30 वर्ष से कम
25% रोगियो को प्रथम वार उत्पन्न होने की आयु-सीमा = 50 वर्ष से अधिक

एन्थोनी व स्टॉक (1960) ने तथ्यो के आधार पर यह वताया कि एक रोगी मे इस रोग के लक्षण 12 वर्ष की आयु मे तथा एक अन्य रोगी मे रोग की प्रथम वार उत्पत्ति के 45 वर्ष के वाद हुई। कावेली व अन्य ने यह वताया कि स्त्रियो मे यह रोग अपेक्षाकृत कम अवस्था मे भी उत्पन्न हो जाता है। उत्साह-विषाद के समस्त रोगियो मे से 45% विषाद (depressive), 30% उत्साह (mania) एव 25% मिश्रित प्रकार के रोगी पाए जाते है।
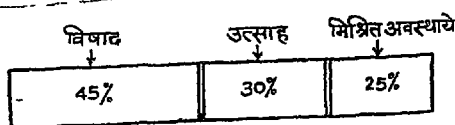
चित्र 32—उत्साह विषाद मनोविकृति के विभिन्न पक्षो के घटनाक्रम

उत्साह-विषाद मनोविकृति के सामान्य लक्षण
(General Symptoms of Manic-Depressive Psychoses)

इस रोग को नवीन वर्गीकरण के आधार पर भावात्मक विकृतियो (affective reaction) के अन्तर्गत रक्खा गया है। सामान्यतया उत्साह-विषाद मनोविकृति के रोगियो मे निम्नलिखित सामान्य लक्षण पाये जाते है :—

(1) **प्रत्यक्षीकरण की अयोग्यता** (Inadequacy of Perception)—सामान्यत इस प्रकार के रोगियो मे प्रत्यक्षीकरण का दोष आ जाता है। वे किसी भी वस्तु को देख सकते हैं लेकिन उसके सम्बन्ध मे अधिक जानकारी नही होती। अगर इस प्रकार के रोगियो को कुछ पढने को दिया जाय तथा उससे यह पूछा जाय कि इसमे क्या लिखा हुआ है तो वे कुछ भी बताने मे समर्थ नही होते। इसका मुख्य कारण यह होता है कि इनमे एकाग्रता की कमी होती है।

(2) **अति उत्तेजना व चेतना का खोना** (Over Stimulation and Loss of Consciousness)—सामान्यत इस प्रकार के रोगी को अधिक उत्तेजनशील एव आवश्यकता से अधिक उदास रहने के फलस्वरूप अपनी चेतना का ज्ञान नही होता। रोगियो को समय, स्थान, दिनाक आदि का भी ज्ञान नही होता। इसका मुख्य कारण इस रोग का प्रबल आक्रमण है जिसके फलस्वरूप अचेतन मन की ग्रन्थियाँ चेतना पर प्रभाव जमा लेती है तथा रोगी की चेतना समाप्त या कम हो जाती है। इस तथ्य को क्रेपलिन ने भी स्वीकार किया है क्योकि उसका कहना था कि इस प्रकार के रोग के अन्तर्गत रोगी को अपने वातावरण का ज्ञान या चेतना नही रहती है।

(3) **मिथ्या निर्णय-शक्ति** (Flight Judgement Power)—रोगी मे झूठ या सत्य के सम्बन्ध मे निर्णय-शक्ति की कमी हो जाती है जिसके फलस्वरूप वह कभी-कभी झूठ को सत्य व सत्य को झूठ समझने लगता है। इसी कारण रोगी मे अनेक मिथ्या धारणाएँ जन्म ले लेती हैं, जैसे—यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जावे या हत्या हो जावे तो उसकी हत्या, मृत्यु का इल्जाम वह अपने ऊपर ले लेता है। उत्साह की अवस्था मे रोगी के मन मे अनेक सुखद विचार आते है तथा वह सदैव कल्पना की दुनियाँ मे विचरण करता रहता है। अगर वह किसी स्थान पर दो व्यक्तियो को आपस मे बातें करते हुए देखता है तो वह यह समझता है कि उसे फाँसी देने की योजना बनाई जा रही है। वे इसे पूर्ण रूप से सही भी मान लेते है।

(4) **भ्रम या विपर्यय तथा विभ्रम** (Illusion and Hallucination)—रोगी मुख्यत अपने चित्तवृत्ति के अनुरूप विपर्यय तथा विभ्रम का शिकार हो जाता है, जैसे—उत्साह की अवस्था मे रोगी किसी भी आने वाले व्यक्ति को अपना पुत्र समझ लेता है तो विषाद की अवस्था मे वही आने वाला व्यक्ति उसे घातक शत्रु के रूप मे दिखाई पडता है।

(5) **संवेगात्मक तनावो का बाहुल्य** (Excess of Emotional Tensions)—उत्साह विषाद मनोविकृतियो के रोगियो मे मुख्यत. सवेगात्मकता की प्रधानता होती है।

उत्साह की अवस्था मे रोगी बहुत अधिक आशावादी हो जाता है। वह इतनी क्रियाएँ करता है जिसको देखकर यह पता चलता है कि उसमे बहुत अधिक शक्ति आ गई है। विपाद की अवस्था मे रोगी आवश्यकता से अधिक भयभीत व सदैव निर्धनता या अपनी हत्या आदि की भावना से ग्रस्त रहता है। विषाद के रोगियो मे 75% आत्महत्या करने के विचार रखते हैं तथा करीब 10 से 15% रोगी आत्महत्या करने का प्रयास भी करते है।
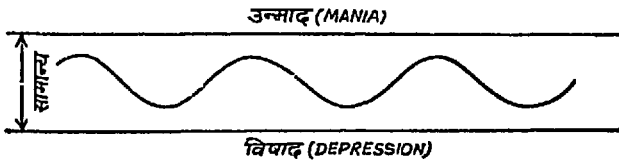
चित्र—33

(उत्साह विपाद रोगी के व्यवहार व सामान्य व्यवहार मे प्रकाश का अन्तर नही है वल्कि तीव्रता या अशो (degrees) का अन्तर है। इस चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के रोगियो के सवेगात्मक उतार-चढाव मे सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा मात्रात्मक तीव्रता पायी जाती है।)

(6) **यौन-भावना** (Feeling of Sex)—इस प्रकार के रोगियो मे या तो यौन सवेगो की बहुलता दिखाई पडती है या इनमे यौन से सम्बन्धित इच्छा को जागृत करना ही मुश्किल हो जाता है। **कॉवेली** (Covilie . 1963) ने उत्साह विषाद मनोविकृतियो का निम्न प्रकार से विवेचन किया है —

(i) इस रोग का प्रारम्भ अचानक होता है लेकिन वहुत थोडे-से रोगियो मे इस प्रकार का विकास क्रमिक होता है।

(ii) औसतन 6 महीने मे रोगी या तो अपने आप ही या उपचार के माध्यम से ठीक हो जाता है।

(iii) लेकिन कुछ ,समय वाद (कभी-कभी कई सालो के बाद) इस रोग की पुन उत्पन्न होने की सम्भावना होती है।

(iv) इन रोगियो की चित्तवृत्ति (mood) मे परिवर्तन वहुत ही शीघ्रता के साथ होता है।

(v) बौद्धिक ह्रास सापेक्षिक रूप से कम ही होता है।

उत्साह-विषाद के प्रकार तथा विशिष्ट लक्षण
(Types of Manic Depressive and Specific Symptoms)

इस विकृति को 3 भागो मे बाँटा जा सकता है —

(1) उत्साह की अवस्था (Manic Phase)

(2) विषाद की अवस्था (Depressive Phase)

(3) मिश्रित अवस्था (Mixed States)

नीचे हम इनका अलग-अलग विवेचन करेंगे तथा इनके विशिष्ट लक्षणों को भी बतायेंगे।

उत्साह की अवस्था
(Manic Phase)

रोगी मे उल्लास (elation) की अत्यधिक मात्रा निहित रहती है। इसमे मनो-शारीरिक क्रियाएँ (psycho-motor activity) असाधारण रूप से दिखाई पडती हैं। वह अत्यधिक सन्तुष्ट एवं चुस्त रहता है। वह अनेक सामान्य क्रियाएँ; यथा—नाचना, गाना, दौडना, बातचीत करना, बड़बड़ाना, चिल्लाना आदि मे असाधारणता का परिचय देता है। उसके विचारो में अत्यधिक उड़ान (flight of idea) की स्थिति पाई जाती है। विचारो मे एकाग्रता का अभाव व विभिन्न प्रकार के विपर्यय व विभ्रमो की प्रधानता दिखाई पडती है। क्रियाओ में अति उत्तेजना होने
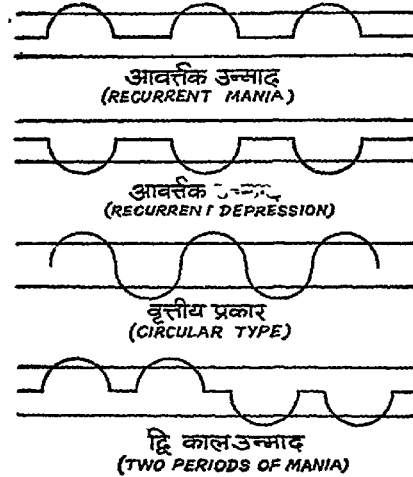
चित्र—34

(विभिन्न प्रकार के उत्साह विषाद अवस्था मे रोगियो की सवेगात्मक स्थिति का प्रदर्शन।)

के कारण उसकी शारीरिक क्रियाओ; यथा—रक्तचाप मे वृद्धि, श्वास व नाड़ी-गति मे तीव्रता आदि के लक्षण भी पाये जाते है। वह अधिकतर आतक (panic) फैलाने वाला तथा झगड़ालू प्रवृत्ति का हो जाता है तथा कभी-कभी ऐसी भी क्रियाएँ करने लगता है, जैसे—कुर्सी पटकना, कपड़े फाडना, तोड़-फोड़ करना आदि, जिससे अन्य लोग उसे कमरे मे बन्द कर देते है। इस प्रकार के रोगियों के लक्षणों के मात्रात्मक अन्तर के आधार पर उत्साह की अवस्थाएँ होती हैं :—

(1) हल्का उत्साह (Hypomania)
(2) तीव्र उत्साह (Acutemania)
(3) अति तीव्र उत्साह (Hyper Acute Mania or Delirious Mania)

कुछ विद्वानो ने उत्साह के इन तीन प्रकारो के अतिरिक्त एक और प्रकार का उल्लेख किया है :—

(4) स्थायी या दीर्घकालिक उत्साह (Chronic Mania)

नीचे हम सक्षेप मे इनका वर्णन करेंगे :

(1) हल्का उत्साह (Hypomania)—यह उत्साह का मन्द रूप है। शारीरिक उग्रता सामान्यत कम होती है। इस प्रकार की स्थिति मे रोगी ससार की समस्त वस्तुओ को अत्यन्त रोचकता के साथ देखता है तथा इनमे आनन्द प्राप्त करता है। उसे प्रत्येक बात मजाक-सी प्रतीत होती है। विचारो की उडान (flight of idea) सवेगात्मक अस्थिरता, विग्रता, ध्यान एव उद्देश्य की कमी आदि के लक्षण प्रमुख रूप से रोगी के अन्दर दृष्टिगोचर होते हैं। जीवन में वह अपनी आलोचना सहन नही करता। बातचीत करने मे अपना अधिकार दूसरो पर जमाना चाहता है। उसमे नैतिक नियन्त्रण (moral control) नही रहता। वैसे इन रोगियो मे विपर्यय तथा विभ्रम दिखाई पडते हैं। लेकिन बहुत न्यून मात्रा मे इस प्रकार के रोगियो को अपने उपचार कराने या अस्पताल मे जाने की सलाह बहुत खलती है। कभी-कभी सलाह देने वालो को वह गाली-गलौज भी करता है। उसका व्यवहार प्राय सामान्य व्यक्ति जैसा ही होता है तथा वातावरण एवं परिस्थितियो को वह समझता है। अत इस प्रकार के रोगियो को सामान्य व्यक्ति से अलग करना बडा ही कठिन है। लेकिन सामान्यत एक सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा उसकी शारीरिक क्रियाओ मे अधिक क्रियाशीलता दिखाई पडती है।

(2) तीव्र उत्साह (Acutemania)—हल्के उत्साह एव तीव्र उत्साह की स्थितियो मे कोई विशेष अन्तर नही होता है क्योकि रोग के लक्षणो के दृष्टिकोण मे इनमे कोई विशेष भेद करना असम्भव है। यह स्थिति या तो हल्के उत्साह के क्रमिक विकास के फलस्वरूप होती है या प्रत्यक्ष रूप मे उत्पन्न हो जाती है। रोगी मे उल्लास की भावना, चिडचिडापन तथा आवश्यकता से अधिक क्रियाशीलता आदि के लक्षण दिखाई पडते हैं। रोगी में प्राय किसी विषय पर अधिक देर तक ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता नही रहती। उसे नींद न आने की शिकायत होती है। वह अहकारी स्वभाव का होता है। कभी वह अधिक खुश हो जाता है तो कभी यकायक क्रोध की भावना का प्रदर्शन करता है। उसकी सूझ, निर्णय-शक्ति व नैतिक नियन्त्रण मे कमी आ जाती है। उसकी बौद्धिक क्रिया व स्मृति का प्राय. ह्रास होने लगता है तथा अस्थायी रूप से विपर्यय व विभ्रम बढ़ जाते हैं। वह स्वार्थी प्रकृति का हो जाता है तथा उसकी विचार-शृखला शीघ्र ही परिवर्तित दिखाई पड़ने लग जाती है। प्रो० कोलमैन के अनुसार, तीव्र उत्साह मे रोगियो में मुख्यतः उल्लास,

चिड़चिड़ापन, विचारो एव शारीरिक क्रियाओ मे अत्यधिक तीव्रता आदि के लक्षण पाये जाते हैं।

तीव्र उन्माद का उदाहरण
(Example of Acutemania)

"एक 44 वर्षीय विवाहित पुरुष, जिसका स्वभाव काफी उग्र था तथा उसे मानसिक चिकित्सालय में इसलिए भरती कराया गया कि वह न तो कोई कार्य ही कर सकता था और न ही घर पर रह सकता था। अस्पताल मे दाखिल होने से दो माह पूर्व उसमे बीमारी के लक्षण दिखाई पड़े थे। वह उत्तेजित रहता था तथा शान्ति से नही बैठता था, परन्तु किसी भी प्रकार की चिकित्सा या सलाह नही लेता था। आने से पूर्व रोगी अत्यधिक बातचीत करता रहता था तथा खाने व सोने का समय अनियमित था। अस्पताल मे प्रवेश करने से कुछ दिनो पूर्व रोगी रात्रि को केवल 2 या 3 घण्टे ही सोता था तथा खाना भी कम खाने लगता था। रोगी के अन्दर यह विचार विकसित हो गया था कि उसकी पत्नी का पहला पति मर गया है, वह उसे लेने आ रहा है तथा उसके साथ बच्चे भी चले जावेगे। इन विचारो के कारण रोगी इतना परेशान था कि उसकी स्त्री को उसे अस्पताल मे भरती करना पड़ा।"—किसकर, पृ० 386

(3) अति तीव्र उत्साह (Hyper Acutemania or Delirious Mania)—यह उत्साह की तीव्र स्थिति होती है तथा इसका विकास या तो हल्का व तीव्र उत्साह से विकसित होने से होता है या अचानक प्रत्यक्ष रूप से भी उत्पन्न हो जाता है। सामान्य रूप से इस प्रकार के रोगियो को 'पागल' कहते हैं। इसमे रोगी अत्यधिक असगत हो जाता है। उसे समय, स्थान, दिनाक व व्यक्तियो का ज्ञान असगत रूप मे होता है। उसकी मानसिक एव शारीरिक क्रियाओ मे इतनी अधिक गतिशीलता व सक्रियता पाई जाती है कि औषधियो के माध्यम से यदि उसे शान्त न किया जाय तो वह अत्यधिक पस्त हो जाता है। उसके बातचीत करने का ढग पूर्णत. अव्यवस्थित हो जाता है तथा अनेक बार तो वह अचानक काफी जोरो से हँसने लगता है तथा अनेक प्रकार की भाव-मुद्राएँ बनाता है। कभी-कभी नोचने की भी क्रिया करता है। उसमे अनेक प्रकार की विभ्रम की स्थितियाँ उत्पन्न की जाती है। वह चिकित्सक को किसी प्रकार का सहयोग नही देता तथा घर की सामग्रियो की भी तोड़-फोड़ करना शुरू कर देता है।

अति तीव्र उत्साह की अवस्था का सर्वप्रथम उल्लेख लूथर बेल (Luther Bell) ने सन् 1849 मे किया था। यही कारण है कि कभी-कभी इसे बेल्स मेनिया (Bell's mania) भी कहते हैं।

(4) स्थायी उत्साह (Chronic Mania)—स्थायी उत्साह की स्थिति का वर्णन सर्वप्रथम शॉट (Schott) ने सन् 1904 मे किया था। शॉट ने ऐसे चार रोगियो का विवेचन किया है, जिन्हे क्रमश. 30, 25, 21 व 17 वर्ष तक स्थायी उत्साह की

अवस्था रही थी। इन चारो रोगियो को पहले भी उत्साह के दौरे पड़ चुके थे। अन्तर केवल इतना ही था कि पिछले दौरो का उपचार हो गया था लेकिन अन्तिम बार के दौरो का उपचार उपर्युक्त अवधियो तक सफल नही हो पाया था। इनमे प्राय वही लक्षण पाये जाते थे जो उत्साह की स्थिति मे पाये जाते है। इसी प्रकार के दीर्घकालीन स्थायी उत्साह की अवस्था का वर्णन फ्रॉम, क्रेपलिन, रेम, कर्बी स्ट्रान्सकी, सैनार, ब्राउन, वर्थम आदि विद्वानो ने भी की है।

विषाद की अवस्था

(Depressive Phase)

साधारणत इस अवस्था के रोगियों मे उदास, चिन्ताग्रस्त, शारीरिक एव मानसिक क्रियाओ की कमी, निकम्मा, अपराधी के लक्षण पाये जाते है। उसकी मानसिक क्रियाओ का विकास अवरुद्ध हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसके ऊपर तीव्र से तीव्र उत्तेजना का भी प्रभाव नही पडता तथा सरल से सरल समस्या पर
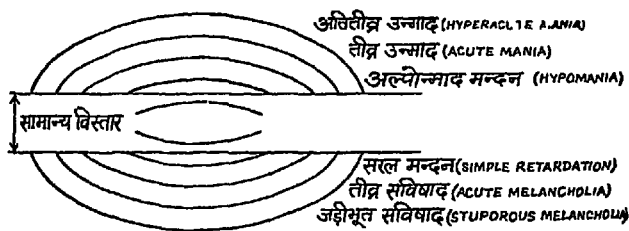
चित्र—35

(विभिन्न प्रकार के उत्साह व विषाद की अवस्था मे सवेगात्मक स्विग्स (emotional swings) का चित्र। जैसे-जैसे उत्साह की तीव्रता मे वृद्धि होती है वैसे-वैसे ही रोगी की सवेगात्मक स्थिति सामान्य विस्तार रेखा से ऊपर (above) होने लगती है तथा विषाद की स्थिति मे नीचे हो जाती है।)

विचार नही कर पाता है व बार-बार रोने लगता है। रोगी अपने अपराधो तथा पापो की चर्चा अन्य लोगो से किया करता है। उसमे निष्क्रियता (inactivity), मानसिक क्रिया विरोध या मन्दन (mental retardation), विचारशून्यता व ध्यान-केन्द्रित करने की अनुपयोगिता आदि के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, वह अत्यन्त शीघ्र ही थक जाता है तथा सदैव विश्राम करना चाहता है। रोगी को साधारण-से-साधारण समस्या को हल करने मे कठिनाई होती है। उसमे पुस्तक पढकर समझने की योग्यता व वाद-विवाद करने की क्षमता बिल्कुल ही क्षीण हो जाती है। वह कभी-कभी अधूरा वाक्य ही समाप्त कर देता है, क्योकि उसके विचारो का प्रवाह रुक जाता है। वह भविष्य के प्रति निराशावादी विचार करता है जिसके कारण आत्महत्या ही उसे सही रास्ता सूझता है। इस प्रकार के रोगियो को विपर्यय तथा विभ्रम अधिक उत्पन्न होता

है। इन लक्षणो के कारण अनेक शारीरिक दोष, पाचन-क्रिया का अव्यवस्थित हो जाना, रक्तचाप मे कमी, निद्रा का अभाव आदि शारीरिक दशाएँ भी उत्पन्न हो जाती है। लक्षणों की मात्रा के आधार पर विषाद की अवस्था को तीन भागो मे वर्गीकृत किया जा सकता है ,—

(1) सरल अवरोध विषाद (Simple Retardation Depression)

(2) तीव्र विषाद (Acute Melancholia or Depression)

(3) अति तीव्र विषाद (Stuporous Melancholia Depression)

(1) **सरल अवरोध विषाद** (Simple Retardation Depression)—इस प्रकार की विषादात्मक स्थिति मे रोगी की शारीरिक व मानसिक क्रियाओ मे कमी दिखाई पडने लगती है। उसकी विचार-शक्ति अव्यवस्थित हो जाती है। उसे अपने भविष्य की चिन्ता होने लगती है लेकिन वह अधिकतर अपनी पिछली स्मृतियो के सम्बन्ध मे ही सोचता रहता है। उसकी अभिवृत्तियो मे दु ख व परेशानी झलकती है। वह अपने को असफल, निराश समझने लगता है। यदि उससे पूछा जाय तो वह धीरे धीरे एवं छोटे-छोटे शब्दो मे उत्तर देता है। ये रोगी अपनी कठिनाइयो के प्रति जागरूक रहते हैं तथा यह भी आवश्यक तथ्य को स्वीकार नही करते कि वे मानसिक रोग से ग्रस्त है। उसे अपराध का विभ्रम होता है। दैनिक क्रियाओं, यथा—खिलाने, नहलाने, कपडे पहनने आदि मे उसकी सहायता करने की आवश्यकता होती है। लेकिन इन लक्षणो के बावजूद उनकी बुद्धि मे कोई विशेष कमी नही आती है।

(2) **तीव्र विषाद** (Acute Depression)—तीव्र विषाद मे रोगी मे सरल विषाद की अपेक्षा शारीरिक तथा मानसिक अवरोधो मे तीव्रता दृष्टिगोचर होती है। वह असामाजिक हो जाता है तथा अपने को हीन समझने लगता है। वह किसी से मिलना-जुलना स्वीकार नही करता। उसमें अनेक शारीरिक कष्ट, जैसे—सिर-दर्द, थकावट, पेट की गड़बड़ी आदि उत्पन्न हो जाते है। उसके मन मे कभी-कभी इस प्रकार का विचार उठता है कि ससार मे वह अकेला है तथा सबसे बडा पाप उसने किया है अत उसे जेल चला जाना चाहिए। उसके मन मे प्रधानत अति-चिन्तात्मक (hypochondriacal) व व्यर्थता (nihistic) सम्बन्धी विचार जागृत होते रहते हैं। उसे यह विश्वास हो जाता है कि उसने बहुत पहले गलत लैंगिक व्यवहार (sexual behaviour) किये थे जिसके कारण उसकी यह दुर्गति हुई है और उसका स्वास्थ्य खराब हो गया है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व बदल गया है तथा अब उसकी कोई आवश्यकता नही। इसी भावना के कारण वह आत्महत्या करने का प्रयास करता है। इस प्रकार के रोगियो की देखभाल सावधानी के साथ करनी चाहिए।

(3) **अति तीव्र विषाद** (Stuporous Melancholia or Depression)—इस प्रकार के रोगी अपने जीवन के प्रति पूर्णत: उदासीन हो जाते हैं। उनकी मनोदशा

में शैशवकालीन अवस्था (infantile stage) के कारण दृष्टिगोचर होते हैं। विषाद में लक्षणों का अत्यधिक अतिरंजित (over-development) हो जाने के कारण इनका सुधार असम्भव-सा हो जाता है। रोगी में आत्म-ग्लानि की भावना इतनी तीव्र हो जाती है कि वह आत्महत्या करने की सोचता है। वह पूर्णत. एकाकी हो जाता है। आस-पास के वातावरण का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसे समय, स्थान, घटना व व्यक्ति आदि के सम्बन्ध में बिल्कुल ज्ञान नहीं होता। उनमे विपर्यय व विभ्रम अधिक बढ़ जाते हैं। इनके हाथ-पैर-बदन इतने शिथिल हो जाते हैं कि उन्हे किसी भी दिशा में आसानी से मोड़ा जा सकता है। रोगी अपने को एक बहुत बड़ा पापी समझने लगता है तथा मृत्यु को ही इस पाप का प्रायश्चित करने का साधन मानता है। उसका शारीरिक स्वास्थ्य गिर जाता है। उसमें दुर्बलता, वजन घट जाना, कब्ज, भूख कम या न लगना आदि लक्षण दिखाई देते हैं। अनेक प्रकार की अदृश्य आवजें सुनाई पड़ती हैं। वह पूर्णतः निष्क्रिय हो जाता है। इस प्रकार के रोगियो का उपचार नवीन उपचार पद्धतियो के माध्यम से किया जा सकता है।

उत्साह विषाद की मिश्रित अवस्था
(Mixed States of Manic Depressive)

क्रेपलिन के अनुसार जब रोगियों में उत्साह व विषाद दोनो के प्रमुख लक्षण एक साथ प्रकट हो तो ऐसे रोगियों को उत्साह-विषाद की मिश्रित अवस्था के अन्तर्गत रखा जाता है। यह स्थिति कभी-कभी एक अवस्था से दूसरी अवस्था में स्थानान्तरण होने पर उत्पन्न हो जाती है। प्राचीन विद्वानो का यह मत था कि उत्साह व विषाद अलग-अलग नहीं होता बल्कि केवल मिश्रित प्रकार का ही होता है। लेकिन नवीन अध्ययनों के अनुसार उत्साह विषाद मनोविकृति के समस्त रोगियो मे से केवल 25% रोगियो मे ही मिश्रित अवस्था पाई जाती है। क्रेपलिन ने लक्षणो की प्रमुखता के आधार पर उत्साह-विषाद मनोविकृति को मिश्रित अवस्था के 6 प्रकारों मे वर्गीकृत किया है:—

(1) उत्साहात्मक-विमूढ़ता,
(2) उद्दीप्त-विषाद,
(3) अनुत्पादक-उत्साह,
(4) विषादात्मक उत्साह,
(5) विचारो की उड़ानयुक्त विषाद,
(6) संवेगात्मक प्रफुल्लता व विचारों की उड़ान-युक्त विषाद।

कारणात्मक एवं पूर्व-प्रवृत्यात्मक तत्व
(Etiological and Predisposing Factors)

उत्साह-विषाद मनोविकृति के पूर्व-प्रवृत्यात्मक तथा तात्कालिक कारणो को हम प्रमुखत. तीन भागो मे बाँट कर अध्ययन कर सकते हैं—

(1) जैविक कारक (Biological Factors)

(2) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)
(3) सामाजिक कारक (Sociological Factors)

दैविक कारक (Biological Factors)

क्रेपलिन (Kraeplin), प्रेसी (Pressey) आदि ने उत्साह-विषाद मनोविकृति का कारण वंश परम्परा माना है। ब्रिज (Bridge) का कहना है कि करीब 80 प्रतिशत रोगियों से वंशपरम्परा का हाथ रहता है। स्ट्रेकर व इबो (Strecker and Ebaugh) का मत है कि व्यक्ति वंशपरम्परा के माध्यम से कुछ ऐसे शीलगुण (personality traits) प्राप्त करता है जो इस रोग को उत्पन्न करने में सहायक होता है। रोसनॉफ (Rosanoff), हैन्डी (Handy) व प्लेसेट (Plesset) आदि अनेक विद्वानों ने यमजों पर अध्ययन किये तथा अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि मूलभूत रूप से इस रोग को उत्पन्न करने का कारण वंशपरम्परा है। स्लेटर (Slater) ने अपने अध्ययन के द्वारा इस तथ्य को बताया कि समान जनसंख्या में इस रोग में उत्पन्न होने की सम्भावना केवल ·05% ही है जबकि इन रोगियों के माँ-बाप, भाई-बहिन व बच्चों में इस रोग की सम्भावना करीब 15% है। रेनी व फाउलर (Renni and Fowler) ने 208 उत्साह विषाद के रोगियों में 63% वंशपरम्परा के प्रभाव को पाया। इन अध्ययनों से यह पूर्णतः स्पष्ट हो गया कि इस रोग के उद्भव में वंशपरम्परा का महत्वपूर्ण हाथ है।

कुछ विद्वानों ने शारीरिक बनावट (physical constitution) को भी इस रोग का कारण माना है, जैसे—क्रेशमर (Kreshmer) ने 85 रोगियों का अध्ययन करने के बाद बताया कि इस रोग का कारण शारीरिक गठन भी है। उसने पिक्निक (pyknic) प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों को प्रमुख रूप से इस रोग का शिकार बताया। इस प्रकार के व्यक्ति कद में तो नाटे तथा इनकी तोंद लम्बी होती है। शेल्डन ने ऐसे व्यक्तियों को जिनकी शारीरिक बनावट 'मेसोमॉर्फिक' व 'एन्डोमॉर्फिक' (masomarphic and endomarphic) प्रकार की होती है, उन्हें इस रोग का शिकार शीघ्र हो जाने वाला बताया है।

कुछ विद्वानों ने आन्तरिक शारीरिक उपद्रवों को भी इस रोग का कारण माना है। अन्तःस्रावी ग्रंथियों (endocrine glands) में गड़बड़ी, पाचनक्रिया तथा रक्तचाप (blood-pressure) में गड़बड़ी आदि के कारण से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। एक अत्यन्त रोचक तथ्य का विवरण जेम्स (James, 1961) ने किया है। उसने बताया है कि विषाद-स्थिति की अपेक्षा उत्साह की स्थिति में शारीरिक रचना सम्बन्धी कारक अत्यन्त सहायक होते हैं।

यहाँ इस बात को पूर्णतः ध्यान में रखना चाहिए कि केवल दैविक कारण ही एकमात्र इस रोग को उत्पन्न करने में सहायक नहीं होते हैं, बल्कि अन्य कारण इसके उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने; यथा—मेयर (Meyer), कर्बी तथा ब्लूलर (Kirby and Bleuler) आदि ने उत्साह-विषाद मनोविकृति के कारणों में मनोवैज्ञानिक कारकों को उल्लेखनीय बताया है। इनका कहना है कि उत्साह-विषाद मनोविकृति, मनोविकृति के रोगियों के मानसिक गठन एवं मानसिक क्रियाओं का अधिक प्रभाव पड़ता है। पूर्ण रूप से किसी विशेष मनोवैज्ञानिक स्थिति को उत्साह-विषाद के रोग का कारण नहीं माना जा सकता, लेकिन फिर भी व्यक्ति के प्रारम्भिक विकास के कारक तथा वर्तमान जटिल व तीव्र दबावपूर्ण अवस्थाएँ इस रोग के विकास में सहायक होती हैं। युंग (Jung) ने यह कहा है कि जो व्यक्ति बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं, वे प्रधानतः इस मनोविकृति के शिकार हो जाते हैं। फ्रायड (Freud) ने उत्साह-विषाद मनोविकृति के मानसिक कारणों की व्याख्या अपने मनोलैंगिक विकास के सिद्धान्त के आधार पर की है। माँ-बाप व बालक के बीच व्यवहार मानसिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अधिकतर ऐसा देखा गया है कि अधिकांशतः इस रोग से ग्रस्त रोगी का अत्यन्त कड़े अनुशासन, उच्च नैतिक आदर्श व मान्यताओं में पालन पोषण हुआ होता है।

रेनी व फाउलर (Renni and Fowler) ने अपने अध्ययनों में यह देखा कि करीब 79% रोगी ऐसी दबावपूर्ण स्थितियों से गुजरे थे जिनका सम्बन्ध उनके स्पष्ट लक्षणों में ज्ञात होता था। केवल 20% रोगियों में ही उनकी कठिनाइयों का रूप स्पष्ट नहीं था। कृत्रिम उपाय जो सामान्यत. व्यक्ति अपनी कठिनाइयों की रक्षा में उपयोग करता है, कभी-कभी इनका अतिरंजित विकास होने के कारण विकृत रूप ले लेते हैं। प्रो० ब्राउन (Brown) ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है क्योंकि वे असामान्यता को सामान्य व्यवहार का अतिरंजित तथा विकृत रूप मानते हैं। अतः इस बात का भी रोगी पर प्रभाव पड़ता है कि वह अपने वास्तविक जीवन में अपनी कठिनाइयों की रक्षा किस माध्यम से करता है।

मैक्डूगल (McDougall) ने उत्साह-विषाद मनोविकृति के मानसिक कारणों पर अधिक जोर दिया है तथा उसके अनुसार यह रोग आत्म-सम्मान (self-assertion) व आत्म-समर्पण (self-sumition) की प्रवृत्तियों के असन्तुलित विकास के कारण उत्पन्न होता है। एडलर (Adler) ने आत्म-प्रतिष्ठा (self-prestige) व हीन-भावना (inferiority complex) को ही इस रोग का कारण माना है। उसका कहना है कि जब इसका प्रकाशन सही रूप से नहीं होता तो इसका दमन (repression) हो जाता है तो उसमें हीन भावना विकसित हो जाती है तथा वह उत्साह-विषाद मनोविकृति के रोग से ग्रस्त हो जाता है। फ्रायड (Freud) ने परम अहं व अहं के आधार पर इस रोग की व्याख्या की है। इसी प्रकार इवाल्ड, स्ट्रेकर, इवॉन आदि विद्वानों ने भी मनोवैज्ञानिक कारकों की प्रधानता को स्वीकार किया है।

सामाजिक कारक
(Sociological Factors)

अनेक विद्वानो का कहना है कि कुछ ऐसी विशेष सस्कृति या सामाजिक कारक होते है जहाँ यह रोग अधिक होता है। इस सम्बन्ध मे फीगेलहोल (Fegalhole) का कहना है कि न्यूजीलैंड मे यह रोग, मनोविदलता (schizophrenia) की तुलना मे लगभग 2½ गुना अधिक होता है जबकि अमरीका मे इन दोनो के अनुपात मे एक विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। कारोदर ने अपने एक अध्ययन मे यह देखा कि सर्वप्रथम मानसिक-अस्पताल मे प्रवेश करने वाले रोगियो मे से करीब 28·6% रोगी मनोविदलता के थे तथा केवल 3 8% उत्साह-विषाद के रोगी थे। इसी प्रकार के परिणाम स्टैनब्रोक (Stainbroke) ने भी प्राप्त किये हैं। इस सम्बन्ध मे यह बात उल्लेखनीय है कि जटिल स्वभाव के सस्कृति व इनके निश्चित प्रभाव के सम्बन्ध मे पूर्ण अध्ययन प्राप्त नही हुए हैं।

चिकित्सा (उपचार)
(Treatment—Therapy)

इस रोग से ग्रस्त अधिकाश रोगियो को चिकित्सालय मे भर्ती करा देना आवश्यक है क्योकि वहाँ उनकी देखभाल भली-भाँति की जा सकती है। इनके उपचार के लिए सबसे प्रमुख बात यह ध्यान मे रखनी चाहिए कि इन्हे वाह्य उद्दीपको के प्रभाव से बचाया जाय। उसके सामने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न न की जाय जिससे उसे झुंझलाहट या उत्साह की प्रेरणा मिले। उसे टहलने, पढने एवं हाथ से कुछ कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए तथा उनमे यह आशावादी दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहिए कि वह निश्चित रूप से ठीक हो जावेंगे। उद्दीप्त अवस्था में रोगी को प्रतिदिन गर्म पानी मे नहलाने से लाभ होता है।

उत्साह की अवस्था मे रोगी को ऐसी क्रियाओ से बचाना चाहिए जिससे उसकी शक्ति मे कमी आ जाती है। इस प्रकार के रोगी को हाइड्रो-उपचार पद्धति (hydro-therapy), जिसमे ठण्डे पानी के टब मे रोगी को डाला जाता है तथा कुछ शासक औषधियो (drugs) का भी प्रयोग करना चाहिए जिससे उसके लक्षणो की तीव्रता मे कमी आ सके। कुछ विशेष स्थितियो मे विद्युत पद्धति (electric convulsive therapy) लाभदायक होती है। इस प्रकार के प्रयासो से रोगी के लक्षणो की व्यवस्था मे कमी आ जाती है तथा मनश्चिकित्सा (psychotherapy) की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है।

विषादात्मक स्थिति मे रोगियों के उपचार मे मुख्य ध्यान यह देना चाहिए कि उसकी निष्क्रियता को दूर किया जा सके। उसे गर्म पानी से नहलाना तथा मालिश करवानी चाहिए। विद्युत आघात (electric shock) भी लाभदायक होता है। रोगी के साथ सदैव सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए तथा उसके साथ ऐसा व्यवहार

करना चाहिए या ऐसी स्थिति उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए जिससे कि उसकी मनोचिकित्सा सम्भव हो सके।

अभी हाल मे हुए अनुसन्धानो के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि दीर्घ-कालिक निद्रा चिकित्सा या आक्षेप-चिकित्सा से अगर उत्साह विषाद मनोविकृति का उपचार कराया जावे तो बीमारी की अवधि कम हो जाती है तथा स्वास्थ्य-लाभ की सम्भावना मे वृद्धि हो जाती है। प्राय: निद्रा चिकित्सा मे रोगी को एक सप्ताह तक निद्रावस्था मे रखा जाता है तथा उसे केवल भोजन देने के उद्देश्य से कुछ समय के लिए जगाया जाता है। आघात चिकित्सा के अन्तर्गत विद्युत तरगो या मेट्रोजॉल के द्वारा रोगी को समय-समय पर आघात पहुँचाया जाता है। दोनो से ही चिकित्सा के परिणाम एक समान प्राप्त होते हैं। परन्तु सापेक्षत. मेट्रोजॉल का प्रयोग सरल होता है।

रोग फलानुमान
(Prognosis)

करीब 70% इस मनोविकृति से पीडित रोगी चिकित्सालय मे भर्ती होने से एक वर्ष की अवधि मे स्वस्थ हो जाते है। यदि आधुनिक उपचार पद्धतियो का उपयोग किया जाय तो यह सख्या शत-प्रतिशत तक भी पहुँच सकती है। रेनी व फाउलर का कहना है कि यह रोग ठीक हो जाने के उपरान्त फिर से उत्पन्न हो सकता है। वैसे 5 रोगियो मे से केवल एक रोगी को ही यह रोग पुन उत्पन्न नही होता फिर भी इस रोग के सुधार की सम्भावनाएँ अधिक है। जिन व्यक्तियो को यह रोग 21 से 60 वर्ष की आयु मे होता है, वे शीघ्र ठीक हो जाते है। मेट्रोजॉल (metrozol) व विद्युत् आघात चिकित्सा के माध्यम से इस रोग के अच्छे होने की सम्भावनाएँ और भी अधिक बढ गई हैं।

कार्यपरक मनोविकृतियाँ—3

27

संभ्रान्ति या पैरानोइया
(PARANOIA)

रोग का नाम व इतिहास
(Name of the Disease and History)

'संभ्रान्ति' शब्द का प्रयोग प्राचीनकाल मे ही होता चला आ रहा है। सन् 1818 मे हीनरॉथ (Heinroth) ने सर्वप्रथम इसके स्वरूप का निर्धारण किया। ग्रीक व रोमन लोग इस शब्द का प्रयोग सभी प्रकार की मानसिक व्याधियों के लिए करते थे। सन् 1845 में ग्रीजिगर (Greisinger) ने इस विकृति को ऐसी अवस्था माना जिसमे रोगी को विभिन्न प्रकार के दण्डात्मक व महानता के व्यामोह (delusion) होते हैं। परन्तु ग्रीजिगर का यह भी मत था कि उत्साह या विषाद के दौरों के उपरान्त भी संभ्रान्तिवत् अवस्थाओं का जन्म हो जाता है। अतः उसका विचार था कि संभ्रान्ति, उत्साह-विषाद मनोविकृति (manic depressive psychoses) जैसी मनोविकृतियों पर ही निर्भर होता है। सर्वप्रथम संभ्रान्ति (paranoia) शब्द का प्रयोग कॉलबौम (Kallbaum) ने सन् 1863 में किया। वेस्टफल (Westphal), क्राफ्ट एबिंग (Kraft Ebbing), मेण्डल (Mendel), क्रेमर (Cramer) आदि मनोवैज्ञानिको ने सभ्रान्ति को एक प्रकार की बुद्धि-व्याधि माना है।

आधुनिक रूप से वर्णित संभ्रान्ति का मुख्य आधार क्रेपलिन द्वारा वर्णित लक्षण है। क्रेपलिन ने इस शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए किया जिनमें व्यवस्थित रूप से व्यामोह का लक्षण पाया जाता है परन्तु उनका शेष व्यक्तित्व संगठित होता है। यहाँ एक बात का स्पष्टीकरण करना आवश्यक है कि संभ्रान्तिवत् विकारों (paranoid reactions) के अन्तर्गत दो प्रकार के विकार आते हैं—(1) सभ्रान्ति

(paranoia), (2) सभ्रान्तिवत् अवस्था (paranoid state)। इन दोनो प्रकारो मे लक्षणात्मक दृष्टि से तो कुछ अन्तर है परन्तु इन रोगो की उत्पत्ति के कारण एक समान होते है। यहाँ हम दोनो प्रकार के विकारो को सभ्रान्ति के अन्तर्गत ही वर्णन करेंगे। 19वी शताब्दी मे सभ्रान्ति का अर्थ 'मिथ्या तर्क' (false reasoning) से लगाया जाता था। सामान्य रूप से इस प्रकार की मनोविकृति सापेक्षतया जीवन के उत्तरार्द्ध मे उत्पन्न होती है।

घटनाक्रम
(Incidence)

वैसे तो प्रत्येक समाज मे कुछ ऐसे सुधारक, पैगम्बर, अन्वेपक व वैज्ञानिक आदि पाए जाते है जो सदैव यह शिकायत करते है कि समाज ने उनको ठीक प्रकार से समझा नही है। प्रत्येक देश व समाज मे इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते है जो वास्तव मे महानता सभ्रान्ति से पीडित होते हैं। क्योकि इनका व्यक्तित्व इतना अधिक विशृंखलित नही होता कि उसका वास्तविकता से सम्पर्क टूट जावे या अत्यधिक बौद्धिक ह्रास हो जावे। अत इस प्रकार के रोगी कम सख्या मे मानसिक अस्पतालो मे प्रवेश करते है। कोलमैन के अनुसार मानसिक अस्पतालो मे प्रवेश करने वाले समस्त रोगियो मे से केवल 1% से कम ही रोगी सभ्रान्ति प्रकार के होते है। परन्तु वास्तव मे ये आँकड़े ठीक नहीं हैं। क्योकि ऐसे अनेक सभ्रान्ति के रोगी पाए जाते है जिनकी बुद्धि तीव्र होती है तथा वे दूरदर्शी व आत्मसंयमी होते हैं तथा इस प्रकार के रोगी अपनी चिकित्सा न के बराबर कराते हैं। लाहौर मे एक मुसलमान रोगी था जो प्रत्येक शाम को अनेक प्रकार के नक्शो व पुस्तको के माध्यम से लोगो को एकत्रित करके यह सिद्ध करने का प्रयास करता था कि पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य इसके इर्द-गिर्द घूमता है। वह इस सम्बन्ध मे अपने आपको भूगोल का बहुत बडा विद्वान् मानता था तथा अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए बडी-बडी दलीलें देता था। इस प्रकार इन रोगियो को चिकित्सा की आवश्यकता ही नही होती। कुछ रोगी घर पर ही अपनी चिकित्सा करवाते है। यही कारण है कि इनकी सख्या मानसिक अस्पतालो मे बहुत कम है। पहले मनोवैज्ञानिको का यह विचार था कि सभ्रान्ति का रोग पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को अधिक होता है परन्तु कोलमैन (1960) ने इसे अस्वीकार करते हुए बताया कि यह रोग स्त्री व पुरुष दोनो मे समान रूप से पाया जाता है। मानसिक अस्पतालो मे प्रथम प्रवेश करने वाले सभ्रान्ति रोगियो की आयु-सीमा (age range) 25—26 वर्ष तथा औसत आयु 50 वर्ष होती है।

संभ्रान्ति के सामान्य लक्षण
(General Symptomatology of Paranoia)

इस प्रकार के रोग होने से पूर्व व्यक्ति चिडचिडा, आत्मलीन व शक्की स्वभाव का हो जाता है। सभ्रान्ति के रोगी के व्यवहार मे विचित्रता स्पष्टत. दिखाई पडती

है। इस प्रकार का रोगी अह-केन्द्रित (ego-centered) होता है तथा उसमे अहंकार व स्वार्थ की भावना की प्रधानता होती है। रोगी कठोर मनोवृत्ति के कारण मजाक न तो करता है और न ही सहन कर पाता है। वैसे तो सामान्य व्यक्ति कभी-कभी यह अनुभव करते हैं कि उसकी योग्यताओ का उचित मूल्यांकन नहीं हो रहा है तथा वह अन्य लोगो पर सन्देह करता रहता है। परन्तु सभ्रान्ति के रोगी मे यह लक्षण अधिक अतिरजित (exaggerated) रूप से व्यक्ति होते हैं। इनके व्यामोह तार्किक व व्यवस्थित होते हैं। रोगी अपने को सर्वश्रेष्ठ या महान् सिद्ध करने का प्रयास करता है, परन्तु इस आन्तरिक इच्छा की पूर्ति न होने के कारण ये लोग महानता के व्यामोह (delusion) से पीड़ित हो जाते है। अपनी इस असफलता को रोगी दूसरों के मत्थे जड कर स्वय उत्तरदायित्व के भार से बचना चाहते है।

सन् 1818 मे होनरोथ (Heinroth) ने समस्त मानसिक विकृतियो को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया गया—बुद्धि सम्बन्धी विकृति, संकल्प-शक्ति सम्बन्धित विकृति तथा सवेगो की विकृति। होनरोथ ने संभ्रान्ति को बुद्धि सम्बन्धी विकृति के अन्तर्गत रखा। परन्तु 1845 मे ग्रीजिंगर (Greisinger) ने इसे सवेगो की विकृति वताया। आज सभ्रान्ति को स्थिर विभ्रम व व्यामोहो का उग्र रूप मे अर्थ लगाया जाता है। क्रेपलिन का मत है कि सभ्रान्ति मनोविकृति की वह अवस्था है जिसमे व्यामोह निश्चित व स्थायी प्रकृति के होते है। मेयर (Meyer) के अनुसार, संभ्रान्ति की अवस्था व्यक्ति का रूपान्तर है। सभ्रान्ति के रोगी के तर्क वडे ही वजनदार होते है। इस सम्वन्ध मे मिलनर (Milner) ने एक 33 वर्षीय रोगी का उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसने अपनी स्त्री की हथौड़े से हत्या कर दी थी। हत्या करने से पूर्व इस रोगी के अन्दर यह विश्वास घर कर गया था कि उसकी स्त्री किसी भयकर रोग से ग्रस्त है तथा वह उसे भी जानवूझ कर यह रोग उत्पन्न कर मार डालना चाहती है। उसने अपने इस विश्वास की पुष्टि के निम्न तर्क दिए :—

(1) स्त्री ने विवाह के तुरन्त वाद मेरा वीमा करवाया।

(2) विवाह के पूर्व मेरी पत्नी का जिस युवक से प्रेम सम्वन्ध था, वह यकायक मर गया।

(3) स्त्री के माँ-वाप वाले घर मे एक छोटा लड़का रहता था जिसे विचित्र प्रकार के दौरे पड़ते थे। रोगी का विश्वास था कि उसके सास-श्वसुर को भी यह रोग है जो उसकी स्त्री को है।

(4) उसे अपने भोजन मे, स्त्री की हत्या करने के कई महीने पूर्व ही अजीव-सी गन्ध आने लगी थी। भोजन करने के उपरान्त उसे यह अनुभव होता था कि उसके मुँह का स्वाद विगड़ गया है।

इसी प्रकार रोजन व ग्रेगरी ने भी एक प्रौढ बुद्धिमान शिक्षित स्त्री रोगी का उल्लेख किया जिसे यह पूर्ण विश्वास था कि उसके पति का चरित्र खराव है और उसे एक अन्य स्त्री से प्यार है। उसके पति तथा अन्य लोग स्त्री रोगी को वार-वार

यह स्मरण कराते थे कि उसके सदेह निराधार हैं परन्तु वह इसको स्वीकार नही करती थी। स्त्री रोगी अपने इस विश्वास की पुष्टि के लिए अनेक तर्कपूर्ण प्रमाण देती थी। इस प्रकार सभ्रान्ति के रोगी के विश्वास तर्कपूर्ण व व्यवस्थित होते हैं। रोगी के तथ्यहीन विश्वास व्यामोह (delusion) का रूप ले नेते हैं। नीचे हम सभ्रान्ति के विभिन्न प्रकारो के अन्तर्गत उनके विशेष लक्षणो का भी वर्णन करेंगे।

संभ्रान्ति के प्रकार व उनके लक्षण
(Types of Paranoia and Its Symptoms)

मुख्यत: सभ्रान्ति के निम्नलिखित प्रकार हैं —

(i) रोग से सम्बद्ध संभ्रान्ति
(Hypochondriac Paranoia)

इस प्रकार के सभ्रान्ति रोगियो मे यह विश्वास दृढ रूप से पाया जाता है कि उसे कोई असाध्य रोग हो गया है। वे सोचते हैं कि शनै-शनै. उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। वे अपनी चिकित्सा के हेतु अनेक डाक्टरो के पास जाते हैं परन्तु उसे यह पूर्ण विश्वास हो जाता है कि कोई भी चिकित्सक उसके इस रोग का उपचार नही कर सकता है। उन्हे टी० बी०, केन्सर, दमा आदि रोगग्रस्त होने का विश्वास हो जाता है।

(ii) उत्पीड़न संभ्रान्ति
(Persecutory Paranoia)

अनेक रोगियो मे उत्पीड़न का लक्षण पाया जाता है। अन्य शब्दो मे, प्राय सभी सभ्रान्ति रोगियो मे दण्ड सम्बन्धी व्यामोहो की प्रधानता रहती है। रोगी को यह दृढ विश्वास हो जाता है कि उसे दण्डित करने के लिए कोई व्यक्ति निरन्तर प्रयत्नशील है तथा सभी लोगो को वह अपना शत्रु मानता है। यहाँ तक कि घर मे अपने माँ-बाप को तथा मानसिक आरोग्यशाला मे मनश्चिकित्सक को भी वह शत्रु समझता है। इस प्रकार का रोगी कभी-कभी शत्रुता के विचार के कारण आक्रमण कर बैठता है। कुछ रोगी तो हत्या तक करने का प्रयास कर बैठते हैं। इस प्रकार के रोगियो मे महानता का व्यामोह (delusion of grandeur) की प्रधानता होती है।

(iii) महानता से सम्बद्ध संभ्रान्ति
(Greatness Paranoia)

वैसे तो सभी प्रकार के सभ्रान्ति के रोगियो को महानता सम्बन्धी व्यामोहो के लक्षण विद्यमान होते हैं, परन्तु कभी रोग के आरम्भ से ही रोगी मे विभिन्न प्रकार के महानता सम्बन्धी विचारो का जन्म हो जाता है। इस प्रकार के रोगी अपने को महान् व्यक्ति समझने लगते है। हॉफमैन (Haffman) ने एक ऐसे रोगी का वर्णन किया है जो अपने को महान् अन्वेषक समझता था। एक बार वह सहायता प्राप्त करने के लिए अमरीका के राष्ट्रपति के पास गया। उसने बताया कि उसने एक ऐसे

यन्त्र का आविष्कार किया है जो अमरीका के सभी शत्रुओ को नष्ट कर सकता है। उसके अनुसार इस विचित्र यन्त्र का नाम 'फ्लेम थ्रोवर' (flame thrower) है जिसे कुछ लोग चोरी करना चाहते हैं। वह राष्ट्रपति के पास इसलिए आया है कि उसके यन्त्र को 'पेटेण्ट' कराने मे सहायता प्रदान करे। उसने अपना परिचय इस प्रकार दिया—"यहाँ ईश्वर नम्बर एक है, जेसस क्राइस्ट दूसरे नम्बर पर है तथा मैं नम्बर तीन हूँ।"[1]

रोगियो मे प्रमुख रूप से 4 प्रकार के महानता व्यामोह देखे जा सकते है—

(i) प्राय सभ्रान्ति रोगी अपने को वैज्ञानिक व प्रमुख आविष्कारक मानते हैं।

(ii) सभ्रान्ति रोगियो के दूसरे समूह मे कामुक या रत्यात्मक (erotic) प्रकार के रोगी आते है। स्त्री या पुरुष प्राय. यह समझने लगते है कि उन्हें कोई बड़ा आदमी या स्त्री प्रेम करती है परन्तु अन्य लोगो के हस्तक्षेप के कारण उनका प्रेम सार्थक नही हो पा रहा है।

(iii) इस समूह मे वे रोगी आते है जो अपने को महापुरुष मानते हैं।

(iv) इस समूह के अन्तर्गत वे रोगी आते है जो अपने को श्रेष्ठ मानव; जैसे—पैगम्बर, धर्म-प्रचारक व राजनेता आदि समझते हैं।

(iv) रत्यात्मक या कामुक संभ्रान्ति
(Erotic Paranoia)

इस प्रकार के रोगियो मे लैंगिकता सम्बन्धी संभ्रान्ति की प्रधानता पायी जाती है। इस प्रकार के रोगी यह समझने लगते हैं कि उनसे कोई युवक या युवती प्रेम करने लगी है। फिशर (Fisher) ने इस प्रकार के एक रोगी का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। एक व्यक्ति को यह सभ्रान्ति हो गई थी कि एक उच्चकुल की युवती उससे प्रेम करने लगी है। उसने अपनी इस प्रेमिका को एक प्रेम-पत्र भी लिखा परन्तु कोई उत्तर प्राप्त नही हुआ। तब उसने सोचा कि युवती उससे विवाह करना चाहती है। अत उसने एक पत्र अपनी ओर से युवती के पिता के पास लिखा कि उनकी पुत्री उससे विवाह करना चाहती है। पिता ने इस युवक को मानसिक आरोग्यशाला मे चिकित्सा के हेतु भेज दिया।

(v) वादकारी संभ्रान्ति
(Litigant Paranoia)

कुछ संभ्रान्ति रोगी इस प्रकार के होते है कि वे निरन्तर मुकदमो मे लीन होते हैं। इन्हे मुकदमेबाजी या कानूनी झगडे करने का शौक होता है। वे अपने दोषो को

---

1 "There's God who is Number I, and Jesus Christ who is Number 2, and me, I am Number 3."—Hoffman J. L.; Psychotic Visitors to Government Offices in the National Capital, *Am. J. of Psychol.* 1943, 99, 571-575.

अन्य पर आरोपित करते है । लेखक एक ऐसे व्यक्ति को जानता है जिसके पास केवल 6 फुट जगह है तथा वह अभी तक 1 दर्जन से अधिक मुकदमे लड चुका है। उसके मुकदमो मे कानूनी आधार नही होता। अत वह मुकदमे को निश्चित रूप से हार जाता है परन्तु फिर भी अपने अधिकार के लिए मुकदमेबाजी करता रहता है। अगर उसके किसी भी मुकदमे का निर्णय उसके पक्ष मे होता है तो भी वह अन्य बहानो से पुनः मुकदमा प्रारम्भ कर देता है।

(vi) ईर्ष्यात्मक सम्बद्ध संभ्रान्ति

(Jealousy Type Paranoia)

इस प्रकार के सभ्रान्ति रोगी अपने पति या पत्नी पर प्राय विश्वासघात का आरोप लगाते है तथा उनके प्रमाणो आदि को एकत्रित करने के लिए जासूसी आदि का भी कार्य करते है। अगर रोगी घर से बाहर जाने को तैयार हो तथा स्त्री उसके लौटने के बारे मे पूछ ले तो रोगी को शीघ्र ही यह सन्देह हो जाता है कि उसकी स्त्री उसकी अनुपस्थिति मे अपने प्रेमी से मिलना चाहती है। इसी प्रकार रोगिणी स्त्री भी अपने पति के चरित्र पर सन्देह करने लगती है।

(vii) सुधारात्मक संभ्रान्ति

(Reformatory Paranoia)

इस प्रकार के सभ्रान्ति रोगी मे सुधार सम्बन्धी व्यामोह पाये जाते है। इन रोगियों की दृष्टि से दुनियाँ सकट से घिरी हुई है तथा आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक रूप से शीघ्र सुधार होने की आवश्यकता है। रोगी अपने को ही इस योग्य मानता है कि वही इस ससार का उद्धार कर सकता है या वही इस अखिल जगत् का एकमात्र सुधारक है।

(viii) धार्मिक संभ्रान्ति

(Religious Paranoia)

धार्मिक सभ्रान्ति के रोगी अपने को 'परमात्मा का अवतार' या 'भगवान का दूत' समझते है। ये रोगी सोचते है कि उनका जन्म ससार की रक्षा करने के लिए ही हुआ है। रोगी अनेक प्रकार के उपदेश भी देता है। इस प्रकार के रोगियो मे धर्म सम्बन्धी विचार विचित्र प्रकार के होते है। फिशर (Fisher) ने इस सम्बन्ध मे एक ऐसे रोगी का विवरण प्रस्तुत किया है जो यह सोचता था कि भगवान् ने इस ससार मे उसे विशेष प्रकार के धर्म की स्थापना के लिए भेजा है। वह अपने धर्म उपदेश मे 'पत्नियो के अर्पण' (*Sacrifice of Wives*) की बात करता था। रोगी व्यक्तियो को उपदेश देता था कि रात मे अपनी पत्नी को अन्य व्यक्तियो के पास भेज देना चाहिए तथा उनका इस प्रकार का कार्य बहुत बडा धर्म होता है।

संभ्रान्ति के कारण या निदान

(Causes of Etiology of Paranoia)

विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने भिन्न-भिन्न प्रकार के सभ्रान्ति के कारणो का उल्लेख किया है। फ्रायड के मतानुसार सभ्रान्ति का मुख्य कारण दमित समजाति-लैंगिकता

(Homo-sexuality) है। स्टोडार्ड (Stoddard) ने फ्रायड के दृष्टिकोण को इस प्रकार से व्यक्त किया गया है :—

संभ्रान्ति का रोगी सदैव इस अचेतन तथ्य से आरम्भ करता है—"मैं उससे प्रेम करता हूँ।"

उत्पीड़न संभ्रान्ति के रोगी के लिए यह विचार 'मैं उससे प्रेम करता हूँ", असह्य है जिसके कारण दमित होकर चेतना में यह विचार इस प्रकार उपस्थित होता है, "मैं उससे प्रेम नहीं करता, मैं उससे घृणा करता हूँ"। इस विचार का आरोपण द्वारा रूपान्तरण इस प्रकार होता है, "वह मुझसे घृणा करता है, वह मुझ पर अत्याचार करता है।"

धार्मिक संभ्रान्ति के रोगी को यह विचार "मैं उससे प्रेम करता हूँ", असह्य होता है अत. इनके स्थान पर यह विचार "मैं भगवान से प्रेम करता हूँ" आ जाता है तथा जिसका आरोपण इस रूप मे हो जाता है, "भगवान् मुझसे प्रेम करता है, मैं भगवान् द्वारा चुना गया हूँ।"

महानता संभ्रान्ति (Greatness Patanoia) मे वह विचार "मैं उससे प्रेम करता हूँ", असह्य होने के कारण दमित हो जाता है तथा चेतना मे यह विचार इस रूप मे प्रकट होता है, "मै उससे प्रेम नही करता, मैं अपने आप से प्रेम करता हूँ।" आरोपण के द्वारा यह विचार इस रूप से व्यक्त होता है, 'हर कोई मुझसे प्रेम करता है, मै महापुरुष हूँ।

फ्रायड के अतिरिक्त अन्य विद्वानो ने भी इसके कारणों पर प्रकाश डाला है। परन्तु यहाँ यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि सभी मनोवैज्ञानिक इस तथ्य पर सहमत है कि सम्भ्रान्ति की उत्पत्ति में व्यक्ति की शरीर-रचना या दैहिक प्रक्रिया का कोई हाथ नही होना है। सक्षेप मे, इसके उत्पन्न होने के निम्न प्रमुख कारण हैं :

(1) **व्यक्तित्व-प्ररूप** (Personality Types)—अनेक मनोवैज्ञानिकों ने संभ्रान्ति का कारण विशेष प्रकार के व्यक्तित्व को बताया है। क्राफ्ट एबिंग (Kraft Ebbing) के अनुसार, जो व्यक्ति पलायनवादी, लज्जालु, एकाकी व सन्देहशील होते हैं, उन्हें मुख्यत दण्डात्मक संभ्रान्ति, जो व्यक्ति अधिक उत्तेजनशील, आत्मकेन्द्री व स्वार्थी होते हैं, उन्हे महानता सभ्रान्ति तथा जो व्यक्ति अव्यवसायी व झक्की स्वभाव के होते हैं, उन्हें धार्मिक सभ्रान्ति होता है। टिलिंग (Tilling), फ्रीडमैन (Friedman), हीलब्रॉनर (Heilbronner), मैगनन आदि ने इस रोग का कारण वासनात्मक स्वभाव, सवेदनशीलता, चिड़चिड़ापन, अतिरंजित अहम् भाव आदि बताया है। क्रेशमर ने सभ्रान्ति का कारण वंशानुगत संवेदनशीलता बताया है। कैमरॉन (Cameron) के अनुसार, जो व्यक्ति सशयशील, ईर्ष्यालु, स्वार्थी व सवेदनशील होते हैं, उन्हें संभ्रान्ति का रोग अधिक होता है।

(2) **अतिरंजित संवेग** (Exaggerated Emotion)—कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सभ्रान्ति का कारण अतिरजित संवेग है, क्योंकि इसके कारण व्यक्ति का

मस्तिष्क असन्तुलित हो जाता है तथा इसके फलस्वरूप व्यक्ति अनेक प्रकार की स्थायी व व्यवस्थित भ्रान्तियो से पीडित हो जाता है।

(3) **लैंगिक असमायोजन या कुसमायोजन** (Sexual Maladjustment)—कुछ मनोवैज्ञानिको का विचार है कि सभ्रान्ति का कारण लैंगिक असमायोजन है। रोजन व केने (Rosen and Kiene) ने सभ्रान्ति के रोगियो का अध्ययन करने के बाद बताया कि इस प्रकार के रोगियो मे सामान्य लैंगिक समायोजन का पर्याप्त अभाव पाया जाता है। फ्रायड ने इसका कारण दमित समजाति-लैंगिकता बताया है।

(4) **असफलता, हीनता-भाव व अपराध-भाव** (Failure, Inferiority and Guilt-Feeling)—नव्य फ्रायडवादियो ने सभ्रान्ति का कारण असफलता, हीनताभाव व अपराध-भाव को माना है। एडलर के अनुसार हीनता-भाव स्वाग्रह की असफलता (failure of self-assertion) से उत्पन्न होता है तथा हीनता-भाव के बचाव करने से उनमे व्यामोह या भ्रान्ति के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। इसी प्रकार रोजन व केने ने भी बताया है कि रोगियो के अनेक व्यवहार मे हीनता-भाव अन्तर्निहित होते हैं। हैण्डरसन (Henderson) ने सभ्रान्ति का कारण अपराध-भाव माना है। उसका मत है जब व्यक्ति के अन्दर अपराध भाव का जन्म हो जाता है तब वह अपने इस भाव को अन्य लोगो पर व्यक्त करता है।

(5) **कैमरॉन का 'स्वनिर्मित समुदाय'** (Cameron's Theory of Pseudo-Community)—डॉ० कैमरॉन के अनुसार, सभ्रान्ति के उत्पन्न होने का कारण उसमे सामाजिक सम्पर्क योग्यता का अभाव व आरोपण प्रक्रिया है। उसके अनुसार सभ्रान्ति का रोगी अन्य व्यक्तियो मे सामाजिक सम्पर्क ठीक प्रकार से स्थापित नही कर पाता जिसके फलस्वरूप उसके विचार व कार्य धीरे-धीरे यथार्थ से दूर होते जाते है तथा उनमे अनिश्चितता आती जाती है जो अत्यधिक कष्टदायक होती है। रोगी इस स्थिति से बचाव करने के लिए स्वय का एक जगत् निर्माण कर लेता है तथा सदैव काल्पनिक जगत् मे विचरण करता रहता है। कैमरॉन ने इसे ही 'स्वनिर्मित समुदाय' सिद्धान्त की सज्ञा दी है।

(6) **नैराश्य** (Frustration)—कुछ मनोवैज्ञानिको ने सभ्रान्ति का कारण व्यक्ति की नैराश्यता बताई है। उनका मत है कि जब व्यक्ति सामाजिक व आर्थिक कठिनाइयो का सामना करने मे असफल हो जाता है तो उसमे नैराश्य भाव उत्पन्न हो जाता है जो आगे चलकर व्यामोह या सभ्रान्ति स्थायी लक्षण का रूप ले लेता है।

(7) **मनोग्रन्थियाँ** (Complexes)—कुछ विद्वानो के अनुसार सभ्रान्ति का कारण व्यक्ति की मनोग्रन्थियाँ होती है जो धीरे-धीरे भ्रान्ति उत्पन्न कर देती है। जब व्यक्ति के मस्तिष्क मे अत्यधिक तनाव व अशान्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो व्यक्ति धार्मिक या सुधारात्मक संभ्रान्ति से ग्रस्त हो जाता है।

संभ्रान्ति का उपचार
(Treatment of Paranoia)

संभ्रान्ति वह कार्यपरक मनोविकृति है, जिसके रोगी दृढ़ता से पीड़ित होते हैं अतः इनका उपचार करना कठिन होता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में मनश्चिकित्सा व विद्युत् आघात चिकित्सा का मिला-जुला उपचार अधिक लाभदायक होती है। परन्तु रोग के बढ़ जाने पर मनश्चिकित्सा की कोई भी पद्धति लाभदायक नहीं होती है। इस प्रकार के रोगियों को प्राय. मानसिक आरोग्यशाला में रखना चाहिए। इस रोग की प्रारम्भ अवस्था में कभी-कभी साक्षात्कार चिकित्सा भी सार्थक सिद्ध होती है। वैसे इनकी चिकित्सा के लिए इन्सुलिन (insulin), व्यावसायिक प्रणाली (occupational method) व सामूहिक चिकित्सा (group therapy) आदि विधियों को प्रयोग मे लाया जाता है। चिकित्सक को रोगी का विश्वासपात्र बनकर उसकी भ्रान्तियों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। परन्तु वास्तव में ऐसा सम्भव नहीं होता क्योकि रोगी अपने को महान् समझता है। अतः वह चिकित्सक को अपना शत्रु, दोषी व अपराधी समझकर उसके आदेशो को स्वीकार नहीं करता। वह यह समझता है कि डाक्टर भी मेरे शत्रुओं से मिल गया है तथा उसके प्रति षड्यन्त्र रच रहा है। अत. कभी-कभी चिकित्सक को इन्सुलिन की सूई देने में बड़ी कठिनाई होती है क्योकि रोगी समझता है कि उसे सुई के माध्यम से जहर दिया जा रहा है। कभी-कभी रोगी चिकित्सक पर आक्रमण तक कर बैठता है। इस प्रकार इन रोगियों को मानसिक आरोग्यशाला में रखकर भी उपचार करने से विशेष लाभ नहीं होता है। मिलर (Miller) के अनुसार, उपचार में दो बातें अधिक सहायक सिद्ध होती हैं। प्रथम, विवाह तथा द्वितीय, रोगी स्वय अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में प्रयास करें।

28

अन्य कार्यपरक मनोविकृतियाँ
(OTHER FUNCTIONAL PSYCHOSES)

पिछले 3 अध्यायो मे हमने मुख्य-मुख्य कार्यपरक मनोविकृतियो के सम्बन्ध मे विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की। इस अध्याय मे हम मुख्यत निम्न कार्यपरक मनोविकृतियो के सम्बन्ध मे बतायेंगे :—

(1) प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद (Involutional Melancholia),
(2) सभ्रान्तिवत् अवस्था (Paranoid State);
(3) विषादात्मक मनोविक्षिप्त विकार (Depressive Psychotic Reactions)।

नीचे हम प्रत्येक का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करेंगे :

प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद
(Involutional Melancholia)

परिचय
(Introduction)

यह रोग जीवन के प्रत्यावर्तन काल (*अर्थात् 50-55 वर्ष की अवस्था*) मे होता है। स्मरण रहे, यह जीवन का वह काल होता है जहाँ व्यक्ति की मानसिक एवं शारीरिक शक्तियो का ह्रास होना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार की मनोविकृति मे रोगी मे तीव्र विषादात्मक लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकार की विषाद प्रतिक्रियाओ मे मुख्यत व्याकुलता, आत्म-भर्त्सना, व्यामोह आदि के लक्षण विद्यमान होते हैं। वैसे यह मनोविकृति उत्साह-विषाद मनोविकृति के मिश्रित प्रकार (mixed type) से मिलता-जुलता है परन्तु फिर भी इन दोनो मे दो मुख्य बातो का अन्तर है। प्रथम, यह रोग उत्साह-विषाद की अपेक्षा औसतन अधिक आयु वालो (मानसिक

चिकित्सालयों में प्रथम प्रवेश करने वाले रोगियो की औसतन आयु—53·5 वर्ष) को होता है तथा द्वितीय इस प्रकार का रोगी उत्साह-विषाद रोगी के समान स्वतः ठीक नही हो पाता। स्त्री व पुरुष दोनो मे मध्यावस्था समाप्त हो जाने के उपरान्त मानसिक व शारीरिक शक्तियो मे क्रमश ह्रास आरम्भ हो जाता है तथा वे उनमे अपने अतीत के प्रति पश्चाताप करने की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है जिसके फलस्वरूप वह यह सोचने लगता है कि शेष जीवन व्यर्थ है। इस अवस्था मे जब मनुष्य के शारीरिक व मानसिक लक्षण असामान्य रूप ले लेते है तब प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद रोग विकसित हो जाता है। इस रोग का उद्भव धीरे-धीरे होता है। रोग की प्रारम्भावस्था में रोगी मन्दाग्नि, अरुचि, अनिद्रा आदि की शिकायत करता है। परन्तु रोग की वृद्धि के साथ रोगी की दशा बड़ी दु.खद व अजीब हो जाती है।

घटनाक्रम

(Incidence)

प्रो० कोलमैन के अनुसार, इस रोग मे ग्रस्त रोगियो की आयु, मानसिक चिकित्सालयो मे प्रथम प्रवेश के समय 40 से 55 (पुरुषो के लिए) व 50 से 65 वर्ष (स्त्रियो की) होती है। मानसिक चिकित्सालयो मे प्रथम प्रवेश करने वाले समस्त रोगियो मे से लगभग 4% रोगी प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद के होते है। प्रथम प्रवेश के समय स्त्री व पुरुष रोगियो की औसत आयु क्रमश. 52 वर्ष व 57 वर्ष होती है। **रोजन व ग्रेगरी** के अनुसार, यह रोग पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो में 3 गुना अधिक मिलता है।

प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद के लक्षण

(Symptoms of Involutional Melancholia)

शनै-शनै इस रोग का विकास होता है। इसका प्रारम्भ कभी-कभी नौकरी या पद छूटने, परिवार मे किसी सदस्य या प्रियजन की मृत्यु, आर्थिक हानि या अन्य कष्टदायक परिस्थितियो आदि मे होता है। इस रोग के आरम्भ मे रोगी में मुख्य लक्षण, शरीर का वजन घटना, अत्यधिक चिन्ता व बेचैनी, अनिद्रा की शिकायत, ध्यान क्षीणता, उत्साह की कमी, अकारण रुदन, सामान्य कार्यो के प्रति अरुचि आदि हैं। परन्तु रोग वृद्धि के साथ ही साथ ये लक्षण अतिरंजित रूप ले लेते हैं। रोगी बहुत दुखी रहने लगता है। उसमे अत्यधिक उत्साह-हीनता, व्याकुलता व भय के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। वह अपना अधिकांश समय भूतकाल की वास्तविक व काल्पनिक बातो के सम्बन्ध मे सोचने मे व्यतीत करता है। रोगी इस प्रकार के रोग मे ऐसा समझने लगते हैं कि उन्होने अपने जीवन-काल मे अक्षम्य पाप किए हैं तथा अनेक व्यक्तियो के साथ जघन्य अपराध व विश्वासघात किया है। भूतकाल की छोटी-से-छोटी गलतियाँ इस समय अत्यधिक विकराल रूप लेकर प्रस्तुत होती है।

इस प्रकार से रोगियो मे अति स्वास्थ्य चिन्तात्मक व्यामोहो (hypochon-

drical delusion) की प्रधानता रहती है। रोगी को अनुभव होने लगता है कि उसका शरीर अत्यन्त क्षीण होता जा रहा है, मस्तिष्क नष्ट हो गया है या पत्थर की चट्टान के समान कठोर हो गया है या पेट अस्तित्वहीन हो गया है तथा शरीर का रक्त पानी बन गया है। स्वास्थ्य सम्बन्धी इन भ्रान्तियो के अतिरिक्त रोगी मे शून्यता या व्यर्थता के व्यामोह (nihilistic delusions) भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार के व्यामोह के कारण रोगी को समस्त ससार निरर्थक प्रतीत होता है। कभी-कभी रोगी यह शिकायत करता है कि उसे किसी प्रकार के सवेग, सवेदना या भाव का अनुभव नही हो रहा है। परन्तु इसके बावजूद भी रोगी मानसिक शक्तियो, यथा—बुद्धि व स्मृति पर कोई प्रभाव नही पडता। रोगी की अन्तर्दृष्टि एव समझने की शक्ति भी काफी ठीक होती है। उनकी चिन्तन-क्रिया भी ठीक होती है।

इस प्रकार के रोगियो मे शारीरिक क्रियाओ की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। वह अति चिन्तित मुद्रा मे इधर-उधर टहलने, हाथ मलने, माथा ठोकने, सिर पीटने व बाल उखाडने आदि की क्रियाएँ करने लगता है। रोगी आत्महत्या के विचारो को बार-बार अपने मस्तिष्क मे लाता है तथा करीब 25% रोगी (आधुनिक चिकित्सा पद्धति के विकास के पूर्व) आत्महत्या के द्वारा ही अपना जीवन समाप्त कर लेते हैं।

प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद के कारण
(Causes of Involutional Melancholia)

प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद के कारणो के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे मतभेद है। कुछ विद्वानो का मत है कि यह रोग कुछ दशाओ मे प्रत्यावर्तनकाल स्वय ही रोग का कारण होता है, अर्थात् कुछ मानसिक प्रभाव व्यक्तियो मे पहले से ही विद्यमान होते है तथा आयु-वृद्धि मे विकृत रूप धारण कर लेते हैं। यह कारण पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो के लिए अधिक ठीक प्रतीत होता है क्योकि इस अवस्था मे रज स्राव बन्द हो जाता है जिसका शरीर पर प्रभाव पडता है। परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि इस रोग का यही एकमात्र कारण है। नीचे हम इस रोग के कारणो का विस्तृत रूप से विवेचन करेंगे —

(अ) शारीरिक कारण (Physical Causes)—जीवन के प्रत्यावर्तनकाल मे अन्त स्रावी ग्रन्थियो की क्रिया-पद्धति मे अन्तर आ जाता है। स्त्रियो मे विशेष रूप से रजोनिवृत्ति (menopause) या मासिक धर्म के बन्द हो जाने के कारण अनेक प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो जाते है, जैसे—अत्यधिक पीडा, चक्कर आना, अनिद्रा, बेचैनी आदि। पुरुषो की भी लैंगिक क्षमता क्षीण हो जाती है। यहाँ यह बताना उचित प्रतीत होता है कि कुछ विद्वानो ने अन्त स्राविक परिवर्तन को ही एकमात्र कारण माना है। परन्तु अनेक विद्वान् इस तथ्य को अस्वीकार कर देते है। उनका कहना है कि अगर इस रोग का कारण अन्त स्राविक परिवर्तन है तो अन्त स्राविक ग्रन्थि चिकित्सा से इसका उपचार हो सकता है। परन्तु अभी तक के प्रयोग परिणाम यह सिद्ध करते हैं

कि इस प्रकार की चिकित्सा मे प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद का रोगी ठीक नही होता। इस सम्बन्ध मे वर्नर (Werner) का यह कहना ठीक ही प्रतीत होता है कि अन्तःस्राविक ग्रन्थियाँ इस रोग के लक्षणो को बढाने मे सहायक तो होती हैं, परन्तु इस रोग का एकमात्र कारण इन ग्रन्थियो को नही माना जा सकता है।

(ब) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)—इस रोग के उद्भव मे मनोवैज्ञानिक कारणो का विशेष हाथ होता है। अन्य शब्दो मे, इस रोग का मुख्य कारण पूर्वनिहित व तात्कालिक स्थितियाँ हैं। इस रोग के उत्पन्न होने से काफी समय पूर्व ही रोगी लज्जालु, अत्यधिक सवेदनशील, आवश्यकता से अधिक अध्यवसायी, सामाजिक कार्यों में न्यूनतम रुचि, अत्यधिक सचेत व असुरक्षित प्रकृति का होता है। ये लोग अपने कर्त्तव्य का पूर्ण रूप से पालन करते है तथा नैतिक सिद्धान्त मे पूर्ण आस्था रखते है। **टिटले** (Titley) के अनुसार, यह रोग उन्ही को अधिक होता है जिनके व्यक्तित्व मे कुछ विशेष विशेषताएँ विद्यमान होती है। आयु-वृद्धि के साथ ही साथ व्यक्ति की अनेक शक्तियो मे ह्रास होना प्रारम्भ हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अनेक सरल, मानसिक व शारीरिक कार्यो को करने मे असमर्थ हो जाता है। अगर इस समय कोई ऐसा कारक या तात्कालिक स्थिति उत्पन्न हो जावे तो इस रोग के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। उसमे जीवन के प्रति निराशा व भय की भावना उत्पन्न हो जाती है। जहाँ स्त्रियाँ शारीरिक सुन्दरता के ह्रास व प्रजनन शक्ति की समाप्ति के फलस्वरूप अपने को असुरक्षित समझती है, वहाँ पुरुष अपने को आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से असुरक्षित समझता है। इन्हे ससार अवास्तविक व अन्धकारमय प्रतीत होता है, अत ये लोग अपना समस्त ध्यान अपनी ओर ही केन्द्रित कर लेते है। **टेट व बर्न्स** (Tait and Burns) ने 379 प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद रोगियो का अध्ययन किया तथा उसके आधार पर बताया कि इस रोग का प्रमुख तात्कालिक कारण मानसिक व शारीरिक ह्रास है।

इस प्रकार के रोगियो को ऐसा आभास होता है कि मृत्यु ही उनके समस्त कष्टो का एकमात्र उद्धार का मार्ग है। यही कारण है कि इस प्रकार का रोगी अक्सर आत्महत्या करने का प्रयास करता है।

(स) सामाजिक कारण (Social Causes)—विभिन्न प्रकार के समाजों मे इस रोग के लक्षण व घटनाक्रम मे भी अन्तर पाया जाता है। **हेण्डरसन व गिलीस्पी** (Henderson and Gillespie, 1950) ने अपने अध्ययन मे पाया कि स्काटलैण्ड के ग्रामीण क्षेत्रो मे इस रोग का घटनाक्रम अधिक होता है। **कारोदर्स** (Carothers : 1947, 1959) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि केनिया मे मानसिक चिकित्सालयो मे प्रवेश के समस्त रोगियो का करीब 1 4% रोगी इस रोग से ग्रस्त होते थे जबकि अमरीका मे यह सख्या करीब 4% थी। इन अध्ययन-परिणामो से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस रोग के उद्भव पर सामाजिक कारको का प्रभाव अवश्य पडता है परन्तु अभी इस सम्बन्ध मे और अध्ययन करने की आवश्यकता है।

प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद के कुछ उदाहरण
(Some Examples of Involutional Melancholia)

"एक 52 वर्षीय स्त्री को मानसिक चिकित्सालय मे इस कारण भरती कराया गया कि उसका कहना था कि उसमे विचारने की शक्ति नही है तथा उसका सिर खाली हो गया है। वह महीनो रोया करती थी तथा काफी दुर्बल हो गयी थी। वह दु.खी एवं चिन्तित रहती थी तथा कभी-कभी अत्यधिक बेचैन हो उठती थी तथा चिल्लाती थी, 'मेरी सहायता करो, मेरी सहायता करो।"

वह बडी ही कठिनाई के साथ अपने चिकित्सक को पहचान पाती थी। अस्पताल के अन्दर भी वह क्षुब्ध रहती थी तथा बार-बार रटती थी कि उसका सिर खाली हो गया है तथा वह पागल हो गई है। वह यह भी कहती थी कि वह अत्यधिक घूमती है तथा बात भी अधिक करती है।"

"एक 50 वर्षीय अविवाहित स्त्री जो अपने जीवन काल में शान्त, सन्तुलित व दिलचस्प रही थी। उसने उपचारिका का कार्य भी किया था परन्तु क्योकि उसमे उसकी रुचि नही थी, अत उसे वह कार्य अच्छा नहीं लगा। उसे इस कार्य से काफी निराशा भी उत्पन्न हुई। इसके उपरान्त उसने एक आफिस मे कार्य करना आरम्भ किया तथा अनेक वर्षो से वह यह कार्य सफलतापूर्वक करती रही थी। अस्पताल मे प्रवेश के कुछ दिनों पूर्व ही उसने इस नौकरी को इस्तीफा देकर छोड दिया था तथा विदेश जाने की बात करती रहती थी। उसका यह कहना था कि विदेश में उसको उसके पति व बच्चे मिलेंगे। वह कहती थी कि उसकी शादी हो चुकी है तथा अनेक व्यक्ति इस तथ्य के साक्षी हैं। वह पति के पास टेलीग्राम भी करती थी परन्तु उत्तर न प्राप्त होने की स्थिति मे चिन्तित हो जाती थी। उसने समस्त ससार मे भ्रमण करने की अनेक भ्रान्तियो का निर्माण कर लिया था।"

प्रत्यावर्तनकालीन सविषाद का उपचार
(Treatment of Involutional Melancholia)

इस प्रकार के रोगी काफी समय तक इस रोग से पीड़ित रहते हैं। अत इनका उपचार अस्पताल मे ही रखकर करना चाहिए। घर मे इस प्रकार के रोगियो की चिकित्सा व्यवस्था करने से एक तो आर्थिक नुकसान होता है और दूसरा इस प्रकार का रोगी अक्सर आत्महत्या करने का प्रयास करता है। अतः अगर इस प्रकार के रोगियो को अस्पताल मे ही रखा जावे तो अच्छा ही होता है। क्योकि अस्पताल मे इनकी देखरेख सतर्कता के साथ हो जाती है। रोगी की विशेष देखभाल करने की आवश्यकता होती है क्योकि इस प्रकार के रोगी सामान्यत. भोजन आदि करना स्वीकार नही करता तथा उसे ट्यूब आदि के सहारे भोजन देना पडता है। दो-तीन वर्ष पुराने रोगी को विद्युत-आघात (electric shock) चिकित्सा लाभदायक सिद्ध होती है। वैसे इन रोगियो को विश्राम व ठीक प्रकार का सन्तुलित भोजन देने से काफी सुधार होता है।

कुछ लोग अफीम से बनी औषधियों आदि का उपयोग करने की सलाह देते है परन्तु कुछ विद्वान् इस प्रकार की औषधियो के उपयोग के विरुद्ध है। कनवलजिव पद्धति के माध्यम से टेट व बर्न्स (Tait and Burns) ने 114 रोगियो का उपचार 6 माह से 2–3 वर्ष तक करने के पश्चात् देखा कि 58% रोगियो मे इससे पर्याप्त सुधार होता है। परन्तु विद्युत आघात के साथ ही साथ अगर इस प्रकार के रोगियो के उपचार के लिए सामूहिक व व्यक्तिगत मनश्चिकित्सा पद्धतियो का भी प्रयोग किया जावे तो करीब 90% रोगी या तो 4 से 6 सप्ताह के अन्दर पूर्णत ठीक हो जाते है या उनमे पर्याप्त सुधार होने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है।

संभ्रान्तिवत् अवस्था
(Paranoid State)

सभ्रान्ति (Paranoia) व सभ्रान्तिवत् अवस्था मे मुख्य अन्तर यह है कि सभ्रान्तिवत् अवस्था मे रोगी के दण्डात्मक या महानता सम्बन्धी व्यामोहो मे संभ्रान्ति की भाँति कम व्यवस्था पायी जाती है। इस प्रकार की अवस्था मे सापेक्षिक रूप से अस्थायी व्यामोह पाए जाते है। इन रोगियो की चिन्तन क्रिया मे अवश्य ही कुछ अस्थायी विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार की अवस्था रोगी में कम समय के लिए ही उपस्थित होती है। संभ्रान्तिवत् अवस्था के रोगियों के प्रक्षेपण (projection) सापेक्षिक रूप से सरल होते हैं तथा उनमें संभ्रान्ति के समान व्यापकता व व्यवस्था नही होती। इस प्रकार सभ्रान्तिवत् अवस्था व सभ्रान्ति मे कोई विशेष अन्तर नहीं है।

सभ्रान्तिवत् अवस्था से सम्बन्धित प्रतिक्रियाओ को मनोविक्षिप्त प्रतिक्रियाओ के अन्तर्गत रखा गया है। अमेरिकन मनोरोगचिकित्सक सस्था (*American Psychiatrist Association*)[1] ने इसे निम्न प्रकार से परिभाषित किया है—

"इस समूह मे वे दशाएँ वर्गीकृत है जिनमे प्राय. उत्पीड़क व उत्कर्ष से सम्बन्धित स्थायी व्यामोह या भ्रान्तियाँ (delusions) पायी जाती है। इनके विचारों के साथ संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ व व्यवहार मे सगतिता विद्यमान रहती है। इसके अन्तर्गत वे प्रतिक्रियाएँ नही आती है जिन्हे मनोविदलता प्रतिक्रिया के सभ्रान्तिवत् प्ररूप (paranoid type) मे वर्गीकृत किया जाता है।"

संभ्रान्तिवत् प्रतिक्रिया का उदाहरण

"एक 20 वर्षीय नवयुवक ने मानसिक चिकित्सालय मे प्रवेश किया। 16 वर्ष की अवस्था से ही उसके व्यवहार मे काफी परिवर्तन उसके परिवारीजनो ने नोट किया था। वह वहुत वात करता था तथा उसके मन मे यह वात घर कर गई थी कि उसका जन्म इस ससार को सुधारने के लिए हुआ है। उसके पास अनेक डायरियाँ थी जिसमे उसने काल्पनिक समुदाय की योजनाओ के सम्बन्ध मे छोटी-छोटी बाते लिखी थी।

---

1 American Psychiatric Association, *Diagnostic and Statistical Manual · Mental Disorders*, Washington, D C Author, 1952, p. 28

रोगी ने अपनी डायरी मे यह भी लिखा था कि ससार के किस स्थान पर काल्पनिक समुदाय निवास करेगा। उसने इस सम्बन्ध मे काफी लिखने के बाद एक निश्चित स्थान भी तय किया था, वहाँ एक महल बनाने की भी योजना थी जिसमे वह अपने परिवार को रखने का विचार करता था। रोगी ने डायरी मे ही नवीन धर्म व सम्प्रदायों के सम्बन्ध मे भी लिखा था। उसने सार्वजनिक इमारतो के सम्बन्ध मे भी डायरी मे व्यौरेवार विवरण लिखा था तथा कुछ इमारतो के चित्र भी बना रखे थे।"

विषादात्मक मनोविक्षिप्त विकार
(Psychotic Depressive Reactions)

उत्साह-विषाद मनोविक्षिप्त के समान ही विपादात्मक विकार भी भावात्मक मनोविक्षिप्त का एक प्रकार है। इन प्रकार के रोगी मे विषाद (depression) की गम्भीर स्थिति पायी जाती है जिसके परिणामस्वरूप रोगी की वास्तविकता की जाँच नही होती। इस प्रकार के रोगी मे अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर रूप के व्यामोह व विभ्रम के लक्षण पाए जाते है। इस रोग व उत्साह-विषाद मनोविक्षिप्तता की विषाद-स्थिति मे मुख्यतः निम्न अन्तर है :—

(अ) उत्साह-विषाद की स्थिति मे रोगी के अन्दर लक्षण बार-बार समाप्त होते है तथा पुन. घटित होते है परन्तु विषात्मक मनोविक्षिप्त की स्थिति मे रोग के लक्षण समाप्त होने के बाद बार-बार घटित नही होते।

(ब) विषादात्मक मनोविक्षिप्त विकार की स्थिति मे तात्कालिक कारक अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप से उपस्थित होते हैं।

29

मनोदैहिक विकृतियाँ

(PSYCHOPHYSIOLOGICAL OR PSYCHO-SOMATIC DISORDERS)

परम्परागत रूप से चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य शारीरिक बीमारियो से होता है तथा इस प्रकार के अनुसन्धान के माध्यम से बीमारियो मे आगिक कारको को समझने व नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया जाता है। दूसरी तरफ मानसोपचारशास्त्र (psychiatry) मे मानसिक बीमारियो का अध्ययन उपचार किया जाता है। कुछ रोगियो मे आगिक कारको के स्पष्ट लक्षण को देखा जा सकता है परन्तु कुछ मे नही। इसी प्रकार कुछ रोगो मे मानसिक व सवेगात्मक लक्षण स्पष्टत होते हैं। इन विचारो पर विशेष ध्यान देने से यह ज्ञात होता है कि दोनो दृष्टिकोण सीमित है। व्यक्ति चाहे मानसिक रूप से पीडित हो या शारीरिक रूप से, उसे तो सम्पूर्ण शरीर पीडित प्रतीत होता है, उदाहरणस्वरूप, अगर उसके हाथ मे चोट लग गई तो इस चोट से उत्पन्न दर्द केवल हाथ तक ही सीमित न होगा। इसी प्रकार अगर व्यक्ति समग्ररूप से पीडित है तो इससे केवल उसका मानसिक पक्ष ही प्रभावित नही होगा बल्कि दोनो पक्ष (मानसिक व शारीरिक) प्रभावित होगे। सेग्वन (Seguin, 1950) ने चिकित्सा के इस पूर्णतावादी दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे कहा है :—

" ...its aim the study of man as a whole, a totality, considered as such in health and in disease, and the application of the conscious of such study to diagnosis, prognosis, and treatment."[1]

बीमारियो या अस्वस्थता के पूर्णागवादी विचार को मनोदैहिक दृष्टिकोण भी कह सकते हैं। क्योकि मनोदैहिक विकारो के अन्तर्गत व्यक्ति के दीर्घकालिक सवेगात्मक

---

1. Quoted from, **Coleman** *Ibid*, p 249

तनाव विभिन्न शारीरिक व्यक्तियो मे परिवर्तित हो जाते हैं। अन्य शब्दो में, इस प्रकार के रोगियो मे अन्तरावय (visceral) व स्वत नाडीमण्डल से नियन्त्रित होने वाले शारीरिक अगो मे अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं लेकिन इन आगिक कष्टो का कारण शारीरिक न होकर दीर्घकालिक सवेगात्मक तनाव होता है। स्मरण रहे कि सवेगात्मक तनाव की स्थिति मे व्यक्ति मे आन्तरिक व वाह्य तीव्र परिवर्तन होते है, जैसे—उसकी पाचन-क्रिया, रक्त-प्रवाह, श्वास-क्रिया आदि मे एक विशेप परिवर्तन आ जाता है। तीव्र भयानक स्थिति मे व्यक्ति का रग पीला पड जाता है, मुँह सूख जाता है, पसीना आने लगता है, हाथ-पैर ठण्डे या पसीजने लगते है, हृदय-धडकन की गति तीव्र हो जाती है तथा इसी प्रकार के अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। सामान्य व्यक्ति मे सवेगात्मक स्थितियाँ कुछ समय के लिए ही उपस्थित होती रहे तो उसमे अतिरजित रूप से विभिन्न प्रकार के तीव्र सवेगात्मक परिवर्तन होगे जिसके फलस्वरूप मनोदैहिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

इस प्रकार मनोदैहिक विकृतियो के मूल मे दीर्घकालिक सवेगात्मक अव्यवस्था रहती है परन्तु इसके अतिरिक्त अन्तर्द्वन्द्व भी इसका एक प्रमुख कारण होता है। वुलबर्ग (Wolberg) ने इस सम्बन्ध मे एक अध्ययन के आधार पर यह देखा कि सम्मोहन की अवस्था मे अस्थायी रूप से उत्पन्न सवेगात्मक अन्तर्द्वन्द्व के समय विभिन्न प्रकार के शारीरिक परिवर्तन भी उत्पन्न करते है। उसने अपने इस अध्ययन को 3 प्रयोज्यो (subjects) पर किया। इन प्रयोज्यो को सम्मोहित किया तथा अन्तर्द्वन्द्व स्थिति उत्पन्न की। सम्मोहनावस्था मे इन प्रयोज्यो को बताया गया कि जब वे जागेंगे तब उनके सम्मुख एक चाकलेट उपस्थित होगी परन्तु उन्हे खाना एक 'गलत' कार्य होगा। जगने पर एक प्रयोज्य ने चाकलेट (अन्तर्द्वन्द्व के प्रति प्रतिक्रिया) को देखा ही नही, दूसरे प्रयोज्य ने उसे बडी रुचि के साथ खा लिया परन्तु उसमे आमाशयन्त्र विकार (gastro-intestinal disorder) उत्पन्न हो गया तथा तीसरे प्रयोज्य का सिर चकराने लगा।

मनोदैहिक विकार व मनस्ताप या मनोविक्षिप्तता मे अन्तर है, उदाहरण-स्वरूप, चिन्ता मनस्ताप से ग्रस्त रोगी सदैव आशकाओ से घिरे होते हैं तथा अपनी चिन्ता व तनाव को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओ का सहारा लेते है परन्तु मनोदैहिक विकार से ग्रस्त रोगी के लिए यह आवश्यक नही है कि वह आशकाओ से घिरा ही हुआ हो। इसी प्रकार मनोदैहिक विकार मे व्यक्ति मे जो शारीरिक परिवर्तन होते है, उनका सम्वन्ध स्वत नाडी-मण्डल व अन्तरावयो से होता है। इसी प्रकार इसमे तथा मनस्ताप मे मुख्य अन्तर निम्न हैं —

(1) मनोदैहिक विचार के लक्षणो का आधार दैहिक होता है जवकि मनस्ताप का प्रतीकात्मक।

(2) इस प्रकार के विकार मे वे शारीरिक अग ही प्रभावित होते है जिनका सम्वन्ध अन्तरावय व स्वतन्त्र नाडी-मण्डल से होता है, जवकि मनस्ताप

के रोगी का कोई विशेष अग प्रभावित न होकर, व्यापक शारीरिक कष्ट उत्पन्न होते हैं।

(3) मनोदैहिक विकार से उत्पन्न शारीरिक परिवर्तन खतरनाक होते हैं जबकि मनस्ताप से उत्पन्न शारीरिक परिवर्तन इससे खतरनाक नही होते।

पहले इसे 'साइकोसोमैटिक विकृतियो (psychosomatic disorders) के नाम से पुकारा जाता था परन्तु 'अमेरिकन साइकियाट्रिक परिषद् (*APA*) के नवीन वर्गीकरण के अनुसार इस असामान्यता को 'मनोदैहिक स्वतन्त्र नाड़ीय व अन्तरावयविक विकृतियाँ' (psychophysiologic autonomic and visceral disorders) का नाम दिया गया।

घटनाक्रम (Incidence)

आधुनिक जीवन सघर्षो से भरा है। यही कारण है कि आज मनोदैहिक विकृतियाँ अधिक घटित होती है। कोलमैन के अनुसार, अगर दो व्यक्ति उपचार करा रहे होते है तो उनमे से कम से कम एक के शारीरिक कष्टो का कारण सवेगात्मक प्रतिवल (emotional stress) होगा। कोलमैन के ही अनुसार अमरीका मे अनुमानतः 5 मिलियन व्यक्ति पेप्सी अलसर (आँतो मे घाव) (peptic ulcers), 70 लाख सन्धिशोथ या जोडो की सूजन या गठिया (arthritis) मे, तथा 1 करोड़ से अधिक व्यक्ति अर्द्ध-सिरदर्द (migraine headaches) से पीडित है। पेशामेनिक (Pasamanik, 1962) इस विकृति का सर्वाधिक घटनाक्रम यद्यपि युवावस्था व अधेड़ अवस्था मे अधिक घटित होता है लेकिन फिर भी यह वचपन से वृद्धावस्था तक कभी भी घटित हो सकता है।

मनोदैहिक विकार के प्रकार
(Types of Psychophysiological Reactions)

इस प्रकार की विकृतियो के विभाजन का मुख्य आधार प्रभावित अग व्यवस्था (affected organ system) है। प्रारम्भ मे इससे सम्वन्धित लक्षण प्राय. साधारण रूप से उपस्थित होते है परन्तु लक्षण तीव्रता के साथ ही साथ रोगी औषधि लेने के लिए चिकित्सक के पास जाता है। वर्तमान वर्गीकरण के आधार पर निम्न दस समूह इस विकृति के हैं :—

(1) मनोदैहिक त्वचा विकृति
(Psychophysiological Reaction)

इस प्रकार के समूह में त्वचा सम्बन्धी विकृतियाँ आती हैं; जैसे—दीर्घकालीन दाद, खाज, एक्जिमा, मुँहासे व पित्ती आदि। इस प्रकार के मनोदैहिक रोगो का मुख्य कारण सवेगात्मक कारक होता है।

सवेगात्मक व्यवहार एवं त्वक प्रतिक्रियाओ मे एक घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसे दैनिक जीवन मे अनेक क्रियाओ मे देखा जा सकता है। जैसे व्यक्ति जब उलझन मे

होता है तो उसकी त्वचा लाल हो जाती है। इसी प्रकार तीव्र भय व उग्र क्रोध की अवस्था मे, त्वचा की छोटी-छोटी केशिकाओ (capillaries) से रुधिर खिंच आता है जिसके परिणामस्वरूप चेहरे की त्वचा का रग पीला पड जाता है। त्वचा मे जब विकृतियाँ उत्पन्न होती है तब इससे शरीर प्रतिमा बिगड़ जाती है। जैसे रोगी तथा उसके सवेगो पर ददोरे (skin rash), मुँहासे (acne) या चेहरे व हाथो पर अन्य प्रकार के दागो (blemish) का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है। मनोदैहिक प्रतिक्रियाओ से एक विकृति उत्पन्न होती है जिसे तन्त्रिका-त्वचाशोथ (neurodermatitis) कहते हैं, इसके अनेक रूप है, यथा—अनामिका-त्वचाशोथ (ring-finger dermatitis), अगुष्ठ-त्वचाशोथ (thumb dermatitis), पलक-त्वचाशोथ (eyelid dermatitis), बाह्य कर्णशोथ (otitis externa), छाजन (exzema) आदि। नीचे हम सक्षेप मे इन विकृतियो का वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

तान्त्रिका-त्वचाशोथ (Neuro-dermatitis)

इस प्रकार की विकृतियो के उत्पन्न होने का कारण सवेगात्मक अस्थिरता होती है जो अनेक रूप मे प्रकट होती है।

अनामिका-त्वचाशोथ (Ring-finger dermatitis) के अन्तर्गत जो त्वचा विकार उत्पन्न होता है वह उस त्वचा मे होता है जिसमे व्यक्ति अपनी सगाई की अँगूठी पहने होता है।

अंगुष्ठ-त्वचाशोथ (Thumb dermatitis) वह मनोदैहिक विकृति है जो प्राय स्त्रियो को हो जाता है तथा इस तथ्य की ओर सकेत करता है कि वे अपने जीवन से पराजित हो गई है।

पलक-त्वचाशोथ (Eyelid dermatitis) विकृति के अन्तर्गत नाखूनो पर नख पालिश के कारण रोग उत्पन्न हो जाता है। सेंगर (Sanger, 1959) ने इस रोग के सम्बन्ध मे बताया कि इसके माध्यम से रोगी दृष्टि द्वन्द्व के प्रति रक्षा करता है। उसने एक ऐसी स्त्री का उदाहरण प्रस्तुत किया है जो पति से प्रसन्न नही थी तथा उसे देखकर दुखी हो जाती थी। इसी के कारण उसे पलक-त्वचाशोथ रोग हो गया। इस शारीरिक दशा से उसे जब छुटकारा मिला जबकि उसने अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया।

बाह्य कर्ण-शोथ (Otitis externa) वह त्वक विचार है जो कान बाहरी के भाग मे होता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इसके माध्यम से दुखद समाचार न सुनने के साधन के रूप मे रोगी को यह रोग हो जाता है। एक स्त्री को यह विकार उस समय हुआ जबकि उसके पति को प्रथम हृदय-आक्रमण हुआ। उसके पति की दशा खराब हो गई थी तथा उसे यह बता दिया गया था कि दूसरे आक्रमण मे शायद उसकी मृत्यु हो जावे। स्त्री अपने पति के प्रति विरोधी भावना रखती थी तथा विरोध के साथ ही साथ अपराध व लज्जा की भावना भी थी। उस स्त्री की यह विकृति इसी के विरोध के प्रति अचेतन बचाव था।

छाजन (Exzema)—इस विकृति में त्वचा मे सूजन आ जाती है। उसमे खुजली मचने लगती है तथा कभी-कभी फफोले भी पड जाते है। यह स्थिति अधिक दिनो तक रहने पर त्वचा मोटी हो जाती है। इसका कारण कभी-कभी भविष्य की चिन्ता होती है। एक माँ को सम्पूर्ण शरीर मे छाजन हो गयी थी। इसका कारण था उसके लडके की शादी होने वाली थी तथा वह अपनी पुत्र-वधू के प्रति विरोध की भावना रखती थी।

(2) मनोदैहिक पेशीकंकालीय विकार
(Psychophysiological Musculoskeletal Reaction)

इस प्रकार के समूह के अन्तर्गत पीठ मे दर्द, माँसपेशीय ऐंठन, गठिया आदि रोग आते हैं।

इसमे सम्बन्धित एक प्रमुख विकृति गठिया (rheumatic) है जिसमे दर्द व कडापन आ जाता है तथा गम्भीर स्थिति आ जाने पर व्यक्ति मे पूर्ण निर्योग्यता (disability) आ जाती है। किसकर ने इस सम्बन्ध मे एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है। एक 50 वर्षीय विवाहित मनुष्य को मानसिक चिकित्सालय मे इसलिए भरती किया गया था कि उसके पीठ मे दर्द होता था, उसे उवकाई आती थी तथा अन्य लक्षणो का भी अनुभव होता था। रोगी की हृदय गति मन्द हो गयी थी तथा उसे तीव्र मचली (nausa) की भी शिकायत होती थी। रोगी इन लक्षणो के कारण वहुत दु.खी रहता था। वह कभी-कभी अधिक निराशाजनक व्यवहार प्रकट करता था। परीक्षणो के माध्यम से पता चला कि उसकी इस विकृति का कारण आंगिक (organic) नही था।

(3) मनोदैहिक श्वसन विकार
(Psychophysiological respiratory reaction)

मनोदैहिक विकार के इस समूह के अन्तर्गत श्वसनी ऐंठन (bronchial spasms), दमा (asthma), घास ज्वर (hay fever), गह्वर प्रदाह (sinusitis) आदि विकार आते हैं। सामान्यत. इसके अन्तर्गत निम्न 4 विकृतियाँ रखी जाती हैं—

(i) अति संवातन (Hyperventilation)—इस विकृति मे रोगी की श्वास गति मे वृद्धि हो जाती है। इस स्थिति को अधिक समय तक रहने पर रोगी अनेक प्रकार के दैहिक परिवर्तनो का अनुभव करने लगता है। उसकी दृष्टि शक्ति अत्यधिक क्षीण पड़ जाती है तथा उसे चचलता (light-headedness), चक्कर (dizziness), स्तब्धता (numbness), हाथ-पैर मे झुनझुनी (tingling) आदि के लक्षण अनुभव होने लगते हैं।

(ii) सामान्य जुकाम (Common Cold)—रोगी को सदैव यह शिकायत रहती है कि उसे जुकाम हो गया है। इस विकृति के फलस्वरूप रोगी मे कुण्ठा, चिडचिड़ापन व उपेक्षा की भावना जन्म ले लेती है। सामान्य जुकाम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनेक उद्देश्यो की पूर्ति करता है। जैसे, विश्राम व प्रतिगमन के हेतु बहाना, विरोध

तथा आक्रमण का साधन आदि । एक रोगी को बार-बार जुकाम हो जाया करता था। इसका कारण था कि वह अपनी माँ के पास ही रहना चाहता था।

(iii) **श्वसनी दमा** (Bronchial Asthma)—इस प्रकार की विकृति मे रोगी को श्वास लेने मे कठिनाई होती है। इसका कारण यह होता है कि फेफडो मे श्वसनी पेशियाँ (bronchi-tubes in the lungs) सकुचित हो जाती हैं। इस विकृति का कारण अनेक स्थितियो मे विक्षोभ तथा कुछ स्थितियो मे सवेगात्मक कारक होते हैं। ऐसे बच्चो को व्यक्तित्व-विशेषताओ का अध्ययन किया गया है जो दमा से पीडित थे। इस अध्ययन से ज्ञात हुआ कि इन बच्चो की बुद्धि औसत से अधिक होती है परन्तु ये चिड़चिडे व आक्रमणकारी प्रकृति के होते हैं तथा इनमे असुरक्षा, आत्मविश्वास व चिन्ता के लक्षण विद्यमान होते हैं।

(iv) **संवहनी-प्रेरक नासार्ति** (Vasomotor Rhinitis)—इस प्रकार की विकृति मे रोगी की नाक बहती रहती है, छीकें आती है व खुजली मचती है। इस प्रकार की विकृति का कारण शारीरिक न होकर सवेगात्मक विक्षोभ होता है।

(4) मनोदैहिक हृद-वाहिका विकार

(Psychophysiological cardiovascular reaction)

इसके अन्तर्गत हृदय-गति मे वृद्धि, रक्त-चाप मे वृद्धि (high-blood pressure), आधे-सिर के दर्द आदि विकार आते हैं।

ऐसे रोगियो मे अधिकतर आगिक बीमारी नही होती। चिन्ता के कारण रोगी मे प्रतिबल स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिसके कारण हृदयगति व रुधिर-चाप (blood pressure) मे वृद्धि हो जाती है तथा जब विषाद की स्थिति उत्पन्न होती है तब हृदय गति व रुधिर-चाप कम हो जाता है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओ मे तीन प्रमुख विक्षोभ उत्पन्न होते हैं—

(1) **हृत् प्रवेग** (Tachycardia)—इस प्रकार की विकृति मे हृदय गति तीव्र हो जाती है उसकी स्पन्दलय (rhythm) मे परिवर्तन आ जाता है। रोगी को इस स्थिति मे श्वास लेने मे कठिनाई उत्पन्न होती है तथा वह काफी कमजोरी का भी अनुभव करता है। सामान्यत नाड़ी-गति 75 प्रति मिनट होती है परन्तु प्रतिवल (stress) व चिन्ता के कारण नाडी-गति 100 या इससे भी अधिक पहुँच जाती है।

(2) **हृत्शूल संलक्षण** (Anginal syndrome)—इस प्रकार की विकृति मे प्राय रोगी अचानक सीने मे तीव्र दर्द का अनुभव करता है। इस प्रकार की स्थिति मे जो अकस्मात दर्द उत्पन्न होता है उसका कारण सवेगात्मक द्वन्द्व होता है।

(3) **अति तनाव** (Hyper-tension)—अति तनाव की स्थिति मे उच्च रक्त-चाप (high blood pressure) हो जाता है। इसका कारण मनोवैज्ञानिक व शरीर क्रियात्मक होता है। वैसे यह तथ्य सही है कि सवेग के कारण व्यक्ति मे रक्त-चाप उच्च हो जाता था परन्तु अभी तक यह प्रमाणित नही हुआ है कि अति तनाव व सवेग मे वास्तविक सम्बन्ध क्या है।

(5) **मनोदैहिक आमाशयान्त्र विकार**

(Psychophysiological gastrointestinal reaction)

इस प्रकार के मनोदैहिक विकार के अन्तर्गत अधिजठर-व्रण या आँतो मे घाव (peptic ulcers), स्थूलान्त्र कोप या जठर शोथ (colitis) एसिड की अधिकता (hyperactivity), हृदय जलन (heart burn), भूख की कमी आदि विकार आते है।

मनोविश्लेपणवादियो का मत है कि इसका सम्बन्ध व्यक्ति के मनोलैंगिक विकास (psychosexual development) से है। इन मनोवैज्ञानिको का कहना है अगर विकास के क्रम विक्षोभ (disorder) उत्पन्न हो जावे तो इससे अनेक प्रकार के आमाशयान्त्र विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे मनोलैंगिक विकास के मौखिक अवस्था (oral stage) का सम्बन्ध भोजन पचाने की कठिनाइयो, गैस के वनने, खाने की समस्याएँ व अत्यधिक क्षुधा से होता है।

इस प्रकार की विकृतियो का मुख्य सम्बन्ध मनोवैज्ञानिको के सवेग से होता है परन्तु इसका कारण अनेक आगिक दशाएँ भी होती हैं। इन आगिक दशाओ मे सक्रमण (infection), वशानुगत दोप, चयपचयात्मक (metabolic) विकृति दोपपूर्ण भोजन आदि प्रमुख है।

(6) **मनोदैहिक रुधिर व लसीका विकार**

(Psychophysiological Hemic and Lymphatic Reaction)

इसमे रुधिर सम्वन्धी विक्षोभ व लसीका व्यवस्था सम्वन्धी विकार आते है जिसका मुख्य कारण संवेग होता है।

(7) **मनोदैहिक जननमूत्र सम्बन्धी विकार**

(Psychophysiological Genito-urinary Reaction)

इसके अन्तर्गत मुख्यत मासिक धर्म से सम्वन्धित विकार, पीडायुक्त मूत्र-क्रिया (painful urination), पीडायुक्त यौन संकुचन (painful construction of the vagina) आदि विकार आते हैं।

(1) **माहवारी विक्षोभ** (Manstrual Disturbances)—जब माहवारी का प्रारम्भ होता है तव स्त्रियो को एक विशेप प्रकार के सवेगात्मक अनुभव होते है। इस काल के प्रारम्भ होने से पूर्व प्राय सभी सवेगात्मक प्रक्रियाएँ होती है जिसको **प्राक्-माहवारी तनाव** (premanstrual tension) कहते हैं। इस तनाव से स्त्रियो को चिन्ता अधिक हो जाती है तथा इन लक्षणो के कारण स्त्री स्वयं अपने प्रति विद्वेष की भावना जागृत करती है। माहवारी से ही सम्वन्धित दो दशाएँ **कष्टकारी माहवारी** (Dysnenorrhea) व **मनोजात ऋतुरोध** (Psychogenic Amenorrhea) है। माहवारी काल मे अन्त स्रावी ग्रन्थियाँ क्रियाशील हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप अनेक प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होते हैं जो कष्टकारी माहवारी के कारण वन जाते है। कभी-कभी आगिक अन्त स्रावी या पौपणिक विक्षोभो के कारण माहवारी मे कमी हो जाती है या पूर्ण रूप से वन्द हो जाते हैं। मनोजात ऋतुरोध के अनेक कारण होते हैं, जैसे

पिता की आकस्मिक मृत्यु, संवेगात्मक आघात, लैंगिक द्वन्द्व, गर्भावस्था की तीव्र इच्छा, लड़ाई-झगड़े द्वारा उत्पन्न तनाव आदि।

(2) मिथ्या सगर्भता (Pseudocyesis)—इस प्रकार की विकृति में रोगिणी के अन्दर यह विश्वास घर कर जाता है कि वह गर्भवती है तथा उसके अन्दर गर्भावस्था के लक्षण विकसित हो रहे हैं। माहवारी बन्द हो जाती है, वजन में वृद्धि हो जाती है, चाल में परिवर्तन तथा मिचली आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस विकृति में स्तन बढ़ जाते हैं तथा चूचुक (nipple) काले पड़ जाते हैं।

(3) स्वत. गर्भपात (Spontaneous Abortion)—इस तथ्य के प्रमाण उपलब्ध हैं कि संवेगात्मक तनाव के कारण स्त्रियों को स्वत गर्भपात हो जाता है। यह बात भी प्रमाणित हो चुकी है कि गर्भपात रोकने में मनोवैज्ञानिक उपचार काफी सहायक सिद्ध हुआ है। एक स्त्री जोकि आठ बार स्वत गर्भपात की शिकार हुई तो उसे मनश्चिकित्सक के पास भेजा गया तथा उसके देखरेख में नवी गर्भावस्था स्वस्थ शिशु के सामान्य जन्म में परिणत हुई।

(4) मूत्रीय विक्षोभ (Urinary Disturbances)—चापमैन (Chapman, 1959) के अनुसार संवेगात्मक द्वन्द्व ही मूत्रीय विक्षोभ का कारण होता है। अनेक बार यह देखा गया है कि व्यक्ति अस्पताल में बोतल के अन्दर पेशाब नहीं कर पाता। इसी प्रकार स्त्रियाँ शरीर क्रियात्मक कारण न होने पर भी बार-बार पेशाब जाने की शिकायत करती हैं। अनैच्छिक मूत्रस्राव (enuresis) या बिस्तर गीला करना बचपन का मूत्रीय विक्षोभ है जो किशोरावस्था या प्रौढावस्था तक बना रहता है। इसका भी कारण द्वन्द्व की स्थिति का होना है।

(5) मानसिक नपुंसकता (Psychic Impotence)—इस विकृति में रोगी को लैंगिक कार्यों में आनन्द प्राप्त नहीं होता। इसका प्रमुख कारण संवेगात्मक होना है। इसके अतिरिक्त प्रेमपात्र से लड़ाई, अप्रकट समलिंग रति, दूसरे साथी द्वारा लैंगिक कार्य में सहायता न देना, अपराध भावना आदि भी इसके गतिक कारक होते हैं।

(6) काम शैत्य (Frigidity)—इस प्रकार के विकार में स्त्रियाँ लैंगिक कार्य में रुचि नहीं लेती। इसका प्रमुख कारण घृणा, गर्भिणी होने का भय, मनस्तापी चिन्ता आदि होता है।

(7) बाँझपन (Sterility)—इस प्रकार की स्थिति में स्त्री को लैंगिक आनन्द तो प्राप्त होता है परन्तु वह गर्भवती नहीं होती। कुछ स्थितियों में उसका कारण संवेगात्मक होता है। इसका मनोगतिक कारण स्त्री में अपर्याप्तता की भावना (अपने को छोटी लड़की समझना) होती है।

(8) मनोदैहिक अन्त स्रावी विकार
(Psychophysiological Endocrine Reaction)

इसमें अन्त स्रावी ग्रन्थियों से सम्बन्धित विकार आते हैं। इस प्रकार की विकृतियों में संवेगात्मक कारक मुख्य रूप से निहित होते हैं।

(9) मनोदैहिक स्नायु-मण्डल विकार
(Psychophysiological Nervous System Reaction)

इसके अन्तर्गत थकान के साथ शक्ति ह्रास, पेशीय पीड़ा, चिन्ता प्रतिक्रिया आदि विकार आते हैं।

(10) विशेष ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित मनोदैहिक विकार
(Psychophysiological reaction of organs of special sense)

इसके अन्तर्गत विशेष ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित विकार आते हैं।

मनोदैहिक विकार के लक्षण
(Symptoms of Psychophysiological Disorders)

इस प्रकार के मनोदैहिक विकारों में सर्वप्रथम रोगी को शारीरिक लक्षण (यथा—दर्द, कै, डायरिया, स्वाँस लेने में कठिनाई) उत्पन्न होते हैं। प्रायः प्रारम्भिक लक्षण अधिक तीव्र नही होते हैं। अतः रोगी चिकित्सक के पास जाने का प्रयास नहीं करता परन्तु लक्षण की तीव्रता में वृद्धि होने पर औषधि लेने का प्रयास करता है। परन्तु कभी-कभी चिकित्सक भी इन शारीरिक लक्षणों के पीछे निहित मनोवैज्ञानिक कारणो को समझ नही पाता। इस प्रकार का रोगी भी यह स्वीकार करने को तैयार नहीं होता है कि उसकी इस शारीरिक कठिनाई का कारण संवेदात्मक दबाव है। इस प्रकार के रोगी को अधिकांश लक्षण प्रायः यकायक ही अनुभव होते हैं तथा धीरे-धीरे या तो घटते जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं।

मनोदैहिक विकार मे प्राय- अधिकांश लक्षण एक साथ उपस्थित होते हैं और फिर धीरे-धीरे या तो घट जाते हैं या लुप्त हो जाते है। इनमें से कुछ विकार स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषो मे अधिक होता है; यथा—अधिजठर-व्रण (peptic ulcers); जबकि कुछ विकार स्त्रियो से अधिक होता है, जैसे—गठिया या जठरशोथ विकार। मिलर (Miller) ने मनोदैहिक विकार से ग्रस्त एक व्यक्ति का वर्णन किया है जिसे बताना यहाँ उचित है। एक छोटे कद का व्यक्ति मनोचिकित्सक के पास आया। इस व्यक्ति में काफी समय से हीनता व झेंपने सम्बन्धी भावनाएँ विद्यमान थीं, जिसके परिणाम-स्वरूप उसकी आँखें सदैव नीची रहती थीं तथा मुँह लटका हुआ रहता था। उसके चेहरे की त्वचा पर भद्दे-भद्दे चिह्न थे तथा कलाई पर भी इसी प्रकार के निशान थे, जिसे एक्जिमा बताया गया था।

इस व्यक्ति का विश्लेषण किया गया तो ज्ञात हुआ कि उसे माँ अधिक प्यार करती थी जो फेफड़ों के रोग के कारण आठ वर्ष की आयु में ही परलोक सिधार गई थी। वह माँ के पास ही रहता था परन्तु पिता को उसे कई बार माँ के साथ सोने के लिए मना किया था तथा कई बार उसे माँ के कमरे में रुकने के लिए डाँटा भी था। माँ की मृत्यु से उसे गहरा धक्का पहुँचा। उसका विश्वास था कि माँ की मृत्यु पिता के कारण ही हुई है। पिता ही उसकी माँ का वास्तविक हत्यारा है। उसमें पिता के प्रति घृणा व प्रशंसा दोनों के भाव थे। वह खेल में कमजोर था परन्तु कक्षा में वह

सदैव एक अच्छा विद्यार्थी माना जाता था। परन्तु 15 वर्ष की आयु मे जब वह एक परीक्षा मे बैठा तो पहली बार अपेक्षाकृत कम अक आए जिसके परिणामस्वरूप उसने अत्यधिक तनाव व नैराश्यता का अनुभव किया। उसे इसी समय चेचक का टीका लगवाया गया जिसके बाद से ही उसको वर्णित त्वचा रोग हो गया। इस त्वचा रोग से वह अत्यधिक चिन्तित हुआ। जब वह विश्वविद्यालय मे प्रविष्ट हुआ तो परीक्षा के समय इसकी त्वचा फट जाती थी तथा सर्दी लग जाती थी जिसके फलस्वरूप उसे कुछ दिन अस्पताल मे गुजारने पड़ते थे। उपचार के दौरान उसने यह भाव प्रकट किया कि वह एक अच्छा लेखक था। विश्लेषण के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि उसे प्रदर्शन के द्वारा बड़ी राहत मिलती थी। वह पिता के समान ही सफल व्यापारी बनना चाहता था परन्तु उसकी यह इच्छापूर्ति नही हुई। उसने इसकी क्षति-पूर्ति सगीत, कला, साहित्य मे अपने ज्ञान-प्रदर्शन के आधार पर की।

मनोदैहिक विकारों के कारण या निदान
(Causes or Etiology of Psychophysiological Reactions)

मनोदैहिक विकारो मे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कारण मिश्रित होते हैं जिसके फलस्वरूप इन दोनो को पृथक् करना कठिन है। इस प्रकार का रोगी अपने सवेगात्मक तनावो की अभिव्यक्ति करने मे असमर्थ होता है जबकि सामान्य व्यक्ति इन तनावो की विविध माध्यमो से पूर्ति कर लेता है। इस प्रकार के विकारो को समझने के लिए रोगी के व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है। रोगी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन करने पर ही यह पता चल सकता है कि वह विशिष्ट दबावपूर्ण परिस्थितियो मे किस प्रकार का व्यवहार करता है या कौन-कौन-सी ऐसी स्थितियाँ थी जिसके फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व-विकास अवरुद्ध हो गया। नीचे हम इस प्रकार के रोग के कारणो का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करेंगे :—

(अ) जैविक कारक (Biological Factors)

इस प्रकार के विकारो के दैहिक लक्षणो का सम्बन्ध सामान्य सवेगो के अतिरजित (अत्यधिक वृद्धि या ह्रास) स्वरूप से होता है। आज तक एक मुख्य दैहिक कारण आङ्गिक विशिष्टता (organ specificity) के सम्बन्ध मे कुछ नही ज्ञात हो सका है। अन्य शब्दो मे, आज तक यह स्पष्ट नही हो पाया कि क्यो एक व्यक्ति मे श्वसनी मे ऐंठन (bronchial spasms), दूसरे मे छाजन तथा तीसरे मे आधे सिर का दर्द (migraine headaches) के लक्षण उत्पन्न होते हैं? इस सम्बन्ध मे तीन सामान्य सिद्धान्त हैं :—

(1) प्रथम सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओ का सम्बन्ध विशिष्ट मनोदैहिक विकारो से होता है, उदाहरणस्वरूप, जो व्यक्ति अत्यधिक तनाव (hyper tension) ग्रस्त होगा, उसका व्यक्तित्व कठोर, खतरो के प्रति अधिक सवेदनशील तथा दीर्घकालीन अन्तर्निहित विरोध से ओतप्रोत होता है। (कॉलिस व अन्य 1957; काप्लान तथा अन्य, 1961)।

(2) द्वितीय सिद्धान्त के अनुसार, संवेगात्मक तनाव का प्रभाव किसी भी दैहिक प्रक्रिया पर पड सकता है तथा विशिष्ट लक्षण रोगी के शारीरिक बनावट व पूर्व इतिहास पर आधारित। वोल्फ (Wolff, 1950) ने बताया है कि कुछ व्यक्तियो मे संवेगात्मक स्थितियो का सामना करते समय नाड़ी गति मे वृद्धि तो होती है परन्तु उनके रक्त-चाप मे कोई परिवर्तन नही होता, उदाहरणस्वरूप, जिस व्यक्ति का पेट कमजोर होना है, उसे क्रोध या चिन्ता के समय पेट सम्बन्धी विकृतियाँ होने की सम्भावनाएँ होती हैं।

(3) तृतीय सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न दैहिकीय परिवर्तन विभिन्न संवेगात्मक परिस्थितियो मे उपस्थित होते हैं।

(ब) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)

मनोदैहिक विकार मे मनोवैज्ञानिक कारको का क्या प्रभाव है, इसकी पूर्ण जानकारी अभी तक प्राप्त नही हो सकी है। परन्तु फिर भी अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस प्रकार की विकृतियो को उत्पन्न करने मे दोषपूर्ण अभिवृत्तियाँ व दीर्घकालिक चिन्ता मुख्य भूमिका निभाती है। इस रोग का पूर्वनिहित कारक माँ-बाप द्वारा अत्यधिक सुरक्षा प्रदान करना या अन्य परिस्थितियाँ, जो कि उसमें विरोध व सुरक्षा की भावना उत्पन्न करती है। सामान्यत यह देखा गया है कि इस प्रकार के रोगी संवेगात्मक स्थितियो का सामना सामान्य व्यक्ति के समान नही कर पाता तथा जब कभी भी उसके सम्मुख अन्तर्द्वन्द्वात्मक परिस्थिति उत्पन्न होती है तो उसमे विभिन्न प्रकार के मनोदैहिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ प्रमुख विद्वानो ने विशिष्ट मनोदैहिक विकारो का सम्बन्ध विशिष्ट प्रकार के व्यक्तित्व व अन्तर्द्वन्द्व के साथ जोडा है (फिक्के, मारविवश, हेम्बलिंग आदि)।

(स) सामाजिक कारक (Social Factors)

अनेक मनोवैज्ञानिको ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मनोदैहिक विकारो के उद्‌भव मे सामाजिक कारक भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसे कुछ मनोदैहिक विकारो का अधिक घटनाक्रम कुछ समाजो मे अधिक मिलता है तो कुछ समाजो मे कम। रेनी व स्रोले (Rennie and Srole) ने अपने एक अध्ययन के आधार पर यह देखा कि यह रोग सामाजिक व आर्थिक स्तर के दृष्टिकोण से उच्च एवं निम्न स्तर के व्यक्तियो को अधिक होता है। इसी अध्ययन मे उन्होंने देखा कि गठिया का रोग सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से निम्न वर्ग के व्यक्तियो को अधिक होता है।

मनोदैहिक विकारों का उपचार
(Treatment of Psychophysiological Disorders)

मनोदैहिक विकारों से ग्रस्त रोगियो का उपचार शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व

सामाजिक दृष्टिकोणो से करना चाहिए, क्योंकि जहाँ शारीरिक चिकित्सा (भोजन, औषधि व सर्जरी आदि) के विभिन्न साधनो से इस प्रकार के रोगियो को राहत मिलती है वहाँ मनोचिकित्सा के माध्यम से रोगी के व्यक्तित्व मे अनुकूल परिवर्तन किया जा सकता है। आइजिंक (Eysenck, 1960) व लेसे (Lesse, 1958) ने बताया कि सम्बद्ध प्रतिक्रिया के आधार पर इन रोगियो का सफल उपचार किया जा सकता है। इस प्रकार के विकारो से ग्रस्त रोगियो की चिकित्सा अगर मनोचिकित्सा व सामाजिक उपचार पद्धतियो से किया जावे तो अधिक सफलता प्राप्त हो सकती है। रोगी के प्रतिबल को कम करने के लिए दैनिक पर्यावरण को परिवर्तित करना लाभदायक सिद्ध होता है। रोगी की चिन्ता को मनश्चिकित्सा के द्वारा दूर करना चाहिए। चिकित्सक को चाहिए कि वह रोगी के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करे तथा इस प्रकार के निर्देश व प्रेरणा देनी चाहिए कि वह अपने सवेगात्मक द्वन्द्वो को समाप्त करने की अन्तर्दृष्टि उत्पन्न कर सके।

स्वतन्त्र रूप से मनोदैहिक विकारो का वर्गीकरण करना पूर्णतावादी दृष्टिकोण को व्यक्त करना है। परम्परागत रूप से चिकित्सको ने अपना अधिक ध्यान शारीरिक रोगो को समझने के लिए अधिक केन्द्रित कर रखा था। इसी प्रकार मनोचिकित्सको ने केवल मानसिक रोगो को ही समझने का प्रयास किया। परन्तु आज ये दोनो दृष्टिकोण एकाकी है। क्योंकि किसी भी रोग को पूर्ण रूप से दैहिक या मानसिक नही कह सकते हैं। क्योंकि दोनो प्रकार के रोग व्यक्ति के एक भाग को प्रभावित नही करता बल्कि सम्पूर्ण व्यक्ति को प्रभावित करती है। मनोदैहिक विकार वह असामान्यता है जिससे दीर्घकालीन सवेगात्मक तनावो के कारण व्यक्ति को अनेक प्रकार के शारीरिक कष्टो का अनुभव होता है। इसके लक्षण यकायक उपस्थित होते है तथा धीरे-धीरे घटते है या समाप्त हो जाते है। इस प्रकार के रोगो के उपचार के लिए औषधि व मनोचिकित्सा के साथ ही साथ दबावपूर्ण सामाजिक परिस्थितियो मे भी परिवर्तन करना चाहिए।

30

मनोविकृत व्यक्तित्व एवं चरित्र-विकृतियाँ
(PSYCHOPATHIC PERSONALITY AND CHARACTER DISORDERS)

इस अध्याय मे हम मुख्यत उन असामान्य व्यवहारों की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे जिन्हे न तो मन.स्नायुविकृति की श्रेणी में और न ही मनोविकृत की श्रेणी मे रख सकते है। सर्वप्रथम हम मनोविकृत व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

मनोविकृत व्यक्तित्व[1]
(Psychopathic Personality)

स्वरूप
(Nature)

प्रत्येक समाज मे कुछ ऐसे असामान्य व्यक्ति होते हैं जिन्हें न तो मन.स्नायु-विकृत (psychoneurosis) और न ही मनोविकृति की श्रेणी मे रखा जा सकता है। परन्तु समायोजन की दृष्टि से इस प्रकार के व्यक्तियो को सामान्य भी नही कहा जा सकता, क्योकि इस प्रकार के व्यक्तियो का सामाजिक समायोजन असफल होता है तथा ये व्यक्ति समाज मे रहने के योग्य भी नही होते। मनोविकृत व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का व्यवहार आतंकपूर्ण एवं विध्वंसात्मक होता है। बौद्धिक दृष्टि से इस प्रकार के व्यक्ति औसत या श्रेष्ठ बुद्धि के होते हैं। परन्तु इतना होते हुए भी ये लोग न तो अपने अनुभवो से लाभ ही उठा पाते हैं और न ही अपने व्यवहार को परि-मार्जित ही कर पाते है।

---

1. इस प्रकार के मनोविकृत व्यक्तित्व को 'मनोविकृत हीनता' (Psychopathic Inferiority), 'संरचनात्मक मनोविकृत हीनता' (Constitutional Psychopathic Inferiority); 'समाजविकृतमय व्यक्तित्व' (Sociopathic Personality), 'नैतिक हीनबुद्धिता' आदि नामो से भी पुकारा जाता है।

प्रिचार्ड के अनुसार, "इस प्रकार के व्यक्तियो मे, मन के नैतिक एव सक्रिय सिद्धान्त अत्यन्त विकृत या निम्नकोटि के हो जाते हैं, आत्म-शासन की शक्ति नष्ट हो जाती है या समाप्त हो जाती है तथा व्यक्ति प्रस्तुत विषय पर बडी चालाकी व बाचालता के साथ बातचीत या तर्क तो कर लेते है, लेकिन अपने क्षेत्र मे शराफत एव औचित्य से कार्य करने मे अयोग्य होते हैं।"[1]

लेन्डिस व बॉल्स के अनुसार, "मनोविकारी व्यक्तित्व, वह श्रेणी है जिसमे दु:खदायी एव विध्वसात्मक व्यवहार वाले व्यक्ति रहते है लेकिन ऐसे व्यक्ति को मन'-स्नायुविकृति, मनोविकृति या मानसिक गडबडी की श्रेणी मे नही रखा जा सकता।"[2]

मनोविकृत व्यक्तित्व का घटनाक्रम
(Incidence of Psychopathic Personality)

रौन्ट्री (Rowntree), मैकगिल (McGill) व एडवर्ड्स (Edwards) के मतानुसार पुरुष जनसख्या मे केवल एक प्रतिशत पुरुष ही मनोविकारी व्यक्तित्व वाले होते है। इन्ही के अनुसार स्त्रियो मे इस प्रकार के व्यक्तित्व वालो की सख्या पुरुषो की अपेक्षा बहुत कम होती है। मानसिक अस्पतालो मे प्रवेश करने वाले रोगियो मे से 2% तथा जेलो मे आने वाले अपराधियो मे से 15 से 20 प्रतिशत व्यक्ति मनोविकारी व्यक्तित्व वाले होते हैं। अमरीका के सार्वजनिक मानसिक चिकित्सालयो मे प्रथम प्रवेश करने वाले रोगियो मे से 16 6% रोगी व्यक्तित्व विकृतियो से ग्रस्त होते हैं। (किसकर, पृष्ठ 222)

मनोविकृत व्यक्तित्व के लक्षण
(Symptoms of Psychopathic Personality)

विभिन्न विद्वानो ने भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्षणो का उल्लेख किया है, जैसे— **हेण्डरसन व जिलेस्पी** (Henderson and Gillespie) के अनुसार, मनोविकृत व्यक्तित्व वाले व्यक्ति मे बचपन या युवावस्था से सवेगात्मक प्रतिक्रियाओ एव

---

1. "In case of this nature, the moral and active principles of the mind are strongly perverted or deprived, the power of self-government is lost or greatly impaired, and the individual is found to be incapable, not of talking or reasoning upon any subject proposed to him, for this he will often do with shrewdness volubility, but of conducting himself with decency and property in the businesses of life."—**Prichard, J. D.**
2. "Psychopathic personality is a category of those, whose behaviour is socially disturbing and destructive but who are not psychoneurotic psychotic or mentally defective."—**Landis and**

सामान्य व्यवहारो मे असामान्यता विद्यमान होती है। हेनरी (Henry) के अनुसार, इस प्रकार के व्यक्तियो मे मूलप्रवृत्यात्मक व सवेगात्मक न्यूनता पायी जाती है। मुन्सी (Muncie), पार्ट्रिज (Partridge), अलेक्जेण्डर (Alexander) आदि विद्वानों

व्यक्तित्व-विकृतियों का घटनाक्रम
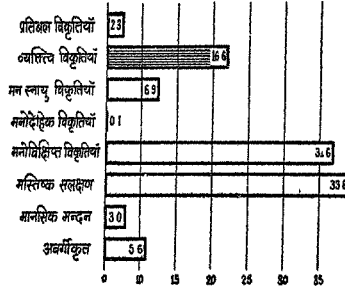
चित्र—36

के अनुसार मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति वर्तमान आवेगात्मक इच्छाओ को ठीक प्रकार से नियन्त्रण नही कर पाते जिसके फलस्वरूप वे प्राय. सामाजिक मान्यताओ का उल्लघन किया करते हैं। नीचे हम इसके प्रमुख लक्षणो की विवेचना प्रस्तुत करेंगे :—

(1) **संवेगात्मक व्यतिक्रम** (Emotional Disorder)—इस प्रकार के व्यक्तियों मे विविध प्रकार के सवेगात्मक व्यतिक्रम पाए जाते हैं। वैसे इस प्रकार के व्यक्तियो मे बुद्धि की कमी नही होती है फिर भी ये लोग अपने सवेगों पर नियन्त्रण नही कर पाते। इनमे विविध प्रकार के सवेग असन्तुलित रूप में पाए जाते हैं; जैसे—एक ही व्यक्ति के प्रति दो विरोधी सवेगो (प्रेम व घृणा) का होना या एक ही समय में प्रसन्नता व दु.ख का अनुभव होना। ये छोटी-से-छोटी घटनाओ पर अत्यधिक क्रोधित हो जाते हैं। कभी-कभी ये व्यक्ति सवेगात्मक परिस्थितियो से प्रभावित नही होते हैं।

(2) **समाज-विरोधी व्यवहार** (Anti-social Behaviour)—सामाजिक दृष्टिकोण से इस प्रकार के व्यक्तियो का व्यवहार समाज-विरोधी होता है। सामाजिक विसन्तुलन का प्रारम्भ प्राय शैशवावस्था से होता है। मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति प्राय अन्य व्यक्तियो को परेशान करना चाहते हैं तथा सामाजिक नियमों आदि का खुला उल्लंघन करते है जिससे अन्य व्यक्तियो को अशान्ति व व्यर्थ की परेशानियो का सामना करना पडता है। ये व्यक्ति दूसरो की किसी प्रकार की सहायता नहीं कर पाते तथा अगर अन्य व्यक्ति इनकी सहायता भी करना चाहे तो ये उनकी निन्दा करते है और मारपीट पर उतर आते हैं।

(3) आत्म-केन्द्रित (Self-Centered)—इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियो से आत्म-केन्द्रिता का लक्षण पाया जाता है जिसके कारण ये व्यक्ति स्वार्थी होते हैं तथा अन्य व्यक्तियो के सम्मान आदि की परवाह नही करते। वे अपनी छोटी-से-छोटी इच्छाओ की तृप्ति के लिए किसी भी घनिष्ठ मित्र को धोखा दे सकते हैं। उन्हे केवल अपना ही ख्याल रहता है तथा उनमे सामूहिक उत्तरदायित्व का अभाव रहता है। ये व्यक्ति अवसरवादी होते हैं।

(4) लैंगिक व्यतिक्रम (Emotional Disorder)—इस प्रकार के व्यक्तियो मे लैंगिक व्यतिक्रम का लक्षण विद्यमान होता है। इस प्रकार के व्यक्तियो का लैंगिक विकास असामान्य रूप से होता है, जिसके कारण इनमे विभिन्न प्रकार की लैंगिक विकृतियाँ पायी जाती हैं। ये लोग व्यतिक्रमो से घबराते नही। इनका वैवाहिक जीवन अस्थिर होता है तथा ये इस प्रकार की विकृतियो को सामान्य ही समझते हैं।

(5) अन्तर्दृष्टि का अभाव (Lack of Insight)—मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियो मे अन्तर्दृष्टि का अभाव पाया जाता है, जिसके कारण वे परिस्थिति को पूर्ण रूप से समझ नही पाते तथा कार्यो मे निर्णय अन्तर्दृष्टि का अभाव रहता है। अन्तर्दृष्टि के अभाव के साथ ही साथ इस प्रकार के व्यक्ति अपने अनुभवो से भी लाभ नही उठा पाते तथा साधारण-से-साधारण कार्यों को ठीक प्रकार से नही कर पाते।

(6) आत्म-प्रेरित साधन (Self-motivated Means)—इस प्रकार के व्यक्तियो का मुख्य उद्देश्य अपना स्वार्थ-सिद्ध करना एवं क्षणिक सुख प्राप्त करना होता है। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ये लोग कोई भी गैर-कानूनी तरीकों का उपयोग कर सकते हैं तथा किसी भी पारिवारिक सदस्य या मित्र को हानि पहुँचा सकते हैं।

(7) अस्थिरता (Fluctuation)—इस प्रकार के व्यक्तियो की क्रियाएँ, रुचियाँ स्थिर प्रकृति की नही होती। इनकी योजनाएँ अस्थिर होती हैं तथा किसी कार्य को मन से नही करते। इनकी महत्त्वाकाक्षाएँ परिवर्तित होती रहती हैं। वे सदैव अपने व्यवसायो मे परिवर्तन करते रहते हैं। ये न तो स्थायी रूप से एक स्थान पर निवास ही करते हैं और न ही इनके स्थायी साथी या दोस्त ही रहते हैं। संक्षेप मे, इनके जीवन मे स्थायित्व की कमी पायी जाती है।

(8) बहु-व्यक्तित्व (Multiple Personality)—मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की एक मुख्य विशेषता यह होती है कि इन लोगों में विविध प्रकार के व्यक्तित्व पाये जाते हैं तथा उनमें किसी भी प्रकार की समानता दृष्टिगोचर नही होती। एक समय मे जहाँ एक व्यक्तित्व-सम्बन्धी विशेषताएँ प्रकट होती हैं वहाँ दूसरे समय उनके विरोधी गुणों से युक्त विशेषताएँ प्रकट होती हैं; उदाहरणस्वरूप, वे कभी दूसरो पर विश्वास करते है, तार्किक व विवेकपूर्ण व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं तथा साहस व धैर्य के साथ कार्य करते हैं। परन्तु कभी-कभी वे झगड़ालू व आक्रामक

प्रवृत्ति के हो जाते है, अन्तर्मुखी होकर एकान्त मे रहते है तथा घोर बेईमानी पर आते है।

मनोविकृत व्यक्तित्व का एक उदाहरण
(An Example of Psychopathic Personality)

एक अन्य राज्य से एक मनोविकारी व्यक्तित्व वाला व्यक्ति आया जिसने अपने को एक चिकित्सक बताकर एक तीस वर्षीय अध्यापिका से जान-पहचान की। एक सप्ताह के अन्दर ही उसने उस अध्यापिका से विवाह कर लिया। सुहागरात के खर्चों एव अन्य चीजो को खरीदने के लिए उसने कई हजार रुपयो के चैक काटे जिन पर साक्षी उसके श्वसुर व पत्नी ने दी। कुछ समय उपरान्त पैसा न होने के कारण ये चैक वापिस आ गये परन्तु उसने पत्नी के समक्ष कुछ ऐसे कारण प्रस्तुत किये जो उसकी समक्ष मे आ गये तथा सभी चैंको के पैसे चुका दिए। परन्तु उसके श्वसुर को सन्देह हो गया तथा उसने जाँच-पडताल करनी शुरू की जिसके आधार पर यह ज्ञात हुआ कि उसका दामाद चिकित्सक नही है तथा उसके एक पत्नी व बच्चा भी है। जब इन बातो को उस व्यक्ति को बताया गया तो तत्काल ही उसने इनकी सत्यता को स्वीकार कर लिया। उसने बताया कि इस अध्यापिका से उसने इसलिए विवाह किया है कि वह उसे प्रेम करता था तथा उसे सुखी बनाना चाहता था। द्वितीय पत्नी ने पुनः उसकी बातो पर विश्वास किया तथा उस व्यक्ति को पहली पत्नी को तलाक देने के प्रवन्ध के लिए एक बडी धनराशि भी दी जिसे लेकर वह व्यक्ति चला गया परन्तु कभी लौटकर नही आया।

मनोविकारी व्यक्तित्व का वर्गीकरण
(Classification of Psychopathic Personality)

नैदानिक दृष्टिकोण के मनोविकृत व्यक्तित्व का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। परन्तु सन् 1939 मे **हेण्डरसन** (Henderson) द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण अधिक उपयुक्त है। हेण्डरसन ने चारित्रिक विशेषताओ के आधार पर सभी प्रकार के मनोविकृत व्यक्तित्वो को 3 वर्गो मे रखा है —

(i) प्रमुखत. आक्रामक (Predominantly Aggressive),

(ii) प्रमुखत. अपर्याप्त या निष्क्रिय (Predominantly Inadequate or Passive),

(iii) प्रमुखत. रचनात्मक (Predominantly Creative)।

नीचे हम सक्षेप मे इनका वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

प्रमुखतः आक्रामक
(Predominantly Aggressive)

इस प्रकार के मनोविकृत व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की मुख्य विशेषता यह होती है कि वह अपने या दूसरो के प्रति आक्रामक भाव रखता है। वह प्राय दु खदायी प्रकार (trouble maker) का व्यक्तित्व होता है। इनमे आक्रामक भाव स्थायी

रूप से न होकर समय-समय पर थोडी या अधिक अवधि के लिए होता है। इस प्रकार के व्यक्ति साधारण बात पर झगडा करते है तथा इनमे सहानुभूति, स्थायी भाव, दया, भक्ति आदि की कमी होती है। जब ये आक्रामक आवेग मे होते है तब इनमे आत्महत्या, हत्या, मद्य व मादक द्रवो के सेवन, काम-विकृति आदि के लक्षण पाए जाते हैं। इनमे आक्रामक आवेग अचानक ही प्रकट होते है। इस प्रकार की अवस्था मे रोगी की चेतना व स्मृति धूमिल हो जाती है तथा पश्चाताप आदि भावो का अभाव शुरू हो जाता है। सामाजिक दृष्टिकोण से इस प्रकार के व्यक्ति पागल अपराधियो की अपेक्षा अधिक खतरनाक होते हैं। इस प्रकार के लोगो को स्वतन्त्र नही रखना चाहिए क्योकि पता नही कब इन्हे दौरा पड जावे तथा उस स्थिति मे क्या कर बैठें।

प्रमुखतः अपर्याप्त या निष्क्रिय
(Predominantly Inadequate or Passive)

इस प्रकार के मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियो के लक्षण, विस्तार या तीव्रता उपर्युक्त प्रकार के तो नही होते परन्तु अत्यधिक व्यापक होने के कारण इन व्यक्तियो को पुन समायोजन की सम्भावना अपेक्षाकृत कम होती है। इसके दो मुख्य प्रकार हैं—(1) छोटे-छोटे अपराध करने वाले, तथा (2) ऐसे लोग, जिनमे लक्षण तीव्र रूप से पाये जाते है। इन दोनो ही प्रकार के व्यक्तियो मे कुछ न कुछ चारित्रिक दोष सदैव विद्यमान रहते है जिनसे प्रेरित होकर ये सम्बन्धित अपराध करते रहते है। इस वर्ग के मुख्य उप-प्रकार निम्न हैं—

(1) उत्केन्द्र (Eccentric)—उत्केन्द्र प्रकार के व्यक्ति झक्की व अस्थिर प्रकृति के होते हैं। इनके मानसिक जीवन मे आन्तरिक एकरूपता का अभाव पाया जाता है तथा इनका रागात्मक जीवन भी अस्त-व्यस्त रहता है। आन्तरिक जीवन अव्यवस्थित होने के कारण इनका स्वभाव जिद्दी होता है जिसे अन्य लोग उसके चिन्तन, वेशभूषा, वाणी, प्रेरणा आदि मे स्पष्टत देख सकते हैं। ये कब क्या कर बैठें या किस विषय पर क्या विचार प्रकट करें, कुछ नही कहा जा सकता। उत्केन्द्र व्यक्ति के चरित्र की दुर्बलता विभिन्न प्रकार की चिन्ता व विषाद, प्रेरणा या उन्मादी प्रवृत्तियो के द्वारा अभिव्यक्त होती है। इनमे यौन विचित्रता (sexual peculiarity) भी दिखाई पड़ती है।

(2) **चौर्योन्माद या अपहरण-बाध्यता** (Kleptomania)—इस प्रकार के मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की मुख्य विशेषता यह होती है कि ये लोग अनायास ही चोरी करने लगते है। इनमे चोरी करने की प्रवृत्ति की प्रधानता होती हे। ये प्रत्यक्ष लाभ या किसी इच्छापूर्ति के लिए चोरी नही करते बल्कि अनायास ही करते हैं। इन्हे इस बात की भी परवाह नहीं होती है कि चोरी करते समय कोई देख रहा है या नही। कभी-कभी ये लोग चोरी की हुई वस्तु को चुपचाप उसके मालिक को लौटा भी देते हे।

(3) **विकृत मिथ्याभाषी** (Pathological Liers)—इस प्रकार के व्यक्ति बिना किसी कारण व प्रत्यक्ष आवश्यकता के झूठ बोलते है। इस प्रकार का मिथ्या-भाषी व्यक्ति न तो किसी मानसिक रोग मे और न ही किसी शारीरिक रोग से ग्रस्त होता है। इन्हे न तो झूठ बोलने से कोई फायदा होता है और न ही इनके किसी उद्देश्य की पूर्ति होती है, परन्तु फिर भी वे व्यक्ति झूठ बोलते जाते है। वास्तव मे ये लोग झूठ बोलने की आदत पर नियन्त्रण नही रख पाते। केवल झूठ बोलने से इन्हे आत्मसन्तोष अवश्य प्राप्त होता है।

(4) **ठगी की विकृत आदत** (Pathological Swindlers)—इस प्रकार के व्यक्तियो मे ठगी की विकृत आदत भी पायी जाती है। वह काल्पनिक झूठो को ठगी के माध्यम से वास्तविकता मे परिणित करता है। वह केवल यही नही कहता है कि वह बडा आदमी अमुक स्थान का राजा है बल्कि वह यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि वास्तव मे वह राजा है या बहुत बडा आदमी है।

(5) **झगड़ालू प्रवृत्ति वाले** (Pseudo Queralants)—इस प्रकार के व्यक्ति साधारण से साधारण बात पर झगडा करते है। इनके स्वभाव मे चिडचिडापन व उद्दण्डता भी दृष्टिगोचर होती है। ये केवल झगडा ही नही करते बल्कि मुकदमेबाजी तक कर बैठते है। यदि इन्हे मुकदमो से भी सफलता नही मिलती तो ये गवाहो को परेशान करते है, झगडा करते है या विश्वासघात का आरोप लगाते है।

(6) **ज्ञानहीन अपराधी** (Senseless Criminal)—इस प्रकार के अपराधी सामान्य अपराधियो की भाँति हत्या, लूट, चोरी आदि अपराध तो करते है परन्तु इन्हे इस प्रकार के समाज-विरोधी गैर-कानूनी व्यवहार का ज्ञान नही होता है। प्राय. जब वह आवेगपूर्ण स्थिति मे होता है तब ही अपराध कर बैठता है। इस प्रकार के व्यक्ति को अपनी इस कमजोरी का ज्ञान तो होता है परन्तु वह उन पर नियन्त्रण नही कर पाता।

(7) **नैतिक रूप से दोषी** (Morally Defective)—इस प्रकार के व्यक्तियो मे मानसिक दुर्बलता पायी जाती है जिसके फलस्वरूप इन्हे नैतिक व अनैतिक विचारो मे कोई अन्तर का ज्ञान नही होता है। ये किसी कार्य के गुण व अवगुण को समझ नही पाते तथा अपने अनुभवो से लाभ उठाने मे असमर्थ होते है।

प्रमुखतः रचनात्मक
(Predominantly Creative)

हेण्डरसन ने मनोविकारी व्यक्तित्व के इस वर्ग मे उन व्यक्तियो को रखा है जो प्रतिभावान होते है। इस प्रकार के व्यक्ति अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए किसी भी विघ्न-बाधाओ से घबराते नही बल्कि इनका दृढतापूर्वक सामना करते है। इनके अभीष्टो व निश्चयो के पीछे यह भावना निहित रहती है कि वे जो कुछ कर रहे है या सोच रहे हैं, वह पूर्णत ठीक है।

मनोविकृत व्यक्तित्व के कारण
(Causes of Psychopathic Personality)

अनेक मनोवैज्ञानिको ने मनोविकृत व्यक्तित्व के कारण के सम्बन्ध मे विचार प्रकट किए है परन्तु इन विचारो मे समानता नही है। सक्षेप मे इसके मुख्य कारण निम्न है :—

(1) **वंशानुक्रम** (Heredity)—कुछ विद्वानो का मत है कि मनोविकृति व्यक्तित्व का कारण वशानुगत दोप है। इनके अनुसार व्यक्तित्व के निर्माण मे वश-परम्परा, बुद्धि, ग्रन्थियाँ, जैविक, रासायनिक रचना आदि तत्त्वो पर आधारित होता है। अगर वशानुक्रम ही दूषित है तो इस प्रकार के व्यक्तियो का सुधार करना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि मनोविकार व्यक्तित्व वाले लोगो को शिक्षा आदि से सुधारा नहीं जा सकता। कुछ लोग इस तथ्य को यह कहकर अस्वीकार कर देते हैं कि अनेक मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियो की सन्तानें इस दोष से मुक्त होती हैं।

(2) **पर्यावरण एवं सामाजिक परिस्थितियाँ** (Environmental and Social Conditions)—कुछ विद्वानो ने मनोविकारी व्यक्तित्व का कारण पर्यावरण को माना है। इस मत के समर्थकों का कहना है कि व्यक्ति ऐसे पर्यावरण मे निवास करता है जहाँ अपराधी प्रवृत्ति के लोग रहते है, जिसके फलस्वरूप मनोविकृत व्यक्तित्व के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इन लोगो का यह भी कहना है कि अगर पर्यावरण मे उचित परिवर्तन किया जावे तो मनोविकारी व्यक्तित्व का उपचार सम्भव है।

(3) **केन्द्रीय स्नायु-मण्डल की विकृति** (Pathology of Central Nervous Systems)—कुछ विद्वानों का मत है कि इसका कारण स्नायुमण्डल का विकृत विकास है। इस दिशा मे **सिलवरमैन** ने 75 ऐसे मनोविकारी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियो का अध्ययन किया जिनमे आक्रामक या अत्यधिक स्वार्थी या हीनता आदि भावो की प्रधानता थी। इन सभी व्यक्तियों मे मस्तिष्क क्रिया विकृत थी या प्रारम्भिक, आन्तरिक व पारिवारिक जीवन असन्तुष्ट था या दोनो तत्त्व विद्यमान थे। साइमन (Simon) व **डीथेम** (Diethelm) ने भी अपने अध्ययन-परिणामो के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि की परन्तु **ब्रिल व वाकर** (Brill and Walker) ने अपने अध्ययनो मे यह देखा कि गम्भीर व्यवहार सम्बन्धी विकृति वाले वालको मे उच्चारण-दोप व आक्रामक, आवेगशील व असामाजिक व्यवहार करने वाले वालको मे अपस्मार के समान मस्तिष्कत्वक्षीय विद्युत-क्रिया के लक्षण थे।

(4) **इडिपस एवं अन्य ग्रन्थियाँ** (Oedipus & Other Complexes)—मनोविश्लेपणवादियो के मतानुसार मनोविकारी व्यक्तित्व का मुख्य कारण इडिपस भावना ग्रन्थि है। फ्रायड के अनुसार वालक माँ से प्रेम करता है तथा लडकी पिता मे प्यार करती है। अगर इस प्रवृत्ति मे वाधा उपस्थित हो जावे तो इस भावना का विकृत विकास हो जाता है तथा व्यक्ति मे मनोविकारी व्यक्तित्व के लक्षण उत्पन्न हो

जाते हैं। कुछ मनोविश्लेषणवादी मानसिक अन्तर्द्वन्द्व व तनाव को भी इसका कारण मानते है।

(5) मस्तिष्क दोष (Brain Disease)—कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों से भी मनोविकारी व्यक्तित्व का जन्म हो जाता है। इस तथ्य की पुष्टि हिल एवं वाटरसन (Hill and Watterson) ने की। इन्होंने अपने अध्ययन में यह देखा कि मस्तिष्क रोग ही मनोविकारी व्यक्तित्व का कारण होता है। इस कथन की पुष्टि साइमन्स व डीथेल्स (Simons and Diethelm) ने भी अपने अध्ययन के आधार पर की।

(6) अवैध जन्म (Illicit Birth)—कुछ विद्वानो ने मनोविकारी व्यक्तित्व का कारण अवैध जन्म या अवैध गर्भाधान माना है। इस सम्बन्ध में हैण्डरसन व गिलिस्पी ने 34 अवैध सन्तानी माताओं का अध्ययन किया तथा यह देखा कि 50% मनोविकृति व्यक्तित्व वाले इसमे थे। बिण्डर (Binder) ने 350 अवैध रूप से गर्भित औरतो का अध्ययन किया तथा इसके आधार पर बताया कि इनमें से 50 प्रतिशत मनोविकृति व्यक्तित्व वाली थी तथा केवल 33% ही सामान्य थी।

(7) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)—कुछ विद्वानो ने मनोविकारी व्यक्तित्व के कारणो की व्याख्या मानसिक कारणो के आधार पर की है। इस मत के विचारको के मतानुसार मनोविकार व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के प्रारम्भिक जीवन मे असन्तुलन, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, अतृप्त इच्छा, असुरक्षा के भाव व अन्य ग्रन्थियो की प्रधानता दिखाई पड़ती है, जो बाद मे मनोविकारी व्यक्तित्व के लक्षणों मे परिवर्तित हो जाती है। इन मनोवैज्ञानिक कारणो का पूर्णतः खंडन नही किया जा सकता है।

मनोविकृति व्यक्तित्व का उपचार
(Treatment of Psychopathic Personality)

सामाजिक दृष्टिकोण से मनोविकृत व्यक्तित्व वाला व्यक्ति सामान्य अपराधियो से भी अधिक खतरनाक होता है, क्योंकि इस प्रकार के व्यक्तियो को सामाजिक, नैतिक, कानूनी आदि नियमो की कोई परवाह नहीं होती है। अतः इस प्रकार के व्यक्तियो की चिकित्सा व्यवस्था करना अति आवश्यक हो जाता है। परन्तु दुःख इस बात का है कि इस प्रकार के व्यक्तियों का सफल उपचार अभी तक संभव नहीं हुआ है। इसका मुख्य एवं प्रथम कारण तो यह है कि इस प्रकार के व्यक्ति सामान्य व्यक्तियो की भाँति ही जीवन व्यतीत करते हैं। शैक्षणिक एवं सामाजिक दृष्टि से भी ये व्यक्ति औसत या उच्च श्रेणी के होते हैं। परन्तु अगर इन व्यक्तियों से पूर्ण सतर्क रहा जावे तो इनकी पहचान सम्भव है। आक्रामक प्रवृत्ति वाले मनोविकृत व्यक्तियो का उपचार मस्तिष्कीय शल्य-चिकित्सा (operation of leucotomy) द्वारा भी सम्भव है।

चरित्र-विकृतियाँ
(Character Disorders)

व्यक्तित्व एवं चरित्र
(Personality and Character)

चरित्र-विकृतियो को बताने से पूर्व हम यह बताना आवश्यक समझते हैं कि व्यक्तित्व क्या है, चरित्र क्या है तथा व्यक्तित्व व चरित्र मे क्या सम्बन्ध व अन्तर है ? व्यक्तित्व को आग्ल भाषा मे *'Personality'* कहते हैं, जिसे लैटिन शब्द *'Persona'* मे लिया गया है, जिसका अर्थ होता है, 'आवरण या चेहरा' (*Mask*)। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यहाँ शेरमैन व आलपोर्ट की परिभाषा देना अधिक उचित प्रतीत होता है। शेरमैन के शब्दो मे, "व्यक्तित्व, व्यक्ति का विशिष्ट व्यवहार है।"[1] गॉर्डन आलपोर्ट के शब्दो मे, "**व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है, जो पर्यावरण के प्रति होने वाले उसके अपूर्व अभियोजनों का निर्णय करते हैं।**"[2] यह परिभाषा व्यक्तित्व को मनोदैहिक गुणो का सगठन मानती है, जिसमे वाह्य रूप, रंग एव आन्तरिक गुण दोनो आ जाते हैं। संक्षेप मे, व्यक्तित्व मनोदैहिक गुणो का गतिक सगठन होता है जिससे व्यक्ति पर्यावरण के प्रति विशिष्ट समायोजन कर पाता है।

चरित्र स्थायीभावो (sentiments) की एक व्यवस्था का संगठन है जिस पर एक प्रधान स्थायीभाव शासन करता है। स्किनर के अनुसार, '**किसी का चरित्र, जैसा कि शब्द के इतिहास द्वारा परिभाषित किया गया है, वह सब कुछ होता है जो एक पुरुष या स्त्री को अनुपम एवं प्रत्येक अन्य से भिन्न बनता है।**"[3]

चरित्र एवं व्यक्तित्व मे एक घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि व्यक्तित्व से वैयक्तिकता निश्चित होती है तथा उसका प्रकाशन चरित्र के माध्यम से होता है। अगर एक व्यक्ति का व्यक्तित्व सन्तुलित व सगठित होगा तो उसका चरित्र भी सुसंगठित होता है। इसके विपरीत अगर व्यक्तित्व विघटित होगा तो चरित्र भी विघटित हो जाता है।

चरित्र-विकृतियो की श्रेणी मे हम उन व्यक्तियो को रखते हैं जिन्हे बहुधा लोग दुर्गुणी (vicious) या दुष्ट (wicked) या दुःखी (unhappy) कहते हैं। अन्य शब्दो

---

1. "Personality is the characteristic behaviour of individual."
—Sherman
2. "Personality is dynamic organization within the individual of those psychophysical traits that determine his unique *adjustment* to his environment"—Allport, G. W.: *Personality : A Psychological Interpretation*, p 48
3. "One's character, defined by the history of the words, is all that makes him or her unique, different from everyone else."
—Skinner.

में कुछ व्यक्तियो को अगर वाह्य दृष्टि से देखा जावे तो पूर्णतया समायोजित दिखाई पडते हैं, परन्तु उनका सूक्ष्म निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि इनमे असन्तुलन होता है या वे समन्वित नही होते हैं। सामान्य व्यक्ति वह है जिसकी अहम्, इदम् व परम अहम् शक्तियो मे तथा वाह्य, शारीरिक एव सामाजिक वास्तविकताओं मे एक उचित सम्वन्ध होता है। अगर उसके इन सम्वन्धो मे असन्तुलन है तो इनसे असमानता उत्पन्न हो जाती है। यह असामान्यता मन स्नायुविकृति या मनोविकृति प्रकार की ही नही होती वल्कि चारित्रिक विकृतियाँ भी होती हैं :—

"Recently it has been shown that disbalance in these functions, which is not marked or severe enough to create actual psychosis, psychoneurosis, or perversion, creates character disorders or character neurosis"[1]

अर्थात् कुछ ऐसी असामान्यताएँ होती है जो इतनी तीव्र नही होती कि उन्हे मन·स्नायुविकृति या मनोविकृति के अन्तर्गत रखा जावे परन्तु सामाजिक दृष्टि से इस प्रकार के व्यक्ति वडे खतरनाक होते हैं। इस प्रकार के विकृतियो के अन्तर्गत मुख्यत· वे विकृतियाँ आती है जिनमे रोगी असमायोजित व्यवहार को क्रिया करने के रूप मे प्रकट करता है। इनकी उत्पत्ति दवावपूर्ण परिस्थितियो से नही होती। इन विकृतियो का मुख्य कारण दोषपूर्ण व्यक्तित्व-विकास है। चरित्र-विकृतियो की विस्तृत रूप से व्याख्या करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण इस सम्वन्ध मे क्या था। क्रेपलिन ने दो प्रत्यनों, 'मौलिक रुग्ण अवस्था' (*Original Morbid States*) व 'मनोविकृति व्यक्तित्व' (*Psychopathic Personalities*) का प्रयोग किया। सामान्य रूप से मनोविकृत व्यक्तित्व के अन्तर्गत उसने व्यवहार समस्याओं, जैसे—लैंगिक विपर्यास, झगडालू, मद्यपान, धोखा देने वाले व्यक्ति आदि को रखा। क्रेपलिन के मनोविकृत व्यक्तित्व के सामान कुछ और भी प्रत्यय हैं, जैसे—नैतिक मूढ (moral imbecile), नैतिक जडवुद्धि (moral idiot), नैतिक उन्मादी (moral insanity)। चरित्र-विकृतियो से हमारा तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जिनका आन्तरिक अचेतन अन्तर्द्वन्द्व विना मनोविक्षिप्त (psychotic), मनस्तप्त (neurotic) या विपर्यस्त (perverse) से ग्रस्त हुए विषमायोजित या समायोजित हो जाते हैं।

अमरीका के मानसिक अस्पतालो मे प्रथम प्रवेश मानसिक रोगियो मे से करीव 12% रोगी इस रोग से ग्रस्त होते हैं। परन्तु यह संख्या सन्देहास्पद है। वास्तविक रूप से इसकी सख्या इससे काफी अधिक होनी चाहिए। इसका मुख्य कारण है—(1) इस विकृति के रोगियो का व्यक्तित्व इतना विघटित नही होता कि उन्हे अस्पताल मे भरती करवाया जावे, (2) अधिकांश रोगी अपने को रोगी ही नही मानते, (3) कानूनी रूप से वड़ी सख्या मे इस प्रकार के रोगी अपराधी होते हैं जिनके कारण

1. **Brown, J. F. :** ***Ibid.*** **p. 384.**

मानसिक अस्पताल मे भरती ही नही होते । यही कारण है कि इस प्रकार के रोगियों की सख्या कम है ।

चरित्र विकृति का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त

(Psychoanalytic Theory of Charactor Disorder)

मनोविश्लेषण के अनुसार चरित्र-विकृतियाँ अहम्, इदम् व परम अहम् तथा वास्तविकता के बीच समायोजन के असामञ्जस्य (disharmony) का प्रतिनिधित्व करता है । इसमे तथा मनोविक्षिप्त या मनस्तप्त मे अन्तर है । इसके लक्षण 'एलो-प्लास्टिक' (*Alloplastic*) प्रकार के होते हैं । आगे की तालिका (पृष्ठ 431) मे हम चरित्र-विकृतियाँ, मनोविक्षिप्त लैंगिक विपर्यास, मनस्तप्त में अन्तर को स्पष्ट करेंगे ।

इस तालिका से चरित्र विकृति, मनोविक्षिप्त, मन स्नायुविकृति आदि के अन्तर को भली-भाँति समझा जा सकता है । परन्तु यहाँ यह बताना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि इन सभी प्रकारो मे एक स्पष्टतः भेदक रेखा नही खीची जा सकती । कुछ केस वास्तव मे चरित्र-विकृतियों के होते है लेकिन उनकी क्रियाएँ एक मनो-विक्षिप्त रोगी के समान है । ब्राउन (Brown) ने चरित्र-विकृति के एक रोचक केस का उदाहरण प्रस्तुत किया है । एक अठारह वर्षीय युवा छात्रा से ब्राउन का साक्षात्कार हुआ जो शराब पीती थी तथा उसका कम से कम 20 व्यक्तियो के साथ लैंगिक सम्बन्ध हो चुका था । वह पिछले दो वर्षों की अवधि मे दो बार गर्भपात (abortion) करवा चुकी थी । साक्षात्कार के समय भी उसका दो व्यक्तियो से लैंगिक सम्बन्ध था । यह छात्रा उच्च श्रेणी के परिवार से सम्बन्धित थी, उसके माँ-बाप शिक्षित थे तथा उच्च नैतिक विचार रखते थे । मानसोपचार-चिकित्सा से यह ज्ञात हुआ कि अधिक नैतिकता व पूर्ण पारिवारिक जीवन के कारण माँ-बाप एव बच्चे मे स्वस्थ सम्बन्ध नही था । अन्य शब्दो मे, इसके माँ-बाप ने उचित स्नेह नही दिया था जिसके कारण उसे इस चरित्र-विकृति से ग्रस्त होना पडा था । वास्तव मे यह छात्रा अपने इस कार्य से खुश नही थी परन्तु फिर भी अपने आवेगो पर नियन्त्रण नही कर पाती थी ।

ब्राउन (Brown) ने चरित्र विकृति से सम्बन्धित व्यक्तित्व का अन्य व्यक्तित्व-प्रकारो की तुलना निम्न चित्रो के माध्यम से किया है—

चरित्र विकृति की अन्य व्यक्तित्व प्रकारो से तुलना

सामान्य व्यक्तित्व
(NORMAL PERSONALITY)
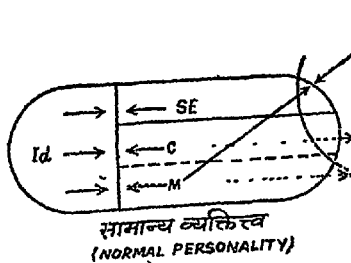
सामान्य, चरित्र विकृति, मनोविक्षिप्तता, मनःस्नायुविकृतियों में अन्तर

	आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व की प्रकृति	व्यवहार की सामाजिक प्रकृति	प्रतिगमन की श्रेणी	प्रेम-वस्तु के आधारभूत उत्तोदनाओं के सम्बन्ध	अन्तर्द्वन्द्व का रूप
सामान्य (Normal)	अहम्, परम अहम् व इदम् और बाह्य वास्तविकता के साथ सामजस्य सन्तुलन	प्रत्येक प्रकार का व्यवहार रचनात्मक तथा सामाजिक रूप से स्वीकृत	कोई नही	उभयवृत्ति केन्द्र	अन्तर्द्वन्द्व नही
चरित्र विकृति (Character Disorder)	मनोविक्षिप्तता व मनस्ताप के समान उच्चतम असामजस्य सन्तुलन।	सामाजिक रूप से अस्वीकृत व्यवहार	विभिन्न स्तरो पर प्रतिगमन परन्तु ज्ञानात्मक अहम् का प्रतिगमन नही	उभयवृत्ति	एलोप्लास्टिक लक्षण (मुख्यतः विनाशकारी व्यवहार)
मनोविक्षिप्तता (Psychoses)	अहम्, परम अहम्, इदम् तथा बाह्य वास्तविकता मे उच्चतम रूप से असामजस्य सन्तुलन, अहम् की शक्ति ह्रास होने लगती है तथा वास्तविकता के साथी सम्बन्ध नही।	सामाजिक रूप से अस्वीकृत व्यवहार। इदम् सम्बन्धी आवेगो का विकृत रूपसे प्रकट होना	प्रारम्भिक गुदा अवस्था मे प्रतिगमन	वस्तुहीन या अधिकतम रूप से उभयवृत्ति का होना	उग्र या तीव्र लक्षणो का निर्माण
मन स्नायुविकृतियाँ (Psychoneurosis)	अहम्, परम् अहम्, इदम् तथा वास्तविकता मे असामजस्य सन्तुलन। इदम् व परम् अहम् के साथ अहम् का अन्तर्द्वन्द्व परन्तु अहम् वास्तविकता के पक्ष मे।	आशिक रूप से स्वीकृत व्यवहार	गुदा या लैंगिक अवस्था मे प्रतिगमन	उभयवृत्ति	ओटोप्लास्टिक लक्षणोकाहोना (Autoplastic Symptoms)
लैंगिक विपर्यास (Sexual Perversion)	सामजस्य व असामजस्य दोनो प्रकार का सन्तुलन।	सामाजिक रूप से अस्वीकृत व्यवहार, परन्तु मनुष्य लैंगिक दृष्टि को छोडकर 'सामान्य'	या तो मनोविक्षिप्त, मन' स्नायुविकृति, प्रतिभाशाली के साथ सम्बन्धित होना। यहाँ प्रतिगमन के स्थान पर स्थिरीकरण होता है।	समलैंगिकता से उभयवृत्ति केन्द्र होना	लैंगिक विपर्यास (Perverse Sexual Practices)
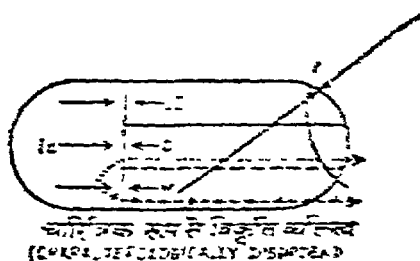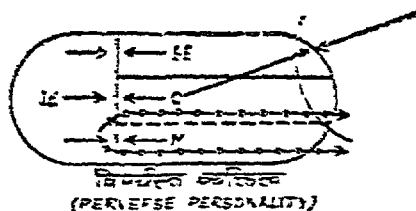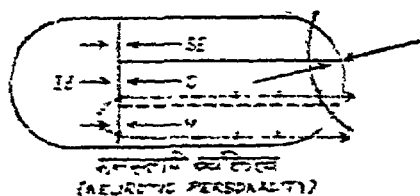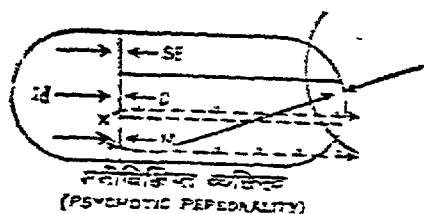
छोटा तीर, व्यक्तित्व के अन्तर्गत ही शक्तियों के सापेक्षिक सन्तुलन की ओर संकेत करता है।

……… ………→	सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यवहार।
—+—+—+—+→	अस्वीकृत परन्तु छद्मवेश में।
—+ .. —+ ..—+ ←	छद्मवेश में परन्तु आंशिक रूप से स्वीकृत।
—o—o—o—o →	छद्मवेश में नहीं तथा सामाजिक रूप से अस्वीकृत
SE	परम् अहम् (Super Ego)।
C and M	क्रमश: अहम् के ज्ञानात्मक व गति पक्ष (Cognitive and Motor aspect of Ego)
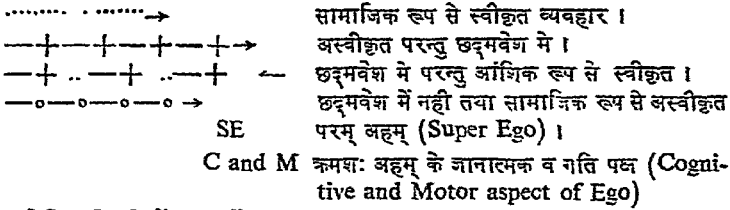
चारित्रिक विकृतियों का वर्गीकरण
(Classification of Character Disorders)

कोलमैन ने व्यक्तित्व विकृतियों या चारित्रिक विकृतियों को चार उपवर्गों में विभाजित किया है—

(1) विशिष्ट लक्षण प्रतिक्रियाएँ (Special Symptom Reactions)
(2) व्यक्तित्व प्रतिरूप विक्षोभ (Personality Pattern Disturbances)
(3) व्यक्तित्व शीलगुण विक्षोभ (Personality Trait Disturbances)
(4) समाजविकृतमय व्यक्तित्व (Sociopathic Personality Disturbances)

नीचे हम इन चारित्रिक विकृतियों का वर्णन करेंगे।

विशिष्ट लक्षण प्रतिक्रियाएँ
(Special Symptom Reactions)

जैसा कि इसके नाम से ही पता चलता है कि इस प्रकार की विकृति में एक विशिष्ट लक्षण मुख्यतया परिलक्षित होता है। इस प्रकार का विशिष्ट लक्षण बाल्यावस्था में ही उत्पन्न हो जाता है; जैसे—बाल्यावस्था में दोषपूर्ण विकास के परिणामस्वरूप बोलने सम्बन्धी विकृतियाँ (speech disorders) उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार की विकृतियों के अन्तर्गत प्रायः हकलाहट (stuttering), मूत्रअसंयम (enuresis), टिक्स (tics), बाध्यतात्मक जुआ (compulsive gambling) आदि विकृतियाँ आती हैं।

(1) हकलाहट (Stuttering)

हकलाहट में व्यक्ति बोलते समय या तो किसी निश्चित अक्षर पर बोलते-बोलते रुक-सा जाता है या किसी अक्षर या शब्द की ध्वनि का सही उच्चारण नहीं कर पाता।[1] प्रायः इस प्रकार की विकृति में एक या कुछ अक्षरों की पुनरावृत्ति करने

1 "Stuttering involves a spasmodic blocking of certain speech sounds. It may vary from mind difficulty with the initial syllables of certain words to violent contortions and an inability to produce an initial sound at all "—Coleman, J. C. : *Ibid*, p. 353

मे व्यक्ति अवरोध प्रकट करता है, जैसे—'अ-अ-अ आदमी, पिक्चर, द-द-द देखने जा रहा हूँ ।' अधिकतर हकलाने वाले व्यक्तियों मे उच्चारण सम्बन्धी अवरोध के साथ-साथ चेहरे पर बल, सिर को झटका देना, अनेक प्रकार की शारीरिक गतियाँ आदि क्रियाएँ दृष्टिगत होती हैं। इन क्रियाओ के माध्यम से रोगी के उच्चारण सम्बन्धी आन्तरिक संघर्ष (internal struggle to speak) की अभिव्यक्ति होती है। बोलने सम्बन्धी दोष के सम्बन्ध मे एक उल्लेखनीय बात यह है कि जब ये लोग अकेले होते है, गुनगुना या कानाफूसी कर रहे हो, अपने से छोटो के मध्य हो तो हकलाहट या तो होता नही या कम होता है। परन्तु जब ये व्यक्ति अनेक व्यक्तियो के मध्य हो या बडे व अपरिचित या महत्वपूर्ण व्यक्तियों के मध्य हो तो इनकी हकलाहट अधिक गम्भीर होती है।

घटनाक्रम (Incidence)—सभी कालो व आयु मे यह विकृति पायी जाती है, जैसे—मोजेज (Moses), अरस्तू (Aristotle), वरगिल (Vergil), डेमॉस्थनीज (Demosthenes) आदि महान् व्यक्ति भी इस रोग से ग्रस्त थे। अमरीका मे हकलाहट जैसे विशिष्ट लक्षण से ग्रस्त 1,800,000 लोग है जो वहाँ की सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 1% है। हकलाहट पुरुषो मे अधिक पायी जाती है तथा इसका अनुपात (पुरुषो व स्त्रियो के मध्य) 4 या 5 व 1 है। 90% रोगियो मे हकलाहट का प्रारम्भ 6 वर्ष की आयु मे होता है। सर्वाधिक घटनाक्रम 2 से 4 वर्ष के बीच मे पाया जाता है। मध्य तथा उच्च वर्ग के परिवारो मे प्राय हकलाहट घटनाक्रम अधिक होता है। [ब्लडस्टेन (Bloodsteen, 1959), डेसपर्ट (Despert, 1943), जान्सन (Johnson, 1961)]।

कारण या गत्यात्मकता (Dynamic)—कोलमैन हकलाहट को अत्यन्त चक्करा देने वाली विकृति (most baffing disorder) मानता है। इसके अनेक कारक हो सकते है—

(i) वंशानुक्रम (Hereditary)—अनेक विद्वानो का मत है कि हकलाहट का कारण वशानुक्रम है। उनका कहना है जो माँ-बाप हकलाते है, उनके बच्चो मे अधिक इसका घटनाक्रम पाया जाता है।

(ii) तान्त्रिकीय (Neurological)—तान्त्रिकीय सिद्धान्तो के अनुसार मस्तिष्क की खराबी (brain damage), जो बीमारी या जन्म के समय बीमारी (birth injury) के कारण होती हैं, हकलाहट का प्रमुख कारण है। इस सिद्धान्त के अनुसार हल्का मस्तिष्क विक्षोभ भी बोलने की क्रिया को प्रभावित करता है। परन्तु इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे एकमत नही है।

(iii) मनोवैज्ञानिक (Psychological)—अनेक मनोवैज्ञानिको ने हकलाहट के मनोविज्ञान को समझाने का प्रयास किया है। मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तो के अनुसार हकलाहट का मुख्य कारण सवेगात्मक विकास का अवरुद्ध हो जाना है तथा लिबिडो (libido) विकास के मौलिक (oral) अवस्था स्थिरीकरण हो जाना है। कुछ

मनोवैज्ञानिको का मत है, इसका प्रमुख कारण बच्चे के बोलते समय माँ-बाप का आवश्यकता से अधिक चिन्तित होना है। अन्य शब्दो में, जब बच्चा प्रारम्भ में अपरिपक्वता या अन्य कारण से बोल नही पाते तो माँ-बाप अत्यधिक चिन्तित हो जाते है तथा इस दोष के प्रति अत्यधिक जागरूक हो जाते है जिसके फलस्वरूप बच्चे हकलाने लगते हैं। शीहान तथा अन्य (Sheehan, 1953, Sheehan *et. al.* 1962) विद्वानो ने अभिगम-त्याग अन्तर्द्वन्द्व (approach-avoidance conflict) के आधार पर हकलाहट की व्याख्या प्रस्तुत की है। इन विद्वानों का कहना है कि इस प्रकार का व्यक्ति किसी प्रकार की बातचीत करने से भयभीत होता है तथा अपने को इन परिस्थितियो से हटाने का प्रयास करता है—परन्तु सामाजिक दबाव के कारण वह ऐसा नही कर पाता। इस प्रकार इन समाज विरोधी प्रवृत्तियो को उपस्थित होने पर वह अधिक हकलाने लगता है।

उपचार (Treatment)—अगर प्रारम्भ से ही इस प्रकार के लोगों का उपचार किया जावे तो इसका काफी प्रभाव पडता है। बालक के वातावरण से उन दबावपूर्ण स्थितियो को हटा देना चाहिए जो उस पर अत्यधिक स्नायु दबाव (nervous pressure) डालते हैं। जॉन्सन (Johnson, 1961) का मत है कि अगर परिवार बच्चे को यह समझने मे सहायता प्रदान करे कि वह परिवार मे पूर्ण रूप से सुरक्षित है तो उसके बोलने पर इसका काफी प्रभाव पडता है। बच्चे मे आत्म-विश्वास होने से भी उपचार मे काफी सहायता प्राप्त होती है।

(2) दाँतों से नाखून काटना (Nail-Biting)

समस्त बालको व किशोरो के लगभग 20% कभी-न-कभी अपने नाखून दाँतो से काटते रहते है। कोलमैन का कहना है कि दाँत से नाखून काटने वालो की सख्या हकलाने वाले, सस्थाओं मे पलने वाले, दबावपूर्ण स्थितियो मे रहने वाले व्यक्तियो से भी अधिक है। किशोरावस्था मे इसका घटनाक्रम सर्वाधिक होता है तथा बाद मे कम होता जाता है।

कारण (Causation)—दाँतो से नाखून काटने के अनेक कारण होते है। इस प्रकार के व्यवहार को समझने के लिए अनेक प्रकार की व्याख्याएँ दी जाती हैं :—

(i) हस्तमैथुन का स्थानान्तर (Substitute for masturbation)
(ii) आक्रामकता की ओर उन्मुख करना (Turning inward of hostility)
(iii) मुखीय अवस्था पर लिबिडो का स्थिर हो जाना (Fixation at the oral stage of development)
(iv) तनाव को कम करने का तरीका (Method of tension reduction)

दाँत से नाखून काटने वाले स्वय भी यह बताते है कि उनकी यह आदत स्वयं को व्यस्त रखने, अधिक व्यस्त रहने की इच्छा, अधिक मात्रा में शक्ति को खर्च करने की इच्छा तथा कठिनाइयों से सम्बन्धित चिन्ता से मुक्ति पाने का परिणाम है।

[कोलमैन व मैक्केली (Coleman and McCalley, 1948)]

उपचार (Treatment)—मनश्चिकित्सकों के द्वारा इसका सफलतापूर्वक उपचार सम्भव है। अनेक रोगियों को शामक औषधियों (tranquilizing drugs) को देना भी लाभदायक सिद्ध होता है। अस्थायी रूप से उपचार करने के लिए नाखून में कड़वा पदार्थ लगाना, दण्ड देकर या अन्य प्रकार से क्रिया में रुकावट डालना आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(3) टिक्स (Tics)

कोलमैन ने टिक्स के सम्बन्ध में निम्न मत व्यक्त किया है—

"A tic is a persistent, intermittent muscle twitch of spasm, usually limited to a localized muscle group"[1]

विस्तृत रूप से टिक्स के अन्तर्गत आँख को बार-बार झपकाना (blinking the eyes) मुँह का सिकोड़ना (twitching the mouth), होठ चाटना (licking the lips), कन्धे उचकाना (shrugging the shoulders), बार-बार खँखारना आदि क्रियाएँ आती हैं। प्राय. व्यक्ति इन क्रियाओं को आदत के समान करता रहता है तथा उसे इन क्रियाओं की जानकारी भी नहीं होती। अगर इन्हें कोई टिक्स के बारे में संकेत करे तब इन्हें टिक्स के अस्तित्व की जानकारी होती है। 6 से 14 वर्ष के बीच अधिकांश टिक्स मिलते हैं।

कारण (Causes)—यद्यपि टिक्स का आंगिक आधार भी हो सकता है परन्तु अधिकतर इनका कारण मनोवैज्ञानिक ही है। इसके माध्यम से रोगी अपने तनावों को पूरा करने का प्रयास करता है। येटस (Yates, 1960) के अनुसार, टिक सीखी हुई आदत है जिसे चिन्ता रहित तत्वों के द्वारा सदैव प्रबलीकरण (reinforcement) होता रहता है।[2]

उपचार (Treatment)—सबसे प्रभावकारी उपचार इस रोग की मनोचिकित्सा के माध्यम से हो सकती है। वैसे इस प्रकार के तनाव को शामक औषधियों (drugs) के द्वारा भी कम किया जा सकता है। सम्बद्ध अवरोधन (conditioned inhibition) पद्धति के द्वारा भी इसका उपचार किया जाता है परन्तु इससे परिणाम अभी तक असंगत ही प्राप्त हुए हैं (येट्स जोन्स, 1960)। सम्मोहन चिकित्सा पद्धति के माध्यम से भी इसका अस्थायी उपचार किया जा सकता है।

(4) मूत्र-असंयम (Enuresis)

तीन वर्ष की आयु तक प्राय. बालक मूत्र-क्रिया पर नियन्त्रण नहीं कर पाता। परन्तु जब इस आयु के उपरान्त भी मूत्र क्रिया पर नियन्त्रण नहीं होता तो वह

---

1. Coleman, J C : *Ibid*, p. 357.
2. "..... the tic is a learned habit which has been continually reinforced by its anxiety-reducing properties (Yates, 1960)."—Colman, J. C : *Ibid*, p. 357.

असामान्यता का रूप ले लेता है। वैसे तो यह असामान्यता दिन मे भी घटित हो सकती है, परन्तु रात्रि मे यह अक्सर घटित होता है। जिस बालक मे यह दोष होता है, उसे गहरी निद्रा मे मूत्र-असयम होता है जबकि प्रौढ मूत्र-असयमी हल्की नीद में ही पेशाव कर देता है—डिटमैन व ब्लिन (Ditman and Blinn, 1955)। अमरीका मे इस समय अनुमानत मूत्र-असंयमी बालको की सख्या 2 मिलियन से भी अधिक है। (म्यूलनर 1960, तापिया तथा अन्य, 1960)।

कारण या गत्यात्मकता (Causes or Dynamic)—मूत्र असयमी असामान्यता अनेक कारणो से हो सकती है। लेकिन अधिकतर मूत्र-असयमी व्यक्तियो के रोग का कारण आगिक (organic) न होकर मनोवैज्ञानिक होता है। कोलमैन ने इसके घटित होने के अनेक कारणो का वर्णन किया है—

(i) चिन्ता की अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति (A indirect expression of anxiety)
(ii) पैतृक ध्यान व सहायता की आवश्यकता का प्रयास (A attempt to show a need for parental attention and help)
(iii) माँ-बाप के प्रति आक्रामक व अचेतन विरोध की अभिव्यक्ति है। (An expression of hostility, often unconscious, against the parents)
(iv) अपरिपक्वता व सवेगात्मक विक्षोभ का सूचक (A indication of immaturity and emotional disturbance)
(v) मूत्र को रोक सकने की अनुपयुक्त क्षमता को व्यक्त करती है (The result of inadequate bladder capacity)

उपचार (Treatment)—रोगी की आयु, व्यक्तित्व-बनावट (personality make-up) व जीवन-परिस्थितियो को ध्यान मे रखकर इस असामान्यता का उपचार किया जाता है। सामान्य रूप से इनकी चिकित्सा पद्धति 3 प्रकार की होती है—(i) प्रशिक्षण प्रक्रिया (training procedure); (ii) शामक चिकित्सा (drug therapy), व (iii) मनश्चिकित्सा (psychotherapy)। प्रशिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत सोने से पूर्व पानी या अन्य द्रव पीने पर प्रतिबन्ध, बिस्तर पर मूत्र करते समय बिजली का झटका देना, दिन मे अधिक पानी पिलाकर पेशाव को रोकने का अभ्यास आदि क्रियाएँ कराई जाती है। ट्रन्क्वलाइजर्स, जैसे—मेन्ड्रिक्स आदि औषधियो का भी प्रयोग किया जाता है। वैसे स्थायी उपचार मनश्चिकित्सा के द्वारा ही सम्भव है।

(5) बाध्यात्मक जुआ (Compulsive Gambling)

अमरीका मे 6,000,000 बाध्यात्मक जुआरी है जो अनुमानत. प्रतिवर्ष 20 खरब डालर (20 billion dollars) जुआ मे हारते है। इनकी दिन-प्रतिदिन की क्रियाएँ अस्त-व्यस्त रहती हैं क्योकि ये लाग अधिकांश समय जुआ खेलने मे व्यतीत करते है। जुआ खेलने के लिए ये लोग कभी-कभी गैर-कानूनी रूप मे भी पैसा

एकत्रित करने का प्रयास करते है। इन वाध्यात्मक जुआरियो की बुद्धि सामान्य से अधिक होती है। इनकी सख्या स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो की अधिक होती है। इसके कारणो के सम्बन्ध मे वैसे तो विशेष अध्ययन नही हुए है परन्तु सामान्य रूप से ऐसा कहा जाता है कि जब व्यक्ति प्रथम बार जुआ खेलता है और लम्बी धनराशि जीत जाता है तो उसमे धन प्राप्त करने की इच्छा प्रबल हो जाती है तथा उसे धन प्राप्त करने का सरल उपाय जुआ ही लगता है। इसी कारण वह जुआ खेलना प्रारम्भ कर देता है। मनोचिकित्सा के द्वारा प्रभावकारी ढग से इन जुआरियो का उपचार सम्भव है।

व्यक्तित्व प्रतिरूप विक्षोभ
(Personality Pattern Disturbances)

इस प्रकार के रोगियो मे व्यक्तित्व प्रतिरूप असमायोजित होता है। इनके लक्षण मनोविक्षिप्त रोगियो से काफी मिलते-जुलते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति तनावपूर्ण स्थिति का सामना करने मे असमर्थ रहते है। इस प्रकार के विक्षोभो के सन्दर्भ मे हम इस अध्याय मे विस्तृत वर्णन कर चुके हैं। सक्षेप मे, व्यक्तित्व प्रतिरूप विक्षोभ के चार प्रमुख रूप हैं—

(1) अनुपयुक्त व्यक्तित्व (Inadequate Personality)
(2) मनोविदलित व्यक्तित्व (Schizoid Personality)
(3) साइक्लोथायमिक व्यक्तित्व (Cyclothymic Personality)
(4) सभ्रान्तिवत् व्यक्तित्व (Paranoid Personality)

व्यक्तित्व शीलगुण सम्बन्ध विक्षोभ
(Personality Trait Disturbances)

इस प्रकार के व्यक्तियो का व्यक्तित्व-विकास इतना दोषपूर्ण होता है कि वह पर्यावरण सम्बन्धी किसी भी तनावपूर्ण परिस्थिति का सामना नही कर पाता। कोवली तथा अन्य के अनुसार, व्यक्तित्व शीलगुण सम्बन्धी विक्षोभ वाले व्यक्ति की प्रमुख विशेषता अपरिपक्व व दोषपूर्ण व्यक्तित्व विकास का होना है। इनके मुख्य रूप निम्न हैं—

(1) सवेगात्मक रूप से अस्थिर व्यक्तित्व (Emotionally Unstable Personality)
(2) निष्क्रिय-आक्रामक व्यक्तित्व (Passive-Aggressive Personality)
(3) वाध्यात्मक व्यक्तित्व (Compulsive Personality)

---

1. "The most important features of the personality trait disturbance is inability to adjust in the face of environmental stress because of the immature or faulty development of the personality"
—Coville, *et. al.* : *Abnormal Psychology*, p. 123.

समाजविकृतमय व्यक्तित्व
(Sociopathic Personality Disturbances)

इस वर्ग में वे विकृतियाँ आती हैं जिनमे व्यक्ति सामाजिक नियमों, मानदण्डों को या तो स्वीकार नही करता या उनके प्रति विद्रोह करता है। इस प्रकार की विकृतियो के विभिन्न रूपो को हम 'समाज-विरोधी व्यवहार व अपराध' नामक अध्याय में वर्णन करेंगे। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से तीन प्रकार की विकृतियाँ आती है—

(1) समाज-विरोधी विकार (Antisocial Reaction)
(2) अपराधी व्यवहार (Dysocial Reaction)
(3) लैंगिक विकृतियाँ (Sexual Deviations)

विभिन्न प्रकार की लिंग विकृतियों के लिए सम्बन्धित अध्याय देखिए।

31

मनश्चिकित्सा
(PSYCHOTHERAPY)

मनश्चिकित्सा का अर्थ
(Meaning of Psychotherapy)

सरल शब्दो मे, चिकित्सा का अर्थ है—रोगो का उपचार करना तथा मनश्चिकित्सा अर्थ है—मानसिक रोगो का उपचार करना । आज मनश्चिकित्सा को एक स्वतन्त्र रूप प्राप्त हो चुका है । जहाँ इसकी प्राचीन प्रविधियाँ अवैज्ञानिक थी वहाँ इसकी आधुनिक पद्धतियाँ वैज्ञानिक तथा अन्धविश्वास-विहीन हैं । जैसे-जैसे असामान्य मनोविज्ञान का विकास हुआ, वैसे-वैसे ही मनोचिकित्सा प्रविधियो मे भी क्रमश परिवर्तन हुआ तथा मानसिक रोगो को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाने लगा । प्राचीन काल मे जहाँ इसका क्षेत्र सीमित था वही आधुनिक काल मे काफी विस्तृत हो गया । विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने मनश्चिकित्सा की परिभाषा विभिन्न प्रकार से दी है । किसकर (Kisker)[1] के मतानुसार—"**मनचिकित्सा मे मनोवैज्ञानिक विधियो से संवेगात्मक व व्यवहार विक्षोभो का उपचार किया जाता है । ये विधियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं, जिनमें से कुछ व्यक्तियों से सम्बन्धित होती हैं तो कुछ समूहो से ।**" किसकर की यह परिभाषा मुख्यत. निम्न विशेष बातो पर जोर देती है .—

---

1. "Psychotherapy is the treatment of emotional and behaviour disturbances by psychological methods. These methods are of a great many different kinds, with some directed toward individuals and other toward groups."—Kisker, G. W. : *The Disorganized Personality*, p. 529.

(i) इसमे सवेगात्मक एवं व्यवहार सम्बन्धी विक्षोभो से ग्रस्त व्यक्तियो का उपचार किया जाता है।

(ii) ये विधियाँ मुख्यत मनोवैज्ञानिक होती है।

(iii) मनश्चिकित्सा विधियाँ मुख्यत दो प्रकार की होती हैं—व्यक्तिगत व सामूहिक।

फिशर (Fisher) के अनुसार, "मनश्चिकित्सा, विविध प्रकार के मानवीय रोगो एवं विक्षोभों, विशेषतया जो मनोजात कारणों से उत्पन्न होते हैं, को निराकरण करने के लिए मनोवैज्ञानिक तथ्यो एवं सिद्धान्तो का योजनावद्ध एव व्यवस्थित ढग से उपयोग है।"[1] जेम्स डी० पेज (James D. Page) के अनुसार, "मनश्चिकित्सा का अर्थ है—मानसिक विकृतियों, विशेषतया मनःस्नायुविकृतियों का मनोवैज्ञानिक प्रविधियो के माध्यम से उपचार करना।"[2] लैडिस व बॉल्स के अनुसार, "मनश्चिकित्सा का अर्थ है—रोग का निवारण या कम करने के इरादे के साथ मानव मन पर मानसिक क्रिया उपायो को क्रिया······ विस्तृत अर्थ मे मनश्चिकित्सा से चिकित्सक या मनोवैज्ञानिक का ही पूर्ण सम्बन्ध नहीं है, बल्कि प्रत्येक मनुष्य का सम्बन्ध है, जो दूसरे व्यक्ति के आक्रान्त मन के कष्टो को दूर करने की कोशिश करता है।"[3]

इन परिभाषाओ से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनश्चिकित्सा के माध्यम से मानसिक विकृतियो से ग्रस्त व्यक्तियो का उपचार किया जाता है तथा जो उपचार पद्धतियाँ उपयोग मे लाई जाती है, वे मुख्यत मनोवैज्ञानिक होती है।

मनश्चिकित्सा का लक्ष्य

(Goals of Psychotherapy)

मनश्चिकित्सा का सामान्यत. प्रमुख लक्ष्य है—रोगी व उसके पर्यावरण के मध्य सामंजस्य स्थापित करना। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए मनोवैज्ञानिक प्रविधियो का उपयोग किया जाता है। परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि मनोचिकित्सक या

---

1 "Psychotherapy is a planned and systematic application of psychological facts and theories to the allevation of large variety of human ailments and disturbances, particularly those of psychogenic in origin."—Fisher.

2. "Psychotherapy means treatment of mental disorders, especially psychoneurosis by psychological techniques."—Page. J. D.: *Abnormal Psychology*.

3. "Psychotherapy means acting on the human mind by mental means with the intentions of effecting a cure of alleviation of illness .. . . In the large sense psychotherapy is not solely the concern of the physician or the psychologist, but the concern of every human being who attempts to relieve the suffering of troubled mind of another person."—Landis and Bolles.

मनोवैज्ञानिक केवल मनोवैज्ञानिक प्रविधियो पर ही निर्भर होते है बल्कि औषधियो व अन्य सहायक पद्धतियो का भी उपयोग करता है। इस प्रकार मनश्चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को सामान्य व्यक्ति बनाना है, उसकी विभिन्न समस्याओ का उचित समाधान कराना है तथा उसे इस योग्य बनाना है कि वह अपने पर्यावरण के साथ उचित समायोजन के लिए समर्थ बन सके। कोवली तथा अन्य (Coville and Others) के अनुसार, मनश्चिकित्सा के लक्ष्यो को दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है—(1) तात्कालिक लक्ष्य, जिसका प्रमुख उद्देश्य रोगी को तात्कालिक सहायता प्रदान करना है तथा उसे गम्भीर रोग से बचाना है, (2) सुदूर (long range) लक्ष्य, जिसका उद्देश्य रोगी मे अन्तर्दृष्टि (insight) को बढ़ाना है जिससे कि उसकी क्षमताओ मे विकास हो सके।

मनश्चिकित्सा के सामान्य स्तर
(General Steps of Psychotherapy)

विभिन्न प्रकार की मनश्चिकित्सा पद्धतियो को बताने से पूर्व इसके मुख्य एवं सामान्य स्तरो के सम्बन्ध मे विवेचना करना आवश्यक प्रतीत होता है। मनश्चिकित्सा के निम्न स्तर है —

(1) **आत्मीयता-सम्बन्ध की स्थापना** (Establishment of Rapport-Formation)—मनश्चिकित्सा की शुरूआत आत्मीयता-सम्बन्ध की स्थापना करने से होती है। ध्यान रहे कि इसका मुख्य उद्देश्य उन मानसिक लक्षणो को दूर करना है जिनके कारण एक व्यक्ति असामान्य या रोगग्रस्त हो गया है। चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि रोगी के अन्दर आत्मविश्वास उत्पन्न करे तथा उसके व्यक्तित्व को इतना सगठित एव सन्तुलित बनाना है जिससे कि वह पर्यावरण के साथ अनुकूल सम्बन्ध स्थापित कर सके। परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति तब ही सम्भव होगी जबकि रोगी व चिकित्सक के मध्य सौहार्द्रपूर्ण आत्मीय सम्बन्ध की स्थापना हो जाय। एक तरफ चिकित्सक अपने अनुभव एव प्रशिक्षण के माध्यम से रोगी की समस्याओं को दूर करने का प्रयास करता है, तो दूसरी तरफ रोगी अपनी समस्याओ को चिकित्सक के सम्मुख प्रस्तुत करता है। परन्तु यह तब ही सम्भव होगा जबकि दोनो के मध्य आत्मीयता का सम्बन्ध हो।

(2) **प्रतिरोध** (Resistance)—रोगी व चिकित्सक के मध्य आत्मीय सम्बन्ध स्थापित हो जाने के उपरान्त भी रोगी अपनी समस्याओ को प्रकट करने के लिए प्रतिरोध करता है। इसका मुख्य कारण यह है कि रोगी की समस्याओ का सम्बन्ध अचेतन मे दमित भावनाएँ होती है, जो मुख्यत. लैंगिक व असामाजिक होती हैं। रोगी इन्हे प्रकट करते-करते अचानक रुक जाता है इस समय चिकित्सक को काफी सतर्कता व सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। चिकित्सक को चाहिए कि रोगी जब-जब प्रतिशोध का अनुभव करे तब-तब वह रोगी को उसकी समस्याओ को सावधानीपूर्वक समझावे।

(3) **संक्रमण** (Transference)—मनश्चिकित्सा के दौरान रोगी एव चिकित्सक के मध्य सवेगात्मक सम्बन्ध विकसित हो जाते है। यह स्तर चिकित्सक के लिए बहुत ही खतरनाक होता है, क्योकि रोगी अपने प्रेम व घृणा का वास्तविक पात्र चिकित्सक को मान लेता है, जिसके फलस्वरूप अगर चिकित्सक सावधान न रहे तो वह स्वय रोगी बन सकता है। इस प्रकार की रक्षायुक्ति को सक्रमण कहते है।

(4) **अन्तर्दृष्टि** (Insight)—धीरे-धीरे मनश्चिकित्सा के माध्यम से रोगी स्वय की दमित भावनाओ, कठिनाइयो आदि को चिकित्सक से कहने लगता है। परन्तु क्योकि इनका सम्वन्ध असामाजिक व अहम् को अस्वीकार योग्य इच्छाओ से होता है अत जिस रूप मे ये इच्छाएँ दमित हुई थी उसी रूप मे वाहर नही निकलती। इसी कारण रोगी अपनी समस्याओ मे उलझने लगता है तथा निषेधात्मक अभिव्यक्ति करता है। यहाँ चिकित्सक के लिए यह आवश्यक होता है कि वह रोगी को स्वीकारात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करे तथा उसकी निषेधात्मक अभिव्यक्तियो को समझे। इससे रोगी मे अन्तर्दृष्टि आती है जिससे वह अपनी समस्याओ को प्रकट करने मे समर्थ हो जाता है।

(5) **संवेगात्मक पुर्नशिक्षा व सामान्य समायोजन** (Emotional Re-education and Normal Adjustmnt)—रोगी मे अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हो जाने के वाद उसमे सामान्य व्यक्तियो के समान समायोजन का विकास हो जाता है तथा वह स्वय ही अपनी कठिनाइयो को समझने लगता है तथा उसके समाधान के लिए भी प्रयास करता है। इस प्रकार मनश्चिकित्सा की सफलता से रोगी मे सामान्य समायोजन स्थायी रूप से लेता है।

मनश्चिकित्सा की प्रविधियाँ
(Techniques of Psychotherapy)

प्राचीन समय से ही मनश्चिकित्सा की आवश्यकता समझी गई जिसके फलस्वरूप इसकी प्रविधियो का भी आविष्कार होता गया। पहले इस प्रकार की विधियाँ दार्शनिक थी, आज वैज्ञानिक हो गई है। इसका तात्पर्य यह नही है कि आज प्राचीन विधियो का मनश्चिकित्सा मे कोई महत्त्व नही है। वास्तविक तथ्य तो यह है कि आज भी हम अनेक प्राचीन विधियो का उपयोग करते है। यहाँ सर्वप्रथम हम कुछ मुख्य वर्गीकरणो पर दृष्टिपात करेंगे, वाद मे प्राचीन एव नवीन विधियो का वर्णन करेंगे :—

किसकर (Kisker) के अनुसार—

(अ) सहायक मनश्चिकित्सा (Supportive Psychotherapy)

(व) पुर्नशिक्षात्मक मनश्चिकित्सा (Re-educative Psychotherapy)

(स) पुनरंचनात्मक मनश्चिकित्सा (Re-constructive Psychotherapy)

सामान्य वर्गीकरण (General Classification)

(अ) **मनश्चिकित्सा की प्राचीन प्रविधियाँ** (Old Techniques)—
- (i) सम्मोहन (Hypnotism)
- (ii) ससूचन (Suggestion)
- (iii) प्रत्यायन (Persuasion)

(ब) **मनश्चिकित्सा की नवीन प्रविधियाँ** (New Techniques)—
- (i) मनोविश्लेषण चिकित्सा (Psychoanalytical Therapy)
- (ii) व्यावसायिक चिकित्सा (Occupational Therapy)
- (iii) अनिदेशात्मक या रोगी केन्द्रित चिकित्सा (Non-directive or Client-Centered Therapy)
- (iv) निदेशात्मक चिकित्सा (Directive Therapy)
- (v) सामूहिक चिकित्सा (Group Therapy)
- (vi) अस्तित्ववादी मनश्चिकित्सा (Existential Psychotherapy)
- (vii) मनोजैविक चिकित्सा (Psycho-biological Therapy)
- (viii) आघात चिकित्सा (Shock Therapy)
- (ix) मनोनाटक (Psychodrama)
- (x) मन.शल्यक्रिया (Psychosurgery)
- (xi) अन्य चिकित्सा (Other Therapy)

नीचे हम मुख्य मनश्चिकित्सा प्रविधियो के सम्बन्ध मे बतायेंगे :—

सहायक मनश्चिकित्सा
(Supportive Psychotherapy)

इस प्रकार की चिकित्सा मे चिकित्सक का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि कम के कम समय मे रोगी को अधिक से अधिक आराम पहुँचे । अन्य शब्दो मे, इसका मुख्य उद्देश्य रोगी के लक्षणो को शीघ्र से शीघ्र दूर करना है। इस प्रकार की चिकित्सा मे रोगी की अभिवृत्तियो मे परिवर्तन या अन्तर्निहित कारणो को दूर करने या व्यक्तित्व मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के सम्बन्ध मे विशेष प्रयास नही किया जाता है । विधि का उपयोग अनेक मानसोपचारशास्त्री, नैदानिक, मनोविज्ञानी व चिकित्सक करते है। मुख्य सहायक मनश्चिकित्सा प्रविधियाँ निम्न हैं :—

(i) **पुनर्आश्वासन** (Reassurance)

यह सहायक मनश्चिकित्सा की मुख्य प्रविधि है। इस प्रकार की प्रविधि मे चिकित्सक अनेक माध्यमो से रोगी को ठीक हो जाने का वचन या आश्वासन देता है तथा उन्हे सवेगात्मक सहायता भी देता है । वह रोगी को बताता है कि उनके रोग सम्बन्धी लक्षणो को दूर किया जा सकता है तथा उससे भी अधिक गम्भीर रोग पूर्णत ठीक हो चुके हैं । चिकित्सक अपने अनुभव व योग्यता के आधार पर कभी प्रत्यक्ष पुनर्आश्वासन (direct reassurance) तथा कभी अप्रत्यक्ष पुनर्आश्वासन (indirect reassurance) रोगी को देता है ।

(ii) **संसूचन** (Suggestion)

संसूचन या संकेत के उपयोग से भी मनश्चिकित्सा में सहायता मिलती है। यह बहुत ही प्राचीन एवं सरल प्रविधि है जिसमें चिकित्सक रोगी को साधारण प्रकार से कुछ सुझाव या ससूचन देता है जिसे रोगी स्वीकार करके अनुकूल प्रतिक्रिया करता है। इस प्रविधि का क्षेत्र भी काफी व्यापक है, क्योंकि अन्य अनेक चिकित्सात्मक प्रविधियों में इसका उपयोग किया जाता है। रोगी के सम्मुख चिकित्सक अपने विचारों को व्यक्त कर देता है तथा उसे मानने या न मानने का कार्य उस पर ही छोड़ देता है। क्योंकि रोगी पर चिकित्सक किसी प्रकार का दबाव नहीं डालता। अतः वह अवचेतन रूप से चिकित्सक के संसूचनों को स्वीकार कर लेता है। मैक्डूगल (McDougall) के अनुसार, **"संसूचन वह प्रविधि है जिसमें प्रत्यक्ष आदेशों की ओर न जाते हुए व्यक्ति के विश्वासों या क्रियाओं को प्रभावित किया जाता है।"**[1] संसूचन कहाँ तक रोगी पर प्रभाव डालता है, यह चिकित्सक के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं पर्यावरण पर निर्भर होता है। परन्तु इतना होते हुए भी इसे एक वैज्ञानिक प्रविधि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि संसूचन की निम्नलिखित त्रुटियाँ हैं :—

(1) सीमित उपयोग—क्योंकि बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी संसूचनों को स्वीकार नही करता है।

(2) अस्थायी प्रभाव—अल्प समय के लिए रोगी का उपचार संभव है क्योंकि इसके द्वारा केवल लक्षण कम या दूर होते हैं, न कि कारण।

(3) सभी प्रकार के मानसिक रोगियो के लिए उपयुक्त नहीं।

(iii) **प्रत्यायन** (Persuasion)

किसकर के अनुसार, प्रत्यायन भी एक महत्त्वपूर्ण मनश्चिकित्सा प्रविधि है, जिसमें चिकित्सक रोगी को जीवन के सम्बन्ध में उचित मानसिक अभिवृत्ति अपनाने पर जोर देता है। अन्य शब्दो में, प्रत्यायन में रोगी को अप्रत्यक्ष रूप से ससूचन दिया जाता है। रोगी यह समझकर कि चिकित्सक उसकी भलाई के लिए संसूचन दे रहा है अत. स्वीकार करता है। इस प्रविधि मे दो मुख्य बातें निहित हैं—(1) इसके द्वारा रोगी की बुद्धि या प्रज्ञा (intellect) को आकर्षित किया जाता है; तथा (2) अप्रत्यक्ष रूप से कौशलपूर्वक संसूचन दिया जा सकता है।

पुनर्शिक्षात्मक मनश्चिकित्सा
(Re-educative Psychotherapy)

मनश्चिकित्सा का मुख्य प्रकार पुनर्शिक्षात्मक चिकित्सा प्रविधियाँ हैं। इसकी मुख्य प्रविधियाँ अग्रलिखित हैं :—

---

1. "Suggestion is a technique of influencing the beliefs or the actions of another person without resort to direct orders."
—McDougall.

(i) अनिदेशात्मक या रोगी-केन्द्रित चिकित्सा (Non-directive or Client-centered Therapy)

इस प्रकार की पद्धति का प्रतिपादन **कार्ल रॉजर्स** (Carl Rogers) ने 1942 मे किया था। इसके अन्तर्गत उपचारक रोगी की बातो को बड़े ध्यानपूर्वक सुनता है परन्तु वह किसी प्रकार का परामर्श या सहायता नही देता बल्कि रोगी मे इस प्रकार की अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करने का प्रयास करता है कि वह स्वय अपनी समस्याओ को समझे तथा रोग के सम्बन्ध मे निर्णय ले। इस प्रकार की चिकित्सा के अन्तर्गत रोगी को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वह इस चिकित्सा के द्वारा बिना किसी भय के भावनाओ को व्यक्त करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। चिकित्सक के सम्मुख सप्ताह मे एक या दो बार रोगी प्राय एक घण्टे के लिए आता है। उसे पहले से बता दिया जाता है कि एक निश्चित अवधि तक ही साक्षात्कार चलेगा अगर वह देर से आता है तो शेष समय तक ही साक्षात्कार चलेगा। चिकित्सक बहुत कम बोलता है तथा रोगी स्वय अपनी समस्या के सम्बन्ध मे अन्तर्दृष्टि विकसित करता है तथा उसके समाधान के सम्बन्ध मे सोचता है। उपबोधक (Counsellor) जब रोगी के सम्बन्ध मे यह जान लेता है कि उसमे अन्तर्दृष्टि क्षमता आ गई है तो अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन देता है, जिसे रोगी स्वीकार कर लेता है। **रोजर्स**[1] ने इस सम्बन्ध मे प्रथम साक्षात्कार के समय हुए प्रथम वार्तालाप का निम्न प्रकार से विवरण प्रस्तुत किया है—

रोगी—अब तो मामला सीमा से परे है। अब मैं ऐसे-वैसे जीने के स्थान पर मरना अधिक उपयुक्त समझता हूँ।

उपबोधक—मरना अधिक पसन्द करोगे ? क्या इस सम्बन्ध मे कुछ और बता सकते हो ?

रोगी—मैं आशा पर जीता हूँ · · हम आशा पर जीते है।

उपबोधक—हाँ।

रोगी—लेकिन नही, मुझमे आत्महत्या के सम्बन्ध मे कोई चेतनात्मक प्रेरणा नही है। वह ठीक ऐसा ही है। अधिक सोचने पर मुझे ज्ञात होता है कि मेरा गतिरोध हो गया है और गतिरोध की अवस्था मे मैं जीना नही चाहता।

उपबोधक—क्या इस सम्बन्ध मे मुझे तुम कुछ और भी बता सकते हो कि किस प्रकार तुम्हारी यात्रा को अवरुद्ध कर दिया गया है जिससे कि कभी-कभी तुम मर जाना अधिक उपयुक्त समझते हो।

रोगी—शायद उस सवेदना को मैं अधिक अच्छी तरह से वर्णन नही कर सकता, वह भारी एव कष्टदायक वजन के समान लगता है, जैसे मेरे पेट को कोई

---

1 Rogers, C : *Counselling and Psychotherapy*, Boston Houghton, Mifflin, 1942

कुल्हाडी से दवा रहा हो। मुझे उसके स्थान का भी अनुभव है। मुझे ऐसा आभास होता है कि मेरी गतिक ऊर्जा तक पहुँच जाती है तथा जिस-जिस स्थान मे, मैं कुछ करने का प्रयत्न करता हूँ उसी को मै अपने अवरुद्ध पाता हूँ।

आठवे व अन्तिम साक्षात्कार के वार्तालाप के उदाहरण इस प्रकार के है—

रोगी—मुझे इधर कुछ नवीन अनुभव का आभास हो रहा है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो एक सुधार धीरे-धीरे हो रहा है परन्तु स्थायी रूप से हो रहा है। मुझे आभास होता है कि मै अपेक्षाकृत अधिक स्थायी हो गया हूँ तथा यह सुधार कठिन परन्तु निश्चित मार्ग से आया है।

उपबोधक—हूँ।

रोगी—अब मै अपनी समस्याओ को प्रत्यक्ष रूप से समाधान कर लेता हूँ। इस कार्य मे अधिक प्रयास करना पडता है फिर भी मैं आगे बढता जाता हूँ तथा प्रगति कर लेता हूँ। साँड पर विजय प्राप्त करनी हो तो सबसे अच्छा उसकी सीग को पकड़ना चाहिए। अत्यधिक विचार करना व्यर्थ है। मैं अपने से कहता हूँ, "समस्या को टालते रहने से मैं इस खाई मे पडा रहूँगा।" मैं इस खाई मे पडा नही रहना चाहता। इसी विचार से मै आगे बढता रहता हूँ सभी स्थितियो का सामना करता हूँ तथा निराश होने पर भी पहले की भाँति खिन्न नही होता।

उपबोधक—यह तो सच्ची प्रगति के समान है। रॉजर्स ने इस पद्धति की सफलता के लिए निम्न बातो का उल्लेख किया है —

(अ) रोगी स्वयं ही सहायता के लिए आता है—राजर्स के मतानुसार, रोगी स्वय ही अपनी कठिनाइयो को दूर करने के लिए चिकित्सक के पास आता है। अन्य शब्दो मे रॉजर्स का विचार था कि उपचार की सफलता इस तथ्य पर आधारित है कि रोगी को अपनी कठिनाइयो को दूर करने की इच्छा कितनी तीव्र है। यही कारण है कि उसने अपनी पद्धति की सफलता का प्रथम चरण यह बताया है कि रोगी को चिकित्सक के पास स्वय आना चाहिए। चिकित्सक को प्रथम साक्षात्कार के समय ही यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि यहाँ इस प्रकार का पर्यावरण सृजित किया जावेगा कि रोगी स्वय ही अपनी समस्याओ को समझेगा तथा उनका निराकरण करने का प्रयत्न करेगा।

(ब) भावनाओं की अभिव्यक्ति—जब रोगी चिकित्सक के पास आता है तो चिकित्सक इतना सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करता है और इस प्रकार का पर्यावरण सृजित करता है कि रोगी अपनी भावनाओ आदि को व्यक्त करने को उत्साहित होता है। इसके परिणामस्वरूप रोगी के अचेतन मन से सम्बन्धित या अन्तर्निहित घृणा, विरोध व अन्य अवाछित भावनाओं को चेतना मे आने का अवसर मिलता है। यहाँ चिकित्सक का प्रमुख कार्य है कि रोगी की इन भावनाओ को समझने का प्रयास करे तथा रोगी को इन्हे प्रकट करने के लिए प्रोत्साहित करता रहे।

(स) रोगी में अन्तर्दृष्टि का विकास—अनिदेशात्मक चिकित्सा मे चिकित्सक सम्पूर्ण चिकित्सा-प्रक्रिया मे सक्रिय रूप से भाग नही लेता, रोगी स्वय ही अपनी समस्याओ मे सम्बन्धित इच्छाओ, भावनाओ, विचारो, सवेगो आदि की अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार वह स्वय ही अपनी अच्छाइयो व बुराइयो को स्वीकार करता है जिसके फलस्वरूप उसे अपनी कठिनाइयो या समस्याओ के सम्बन्ध मे अन्तर्दृष्टि (insight) उत्पन्न हो जाती है जिससे कि उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है, सवेगो के स्पष्ट रूप का पता चलता है तथा यह प्रयास करना आरम्भ करता है कि वह किस प्रकार पर्यावरण के साथ उचित समायोजन करे।

(द) सही या वाछित कार्यो को अपनाना—जब रोगी को अपनी कठिनाइयो व समस्याओ की जानकारी हो जाती है तो वह यह निश्चित कर लेता है कि उसे किस कार्य को करना चाहिए, किसको नही। यहाँ चिकित्सक को बडी बुद्धिमानी से कार्य करना चाहिए तथा रोगी को उपयुक्त सुझाव व निदेश देना चाहिए। रोगी धीरे-धीरे अपनी कठिनाई को समझता है तथा स्वय ही समायोजन की सुनियोजित विधियाँ खोजता है तथा उसमे उपयुक्तता (adequacy) की भावना जन्म लेती है।

(य) सम्पर्को की समाप्ति—जैसे-जैसे रोगी अपने निर्धारित मार्ग पर आगे बढता जाता है वैसे-वैसे ही उसमे यह भावना जन्म लेने लगती है कि उसे अब किसी अन्य की सहायता नही लेनी है तथा अपने उपचार की समाप्ति के सम्बन्ध मे सोचने लगता है।

मनश्चिकित्सा की इस पद्धति की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं—

(1) सम्पूर्ण चिकित्सा प्रक्रिया मे चिकित्सक सक्रिय रूप से भाग नही लेता।

(2) सामान्यत रोगी ही इस चिकित्सा का केन्द्र-विन्दु होता है तथा उपचार की सफलता व निर्देशन का भार भी रोगी पर होता है।

(3) चिकित्सक प्रथम साक्षात्कार के दौरान ही रोगी को यह स्पष्ट कर देता है कि दोनो मिलाकर ही उसकी कठिनाइयो को दूर करेंगे। इस प्रकार चिकित्सक का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि वह रोगी के सामने ऐसा पर्यावरण उपस्थित करे कि रोगी स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी भावनाओ आदि को प्रकट करे।

(4) चिकित्सक रोगी की वातो को स्वीकार करता है तथा अपनी तरफ से किसी प्रकार की आलोचना नही करता है।

(5) इसके फलस्वरूप रोगी मे अन्तर्दृष्टि का जन्म व विकास होता है।

(iii) निदेशात्मक मनश्चिकित्सा
(Directive Psychotherapy)

इस प्रकार की मनश्चिकित्सा प्रविधि को विकसित करने का श्रेय एफ० सी० थॉर्न (F C Thorne) को है। इस प्रकार की प्रविधि मे चिकित्सक निष्क्रिय न होकर सक्रिय रूप से भाग लेता है। इस प्रकार इसमे चिकित्सक ही मुख्य केन्द्र-विन्दु होता है। रोगी की समस्त समस्याओ की जानकारी स्वय चिकित्सक करता है तथा

रोगी के लिए योजना बनाता है। इसमें रोगी चिकित्सक की प्रतिक्रियाओ पर निर्भर होता है। वह पुनःशिक्षण (re-education), विहर्षण (desensitization), संसूचन आदि विधियो का भी उपयोग करता है।

पुनर्रचनात्मक मनश्चिकित्सा
(Reconstructive Psychotherapy)

इस प्रकार की मनश्चिकित्सा में रोगी को पुन सामान्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इस मनश्चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य रोगी की आधारभूत व्यक्तित्व-सरचना को पुनर्गठित करना व गत्यात्मक बनाना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सहायक एव पुनर्शिक्षात्मक मनश्चिकित्सा विधियो का भी प्रयोग किया जाता है, परन्तु इन विधियो का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व का अचेतन स्तर पर अध्ययन करना तथा उसमे परिवर्तन करना होता है।[1] पुनर्रचनात्मक चिकित्सा के मुख्य प्रकार निम्न हैं—

(1) फ्रायड का मनोविश्लेषण
(Freudian Psychoanalysis)

मनोविश्लेषण भी मनश्चिकित्सा की एक प्रविधि है। फ्रायड का मनश्चिकित्सा के क्षेत्र में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

जोसफ ब्रुअर (Joseph Breuer) के सम्पर्क मे 1886 मे फ्रायड आए तथा तभी से उन्होने मनश्चिकित्सा को एक प्रविधि के रूप मे स्वीकार किया। ब्रूअर एक चिकित्सक था जो सम्मोहन के माध्यम से मनस्तापी (neurotic) रोगियो की चिकित्सा करता था। फ्रायड ने देखा कि सम्मोहन की अवस्था मे रोगी स्वतन्त्र रूप से बातचीत करते थे तथा अधिक सवेगो को प्रदर्शित करते थे। सचेत होने पर सुख व प्रसन्नचित्त दिखायी पडते थे। फ्रायड ने इस विधि से प्रभावित होकर इसका उपयोग कुछ रोगियो पर किया। 1893 मे फ्रायड व ब्रुअर ने मिलकर *'Studies of Hysteria'* पर एक पुस्तक भी लिखी। किसकर (Kisker) का मत है कि इन प्रकाशनो के फलस्वरूप ही मनोविश्लेषण की सिद्धान्त एवं उपचार की विधि के रूप मे स्थापना हुई। मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का मूल उद्देश्य रोगी को उसकी चिन्ताओ से अवगत कराना है।

---

1 "This approach is directed toward a fundamental reorganization of the basic personality structure and dynamics of the patient. It may include some of techniques of supportive theraphy goes much farther. It is a therapy concerned with the deep and unconscious levels of personality and designed to bring about profound changes in personality." —**Kisker** : *The Disorganized Personality*, p 535.

वैसे तो आजकल मनोविश्लेषण की भिन्न-भिन्न पद्धतियो का उपयोग किया जाता है परन्तु इसके मुख्य स्वरूप अग्रलिखित हैं—

(क) मुक्त साहचर्य (Free Association)—मनोविश्लेपण विधि से चिकित्सा करने के लिए सर्वप्रथम मनोविश्लेषक रोगी से साक्षात्कार करता है तथा उसके वाह्य लक्षणो को देखता है। इस प्रारम्भिक स्तर पर चिकित्सक रोगी के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है जिसमे रोगी उस पर विश्वास व भरोसा करे। जब रोगी समझ लेता है कि चिकित्सक उसका शुभचिन्तक है तो वह अपनी भावनाओ आदि को प्रकट करने मे हिचकिचाता नही। यह तो मनोविश्लेषण द्वारा उपचार की प्रथम या प्रारम्भिक अवस्था होती है। वास्तव मे रोगी के उपचार का आरम्भ तो मुक्त साहचर्य के स्तर पर होता है। प्राय इस स्तर पर चिकित्सक एकान्त एव मन्द प्रकाश युक्त कमरे मे रोगी को आराम से बैठा देता है तथा अत्यन्त सहज ढग से उससे वातचीत आरम्भ करता है। मुक्त साहचर्य स्तर पर रोगी को चिकित्सक यह निर्देश देता है कि वह विना किसी सकोच या हिचक के विचारो, इच्छाओ व भावो को व्यक्त करे। इस प्रकार चिकित्सक रोगी के अचेतन से दमित इच्छाओ, अनुभूतियो व भावो को जानने का प्रयास करता है। स्मरण रहे कि अचेतन सामग्री से रोग के स्वरूप, निदान व निवारण मे काफी सुविधा मिलती है। परन्तु मुक्त साहचर्य स्तर पर मुख्यत निम्न दो कठिनाइयाँ आती हैं :—

(अ) प्रतिरोध (Resistance)—मुक्त साहचर्य स्तर के आरम्भ मे प्रतिरोध के कारण रोगी अपनी इच्छाओ, अनुभूतियो, भावो आदि को प्रकट नही करता है। स्मरण रहे कि अचेतन मे वे इच्छाएँ निहित होती है जो उसकी निजी जीवन मे सम्वन्धित होती है जिन्हे वह प्रकट नही करना चाहता, क्योकि रोगी को सुरक्षात्मक अहम् (defensive ego) अप्रिय व अमान्य स्मृतियो को वाहर आने मे रोकता है। प्रतिरोध का पता उस समय चलता है जब रोगी वोलते-वोलते रुक जाता है तथा कभी-कभी रोगी काफी समय तक चुपचाप रहता है। यहाँ मनोचिकित्सक को वडी कुशलता के साथ रोगी के इस प्रतिरोध को दूर करना चाहिए। परन्तु प्रतिरोध को तोडना वडा ही कठिन कार्य है परन्तु अगर मनोविश्लेषक अनुभवी हो तो वह थोडे समय व परिश्रम मे प्रतिरोध को समाप्त कर देता है।

(ब) संक्रमण (Transference)—मनोविश्लेषण पद्धति मे प्रतिरोध के साथ ही साथ दूसरी कठिनाई सक्रमण की होती है। सक्रमण का अर्थ है—रोगी के सवेगो आदि का चिकित्सक पर चला जाना अर्थात् रोगी अपने सवेगो का स्वाभाविक पात्र चिकित्सक को मान लेता है। जैसे-जैसे विश्लेषण का विकास होता है, वैसे-वैसे ही सक्रमण का भी विकास होने लगता है तथा रोगी के लिए मनोविश्लेषण ही उसके प्रेम, घृणा, क्रोध आदि भावो का पात्र वन जाता है। सक्रमण से चिकित्सक को काफी परेशानी उठानी पड़ती है। यह सक्रमण धनात्मक व ऋणात्मक दोनो प्रकार का होता है। धनात्मक सक्रमण मे रोगी के सवेग चिकित्सक के प्रति प्रेम के होते है जवकि

ऋणात्मक संक्रमण मे रोगी चिकित्सक से घृणा करता है। सक्रमण से बचाव के लिए चिकित्सक को अनुभवी होना आवश्यक होता है। क्योकि कभी-कभी स्त्री रोगी अपनी काम-प्रकृति का मौलिक पात्र चिकित्सक को समझने लगती ह तथा उससे प्रेम करने लगती है। इस प्रकार वह अपनी काम सम्बन्धी मौलिक भावनाओ का स्थानान्तरण कर देती है। चिकित्सक को इस स्थिति का लाभ तो उठाना चाहिए परन्तु स्वय को इस स्थिति मे नही डालना चाहिए। चिकित्सक अगर रोगी के साथ प्रेम करने लगेगा तो उपचार की दृष्टि से यह खतरनाक सिद्ध होगा।

सक्रमण तीन प्रकार का होता है—

(1) **अनुकूल संक्रमण** (Positive Transference)—यह वह सक्रमण होता है जिससे रोगी चिकित्सक के प्रति प्रेम व स्नेह की भावनाएँ विकसित करता हैं। अनुकूल सक्रमण की जानकारी उस समय होती है जबकि रोगी चिकित्सक के प्रति स्वतन्त्र रूप से वार्तालाप करता है, उसके प्रति विश्वास प्रकट करता है तथा शीघ्र ही उससे मुलाकात करने के लिए पहुँच जाता है, चिकित्सक के समीप रहने व बैठने का प्रयास करता है तथा अपनी वस्तुओ को भूल जाता है जिससे कि उन्हे दोबारा लेने के लिए वापस आ सके।

(2) **प्रतिकूल संक्रमण** (Negative Transference)—रोगी प्रतिकूल संक्रमण के अन्तर्गत चिकित्सक के प्रति विरोधी या विपरीत भावनाओ को प्रकट करता है। इस प्रकार के सक्रमण का विकास तब होता है जबकि चिकित्सक रोगी के कष्टदायक क्षेत्रो के बारे मे जाँच-पडताल करता है। इससे रोगी चिढ जाता है तथा इस प्रकार के सक्रमण का जन्म हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप रोगी की मनोवृत्ति तथा व्यवहार मे स्पष्ट परिवर्तन आ जाता है। रोगी चिकित्सक मे मुलाकात करने के लिए देर से आता है तथा प्रतिकूल व्यवहार प्रकट करता है।

(3) **प्रति-संक्रमण** (Counter-transference)—इस प्रकार का सक्रमण तब होता है जब रोगी के साथ चिकित्सक की सवेगात्मक आसक्ति हो जाती है। जो चिकित्सक कुशल होता है, वह प्रति-सक्रमण को पहचान लेता है तथा उसको नियन्त्रण करने का प्रयत्न करता है।

(ख) **स्वप्न-विश्लेषण** (Dream-analysis)—फ्रॉयड ने मनोविश्लेषण के अन्तर्गत रोगी के स्वप्नो के विश्लेषण पर अत्यधिक जोर दिया है, क्योकि इसके विश्लेपण से अचेतन के सम्वन्ध मे महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। फ्रायड के मतानुसार स्वप्न का सम्वन्ध अचेतन की दमित इच्छाएँ होती है। क्योकि दमित इच्छाओ का अचेतन मे अस्तित्व समाप्त नही होता वल्कि वे अवसर ढूँढती रहती हैं तथा मौका आने पर तुष्टि चाहती है तथा स्वप्न उसकी तुष्टि का साधन होता है। इस प्रकार स्वप्न मे दमित इच्छाओ की पूर्ति होती है, इसी कारण फ्रायड के सिद्धान्त को 'इच्छा-पूर्ति का सिद्धान्त' भी कहा जाता है।[1]

---

1. फ्रायड के स्वप्न सम्बन्धी विचारो के लिए अध्याय 13–'**स्वप्न व स्वप्न सिद्धान्त**' देखिए।

(1) स्वप्न प्रतिबन्धक (Dream Censor)

फ्रायड के अनुसार, जाग्रतावस्था मे चेतन, अचेतन व अवचेतन के बीच आदर्श भावना एक प्रतिबन्धक के रूप मे कार्य करती है, जिसके फलस्वरूप अनैतिक, अनुचित एव असामाजिक विचार व इच्छाएँ चेतना में नही आ पाती तथा उनका दमन हो जाता है। दमन हो जाने पर ये इच्छाएँ अचेतन मे चली जाती हैं जहाँ वे निष्क्रिय होकर नही बैठती बल्कि समय-समय पर चेतना मे आने का प्रयास करती हैं। निद्रावस्था मे प्रतिबन्धन का भय कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप ये इच्छाएँ स्वप्न के रूप मे अभिव्यक्त होती हैं। ये दमित इच्छाएँ असली रूप से प्रकट न होकर छद्म रूप मे प्रकट होती हैं। प्लेटो ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है—"जिन कार्यों को पापी अपने वास्तविक जीवन मे करते हैं, उन्हीं कार्यों का स्वप्न देखकर लोग सन्तोष करते हैं।"

(2) स्वप्न विषय (Deam Contents)

फ्रायड के मतानुसार स्वप्न-विचरण (dream formation) के पीछे मुख्यत दो प्रकार की मानसिक प्रवृत्तियाँ (psychic tendencies) क्रियाशील रहती हैं—

1. वह मानसिक प्रवृत्ति जिनके माध्यम मे अचेतन में दमित इच्छाओ की स्वप्न में पूर्ति होती है।
2. दूसरी प्रकार की मानसिक प्रवृत्ति दमित अतृप्त इच्छा को असली रूप में प्रकट होने मे प्रतिरोध (resistance) उत्पन्न करती है।

व्याख्या व पुर्नशिक्षा
(Interpretation and Re-education)

इस प्रकार मनोविश्लेषण के आरम्भिक स्तर पर चिकित्सक रोगी से साक्षात्कार करता है तथा प्रारम्भिक सूचनाओ का संकलन करता है। मुक्त साहचर्य विधि मे रोगी के अतीत जीवन, अचेतन एवं अन्तर्द्वन्द्व को जानने का प्रयास करता है। उसे इस क्रम मे अवरोध व सक्रमण दो कठिनाइयो का सामना करना पडता है परन्तु कभी-कभी इन कठिनाइयों से भी उसे उपचार करने मे सहायता प्राप्त होता है। जैसे प्रतिरोध के माध्यम मे अन्तर्द्वन्द्व व सक्रमण के विश्लेषण से सवेगात्मक असमायोजन (emotional maladjustment) के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त होती है। स्वप्न-विश्लेषण मे उसे रोगी की अचेतन इच्छाओ की जानकारी होती है। परन्तु इतना हो जाने के बाद भी उसका कार्य समाप्त नही होता। क्योंकि उसका उद्देश्य तो रोगी के अन्तर्निहित गत्यात्मक स्वरूप का पता लगाना है तथा रोगी को रोग मुक्त कराना है। चिकित्सक को चाहिए कि वह उपयुक्त अवसर पर रोगी को उसकी अचेतन की दमित इच्छाओ, अनुभूतियो, भावो या लक्षणो की जानकारी दे तथा उसकी

1. "Saints content themselves with dreaming what the sinners do in their actual life."—*The Republic of Plato.*

उपयुक्त व्याख्या प्रस्तुत करे। रोगी को उसके रहस्यो को अवगत कराने से बड़ी राहत प्राप्त होती है क्योकि उसे अपने रोग के वास्तविक कारणो का ज्ञान हो जाता है तथा वह इन्हे दूर करने की स्थिति मे आ जाता है। इस तरह रोगी को पुन शिक्षण (re-education) दिया जाता है। चिकित्सक उस समय की खोज मे रहता है जिस समय कि वह रोगी के सामने अपने विचारो को व्यक्त करता है। मनोविश्लेषक की व्याख्या के दो रूप होते है—(1) इसमे चिकित्सक रोगी को उसके सवेगो के स्वरूप, कारण आदि को समझाता है। (2) चिकित्सक रोगी को उसकी ही अचेतन मनो-रचनाओ के सम्बन्ध मे समझाता है जिससे कि रोगी यह समझ सके कि उसका व्यवहार क्यो असामान्य हो गया था।

(2) मनोजैविक चिकित्सा
(Psychobiological Theraphy)

एडॉल्फ मेयर (Adolf Meyer) तथा इसके अन्य साथियो ने इस चिकित्सा पद्धति का प्रतिपादन किया। इस पद्धति के माध्यम से असामान्यता के जैविक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक कारको का विश्लेषण किया जाता है। अन्य शब्दो मे, इस प्रविधि के माध्यम से रोगी की कठिनाइयो को समग्र रूप से समझ कर तथा उससे प्राप्त ज्ञान के आधार पर रोगी का सश्लेषण (synthesis) किया जाता है। इस प्रकार की प्रविधि मे रोगी से प्राप्त सामग्री के विश्लेषण के आधार पर जीवन-चार्ट बनाया जाता है तथा चिकित्सक इसकी सहायता से रोग के लक्षणो को समझने का प्रयास करता है। मनोजैविक चिकित्सक की एक मुख्य विशेषता यह होती है कि इसमे रोगी तथा चिकित्सक—दोनो सक्रिय रूप से भाग लेते है। रोगी का मुख्य कार्य चिकित्सक को पूर्ण सहयोग देना होता है तथा चिकित्सक का मुख्य कार्य रोगी को सक्रिय रूप से निर्देशित करना होता है। इस प्रविधि के माध्यम से रोगी के समग्र व्यक्तित्व को सुधारना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चिकित्सक किसी भी साधन को अपना सकता है।

(3) व्यवहार या क्रिया चिकित्सा
(Behaviour or Action Therapy)

इस प्रकार की चिकित्सा प्रविधि का विकास रूपी शरीर-शास्त्री **पावलॉव** (Pavlov) के सिद्धान्तो के आधार पर हुई है। इस चिकित्सा-पद्धति की मुख्य मान्यता निम्न है :—

(अ) असामान्य व्यवहार इसलिए उत्पन्न होता है कि व्यक्ति पूर्ण समायोजित व्यवहार या प्रतिक्रियाओ को नही सीख पाता है।

(ब) एक स्थिति मे रोगी जो अनुपयुक्त चिन्ताजनक प्रतिक्रियाएँ सीखता है, उनका सामान्यीकरण होने के कारण अन्य स्थितियो पर भी प्रभाव पडता है।

इस प्रकार की चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य रोगी को सही प्रतिक्रियाओ से

अवगत कराना है या उन्हे सीखने की सुविधा प्रदान करना है जिससे वे छूटी हुई प्रतिक्रियाओ को सीख सके तथा अनुपयुक्त एव असमायोजित प्रतिक्रियाओ को छोडकर समायोजित प्रतिक्रियाओ को ग्रहण करे। इस प्रक्रिया के पीछे सम्बद्ध प्रत्यावर्तन (conditioning reflex) प्रविधि को अपनाया जाता है। प्रो० आइजिन्क (Prof Eysenck) के अनुसार; "व्यवहार चिकित्सा मानव-व्यवहार व संवेगों को सीखने के नियमो के आधार पर लाभदायक तरीको मे परिवर्तन करने का प्रयास है।"[1]

कोस्टेल (Costell) के अनुसार, इस पद्धति की आधारभूत बातें निम्न हैं—

(1) रोगी के व्यवहार का कारण या तो सीखे हुए अनुपयुक्त व्यवहार का परिणाम है या उपयुक्त व्यवहार को सीखने मे असफल हो जाना है।

(2) सम्बद्ध प्रतिक्रियाओ के निर्माण मे तीव्रता व दृढता पर व्यक्तिगत भिन्नताओ का प्रभाव पड़ता है।

(3) अगर उन परिस्थितियो को ही समाप्त कर दिया जावे जिनसे कि असामान्य व्यवहार उत्पन्न हुआ था, तो मनस्ताप ही समाप्त हो जाता है।

(4) व्यवहार उपचार पद्धति मुख्य रूप से हल (Hull), स्किनर (Skinner) व मॉवरर (Mowrer) के सीखने के सिद्धान्तो पर आधारित है।

(5) चिकित्सक इस पद्धति मे मुख्य रूप से रोग के विकास की ओर ध्यान न देकर वर्तमान असमायोजित व्यवहार विशेषताओ के निराकरण पर अधिक ध्यान देता है।

(6) असामान्य व्यवहार को व्यक्ति केवल बाल्यावस्था मे ही नही सीखता बल्कि बाद की आयु मे भी सीख सकता है।

(7) इस प्रकार की चिकित्सा पद्धति मे यह प्रयास किया है कि रोगी पुरानी आदतो को छोडता जावे तथा नवीन समायोजनपूर्ण आदतो को सीख ले।

व्यवहार या क्रिया चिकित्सक अपनी चिकित्सा प्रक्रियाओ मे क्लासिकी सम्बद्धन (classical conditioning), नैमित्तिक अधिगम (instrumental learning) व क्रिया प्रसूत अनुबन्धन (operant conditioning) के नियमो का उपयोग करते है इस प्रकार की प्रविधियो के पीछे मूल भावना यह होती है जो व्यवहार विकार के लक्षण पहले सीखे गए थे, उन्हे उपयुक्त प्रशिक्षण विधियो के माध्यम से विस्मृत या समाप्त किया जा सकता है। रोगी के व्यवहार मे परिवर्तन कर देने से उसके समायोजन मे कठिनाई नही होती तथा वे अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सन्तोष के साथ क्रियाएँ करते है। सक्षेप मे, इस प्रकार की प्रविधियो का वर्णन हम आगे प्रस्तुत कर रहे हैं—

---

1. "Behaviour therapy is an attempt to alter human behaviour and emotions in a beneficial manner according to the laws of learning theory."—H. J. Eysenck.

(1) क्लासिकीय सम्बद्धन प्रविधियाँ (Classical Conditioning Techniques)—क्रिया या व्यवहार चिकित्सा की यह प्रमुख विधि है। यह एक प्रकार का प्रति-सम्बद्धन (counter-conditioning) है। इस प्रकार की प्रविधि का मूलाधार यह है कि विकृत व्यवहार (disordered behaviour) से सम्बन्धित उद्दीपक एक विशेप सेट (set) या उद्दीपक स्थिति के साथ अनुबन्धित हो जाते है जिन्हे अगर उन्ही अनुक्रियाओ के साथ अनुबन्धित कर दिया जावे तो रोगी ठीक हो सकता है। रेमण्ड[1] (Raymond) ने इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण प्रस्तुत किया है—

एक रोगी को फीटिश (fetish) हो गया था जिसके कारण वह बच्चो की गाडियो या स्त्रियो के हैण्डबैगो को देखकर कामुक हो जाता था। वह जब हैण्डबैगो की कल्पना करता था तभी अपनी स्त्री के साथ उचित प्रकार से मैथुन कर पाता था। फीटिश उसके लिए एक समस्या बन गई थी क्योकि वह प्राय बच्चो की गाडियो पर हमला कर देता था। इस रोगी का उपचार क्रिया चिकित्सा के द्वारा किया गया जिसमे हैण्डबैगो तथा बच्चो की गाडियो को सम्बद्धन उद्दीपक (conditioned stimuli) के रूप मे उपयोग किया गया। रोगी को उद्दीपक दिखाने से पूर्व एक ऐसा इन्जेक्शन दिया जाता था कि उसे मिचली आने लगे। इस प्रकार के कार्य के पीछे यह उद्देश्य था कि लैंगिक उत्तेजना उत्पन्न करने वाली वस्तुओ की उपस्थिति को मिचली (nausa) के साथ अनुबन्धित किया जाए। इस उपचार से फिटिश को हटाने मे काफी सहायता मिली। इस उपचार के कुछ समय के उपरान्त रोगी हैण्डबैगो एव बच्चो की गाड़ियो का हवाला देते हुए कहता था कि "इनको ले जाओ।" इस प्रकार के अनुबन्धन से कामुक अनुक्रिया द्वेषपूर्ण हो गई। प्राय इस प्रकार की प्रति-अनुबन्धन चिकित्सा को द्वेष चिकित्सा (aversion therapy) कहते है।

(2) नैमित्तिक अधिगम, क्रिया-प्रसूत सम्बद्धन प्रविधियाँ (Instrumental Learning, Operent Conditioning Techniques)—इस प्रकार की प्रविधियो मे पुनर्बलन (reinforcement) के माध्यम से व्यवहार मे परिवर्तन किया जाता है। निम्न उदाहरण के द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि नैमित्तिक या क्रिया-प्रसूत प्रविधियो के द्वारा व्यवहार मे परिवर्तन किया जा सकता है।

एक मनोविदलता (schizophrenia) से पीडित स्त्री, जो कि 9 वर्षों से अस्पताल मे भरती थी, उसका उपचार इस पद्धति के द्वारा किया गया। उसमे अनेक विपथ व्यवहार (deviant behaviour) थे, जैसे, अत्यधिक भोजन करना, भोजन चोरी करना, तौलिये जमा करना, 25 पौण्ड तक के कपडे पहनना आदि। क्रिया-प्रसूत सम्बद्धन के माध्यम से इन सभी व्यवहारो को दूर करने का प्रयास किया गया। उदाहरणार्थ, अत्यधिक कपडे पहनने सम्बन्धी व्यवहार को परिवर्तन करने के लिए रोगी को कपड़े

---

1 **Raymona, M J** *Case of Setishism Treated by Aversion Therapy* —Brit. Meo. J., 1956, 257-854.

पहना कर भोजन देने से पूर्व तौला जाता था तथा इस वजन मे से उसके शरीर के वास्तविक वजन को कम कर दिया जाता था। इस प्रकार की क्रिया करने का उद्देश्य कपडो का वजन निर्धारित करना था। रोगी को भोजन देना या न देना इस बात पर निर्भर था कि वह अतिरिक्त कपडा कितना पहनती थी। सबसे पहले चिकित्सक ने स्त्री को 23 पौण्ड कपडे पहनने को कहा। अगर वह इस वजन से अधिक कपडे पहन लेती थी तो उसे भोजन नही दिया जाता था। धीरे-धीरे उसने 23 पौण्ड के वजन के कपड़े पहनना प्रारम्भ कर दिया। चिकित्सक ने इसके उपरान्त कम कपडे पहनने को कहा। धीरे-धीरे स्त्री ने आवश्यकता से अधिक कपडें पहनना छोड़ दिया।

इस प्रकार की चिकित्सा मे एक प्रमुख कमी यह है कि रोग जड़ से समाप्त नही होता बल्कि दु खद लक्षणो मे अवश्य ही सुधार आ जाता है। इस प्रकार की चिकित्सा से अनेक प्रकार के मनोविक्षिप्त विकारो को अपेक्षाकृत अन्य चिकित्सा प्रविधियो से अधिक सफलतापूर्वक उपचार सम्भव है।

मनश्चिकित्सा की विशिष्ट प्रविधियाँ
(Specified Techniques of Psychotherapy)

(1) सम्मोहन चिकित्सा (Hyphnotherapy)

सम्मोहन उस गहन निर्देशनशीलता की अवस्था को कहते है, जिसमे सम्मोहित व्यक्ति ऐसी मोह-निद्रा की अवस्था मे आ जाता है जहाँ कि उसे तात्कालिक चेतना का ज्ञान नही होता। दूसरे शब्दो मे, उसकी चेतना केवल सम्मोहक के निर्देशानुसार ही कार्य करती है। जब वह व्यक्ति सम्मोहन की अवस्था से वापस आता है तब उसे सम्मोहनावस्था मे दिए गए निर्देश या सुझाव स्मरण नही होते। जब व्यक्ति सम्मोहन की अवस्था मे होता है तो कुछ ऐसी गत स्मृतियो को व्यक्त करता है जिसका ज्ञान उसे चेतनावस्था मे नही होता।

सम्मोहन का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन **ऐन्टन मेस्मर** (Anton Mesmer : 1733-1815) मे प्रस्तुत किया। मेस्मर ने यह देखा कि अगर रोगी को चुम्बक की सहायता से छुआ जाय तो वह काफी आराम का अनुभव करता है। आज यह बात पूर्णत सत्य है कि रोगी को चुम्बक से आराम नही मिलता था बल्कि चुम्बक को शरीर से छुआते समय जो निर्देश दिया जाता था, उसका रोगी पर काफी प्रभाव पड़ता था। लेकिन मेस्मर ने चुम्बक के आधार पर यह निष्कर्ष ज्ञात किया कि प्रत्येक व्यक्ति मे एक चुम्बकीय शक्ति होती है जिसका अगर वह ठीक ढग से उपयोग करे तो उससे दूसरे व्यक्ति भी प्रभावित हो सकते हैं। मेस्मर ने सन् 1778 मे पेरिस मे फ्रास एकादमी के सम्मुख अपनी इस विधि का प्रदर्शन किया जिसके फलस्वरूप इस **मेस्मेरिज्म** को काफी ख्याति मिली। लेकिन अनेक चिकित्सको ने मेस्मर के विरुद्ध लेख लिखे तथा मेस्मर के कार्य का विरोध किया।

इङ्गलैण्ड के जेम्स ब्रेड (James Braid 1795-1860) ने मेस्मेरिज्म द्वारा उत्पन्न मोहनिद्रा को सम्मोहन का नाम दिया। इस प्रकार मेस्मर की विचार-धारा का समर्थन जेम्स ब्रेड के द्वारा मिलने पर 19वी शताब्दी के प्रारम्भ तक सम्मोहन का काफी प्रचलन रहा। लन्दन विश्वविद्यालय के जॉन इलियटसन (John Elliotson, 1791-1868) ने सम्मोहन द्वारा अग-शून्यता पर तथा भारत मे जेम्स इसडेल (James Esdaille 1808-1859) ने अनेक कठिन आपरेशन किए। फ्रांस के लीबॉल्ट (Lieubault 1823-1904) तथा बर्नहीम (Bernheim : 1840-1919) ने भी सम्मोहन का उपयोग चिकित्सा-कार्य मे किया। इसमे अनुसन्धानो द्वारा यह ज्ञात हुआ कि सम्मोहन एव क्षोभोन्माद (Hyponsis and Hysteria) मे गहरा सम्बन्ध है क्योकि दोनो ही निर्देश (suggestion) से सम्बन्धित है। शार्कों (Charcot, 1825-1893) ने पहले तो इस मत को स्वीकार नही किया परन्तु बाद मे यह स्वीकार कर लिया कि क्षोभोन्माद (उन्माद) की चिकित्सा मे सम्मोहन की उपयोगिता है। उसने अपनी चिकित्सा-प्रणाली मे भी सम्मोहन का उपयोग किया।

इस विधि मे सर्वप्रथम रोगी को एक आराम-कुर्सी पर बैठा दिया जाता है और उसमे एक ग्रहणात्मक मानसिक स्थिति उत्पन्न की जाती है तथा सम्मोहनकर्त्ता कुछ मौखिक सकेत देता है। कुछ मौखिक सकेत इस प्रकार के होते है, जैसे—आप 20 तक की गिनती गिनिये। इसके बाद आपको नीद आ जायेगी या दूसरे प्रकार से मेट्रोनोम की आवाज पर अपना ध्यान केन्द्रित कीजिए। कुछ समय के बाद जब आपको नीद आये तो सो जाइये। फ्रायड अपने रोगी को इस प्रकार का सकेत देता था कि आराम से बैठ जाइये तथा उस पहली अवस्था पर अपने ध्यान को केन्द्रित करने की कोशिश कीजिए जिनके द्वारा पहली बार आपको यह रोग हुआ था। मेस्मर अपनी चिकित्सा-प्रणाली मे एक छडी का प्रयोग करता था और रोगी से यह कहता था कि छूते ही तुम्हारा रोग दूर हो जायेगा। कुछ चिकित्सक अपने मौखिक सकेत इस प्रकार देते है, जैसे—तुम्हे शीघ्र ही निद्रा आ जायेगी, हाथ-पैर शिथिल हो जायेंगे, समस्त शरीर मे थकावट आ जायेगी, पलकें भारी हो जायेंगी। जैसे ही रोगी के अन्दर यह कारण उत्पन्न होना शुरू होता है, चिकित्सक यह कहना प्राप्त करता है कि अब मैं तुमको छूने जा रहा हूँ तथा मेरे छूते ही तुम्हे नीद आ जायेगी। इस प्रकार थोडे समय मे ही व्यक्ति सम्मोहन की अवस्था मे पहुँच जाता है।

सम्मोहन विधि की एक मुख्य विशेषता यह होती है कि सम्मोहित अवस्था मे दिये गये निर्देशो का रोगी चेतन अवस्था मे आ जाने पर भी पालन करता है—सम्मोहन की अवस्था मे सम्मोहित व्यक्ति साधारणतया सोये हुए व्यक्ति जैसा प्रतीत होता है। इस विधि की सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि चिकित्सक मे सम्मोहन उत्पन्न करने की क्षमता तथा आत्मविश्वास होना चाहिए। मनोचिकित्सा विधि मे सम्मोहन का प्रयोग दमित स्मृतियो के पुन स्मरण, अगशून्यता दूर करने, निद्रा लाने और मद्यपान की इच्छा दबाने मे सहायक होती है। सम्मोहन विधि के

द्वारा स्मृति कारणो से पीडित क्षोभोन्माद के रोगियो का उपचार किया जाता है। सम्मोहन की दशा मे रोगी नष्ट अथवा दमित स्मृतियो को सरलता से वर्तमान चेतना मे लाता है। सम्मोहन अवस्था मे दिये गये सकेतो के द्वारा क्षोभोन्माद के अन्य लक्षणो, जैसे—वाकहीनता, बहरापन आदि का उपचार सम्भव है।

सम्मोहन विधि की आलोचना (Criticism of Hypnotherapy)

वैसे सम्मोहन द्वारा चिकित्सा-जगत् मे आश्चर्यजनक परिणाम निकाले गये लेकिन फिर भी इस विधि के विरुद्ध अनेक दोप लगाये गये हैं।

(1) कुछ आलोचको के अनुसार, सम्मोहन विधि का उपचार केवल बाहरी स्तर पर हो सकता है। इसके द्वारा आन्तरिक संघर्ष को दूर नहीं किया जा सकता।

(2) कुछ आलोचक यह कहते हैं कि इस विधि का केवल मानसिक रोगियो तक इलाज सम्भव है।

(3) सम्मोहन विधि के विरुद्ध एक अन्य आक्षेप यह लगाया है कि कुछ मानसिक रोगी सम्मोहनकर्ता पर यह कहते दिखाई पडते हैं कि उसने सम्मोहन की दशा मे उनके मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डाला था, उनके साथ अनैतिक व्यवहार किया।

(2) क्रीड़ा या उन्मोचन
(Play or Release Therapy)

क्रीड़ा चिकित्सा मे रोगी को इस प्रकार के खेल खिलाये जाते है जिनसे उनकी रचनात्मक शक्ति के विकास करने का समुचित अवसर मिलता है तथा इन खेलो के द्वारा उनकी मानसिक प्रवृत्तियो को अभिव्यक्त कराने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार की चिकित्सा के लिए विभिन्न प्रकार के खेल के साधन, जैसे—गुड़िया, कठपुतलियाँ तथा अन्य प्रकार के खिलौने आदि का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की पद्धति का उपयोग कम आयु वाले रोगियो या बच्चो पर किया जाता है। मनोचिकित्सक इसके माध्यम से बच्चे की पारिवारिक स्थितियों का अध्ययन करता है तथा उनकी समस्याओ का समाधान करने मे सहायता प्रदान करता है।

क्रीड़ा चिकित्सा व्यक्तित्व अध्ययन-क्षेत्र मे काफी उपयोगी सिद्ध हुई है। जो बच्चे अपने दु खी व त्रस्त जीवन के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से कुछ नही बता पाते, वे खेल के विभिन्न प्रकार के खिलौनो के माध्यम मे आन्तरिक भावनाओ को आसानी से प्रकट कर देते हैं। क्योकि क्रीड़ा मे बच्चा अपने आप को सुरक्षा व अनुज्ञा (permissiveness) की स्थिति मे पाता है अत बिना प्रतिशोध के भय से अपनी भावनाओ को व्यक्त करता है जिसमे कि उसके तनाव दूर हो जाते हैं।

(3) मनो-अभिनय
(Psycho-drama)

मनो-अभिनय विधि मे रोगियो के मानसिक सघर्ष को जानने के बाद उसे नाटक मे इस प्रकार के अभिनय की भूमिका दी जाती है जिससे कि वह ठीक ढग से

अपने मानसिक संघर्ष को समझ सके। इस विधि का प्रारम्भ सबसे पहले 'मुरेनो' (Moreno) नामक मनोवैज्ञानिक ने किया था। इस विधि की मुख्य विशेषता यह होती है कि रोगी अभिनय की भूमिका इच्छानुसार चयन करता है तथा अपनी इच्छा से क्रोध, हर्ष, द्वेष, घृणा या संघर्ष को व्यक्त करने की कोशिश करता है। इस अभिनय के कारण उसका दमित संवेग अभिव्यक्त हो जाता है तथा मन को शान्ति मिल जाती है।

इस प्रकार की विधि के अन्तर्गत रोगी को इस प्रकार का प्रोत्साहन दिया जाता है कि वह नियन्त्रित पर्यावरण मे मंच के ऊपर जाकर अपनी कठिनाइयों व संघर्षों का अभिनय करे। रोगी नाटक की प्रक्रिया के माध्यम से अपनी प्रेरणाओ, संघर्षों व रक्षायुक्तियो को अभिव्यक्त करता है। इसके दो रूपान्तर (variant) पाये जाते है। प्रथम वह नाटक जिसमें सम्मोहन या स्वापक (narcosis) का प्रयोग किया जाता है। रोगी को या तो सम्मोहित कर दिया जाता है या स्वापक भेषज (drugs) प्रदान करके अभिघातज (traumatic) घटनाओं या संघर्षों का नाटक करवाया जाता है। नाटक के इस रूपान्तर मे चिकित्सक अन्य व्यक्ति से सक्रिय रूप से भाग लेता है। वॉलवर्ग (Wolberg) का मत है कि नाटक के इस रूपान्तर से रोगी के सम्बन्ध मे ऐसी अनेक अभिघातज घटनाओ का पता चल जाता है जिन्हे सचेत अवस्था मे कदापि नही जाना जा सकता। नाटक के द्वितीय रूपान्तर मे वह कार्य-क्रीड़ा का चयन कर लिया जाता है जिसमे रोगी को कार्य करने के लिए कहा जावे।

(4) अंगुल चित्र
(Finger Painting)

इस विधि मे विभिन्न प्रकार के रगो के माध्यम से रोगियो के इच्छानुसार चित्र बनाने को कहा जाता है जिसके अनुसार उसके संवेगों तथा मानसिक संघर्षों का पता लगाया जा सकता है।

(5) व्यावसायिक चिकित्सा
(Occupational Therapy)

व्यावसायिक चिकित्सा वह मनोवैज्ञानिक प्रविधि है, जिसमें रोगी विभिन्न छोटे-छोटे उद्योग-धन्धो मे लगा दिया जाता है। संवेगो की अभिव्यक्ति एवं रोगी में आत्मबल उत्पन्न करने के लिए इस प्रकार का उपचार लाभदायक होता है। चित्रकारी, भवन-निर्माण, लुहार, बढईगीरी आदि कार्यों को करने से रोगी में आत्मविश्वास उत्पन्न होता है तथा वह समायोजित व्यवहार करने का प्रयत्न करता है। कुछ व्यवसायों मे रोगी अपने संवेगो की मनोग्रन्थियो को भी अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करता है। जैसे— असफल प्रेम को चित्रकारी व भवन-निर्माण मे, दमित क्रोध को हथौडा चलाने, लकड़ी काटने आदि में तथा घृणा को कपड़े धोने व सफाई आदि मे व्यक्त कर सकता है जिससे ये संवेगात्मक मनोग्रन्थियाँ दूर हो जाती हैं।

(6) सामूहिक चिकित्सा
(Group Therapy)

यह वह मनश्चिकित्सा है जिसमे अनेक रोगी एकत्र होते है तथा चिकित्सक से अपनी समस्याओ के बारे मे वर्णन करते है। अन्य शब्दो मे, इस प्रकार की चिकित्सा मे सामूहिक रूप से चिकित्सा की जाती है। इस विधि का विकास न्यूयार्क के एस० आर० स्लेवसन (S. R Salvson) को है। चिकित्सक इस प्रकार की चिकित्सा मे रोगी के अन्य सामाजिक व्यक्तियो से सम्वन्ध की जानकारी करता है। मानसिक रोगियो को आपस मे मिलने-जुलने का अवसर दिया जाता है तथा चिकित्सक इनके सामूहिक व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। द्वितीय महायुद्ध के समय इस प्रकार की चिकित्सा-पद्धति को विशेष स्थान प्राप्त था। इस विधि से रोगी की भावुकता, व्यक्तित्व व आन्तरिक शक्तियो का सूक्ष्म निरीक्षण करना वडा ही आसान होता है। सामूहिक विधियो के विकास का एक मुख्य कारण यह भी है कि इस विधि के द्वारा कम चिकित्सको के द्वारा अधिक से अधिक रोगियो का उपचार सम्भव है। सक्षेप मे इस विधि का दो मुख्य कारणो से अत्यधिक महत्त्व है—(1) समय व व्यय मे वचत होती है, (2) चिकित्सक रोगियो की क्रियाओ आदि का स्वाभाविक रूप से निरीक्षण कर सकता है। इस पद्धति का विकास क्रमिक रूप से हुआ है। इस पद्धति मे चिकित्सक रोगियो का एक छोटा-सा समूह वनाता है तथा फिर उपचार करना आरम्भ करता है। सामूहिक चिकित्सा के मुख्य प्रकार निम्न हैं —

(अ) क्रियात्मक सामूहिक चिकित्सा (Active Group Theraphy)—इस प्रकार की चिकित्सा पद्धति मे चिकित्सक रोगी को अनेक कार्यो मे लगा देता है जिससे वह क्रियाशील रहता है। इस प्रकार क्रियाशील होने पर रोगी अपनी दमित इच्छाओ, भावनाओ आदि को जाने-अनजाने मे इन क्रियाओ के माध्यम से प्रकट करते हैं। इस प्रकार क्रियाशील होने पर एक फायदा यह भी है कि धीरे-धीरे इन क्रियाओ मे अभ्यस्त हो जाता है तथा समस्यात्मक फालतू वातो को भूलते जाते हैं और समायोजित होने लगते है।

(ब) मौखिक सामूहिक चिकित्सा (Verbal Group Therapy)—इस प्रकार की चिकित्सा मे चिकित्सक रोगी को मनोरचनाओ (mental mechanism) व समायोजन पर लेक्चर देते है। लेक्चर सुनने के वाद चिकित्सक व रोगियो मे वाद-विवाद आरम्भ हो जाता है जिससे रोगी को भावात्मक समस्याओ से छुटकारा प्राप्त हो जाता है।

(6) आघात चिकित्सा
(Shock Therapy)

इस प्रविधि के प्रवर्त्तक वियेना के डॉक्टर मेनफरल सेकल (Manfaral Sakal) है। इस विधि के माध्यम से मनोविक्षिप्तो के मस्तिष्क मे आघात दी जाती

है जिसका उद्देश्य विगत अनुभूतियो को रोगी के स्मृति-पटल से दूर करना होता है। आघात चिकित्सा के प्रमुख रूप निम्न हैं .—

(i) **विद्युत आघात-चिकित्सा** (Electro-Shock Therapy)—इस प्रविधि का प्रचलन करने का मुख्य श्रेय **सरलेट्टी व बिनी** (Sarletti and Bini) को है। इन्होने कृत्रिम रूप से ऐंठनयुक्त मूर्च्छा अवस्था (convulsive seizures) उत्पन्न करने के लिए इस विधि का उपयोग किया। इस विधि मे मस्तिष्क पर आघात पहुँचने के लिए विद्युतधारा का उपयोग किया जाता है। रोगी को आघात देने से पूर्व आराम प्रदान करने के उद्देश्य से कुरारे (curare) का प्रयोग किया जाता है। रोगी के दाँत टूटने व जीभ कटने से बचाने के लिए मुँह मे रवड का टुकडा रख दिया जाता है। रोगी के मस्तिष्क के दोनो ओर विद्युदग्र (electrodes) बाँध कर 300 से 1200 मिली एम्पियर की विद्युतधारा मस्तिष्क के कॉरटेक्स (cortex) मे केवल 0 2 से 0·5 सेकण्ड तक प्रवाहित की जाती है। एक सप्ताह मे इस प्रकार के विद्युत आघात 2 या 3 वार दिये जाते है। इस प्रकार की चिकित्सा से रोगी को अन्तर्द्वन्द्व से बचाया जाता है। इस प्रकार के आघातो से रोगी अप्रिय व दु खद अनुभूतियो को भूल जाता है जिससे उसकी सवेगात्मक कठिनाइयाँ कम हो जाती है। जिन रोगियो मे तीव्र सवेगशीलता विद्यमान होती है, उन्हे अपेक्षाकृत यह आघात अधिक लाभदायक सिद्ध होते है। उत्साह-विषाद से पीडित रोगी के उपचार के लिए भी यह पद्धति लाभदायक सिद्ध हुई है। 68% कैटाटॉनिक मनोविदलता के रोगियो का उपचार इस चिकित्सा पद्धति से सम्भव है। इस प्रकार की चिकित्सा मे रोगी तथा उसके सम्बन्धी अत्यधिक भयभीत होते है परन्तु उन्हे भय करने की आवश्यकता नही होनी चाहिए। **कोलमैन** का मत है कि 400 रोगियो मे से औसतन केवल एक रोगी की ही मृत्यु इस पद्धति के द्वारा होती है।

(ii) **मधुसूदनी या इन्सुलिन आघात चिकित्सा** (Insulin Shock-Therapy)—इसे 'इन्सुलीन कोमा थेरपी' (Insulin Coma Therapy) भी कहते है। इस चिकित्सा के प्रचलन का श्रेय **सकेल** (Sakel 1933) को है। मधुसूदनी (insulin) के माध्यम से रोगी को सुस्त कर दिया जाता है। इन्जेक्शन के द्वारा रोगी को मधुसूदनी का प्रवेश कराया जाता है तथा मधुसूदनी रक्त मे प्रविष्ट होते ही सुगर (sugar) की कमी उत्पन्न कर देती है जिससे रोगी का मस्तिष्क शिथिल हो जाता है तथा इस प्रकार की चिकित्सा से रोगी के मानसिक तनावो मे कमी आ जाती है।

सामान्य रूप से प्रथम दिन रोगी को प्रात काल 20 यूनिट की मात्रा का इन्सुलिन इन्जेक्शन लगाया जाता है। इसके बाद प्रतिदिन इसकी मात्रा दुगुनी कर दी जाती है तथा यह निरन्तर वृद्धि तब तक की जाती है जब तक कि रोगी सज्ञाहीन अवस्था मे न आ जावे या 1,000 यूनिट तक इन्सुलिन मात्रा न पहुँच जावे। सज्ञाहीन

स्थिति की पहिचान इस प्रकार की जाती है कि इस अवस्था मे रोगी उत्तेजनाओ के प्रति प्रतिक्रिया नही करता। रोगी को अगर सुई को चुभोने या आँख को छूने पर किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया न हो तो यह समझना चाहिए कि वह सज्ञाहीन स्थिति मे है। प्रतिदिन यही क्रिया की जाती है। सज्ञाहीन अवस्था से उठते ही रोगी सामाजिकता का व्यवहार करने लगता है।

इस प्रकार की चिकित्सा से कम जटिल मनोविकृतियो (psychoses) का उपचार लाभदायक सिद्ध होता है।

(iii) **मेट्राजॉल आघात पद्धति** (Metrazol Shock Therapy)—1935 मे वान मेडुना (Van Meduna) जब मनोविदलता के रोगियो का उपचार कर रहा था तो उसने यह निरीक्षण किया कि इस प्रकार के रोगियो को मूर्च्छा या मिरगी कम आती है तथा अगर इन्हे ये दौरे पडने लगे तो अस्थायी रूप से मनोविदलता का रोगी ठीक हो जाता है। कृत्रिम रूप से मिरगी के दौरे के लिए प्रारम्भ मे उसने कपूर का प्रयोग किया परन्तु बाद मे मेट्राजाल का प्रयोग किया। मेट्राजाल का इन्जेक्शन (3 से 5 C. C तक) प्रात काल रोगी को लगाया जाता है जबकि उसने कुछ भी न खाया हो। इस इन्जेक्शन के लगाने के बाद रोगी पीला पड़ जाता है फिर भी अचेत-सा होकर मिरगी के लक्षण प्रस्तुत करता है। यह स्थिति 30 से 60 से० तक होती है। सम्पूर्ण उपचार मे 30 मे 60 इन्जेक्शन लगते हैं। इस पद्धति मे प्रमुख दोष यह है कि इसके उपयोग के बाद रोगी के अगो मे तीव्र ऐंठन प्रारम्भ हो जाती है।

(7) मन॰शल्यक्रिया
(Psycho-surgery)

सर्वप्रथम 1936 मे **मॉनिज** (Moniz) ने इस पद्धति का प्रयोग किया। इस प्रकार की चिकित्सा मे रोगी के सिर के दोनो ओर दो छेद किये जाते है तथा फिर ललाटिक पालि (frontal lobe) व थैलमस को जोडने वाले नाडी तन्तुओ (nerve fibres) को काट दिया जाता है। इससे मानसिक असन्तुलन दूर हो जाता है। **फ्रीमैन व वाट्स** (Freeman and Watts) ने मन शल्यक्रिया मे काफी परिवर्तन कये।

(8) मनःशारीरिक औषधियाँ
(Psychosomatic Medicine)

ऐसी अनेक औषधियाँ होती हैं जिनके उपयोग से रोगी को समायोजन करने मे काफी सहायता प्राप्त होती है।

CHART
AN OUT-LINE OF PS[illegible]

Phases	I	II	
Assistances of Patient	1. No motivation for therapy or inability or accept the fact that he can be helped	1. Guilt in acknowledging environmental disturbance or interpersonal difficulties	1.
	2 Refusal to accept therapist's definition of the treatment situation.	2. Unwillingness and, in tho instance of a weak ego, an inability to face and to master anxieties related to unconscious conflicts, striving and fears.	2.
	3. Hostility, aggression, detachment, intense dependency, sexual interest and other resistances to a warm working relationship.		3.
Counter Transference of Problems in Therapist.	1. Inability to sympathize with patient and the communicate in understandable terms with him.	1. Avoidance by therapist of those problems in patient which inspire anxiety in therapist.	1
	2. Irritability with resistances of patient to accepting therapy and therapist.	2 Desire to probe too deeply and rapidly at the start.	2
	3. Inability to extend warmth toward patient and to show him he is accepted and his turmoil understood.	3. Impatience with resistance of patient towards gaining insight into his problems.	3
Technical Process	Casework and counselling processes	Psychoanalytic and psychobiologic processes.	P d p

III
(CHOTHERAPY

III	IV
Resistance to abandoning primary and secondary neutrotic gains	1. Refusal to yield dependency.
Resistance to normality.	2 Fear of assistiveness
Resistance to activity through own resources	
Frustration, hostility and discouragement in therapist to patient's refusal to utilize insight in the direction of change	1 Tendency to overprotect or to domineer patient
Tendency to push patient too hard and too rapidly towards normal objectives	2. Inability to assume a non-directive therapeutic role.
Fear of being too directives with resultant excessive passivity.	
sychanalytic, psychobiologic, irective counselling and casework rocesses	Psychoanalytic and non-directive counselling processes

32

भारतीय मनश्चिकित्सा

(INDIAN PSYCHOTHERAPY)

भारतीय पुरातन ग्रन्थो का अगर वैज्ञानिक ढग से अध्ययन किया जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक मन·चिकित्सा की प्रचुर सामग्री हमे इन ग्रन्थो मे मिलती है। भारतीय मनोवैज्ञानिको का यह दुर्भाग्य है कि वे अपने यहाँ उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थो को न पढकर यह स्वीकार कर लेते है कि इन आधुनिक मन.चिकित्साओ की खोज पश्चिमी मनोवैज्ञानिको ने की है। इस अध्याय मे भारतीय मन - चिकित्साओ के सम्बन्ध मे विस्तृत रूप से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

अगर हम असामान्य व्यवहार के मूलभूत गत्यात्मक तथ्यो को पश्चिमी वैज्ञानिक व आधुनिक खोज की पृष्ठभूमि मे देखें तथा उनकी तुलना भारतीय पुरातन ग्रन्थो से करे तो हमे यह आश्चर्य होगा कि तथाकथित असामान्य मनोविज्ञान सम्बन्धी आधुनिक खोजो का विस्तृत विवरण हमारे वेदो मे पहले से उपलब्ध है। पश्चिमी सभ्यता एव विज्ञान की नवीनतम देन है—मनश्चिकित्सा, अर्थात् मानसिक बीमारियो को समझने एव उपचार करने की विधियाँ व पद्धतियाँ। मनश्चिकित्सा मानव जाति के लिये, विशेष रूप से आधुनिक युग मे एक मूल्यवान विज्ञान है, उसका उल्लेख व व विस्तृत विवरण हमारे प्राचीन ग्रन्थ 'अथर्व-वेद' मे मिलता है। हमारे ग्रन्थो मे इस दिशा मे भविष्य के लिये काफी सुझाव व सम्भावनायें उपलब्ध है। अगर इन ग्रन्थो का उचित एव वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाये तो निश्चय ही हम आधुनिक मानसिक चिकित्सा पद्धतियो मे पर्याप्त सुधार कर सकते है। विन्सटन चर्चिल (Winston Churchill, 1944) ने ठीक ही कहा है—"The longer you can look back, the further you can look forward." भारतीय मनश्चिकित्सा पद्धति काफी उपयोगी व वैज्ञानिक है। हन्स जेकोब्स ने भारतीय मनश्चिकित्सा पद्धतियो के उपयोग का सुझाव देते हुए कहा है कि हिन्दू धर्म एक गहरे समुद्र के समान है, जितना अधिक आप अन्दर जावेंगे उतना ही अधिक सामग्री आप प्राप्त करेंगे। मान-

सिक रोगियो के चिकित्सा-कार्य का प्रारम्भ भारत मे ईसा से 3 शताब्दी पूर्व (Third Century B. C) ही प्रारम्भ हो गया था परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध तक इसका भविष्य अन्धकारमय रहा परन्तु इसके उपरान्त इस दिशा में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। विभिन्न मनश्चिकित्सा पद्धतियो को बताने से पूर्व यहाँ यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि भारतीय ग्रन्थो के अनुसार सामान्य व असामान्य मे क्या अन्तर है।

सामान्यता व असामान्यता का स्वरूप
(The Nature of Normality and Abnormality)

भारतीय प्राचीन ग्रन्थ अथर्व वेद मे असामान्यता से सम्बन्धित तथा मनश्चिकित्सा पद्धतियों के सम्बन्ध मे प्रचुर मात्रा मे सामग्री उपलब्ध है। जैसा कि हम जानते हैं कि एक चिकित्सक के रूप में मनोवैज्ञानिक असामान्य व्यवहार को उसमे निहित मनोजात (psychogenic) गुणो के आधार पर देखता है। उसका उद्देश्य मानव को सामान्य बनाना होता है। वह मानव के कल्याण के लिये कार्य करता है। अथर्व-वेद का भी यही उद्देश्य है। वह मानव की सहायता करता है किवह 100 वर्ष जीवित रहे तथा उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो। शिन्दे (Shende) के शब्दो मे—

"The attitude of the Atharva-Veda is purely defensive, obliging and working for the benefit, happiness and long life of the people who follow it."[1]

अथर्व-वेद के अनुसार शारीरिक रूप से मानव मस्तिष्क तीन तत्वो से मिलकर बना है—वात, पित्त, श्लेष्मा या कफ (Vata, Pitta and Sleshma or kaph)। ये तीनो गुण जन्म से ही मानव शरीर मे विद्यमान रहते हैं जिनमे मात्रा का अन्तर होता है परन्तु ये शरीर को सन्तुलित करते हैं। जब तक इन तीनो गुणो मे समानता होती है तब तक शरीर सामान्य रहता है तथा कोई बीमारी उत्पन्न नही होती। लेकिन जब इन गुणो मे अधिकता या न्यूनता आती है तो विभिन्न प्रकार की बीमारियों का उद्‌भव होता है।

अथर्व-वेद के अनुसार मानसिक व्यक्तित्व (Mental Personality) का ...र्माण भी तीन गुणो, वृत्तियो या विशेषताओ से होता है—सत्व, रजस, तमस। ...ग जन्म से व्यक्ति के मस्तिष्क (mind) या मानस (Manas) में निहित होते हैं ...इनमे परस्पर समानता होती है, जिससे वह सामान्य व्यक्ति कहलाता है। इन ...णो मे से 'सत्व' (Sattva) सदैव शुद्ध व सत्य रूप लिये रहता है अर्थात् ...चलन नही होता। 'रजस' (Rajas) का अर्थ है—अतिव्ययी आवेग (expen-...pulse)। इनमें इरोस, सुख की भावना व आनन्द प्राप्त करने की इच्छा ... 'तमस' (Tamas) सर्वाधिक खतरनाक गुण माना जाता है क्योकि इसमे

...e, N. J.: *The Religion and Philosophy of Atharva-veda* ...tal Research Institute, Poona, p. 64, 1952.

दुष्टता, नीचे गिराना व थेन्टास (Thanatos) जैसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान होती है। 'रजस' व 'तमस' मे वृद्धि या न्यूनता आने पर अनेक दोप उत्पन्न हो जाते हैं, जो कि मानसिक जीवन मे असामान्यता ला देते है। अत. अथर्ववेद के अनुसार व्यवहार में सामान्यता तव ही सभव है जवकि 'रजस' व 'तम्स' गुण एक निश्चित मात्रा मे रहें परन्तु मनुष्य जीवन-पर्यन्त इन गुणो को एक निश्चित सीमा मे वॉध कर नही रख सकता। अत वह असामान्यता के रास्ते पर चला जाता है तथा उसमें अनेक 'दोपों' का समावेश हो जाता है। जो मानसिक वीमारी का रूप ले लेते हैं। अथर्ववेद के अनुसार व्यक्तित्व का तात्पर्य केवल उपर्युक्त गुणो के योग से ही नही है वल्कि इससे है, कि किस तरह ये गुण सम्मिलित होकर व्यक्ति को एक 'व्यक्ति' का रूप देते हैं। इन गुणो के योग मे परिवर्तन होता है तथा अधिक परिवर्तन या समस्थिति मे अधिकता या न्यूनता असामान्यता का परिचायक है। सामान्यता व असामान्यता के सम्बन्ध मे आधुनिक विचार भी अथर्ववेद के पूर्णत. समान है।

व्राउन के अनुसार, "असामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्य सामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्यो का अतिरंजित (अत्यधिक वढा या घटा) तथा विकृत स्वरूप है।"[1]

अथर्ववेद मे निम्नांकित व्यावहारिक असामान्यताओं के स्वरूप व चिकित्सा-पद्धतियो की व्याख्या सन्निहित है—

1. उन्माद (Insanity)
2. मेनिया (Mania)
3. ग्राही (Seizure-hysteria)
4. अपस्मार (Epilepsy)
5. भय (Fear-Phobia)
6. मनस्ताप (Schizophrenia paranoid type)
7. क्रोध (anger-rage)
8. ईर्ष्या (Jealousy)
9. पाप (Guilt feeling and Inferiority)
10. मोह (Eroticism)
11. दु स्वप्न (Evil Dreams)
12. शर्प (Compulsive evil Suggestion)

---

1. "The chief tenate of modern psychopathology is that abnormal psychological phenomena are simply exaggerations (i e over-developments or under developments) or disguised (i e. perverted) developments of normal psychological phenomena "–Brown, J F. : The Psychodynamics of Abnormal Behaviour, McGraw Hill Co, Inc. London, p. 6, 1940.

13. मेध वर्धन (Memory and Learning Improvements)
14. आत्मबल (Energising ego)
15 समन्यासनी (Integration and social Harmony)

उपर्युक्त बीमारियो को उनके लक्षणो, कार्यों, चिकित्सा पद्धतियो आदि के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। अथर्ववेद मे मानसिक बीमारियो को दो श्रेणी मे रखा गया है। प्रथम श्रेणी मे उन्माद तथा अन्य तीव्रता वाले रोग तथा द्वितीय श्रेणी मे ऐसी बीमारियो को रखा गया है जिससे मानसिक प्रक्रियाओ मे दोष आ जाता है, जैसे—क्रोध (rage), मोह (eroticism), शोक (depression), ईर्ष्या (jealousy) व दु स्वप्न (evil dreams)।

मनश्चिकित्सा का अर्थ
(Meaning of Psychotherapy)

सर्वाधिक प्राचीन भारतीय वेद अथर्व के अनुसार मनश्चिकित्सा का उद्देश्य मानव की समस्त समस्याओ व दुखो का समाधान व निराकरण करना है। इस उद्देश्य की परिपूर्ति हेतु इस प्राचीन सास्कृतिक धरोहर मे दो उपागमो (चिकित्सा पद्धति) का उल्लेख किया गया है—(1) अथर्वानिक या मनोवैज्ञानिक व्यवस्था, तथा (2) कौशिक या शारीरिक व्यवस्था। इस प्रकार अथर्ववेद के अनुसार मनश्चिकित्सा मनोदैहिक सिद्धान्त (Modern Psychosomatic approach) पर आधारित है। डा० सिंह के अनुसार—"In the field of psychotherapy...... its object is to active sound, mental and integration for every human being. It applies psychological methods to avert mental disorders, dangers and calamities and to gain health, security, social integrations and happiness "[1]

अथर्व-वैदिक मनश्चिकित्सा का वर्गीकरण
(Classification or Atharva-Vedic Therapics)

अथर्ववेद के अनुसार, मानसिक रोगो की चिकित्सा-पद्धतियो का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(I) मनोजात या अथर्ववेदिक मनश्चिकित्सा
(Identical-Psychogenic)

(i) मन्त्र विद्या
(अ) सकल्प (Self-determination, auto suggestion or self hypnotism)
(ब) सादेश (Suggestion)
(स) समवशीकरण (Hypnosis)

1. Singh, H. G. : *Ibid*

(द) संस्कारिक (Ritualistic theraphy-Drama and Demonstration)
(य) ब्रह्म कवच (Psychological defensive belief)
(ii) उतरण (Transference)
(iii) आश्वासन व उपचार (Persuasion and Desensitization)
(iv) दिव्य हवन चिकित्सा (Spiritural Healing)
(v) प्रयाश्चितनी
(अ) सुकृति (Confession)
(ब) तप (Penance)
(स) वलिदान (Sacrifice)

अथर्ववेद के अतिरिक्त अन्य भारतीय प्राचीन ग्रन्थो मे भी अनेक प्रकार की चिकित्सा प्रणाली का वर्णन उपलब्ध है। कुल मिलाकर 35 उपचार प्रणालियो का वर्णन किया गया है जिनमे से 25 आधुनिक उपचार-प्रणाली के समान हैं। इनमे से कुछ प्रमुख मनश्चिकित्साओ का नीचे हम वर्णन कर रहे है :—

(II) **दैहिक या कोशिक भूतिक चिकित्सा**
(Non-identical-Somatogenic)
(i) अगिरसी (Endocrine Therapy)
(ii) दिव्य प्रकृति
जैसे, जल चिकित्सा (Hydro-therapy), वायु चिकित्सा (Air-therapy), अग्नि चिकित्सा (Heat-therapy) व सौर चिकित्सा (Sun-therapy)।
(iii) मनुशजा (Medicine prepared by human being)।

नीचे हम इन चिकित्सा पद्धतियो का वर्णन आधुनिक या पश्चिमी मनोचिकित्सा-पद्धतियों को दृष्टिगत रखते हुए करेंगे।

मनोजात या अथर्ववेनिक मनस चिकित्सा
(Atharvanic or Psychogenic Manas Therapy)

1. **मन्त्र-विद्या** (Mantra Vidya)

मन्त्र का सम्बन्ध 'मनस' (manas) से है, जबकि तन्त्र एक तरफ मनस से सम्बन्धित है, तो दूसरी तरफ भौतिक (physics) से है। मन्त्र को 'Secret Talk' या 'Silent Talk' के रूप मे परिभाषित किया गया है। कपिल शास्त्री टी० वी० के अनुसार—

"Mantra as is well known is not a mere letter or a collection of letters with some meaning It is the sound-body of a power charged with the intense vibrations of the spiritual personality of the creator or the seer of the Mantra. The Mantra is an ever living embodi-

ent of the Truth and Power which have found expression in it through the medium of the Rishi or Yogin who has given it that body."[1]

भारतीय मनश्चिकित्सा की मुख्य विधि मत्र विद्या है। इसे अपने आप मे आत्म-उपयुक्त एव स्वतत्र विधि की सज्ञा प्रदान की जा सकती है। इसके वैसे तो 13 उप-प्रकार अथर्व-वेद मे विद्यमान है। परन्तु आधुनिक युग मे प्राय 5 उप-प्रकारो का ही प्रयोग किया जाता है। ये प्रकार है—जप, मत्र सिद्धि, तत्र, यन्त्र व आत्मिक शक्ति। यह विधि आधुनिक मनश्चिकित्सा—सम्मोहन पद्धति के समान है। जिस प्रकार सम्मोहन पद्धति के माध्यम से चिकित्सक रोगी को सम्मोहित करके इतने प्रभावशाली निर्देश देते है कि रोगी अपनी अचेतन इच्छाओ को आसानी से प्रकट कर देता है, ठीक इसी प्रकार से मत्र विद्या के माध्यम से रोगी इस विद्या को देने वालो से इतना अधिक विश्वास व आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है कि उसमे अपनी समस्याओ के समाधान का आत्म-बल जागृत हो जाता है। तत्र विद्या का प्राचीन स्वरूप आज निखर गया है तथा इसका उपयोग समाज के सभी वर्गो मे हो रहा है।

तत्र विद्या के अन्य उप-प्रकारो का सम्बन्ध पाश्चात्य मनश्चिकित्सा पद्धतियो से भी है। जैसा सकल्प का सम्बन्ध इच्छा-चिकित्सा (Will therapy) व स्वत निर्देश (Auto suggestion), सादेश का प्रभुत्वपूर्ण निर्देश (Authoritarian suggestion), समवशीकरण का सम्मोहन, सास्कारिक चिकित्सा का नाटकीकरण (Dramatisation) जैसे पाश्चात्य चिकित्सा पद्धतियो से है।

2 उतरण (Transference)

उतरण-चिकित्सा को सहायक चिकित्सा माना गया है, अर्थात् अन्य चिकित्सा पद्धतियो के साथ इसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की चिकित्सा का उपयोग आजकल नही होता है परन्तु इसका उल्लेख अथर्ववेद मे मिलता है। इस प्रकार की चिकित्सा मे लक्षणो (mental symptoms) को दूसरे व्यक्ति या पदार्थ मे स्थानान्तरण किया जाता है। डा० सिंह के अनुसार—"According to the Atharaveda, its theoretical basis is, that like catches the like and unlike cannot exist together hence can be transferred to its other like. So the siumstoms are transferred through physical and mental associations and puggestions similar and homogenous objects and persons"

3 आश्वासन (Persuasion and Desensitization)

यह पद्धति अन्य उपचारात्मक पद्धतियो की अपेक्षा निर्देशित (directive) एवं व्यावहारिक प्रणाली है जिसका उपयोग आज भी होता है। इस प्रकार की पद्धति

1. **Kapil Shastri T V** Further Lights—The Vedas and the Tantras, Sri. Aurobindo Ashram Press, Pondicherry, p. 132, 1951.

का उल्लेख अथर्व-वेद के अतिरिक्त अन्य भारतीय ग्रन्थो मे भी मिलता है। इसमे चिकित्सक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह रोगी के साथ ऐसा व्यवहार करता है जिससे कि उसमे विश्वास की भावना उत्पन्न हो जिससे कि रोगी के अहम् को शक्ति प्राप्त हो तथा वह वास्तविकता (reality) को पहचाने तथा स्वय की बुराइयो को दूर करने मे समर्थ हो। इसके बाद वह रोगी को निर्देश देता है कि वह लक्षणो व चिन्ताओ से घबडाये नही। यह चिकित्सा 'चेतन सुझाव के सिद्धान्त' (Theory of conscious suggestion) पर आधारित है जिसका उपयोग सभी विकृतियो के उपचार मे संभव है।

इस भारतीय चिकित्सा की तुलना आधुनिक एव पाश्चात्य चिकित्सा प्रति-रोधन (persuasion & Desensitigation) से भी की जा सकती है। इस प्रकार की चिकित्सा प्रक्रिया मे चिकित्सक व रोगी के मध्य सम्बन्ध, उत्साहित करना, पुन ठीक या सामान्य होने की गारन्टी, विश्वास व रोगी की इच्छा-शक्ति (will power) आदि बातो पर ध्यान दिया जाता है। अत. भारतीय व पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली मे काफी एकरूपता है।

4. दिव्य चिकित्सा (Religious Therapy)

भारतीय मनश्चिकित्सा की यह प्रणाली मुख्य उपचार प्रणाली है जिसके चार प्रकार है—पूजा (worship), उपहास (offering), प्रार्थना (prayer) व हवन (Havan)। इस प्रणाली का वर्णन अथर्ववेद से लेकर अन्य ग्रन्थो तक मे मिलता है, केवल योग मे नही। यह समस्त अनुचित कार्यों को रोकती है तथा धार्मिक व्यक्तियो पर आसानी से प्रभावशाली हो जाती है। इसका सैद्धान्तिक आधार धार्मिक स्थायी भाव (religious sentiments) है। यह स्थायी भाव या आध्यात्मिक रूप, प्रत्येक धर्म मे विद्यमान है तथा किसी न किसी रूप में ससार के प्रत्येक देश मे प्रचलित है। इसके माध्यम से रोगी को आध्यात्मिक रूप से लीन रहने की प्रेरणा दी जाती है। डा० लुइस रोज (Louis Rose) ने अपनी बीस वर्षीय नैदानिक चिकित्सा अनुभव के आधार पर बताया कि किसी भी प्रकार की मानसिक या आध्यात्मिक क्रिया से मानव स्वास्थ्य को सन्तुलित एव स्वस्थ बनाया जा सकता है।[1]

भारतीय सन्दर्भ मे इस प्रणाली का का काफी उपयोग है।

5. गमन-पर्यावरणात्मक परिवर्तन (Environmental Change)

गमन भारतीय मनश्चिकित्सा भी स्वतन्त्र चिकित्सा प्रविधि है जिसके उपयोग के लिए अनेक प्रकार की प्रविधियो की आवश्यकता नही होती है जबकि यह अन्य

---

1. "Some form of mental or spiritual activity can induce major improvements in human health"—Rose, Louis Faith Heading Penguin series

प्रविधि मे सहायक है । इसका उल्लेख अथर्ववेद मे नही मिलता है परन्तु मूल रूप से चारक (Antic) मे मिलता है । इसका उपयोग उन्माद, अपस्मार, दुर्मन तथा अन्य विकृतियो मे प्राय. किया जाता है ।

इस चिकित्सा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य व सैद्धान्तिक आधार यह है कि रोगी को वर्तमान सवेदनशील पर्यावरण से हटाना (desensitizing) होता है । इसके लिये उसे धार्मिक स्थलो मे भ्रमण या सुन्दर दृश्यावली वाले शहर या स्थान आदि पर भेजने के लिये निर्देश दिया जाता है । इस चिकित्सा प्रणाली के स्वरूप से यह तथ्य दृष्टिगोचर होता है कि चारक (Charak) जैसे भारतीय दार्शनिक सप्रदाय मे भी यह माना जाता था कि मानसिक रोगो के उद्भव मे पर्यावरण का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है । आज की चिकित्सा पद्धति से भी इस तथ्य पर विशेष बल दिया जाता है ।

6 विरोधी भावना
(Opposite Passion)

इस प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख सर्वप्रथम चारक मे मिलता है जिसका वर्णन भागवत मे भी मिलता है । इसके मूल मे यह तथ्य विद्यमान है कि असामान्यता का कारण इरोस (eros), भय, शत्रुता आदि से होता है जिसको दूर करने का उपाय है कि रोगी को विरोधी दिशा मे मुडने को प्रेरित किया जाय । इसे 'अप्रत्यक्ष दमन' (indirect repressions or equilibrium technique) विधि भी कहा जाता है ।

7. चित्तप्रसन्न चिकित्सा
(Recreation)

इस प्रकार की चिकित्सा का प्रारम्भ सुसरूत (Susrut) से हुआ तथा भागवत मे भी इसका वर्णन उपलब्ध है । आजकल इसका उपयोग नही किया जा सकता है । इन भारतीय विचारधाराओ व ग्रन्थो ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि मानसिक रोगियो के लिये मनोरजन या अपने चित्त को प्रसन्न रखना आवश्यक है । डा० सिंह के अनुसार इस चिकित्सा का आधार है—"When the patient gets conditioned to anxiety and suffering, it helps to break this conditioning They have prescribed it for insanity, Apasmar and Fits So it has theoretical and practical bearing"

इस प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली व आधुनिक मनोरजन चिकित्सा (Entertainment Therapy) मे काफी समानता है ।

8. पुर्नशिक्षा और विचारना
(Re-education and Insight)

इस प्रकार की चिकित्सा का प्रारम्भ चारक से हुआ तथा आज भी प्रचलित है । इस प्रकार की चिकित्सा मे रोगी के लिये ऐसी पुर्नशिक्षा की व्यवस्था की जाती

है कि रोगी स्वय अपनी समस्याओ को समझे या उसमे इतनी अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हो जावे कि वह रोग के मूलभूत कारको को समझ ले । इस प्रणाली के मूल मे यह भावना निहित है कि रोगी अपनी त्रुटियो को समझकर सुधार करे, अपने ज्ञान, विचार व मूल्यो आदि को समझे तथा असामान्यता का निराकर स्वय ही करें। इसके लिये अनुभवी चिकित्सक की आवश्यकता पर विशेष बल दिया जाता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान की पुनर्शिक्षा व अन्तर्दृष्टि चिकित्सा पद्धति तथा भारतीय ग्रन्थो मे उपलब्ध इस चिकित्सा मे काफी समानता मिलती है ।

9. योग चिकित्सा
(Yoga Therapy)

इस चिकित्सा प्रणाली का प्रतिपादन पातन्जली द्वारा माना जाता है जिसका उपयोग आज भी व्यापक रूप से हो रहा है । अनेक विद्वानो ने इस पद्धति को अथर्ववेद का देन माना है परन्तु उपयोगिता की दृष्टि से पातजलि के योगसूत्र (Yoga-Sutra) को श्रेय देना अधिक उपयुक्त है । योग चिकित्सा भारतीय मनोविज्ञान की वह उपलब्धि है जो ससार के समस्त सभ्य देशो मे व्यापक रूप से प्रभावशाली व उपयोग मे है। वैसे तो योग के 100 से अधिक सम्प्रदाय है परन्तु प्रमुख रूप से इनमे से 10 काफी महत्त्वपूर्ण है—राज, हठ, ज्ञान, भक्ति, कर्म, मन्त्र, तन्त्र, लय, जैन, बुद्धा (Raj, Hath, Gyan, Bhakti, Karm, Mantra, Tantra, Laya, Jain and Buddhist)। इनमे से सर्वाधिक प्रचलित राजयोग है। इसमे 4 प्रकार की क्रियाएँ सम्मिलित की जा सकती है—

1. Psychic Disciplinary exercise,
2. Psychosomatic Energising exercise,
3. Psychic Sublimentory exercise,
4. Psychic Super exercise.

सैद्धान्तिक रूप से योग चिकित्सा वैज्ञानिक है तथा प्रकृति के नियमो (Natural Laws) पर आधारित है जिसका उपयोग पूर्ण रूप से 'मन-प्रशिक्षण' (mind training) के लिये किया जाता है । योग का अर्थ है—'चित्तवृत्ति निरोध' जिसका अर्थ है—समस्त मूलप्रवृत्तियो एव प्रेरणाओ का वर्गीकरण (Cessation of all instincts and motives) करके परम चेतनात्मक (Super-consciousness) के साथ एक सघ मे सगठित करना । इसके माध्यम से व्यक्ति अपने आत्म से असामान्य को केवल बाहर ही नही फेकता है बल्कि 'ब्रह्म' (Brahma) के प्रकाश से प्रज्ज्वलित होता रहता है । इसका प्रारम्भ असामान्यता से होता है जो सामान्यता से होकर परम-सामान्यता (Super-normality) तक पहुँचता है । योग चिकित्सा पूर्णत सैद्धान्तिक व वैज्ञानिक तथ्यो पर आधारित है तथा व्यक्तित्व निर्माण के आधुनिक सिद्धान्तों से पूर्ण मेल करता है। इस चिकित्सा के 10 सम्प्रदाय पूर्णत मनोवैज्ञानिक दैहिक, मनोदैहिक, कोसमिक (Cosmic) एव सौन्दर्यात्मक सिद्धान्तो पर आधारित है। वेहनान

(Behnan) ने यह उचित ही कहा है कि—"Thus in a sense, Yoga may be called 'cosmic therapeutics' and its analysis of the mind is coloured by the underlying man "[1]

यह चिकित्सा 3 सिद्धान्तो के आधार पर आगे बढती है—

प्रथम प्राणी के मानसिक एव शारीरिक क्रियाओ व तत्वो का शुद्धीकरण, जैसे—असामान्यता का निराकरण (removal of abnormality)

द्वितीय केन्द्रितता (Concentration) जिसके अन्तर्गत उसकी शक्तियो को पुनर्निर्दिशित इस तरह किया जाता है कि वह असामान्यता को अन्तिम रूप से समाप्त कर सके।

तृतीय . अपनी वैयक्तिकता से आत्म को पृथक करके किसी परम शक्ति से सम्बन्धित कर लें (release of self from individuality, i. e. union with supreme being)

योग की चिकित्सा को मनोविश्लेषण के साथ तुलना की गई है परन्तु योग चिकित्सा तो आधुनिक युग की समस्त मनश्चिकित्साओ की तुलना मे सर्वाधिक वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक पद्धति है। इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आज विश्व के करीब-करीब सभी विकासशील देशो से काफी सम्पन्न लोग 'भारत' आकर मानसिक सन्तोष की प्राप्ति हेतु विभिन्न आश्रमो की शरण लेते है तथा स्वस्थ होकर अपने देश को लौटते है। इस चिकित्सा का भविष्य भारत मे ही नही बल्कि सम्पूर्ण ससार मे काफी उज्ज्वल है।

1 Hans, Jacobs Western Psychotherapy and Hindu Sadhana, George Allen and Unwin Ltd, London, 1961.

APPENDIX

Chart I

VARIETIES OF PSYCHOTHERAPY

Type of Treatment	Objectives	Approaches
Supportive Therapy.	Strengthening of existing defenses. Elaboration of new and better mechanisms of maintain control. Restoration to an adaptive equilibrium.	Guidance, environmental manipulation, externalization of interests, reassurance, pressure and coersion, persuasion, emotional catharsis and desensitization, prestige suggestion. suggestive hypnosis, muscular relaxation, Hydrotherapy, drug-therapy, shock and convulsive therapy inspirational group therapy, music therapy.
INSIGHT THERAPY with Re-educative Goals.	Insight into the more conscious conflicts, with deliberate efforts at re-adjustment, goal modification and the living up to existing creative potentialities.	'Relationship Therapy." "attitude therapy," interview psychotherapy, distributive analysis and synthesis (psychobiologic therapy), therapeutic counselling, casework therapy, reconditioning, re-educative group therapy, semantic therapy.
INSIGHT THERAPY with Reconstructive Goals.	Insight into Unconscious conflicts, with efforts to achieve extensive alterations of character structure. Expansion of personality growth with development of new adaptive potentialities.	Freudian psychoanalysis. Non-Freudian psychoanalysis Psychoanalytically oriented psychotherapy. (Adjunctive therapies : hypnoanalysis, parcotherapy, play therapy, art therapy, analytic group therapy)

33

समाज-विरोधी व्यवहार एवं अपराध
(ANTI-SOCIAL BEHAVIOUR AND CRIME)

मानव व्यवहार समाज के द्वारा उद्‌भव, सशोधित व परिमार्जित होता है। प्रत्येक व्यक्ति को समाज ने कुछ अधिकार प्रदान किये है तथा इन अधिकारो के कारण वह स्वय को समाज मे सुरक्षित अनुभव करता है। परन्तु इन अधिकारो के बदले उसे सामाजिक नियमो या प्रतिबन्धो का पालन करना पडता है तथा सामाजिक माँगो के अनुरूप ही उसे अपने व्यवहार को बदलना या सशोधन करना पडता है। अगर व्यक्ति इन नियमो का पालन नही करता तथा पूर्ण रूप से इन्कार करता है या अपने व्यवहार को इनके विपरीत बनाता है तो उसके व्यवहार को समाज-विरोधी व्यवहार की सज्ञा दी जाती है। कोलमैन (Coleman) का मत है कि समाज-विरोधी व्यक्तित्व को मानसिक न्यूनता, मनोविक्षिप्तता, मन स्नायुविकृतिता के अन्तर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस प्रकार के व्यक्तियो का व्यवहार स्वीकृत व्यवहार के अनुरूप नही होता तथा इनकी मुख्य विशेषता यह होती है कि इनका नैतिक विकास उचित प्रकार से नही हो पाता। पेज (Page) के अनुसार जब व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है जिससे कि स्थापित नियमो का उल्लंघन हो तो उसे समाज-विरोधी व्यवहार कहते हैं। किसी भी व्यवहार का समाज-विरोधी होना समय व स्थान पर निर्भर करता है। इससे तात्पर्य यह है कि एक समय मे जो व्यवहार सामान्य समझा जाता है वही दूसरे समय मे समाज-विरोधी। इसी प्रकार एक स्थान पर एक व्यवहार सामान्य व्यवहार होता है तो दूसरे स्थान पर वही व्यवहार समाज-विरोधी समझा जाता है, उदाहरणस्वरूप—मद्य-निषेध के समय शराब बेचना व पीना अपराध व्यवहार है परन्तु जब मद्य-निषेध नही होता तब इस प्रकार का कृत्य समाज-विरोधी नही समझा जाता।

घटनाक्रम (Incidence)—कोलमैन का मत है कि इस प्रकार के व्यक्तियो की सही सख्या ज्ञात करना कठिन है; क्योकि अनेक धोखेबाज व्यवसायी, ठगने वाले वकील, लूटने वाले डॉक्टर, सिद्धान्त-विहीन व दल-बदलू नेता, वेश्यागामी व्यक्ति आदि है जो समाज व कानून की आँखो मे दिन-दहाड़े धूल फेंकते है, इस सख्या मे सम्मिलित नही होते। यही कारण है कि इस प्रकार के व्यक्तियो की सख्या कम ही दिखाई पड़ती है।

लक्षण (Symptom)—इस प्रकार के व्यक्तियो का व्यक्तित्व इतना प्रभावकारी होता है कि देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये बुद्धिमान, मिलनसार व अच्छे व्यक्ति है परन्तु वास्तव मे ऐसा नही होता। क्योकि ये केवल अपने स्वार्थो को ही देखकर वर्तमान की क्रियाओ को करते है, भूत व भविष्य का इन्हे कोई ख्याल नही होता। ये व्यक्ति अपने व्यवहार को युक्तिसंगत बनाते है जिसके फलस्वरूप ऐसा प्रतीत होता है कि इसका व्यवहार बडा ही तर्कयुक्त व तर्कसगत है। डार्लिग (Darling, 1945), हीटन-वार्ड (Heaton-ward, 1963) थॉर्न (Thorne), वैगरॉकी (Wegrocki, 1961), विर्ट (Wirt, *et al*, 1962) आदि मनोवैज्ञानिको ने इस प्रकार के व्यक्तियो मे मुख्य रूप से निम्न लक्षणो का विवेचन किया है—

(i) अन्तरात्मा का अनुपयुक्त विकास (Inadequate conscience development),

(ii) आत्मकेन्द्री, आवेगीपन एव अनुत्तरदायित्व (Egocentric, impulsive and irresponsible),

(iii) अयथार्थवादी लक्ष्य के साथ अत्यन्त सुखवादी (Hedonism combined with unrealistic goals),

(iv) चिन्ता या अपराध भावना की कमी (Lack of anxiety of guilt);

(v) त्रुटियो से लाभ उठाने की योग्यता की कमी (Inability to profit from mistakes),

(vi) दूसरो को प्रभावित तथा शोषण करने की योग्यता (Ability to put up a good front to impress and exploit others),

(vii) दोषपूर्ण सामाजिक सम्बन्ध (Defective social relationship),

(viii) अनुशासन व सत्ता का तिरस्कार (Rejection of constituted authority and discipline)।

कारण या गत्यात्मकता (Dynamics)—समाज विरोधी व्यवहार के कारणो के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे काफी मतभेद है। क्योकि कुछ खोजकर्त्ताओ का विश्वास है कि इनकी उत्पत्ति जैविक कारणो से होती है, तो कुछ मनोवैज्ञानिक कारको को इसकी उत्पत्ति का कारण मानते है।

(1) जैविक कारक (Biological factors)—असामाजिक व्यक्तित्व का प्रमुख कारक शारीरिक रचना माना जाता है। अनेक मनोवैज्ञानिको का कहना है

कि इसका प्रमुख कारण स्नायुमण्डल की अवरोधक व उत्तेजक (inhibitory and excitatory) क्रियाओं के मध्य असन्तुलन है। अनेक प्रयोगों के आधार पर स्टॉट (Stott, 1962) ने बताया कि इन लोगों के चोट आदि का प्रभाव स्नायुमण्डल पर पड़ता है। अन्य शब्दों में, इसका प्रभाव स्नायुमण्डल के उच्च अवरोधक केन्द्रों पर पड़ता है जिसके फलस्वरूप ये व्यक्ति तनावपूर्ण स्थितियों में अपने आन्तरिक नियन्त्रण को सन्तुलित नहीं कर पाते। इसी के परिणामस्वरूप व्यक्ति अधिक आवेगमय व अनुशासनहीन हो जाता है। यद्यपि यह आंगिक दृष्टिकोण युक्तिसंगत प्रतीत होते हैं परन्तु फिर भी अभी तक इतने प्रयोगात्मक परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं कि इन निष्कर्षों की सत्यता की जाँच हो सके। इसी संदर्भ में मस्तिष्क तरंगों (EEG) से सम्बन्धित अध्ययन भी यह बताते हैं कि असामाजिक व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के मस्तिष्कों में भी किसी प्रकार की असामान्यता नहीं होती है।

(2) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological factors)—अनेक प्रयोगात्मक एवं नैदानिक अध्ययन परिणाम इस बात के साक्षी हैं कि इसकी उत्पत्ति का प्रमुख कारक मनोवैज्ञानिक है। अनेक विद्वानों का कहना है कि इस व्यवहार के पीछे माँ-बाप का बच्चे के प्रति तिरस्कृत व्यवहार है। समाज-विरोधी व्यक्तित्व के विकास के पीछे सामाजिक-आर्थिक कमी (socio-economic deprivation) व बाल-अपराधी झुण्ड (delinquent gangs) है। इसके साथ ही साथ परिवार प्रतिक्रिया के प्रतिरूप भी इसकी उत्पत्ति एक प्रमुख कारक है। इसके अतिरिक्त कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि तादात्म्य की कमी के कारण भी व्यक्ति समाज-विरोधी कार्य करता है। उस परिवार में अपेक्षाकृत अधिक समाज-विरोधी व्यक्ति उत्पन्न होते हैं जहाँ कि बच्चों को पूर्ण स्वतन्त्रता होती है या उनकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति की जाती है। इस प्रकार के परिवारों के बच्चे अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण नहीं कर पाते तथा युवावस्था में इनके व्यक्तित्व प्रतिरूप का प्रमुख लक्ष्य 'इच्छाओं की तात्कालिक सन्तुष्टि' होता है। यही रूप समाज-विरोधी क्रियाओं का भी होता है क्योंकि जब इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों पर बाह्य अनुशासन का प्रभाव पड़ता है तो समायोजन की पूर्ण योग्यता न होने के कारण उस व्यवस्था से विद्रोह कर बैठते हैं।

उपचार (Treatment)

समाज-विरोधी व्यक्तित्व के सन्दर्भ में कारणों की अनिश्चितता एवं उपयुक्त व लम्बे समय के लिए उपचार अवस्था के अभाव के कारण इनके उपचार पद्धति की विशेष खोज नहीं हो सकी है [मॉग्स (Maughs), 1961]। इस प्रकार के व्यक्तियों में सुधार की इच्छा न के बराबर रहती है जिसके कारण ये मानसिक उपचार करवाने से भी दूर भागते हैं। थॉर्न (Thorne, 1959) का कहना है कि इस प्रकार के व्यक्तित्व सुधार के लिए लम्बी मनोचिकित्सा काफी सहायक होती है। वैसे सामाजिक रचना (social structure) में परिवर्तन से भी इन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

इसका प्रमुख उदाहरण अभी हाल मे भारत के सर्वोदयी नेता श्री जयप्रकाश नारायण के समक्ष करीब 200 डाकुओ का आत्मसमर्पण करना है।

समाज-विरोधी व्यवहार के प्रकार
(Kinds of Anti-social Behaviour)

कोलमैन (Coleman) ने समाज-विरोधी व्यतिक्रमो के अन्तर्गत मुख्यत निम्न प्रकार के व्यतिक्रमो को रखा है—

(i) **सोसियोपैथिक व्यक्तित्व व्यतिक्रम** (Sociopathic (Personality Disturbances)—इस प्रकार के व्यतिक्रमो का विस्तृत वर्णन हम 'मनोविकृत व्यक्तित्व' नामक अध्याय मे कर चुके हैं।

(ii) **अपराधी व्यवहार** (Dis-social Reaction)—

(अ) अपराध (Crime),

(व) वालोपचार (Juvenile Delinquency)।

(iii) **लैगिक विकृतियाँ** (Sexual Deviations)—लैगिक विकृतियाँ, लैगिक व्यवहार के वे रूप है जिसमे व्यक्ति-विरोधी लिंग के साथ सभोग का अवसर होने पर भी अन्य साधनो को कम-तृप्ति करने के लिए उपयोग करता है। इस प्रकार की विकृतियो का विस्तृत रूप से वर्णन हम 'लैगिक विकृतियाँ' (Sexual Perversions) नामक अध्याय मे कर चुके है।

अपराध का स्वरूप
(Nature of Crime)

किसी भी देश के इतिहास पर नजर डालने से यह वात पूर्णत स्पष्ट हो जाती है कि सभी व्यक्ति सामाजिक व्यवहार नही करते। समाज प्रत्येक व्यक्ति को कुछ अधिकार प्रदान करता है तथा इसके बदले वह यह चाहता है कि व्यक्ति अपने कर्तव्य का निर्वाह करे अर्थात सामाजिक नियमो, रीति-रिवाजो, परम्पराओ आदि का पालन करें। अगर व्यक्ति अपने कर्त्तव्यो का पालन नही करता तो उसका आचरण अपराधी या दोषी कहलाया जाता है। अपराधी या दोषी होने पर उसे दण्ड का भागी वनना पडता है। आज यह बात पूर्णरूप से स्पप्ट हो गई कि अपराधी को कडी से कडी सजा के द्वारा सुधार नही किया जा सकता। अपराध एक सामाजिक समस्या के साथ ही साथ मनोवैज्ञानिक समस्या भी है। समाजशास्त्र (*Sociology*) मे जहाँ अपराध का अध्ययन सामाजिक असन्तुलन (social uneqillibrium) व सामाजिक नियमो के उल्लघन मे रखकर किया जाता है जवकि मनोविज्ञान मे अपराध का अध्ययन व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व व सामाजिक असमायोजन के आधार पर किया जाता है। वैसे अपराध का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन इतना महत्वपूर्ण है कि मनोविज्ञान के अन्तर्गत अपराध-मनोविज्ञान (*Criminal Psychology*) की एक अलग शाखा विकसित हो गई है। **मुन्सटरवर्ग** (Munsterberg, C. 1900) ने सर्वप्रथम न्यायालय प्रक्रिया मे मनोविज्ञान का प्रयोग किया। **पेज** (Page) के शब्दो में,

"अपराध सम्बन्धी व्यवहारों की परिभाषा समाज-विरोधी व्यवहार के रूप में दी जा सकती है, जो स्थापित नियमों की अवहेलना या उल्लंघन करते हैं तथा दण्ड के भागी बनते हैं।"[1]

अपराध या अपराध व्यवहारी समय व स्थान पर निर्भर होता है। इसका तात्पर्य यह है कि एक समय मे एक ही व्यवहार सामान्य व्यवहार समझा जाता है, तो दूसरे समय उसी व्यवहार को अपराधी व्यवहार की संज्ञा दी जाती है। उदाहरणस्वरूप, शान्ति के समय हत्या करना अपराध होता है परन्तु युद्ध के समय हत्या करना बहादुरी समझा जाता है। इसी प्रकार धन व जीवन की रक्षा हेतु किसी को मारना व हत्या करना अपराध नहीं माना जाता जबकि दूसरों का धन व जीवन लेने के लिए हत्या करना अपराध समझा जाता है। इसी प्रकार जो व्यवहार एक देश मे अपराधी व्यवहार समझा जाता है, वही व्यवहार दूसरे देश मे सामाजिक, जैसे—भारत मे एक से अधिक पत्नियाँ रखना (सरकारी कर्मचारियो को छोड़कर) अपराध नहीं है जबकि इंगलैण्ड मे अपराध माना जाता है। अपराध व्यवहार के निर्धारण में संस्कृति व सामाजिक स्थिति का भी काफी महत्त्व होता है; जैसे—ऐस्किमो (Eskimo) जाति के लोगों मे यह प्रथा पायी जाती है कि अतिथि के सत्कार के लिए अपनी पत्नी को भी सौंप दे परन्तु भारत में इस प्रकार का कृत्य अपराध कहलाता है। इस प्रकार अपराध व्यवहार का निर्धारण समय, स्थान, संस्कृति, सामाजिक मान्यता आदि पर निर्भर करता है।

अपराध का वर्गीकरण
(Classification of Crime)

(क) मोटे तौर पर अपराध का वर्गीकरण—

अपराध की गम्भीरता के आधार पर अपराध को निम्नलिखित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(1) राजद्रोह अपराध (Treason)—राजद्रोह अपराध मे अपराधी अपने देश व शासन के विरुद्ध कार्य करता है। इस वर्ग में सबसे जटिल अपराध आते हैं परन्तु इस प्रकार के अपराध का घटनाक्रम बहुत कम होता है। राजद्रोह अपराध के प्रमुख उदाहरण अपने ही देश के विरुद्ध युद्ध करना या देश के शत्रुओं को बढ़ावा व सहायता करना, शासक के प्रति षड्यन्त्र रचना आदि हैं।

(2) महापराध या भयंकर अपराध (Felony)—यह अपराध अधिक गम्भीर होता है तथा इस प्रकार के अपराधियो की संख्या बहुत अधिक होती है। इस प्रकार के अपराध के प्रमुख उदाहरण हत्या या नरहत्या (man-slaughter), डकैती, बलात्कार, मारपीट आदि। नरहत्या से तात्पर्य है—जहर देकर, पानी में डुबाकर,

---

1. "Criminal behaviour may be defined as anti-social conduct that violates established laws and entails some penalty."—Page, J. D. : *Ibid*.

आग मे गिराकर, गला दवाकर हत्या करना। इस प्रकार के अपराधियो को फाँसी, आजीवन कारावास या आर्थिक दण्ड दिया जाता है।

(3) **उपापराध या दुराचार अपराध** (Misdemeaneur)—इसके अन्तर्गत निम्नकोटि के अपराध आते हैं, जैसे—मदिरापान, जुआ, चोरी, पाकेटमारी आदि। ग्राम की अपेक्षा शहरो मे इस प्रकार के अपराध अधिक होते है। इस प्रकार के अपराधियो को जेल या आर्थिक दण्ड दिया जाता है।

(ख) फेरी द्वारा उद्गम (Origion) के आधार पर अपराध का वर्गीकरण—

फेरी (Feri) ने अपराध के उद्गम के आधार पर अपराध को निम्न रूपो में वर्गीकृत किया है—

(1) **असामान्य अपराधी** (Abnormal Criminals)—इनमे वे अपराधी आते है जो मानसिक रूप से पीडित या असन्तुलित होते हैं। इन्हे अपराध की चेतना नही रहती। इस प्रकार के अपराधियो की सख्या वहुत कम है।

(2) **अभ्यस्त अपराधी** (Habitual Criminals)—इसमे वे लोग आते हैं जो अभ्यस्त रूप से अपराध करते हैं। प्रारम्भ मे तो ये छिपे रूप में अपराध करते हैं परन्तु धीरे-धीरे उनमे इसे करने की आदत वन जाती है। इसके प्रमुख उदाहरण मदिरापान, वेश्यागमन आदि है।

(ग) हॉपकिन्स (Hopkins) द्वारा अपराध का वर्गीकरण—

हॉपकिन्स ने अपराध को चार रूपो मे वर्गीकृत किया है—

(1) **राजनैतिक अपराध** (Political crime),
(2) **आर्थिक अपराध** (Economic crime),
(3) **नागरिक अपराध** (Civil crime),
(4) **मनोवैज्ञानिक अपराध** (Psychological crime)।

अपराध के कारण (Causes of Crime)

अपराध के कारणो पर विद्वानो मे मतैक्य नही है। क्योकि कुछ विद्वान अगर इसका कारण अन्तर्जात चरित्र वताते है तो कुछ आनुवशिकता (heredity) को। सामान्य रूप मे इसके कारणों को तीन वर्गो मे रखा जा सकता है—

(1) जैविक कारक (Biological factors)
(2) सामाजिक व आर्थिक समस्याएँ (Social and economical problems)
(3) मनोवैज्ञानिक व मनश्चिकित्सीय कारक (Psychological and psychiatric factors)।

(1) जैविक कारक (Biological Factors)

(क) **वंश परम्परा या आनुवंशिकता** (Heredity)—कुछ विद्वानो का मत है कि अपराध का कारण जन्मजात है। जन्म से ही कुछ व्यक्तियों मे अपराध की प्रवृत्ति

पायी जाती है। अन्य शब्दों मे अपराधी के बच्चे भी अपराधी होते हैं। अनेक जुडवाँ (twins) बच्चो के अध्ययन के आधार पर इन विद्वानो ने यह सिद्ध किया है कि अपराध का कारण वंशानुगत है। ग्लूकस (Gluecks) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि 50% अपराधी, अपराधी परिवारो मे आते हैं। इनके परिवारो मे भी अनेक प्रकार के अपराधी होते हैं या रह चुके होते हैं। रोसनॉफ (Rosanoff) ने जुडवाँ बच्चों का अध्ययन किया तथा बताया कि 70% बच्चे बड़े होकर अपराधी हो गये।

परन्तु अपराध का एकमात्र कारण आनुवंशिकता को मानना उचित नही है क्योंकि अगर ऐसा होता तो अपराधी परिवार के सभी सदस्य अपराधी होने चाहिए जबकि वास्तव मे ऐसा नही होता।

(ख) शारीरिक शीलगुण (Physical Traits)—इस कारक को मानने वाले विद्वानो का कहना है कि अपराधियो के अन्दर कुछ ऐसी शारीरिक विशेषताएँ होती हैं जो सामान्य व्यक्तियो में नहीं होती। प्रसिद्ध इटली निवासी शरीरशास्त्री लोम्ब्रोसो (Lombroso) का मत है कि कुछ विशिष्ट शारीरिक लक्षणो वाले व्यक्ति ही अपराधी होते हैं। इनमे विशेष प्रकार का शारीरिक गठन गुण होने के कारण लोग अगर घृणा या तिरस्कार के भाव रखते हैं तो उसमे हीनता के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। लोम्ब्रोसो के अनुसार, अपराधियो का माथा पतला व लम्बा, ललाट बहुत कम चौड़ा, कान चौड़े व नाक मोटी होती है।

अपराध के शारीरिक शीलगुण को एकमात्र कारण मानना उचित नहीं है। गोरिंग (Goring) ने लोम्ब्रोसो के मत का खण्डन किया है। गोरिंग का कहना है कि शारीरिक बनावट के दोष केवल अपराधियो मे ही नही, सामान्य व्यक्तियो मे भी पाये जाते हैं।

(2) सामाजिक व आर्थिक समस्याएँ
(Social and Economical Problems)

कुछ ऐसी जटिल सामाजिक व आर्थिक समस्याएँ व्यक्ति के सामने उपस्थित हो जाती हैं कि भला-सा-भला व्यक्ति भी अपराधी हो जाता है। ये सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ निम्न हैं—

(क) पारिवारिक विघटन (Family Disorganization)—परिवार के ही अन्तर्गत व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। अगर परिवार विघटित हो तो वह व्यक्ति के सम्मुख सगठित व सन्तुलित परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। अपराध के इस कारण के सन्दर्भ मे अनेक अध्ययन सम्पादित हुए हैं। बर्ट व स्लाकोसन (Burt and Slacoson) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि तलाक, बँटवारा, आपसी मतभेद आदि के फलस्वरूप जो परिवार विघटित होते हैं, उनमे अपराधी अधिक उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अपराध उत्पन्न करने मे पारिवारिक विघटन का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है।

(ख) सामाजिक विघटन (Social Disorganisation)—पारिवारिक विघटन के साथ ही साथ सामाजिक विघटन भी अपराध को उत्पन्न करने का प्रमुख कारण होता है। दूषित समाज व्यक्ति को अपराधी बनाने मे सहायक सिद्ध होता है। सामाजिक पर्यावरण को दूषित करने मे जुआबाजो का अड्डा, चोरी की मण्डली, वेश्याओं का मुहल्ला आदि का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। प्रत्येक प्रकार के समाज मे अपराधी पाए जाते है परन्तु विघटित समाज मे अपेक्षाकृत अधिक अपराधी होते हैं। शॉ (Shaw) ने अपराधियो के सामाजिक पर्यावरण का अध्ययन किया तथा बताया कि कुत्सित व विघटित सामाजिक जीवन भी अपराध का प्रमुख कारण है।

(ग) आर्थिक समस्याएँ (Economical Problems)—अनेक आर्थिक समस्याएँ भी अपराध को उत्पन्न करने के कारण बन जाती हैं, उदाहरणस्वरूप, गरीब पिता भी अपनी पुत्री के विवाह के लिए चोरी करने को बाध्य हो जाता है। कभी-कभी व्यक्ति के सम्मुख आर्थिक अन्तर्द्वन्द्व इतने तीव्र हो जाते है कि वह आत्महत्या कर बैठता है। एक पिता अपनी पुत्री को जहर दे सकता है या पुत्री अपने पिता की चिन्ता को दूर करने के लिए वेश्या भी बन सकती है।

(3) मनोवैज्ञानिक व मनश्चिकित्सीय कारक
(Psychological and Psychiatric Factors)

मुख्य रूप से कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक व मनश्चिकित्सीय कारक होते हैं जो अपराध को उत्पन्न करने मे सहायक सिद्ध होते है। अनेक मनोवैज्ञानिको ने अनुसन्धानो के आधार पर बताया है कि मन्द बुद्धि (low intelligence) अपराध का प्रमुख कारण है। परन्तु ऐसा प्रतीत नही होता, क्योकि तीव्र बुद्धि वाले व्यक्ति अपने अपराधो को चतुरता के साथ छिपा लेता है, जबकि मन्द बुद्धि वाले व्यक्ति पकड़े जाते है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने इसका कारण व्यक्तित्व-विकार (personality disorder), मन स्नायुविकृति (psychonuroses) व मनोविक्षिप्तता (psychosis) को भी बताया है। **विलसन व पेसकॉर** (Wilson and Pescor) के अनुसार करीब 18% अपराधियो मे व्यक्तित्व-विकार पाया जाता है। **मेटफेसल तथा लॉवेल** (Metfessel and Lovell) ने अपने अध्ययनो के आधार पर बताया कि अपराधपूर्ण व्यवहार की उत्पत्ति मन-स्नायुविकृतियो के द्वारा होती है। **ब्रूमबर्ग व थॉम्पसन** (Broomberg and Thompson) के अनुसार बहुत कम अपराधी मनोविक्षिप्त के रोगी होते हैं।

अपराध के कारणों के सम्बन्ध मे एक तथ्य उल्लेखनीय है कि इसका कोई एक कारण नही है बल्कि इसकी उत्पत्ति के मिश्रित कारक होते हैं।

अपराधों का उपचार (Treatment of Criminals)

सामाजिक व व्यक्तिगत दोनो ही दृष्टि से अपराधियो का उपचार करना आवश्यक होता है। यही कारण है कि प्राचीन-काल से ही अपराध निराकरण व निरोध का प्रयास किया जाता था। इस समय अपराधियो को सुधार का एकमात्र

साधन दण्ड समझा जाता था। अपराधियो की पिटाई की जाती थी, अँधेरी कोठरी मे कैद कर दिया जाता था तथा कठिन से कठिन काम करवाया जाता था। इस काल के लोगो की धारणा थी कि दण्ड से अपराधियो का सुधार किया जा सकता है।

परन्तु दण्ड से अपराध का उपचार सफल नही हुआ क्योकि दण्ड व सजा को भुगतने के वाद भी अपराधी अपराध करना नही भूलता था। अत आधुनिक काल मे अपराधियो का उपचार मनोवैज्ञानिक ढग से होना प्रारम्भ हुआ। अपराधी जेल इसलिए भेजा जाने लगा कि वह अपने को पुन सामाजिक प्राणी बनावे, समाज मे आत्म-निर्भर व विधिपालक (law-abiding) नागरिक के रूप मे रहे। अन्य शब्दो मे, आज अपराधियो के उपचार के लिए प्राचीन दण्ड-व्यवस्था को ही आधुनिक रूप दे दिया गया है। इस उपचार व्यवस्था के मुख्य पक्ष निम्न है :—

(1) आरक्षी व्यवस्था (Police arrangement),

(2) न्यायालय (Courts),

(3) परिवीक्षा-काल (Probation period);

(4) वन्दीकरण (Imprisonment),

(5) सप्रतिवन्ध कारामुक्ति (Parole)।

इस प्रकार आधुनिक उपचार व्यवस्था का प्रमुख नारा है—**"प्रतिकार से अधिक अच्छा निवारण करना है।"** (*"Prevention is better than cure."*)।

इस अपराध निवारण के प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं :—

(1) वाल्यावस्था मे उचित व्यक्तित्व-विकास (Proper development of personality in Childhood)।

(2) अपराध के प्रारम्भ मे ही उपचार (Treatment of crime in the beginning),

(3) अपराध उत्पन्न करने वाले कारणो का निष्कासन (Elimination of the causes of crimes);

(4) पर्यवेक्षण व विधि-पालक (Supervision and law-abiding);

(5) सरकार व सविधान (Government and constitution)।

वालापचार का स्वरूप
(Nature of Juvenile Delinquency)

अपराध व वालापराध

आयु की दृष्टि से ही अपराध व वालापचार मे अन्तर है। वालापराध या वालापचार एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। स्मरण रहे, वालापचार के सन्दर्भ मे कानूनी व मनोवैज्ञानिक व्याख्या मे अन्तर है। कानूनी दृष्टि से 15 से 17 वर्ष के वालको के समाज-विरोधी व्यवहार को वालापचार कहते है जबकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से युवावस्था के पूर्व जो लोग समाज-विरोधी कार्य करते हैं, वे सव लोग वालापचारी है।

परिभाषाएँ (Definitions)

(1) न्यूमेयर के अनुसार—"बालापचारी निम्न आयु का वह व्यक्ति है जो समाज-विरोधी क्रिया का दोषी है तथा उसका आचरण नियमो का उल्लघन है।"[1]

(2) डा० सेथना के अनुसार—"बाल-अपचार मे एक स्थान-विशेष पर उस समय लागू विधि द्वारा निर्धारित, एक निश्चित आयु के बालक या युवक व्यक्ति द्वारा किये गये गलत काम सम्मिलित हैं।"[2]

इन परिभाषाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक विशेष आयु तक के व्यक्ति जब नियमो का उल्लघन करते है तो उन्हे बालापचारी कहा जाता है। अपराध के समान ही बालापचार भी समय, स्थान, देश व सस्कृति के आधार पर निर्धारित होती है।

बालापचार के कारण[3]
(Causes of Juvenile Delinquency)

बालापचार के कारणों को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है —

(अ) **आर्थिक कारण** (Economic Causes)—
- (i) अतिशय गरीबी व अतिशय अमीरी,
- (ii) अन्य आर्थिक कारण।

(ब) **सामाजिक कारण** (Social Causes)—
- (i) परिवार (Family)—इसके अन्तर्गत भग्न परिवार (broken homes), दुश्चरित्र माता-पिता, अपराधी परिवार, उचित संरक्षण (guardianship) का अभाव आदि कारक आते है।
- (ii) विद्यालय (School);
- (iii) पास-पडौस (Neighbourhood);
- (iv) सिनेमा (Cinema),
- (v) विघटित समाज (Disorganised society)।

(स) **मनोवैज्ञानिक कारण** (Psychological Causes)—
- (i) मानसिक न्यूनता (Mental deficiency);
- (ii) सवेगात्मक अस्थिरता (Emotional instability),

---

1. "A delinquent is a person under age who is guilty of anti-social act and whose misconduct is an infraction of law." —Newmeyer.
2. "Juvenile delinquency involves wrong doing by a child or a young person who is under in age specified by the law (for the time being in force) of the place concerned" —Dr. Sethana.
3. अपराध व बालापचार के कारणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है अतः हम यहाँ संक्षेप मे ही इसका वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं।

(iii) मनोविकार (Mental disorder),

(iv) व्यक्तित्व शीलगुण (personality traits)।

बालापचार का निवारण

(Prevention of Juvenile Deliquency)

बालापचार निवारण से तात्पर्य उन उपायो से है जिनके उपयोग से बालापचार उत्पन्न ही नही होता हो। इसके निवारण के लिए आवश्यक है कि आर्थिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारणो से व्यक्ति को प्रभावित करने से पूर्व रोका जावे। इसके निवारण के प्रमुख उपाय निम्न है —

(1) **आर्थिक सुविधाएँ** (Economical Facilities)

बालापचार के निवारण के लिए सबसे प्रमुख उपाय है कि बालक को उचित आर्थिक सुविधाएँ प्रदान की जावे। यह कार्य केवल परिवार या माँ-बाप तक ही सीमित नही हो बल्कि समाज व सरकार—दोनो को ही सक्रिय रूप से सहयोग देना चाहिए। मुख्य आर्थिक समस्याएँ बालको के सम्मुख निम्न आती है—

(क) **पर्याप्त परिपोषण** (Adequate Nurture)—इससे तात्पर्य यह है कि बालक को स्वस्थ स्थान पर रखा जावे और स्वच्छ भोजन उन्हे दिया जावे। पर्याप्त परिपोषण से बालक के व्यक्तित्व का उचित विकास होता है तथा उनमे सहयोग, प्रेम व सहानुभूति की भावना विकसित हो जाती है जो बालापचार निवारण मे सहायक होती है।

(ख) **समीचीन शिक्षा** (Proper Education)—बालापचार के निवारण के लिए आवश्यक है कि बालको की शिक्षा उनकी अभिरुचि व बुद्धि के अनुसार हो। हो। एक समान शिक्षा प्रत्येक बालक के लिए अहितकर होती है। अत शिक्षक, समाज व सरकार का कर्त्तव्य है कि बालको को समीचीन शिक्षा प्रदान की जाय।

(2) **स्वस्थ पर्यावरण** (Healthy Environment)

बालक के सम्मुख ऐसा स्वस्थ पर्यावरण बनाना चाहिए कि वह उचित प्रकार से समायोजन व प्रतिक्रियाएँ कर सकें। जैसा कि हम जानते है कि अनेक सामाजिक कारण, जैसे—परिवार, प्रतिवेश या पडौसी, विद्यालय, सिनेमा आदि बालापचार के उत्पन्न होने मे सहायक सिद्ध होते है। अत बालापचार के निवारण के लिए कुत्सित पर्यावरण को दूर करना चाहिए। प्रमुख रूप से निम्न क्षेत्रो मे बालको के लिए स्वास्थ्य पर्यावरण की व्यवस्था होनी चाहिए —

(1) परिवार (Family), (2) प्रतिवेश (Neighbourhood), (3) विद्यालय (School), (4) सिनेमा (Cinema), (5) समाज (Society)।

(3) **मनोवैज्ञानिक समायोजन** (Psychological Adjustment)

अगर बालको का उचित रूप से मनोवैज्ञानिक समायोजन हो तो बालापचार निवारण समस्या के बहुत कुछ हल की सम्भावना हो सकती है। मनोवैज्ञानिक समायोजन के अन्तर्गत मानसिक न्यूनता, मनोविकार, सवेगात्मक अस्थिरता, व्यक्तित्व शील

गुणो का काफी महत्त्व है। मानसिक न्यूनता का निवारण बालापचार के निवारण के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार मनोविकार के उपचार मे भी बालापचार के निवारण मे सहायता प्राप्त होती है। अगर बालको के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार किया जाय तो उनके हीनता भावों को समाप्त किया जा सकता है।

बालापचार का सुधार
(Reformation of Juvenile Delinquency)

(1) बाल-सुधारक विद्यालय
(Reformatory Schools)

इस प्रकार के बालको के सुधार के लिए बालसुधारक विद्यालयो का काफी महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। सन् 1897 के 'सुधार विद्यालय अधिनियम' (*Reformatory Schools' Act*) के अन्तर्गत भारत मे इस प्रकार के विद्यालयो का विकास हुआ। इन विद्यालयो मे विविध प्रकार के उपायो के माध्यम से बालापचारी का सुधार किया जाता है। भारत मे चार सुधारक विद्यालय है, यथा—

(क) हजारीबाग का बालसुधारक विद्यालय—बालापचारियो के सुधार के लिए यह विद्यालय बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ है। इस विद्यालय मे बिहार, बगाल, उड़ीसा, असम आदि प्रदेशो के बालको का उचित प्रकार से उपचार किया जाता है। इन बालापचारियो की शिक्षा-व्यवस्था भी विशेष प्रकार की होती है। यहाँ व्यावसायिक चिकित्सा, क्रीडा-चिकित्सा व अन्य मनश्चिकित्सा की व्यवस्था है।

(ख) लखनऊ का बालसुधारक विद्यालय—लखनऊ मे स्थित यह विद्यालय भी बालापचारियो को सुधारने मे काफी सहायक व लोकप्रिय हुए है। इस विद्यालय मे उत्तर प्रदेश के बालापचारियो को रखा जाता है तथा यहाँ मनोरजन, खेलने तथा प्रारम्भिक शिक्षा आदि देने की व्यवस्था है। बालापचारियो को समय-समय पर यात्रा करवाई जाती है। इस प्रकार बालापचार के सुधार का काम होता है।

(ग) जबलपुर का बालसुधारक विद्यालय—बालापचार के सुधार के लिए यह विद्यालय भी काफी उपयोगी है। यहाँ मध्यप्रदेश के बालापचारियो का सुधार किया जाता है। व्यावसायिक व क्रीडा-चिकित्सा के माध्यम से इन बालापचारियो का उपचार किया जाता है।

(घ) हिसार सुधारक विद्यालय—इस सुधारक विद्यालय मे दिल्ली, पजाब व कश्मीर के बालापचारियो को समुचित शिक्षा दी जाती है। विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धो को इन बालापचारियो को सिखाया जाता है। शिक्षा, खेल, मनोरजन के अन्य साधनो की भी व्यवस्था है।

(2) बाल-कारागृह (Juvenile Jail)

बाल-कारागृह भी बालापचारियो के सुधार मे सहायक सिद्ध हुए है। इस प्रकार के कारागृहो मे बालापचारियो को विभिन्न प्रकार की क्रियायें, जैसे—खिलौने

बनाना, सिलाई-बुनाई करना, खेती करना आदि सिखाई जाती है जिससे ये बुराई वाले कार्यों के प्रति ध्यान न दे सके तथा साथ ही साथ रचनात्मक क्रियाओं को सीख सके। इस कारागृहो मे शिक्षा तथा औद्योगिक शिक्षा देने की भी व्यवस्था है। महत्त्वपूर्ण बाल-कारागृह बरेली (उत्तर प्रदेश), अगुल, (उडीसा) व पटना (बिहार) के है।

(3) **परिवीक्षा** (Probation)

यह सहानुभूतिपूर्वक सुधारने की विधि है जिसका उपयोग उन बालापचारियो पर किया जाता है जो प्रथम बार समाज-विरोधी कार्य करते है। मनोवैज्ञानिक रूप से इन बालापचारियो को सामाजिक कार्य करने की प्रेरणा दी जाती है। इनकी मनोवृत्तियो को सामाजिक कार्य करने की प्रेरणा दी जाती है। इनकी मनोवृत्तियो (attitudes) का अध्ययन किया जाता है। इन्हे सुधारने के लिए दण्ड का भय या अन्य सुझाव दिया जाता है। भारत मे सन् 1938 मे उत्तर प्रदेश सरकार ने 'प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम' (*First Offender's Prabation Act*) बनाया, जिसके अनुसार 7 से 24 वर्ष की आयु तक के अपराधियो को परिवीक्षा मे रखने का प्रबन्ध है। इस विधि की मुख्य विशेषताएँ निम्न है —

(i) सुधार के साथ ही साथ बालापचारी मे सामाजिक गुण का विकास करना इस पद्धति की प्रमुख विशेषता है।

(ii) इस पद्धति से कारावास के कुत्सित पर्यावरण के प्रभाव को रोकना सम्भव है।

(iii) इस विधि के उपयोग मे खर्च भी बहुत कम होता है।

(iv) इस प्रकार की विधि मे बालापचारी को यह समझने का अवसर मिलता है कि वह गलत कार्य कर रहा था उसमे सुधार होना आवश्यक है।

(4) **मनश्चिकित्सा** (Psychotherapy)

बालापचार को विभिन्न मनश्चिकित्सा की प्रविधियो के द्वारा भी ठीक किया जा सकता है। प्रमुख प्रविधियाँ निम्न है :—

(i) **व्यावसायिक चिकित्सा** (Occupational Therapy)—इस प्रकार की चिकित्सा मे बालको को औद्योगिक रचनात्मक कार्यों मे लगा दिया जाता है। इमसे बालापचारी एक तरफ तो रचनात्मक कार्यों को सीख जाता है तो दूसरी तरफ उसे बुरे कार्यों को सोचने का भी अवसर नही मिलता।

(ii) **क्रीड़ा चिकित्सा** (Play Therapy)—इस प्रकार की चिकित्सा पद्धति की प्रमुख विशेषता होती है कि बालापचारियो को विभिन्न प्रकार के खेल खिलाये जाते है तथा खेल के माध्यम से ही ये अपने सवेगो, अन्तर्द्वन्द्वो आदि की अभिव्यक्ति करते है। इस प्रकार की चिकित्सा मे बालको को स्वतन्त्रता व निर्भयता की शिक्षा दी जाती है जिससे कि उसका व्यक्तित्व का विकास उचित रूप से हो सके।

(iii) अंगुलि चित्रकारी (Finger Painting)—इस प्रकार की चिकित्सा प्रविधि मे बालापचारियो को रग व अगुली की सहायता से चित्रकारी कराई जाती है। यह चिकित्सा पद्धति काफी उपयोगी सिद्ध हुई। उनके द्वारा बनाये गये चित्र से उन्ही की संवेगात्मक तनावो की अभिव्यक्ति होती है।

(iv) मनोनाटक (Psychodrama)—नाटको के माध्यम से बालक अपने सवेगात्मक तनावो की अभिव्यक्ति करते है तथा अभिनय करते समय अपने अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करते है। इस प्रकार की विधि मे बालको को सुविधा रहती है कि वे अपनी इच्छा के अनुसार नाटक के पात्र का चयन करें। अभिनय के द्वारा ही ये बालक अपनी अचेतन मे दमित इच्छाओ, मनोग्रन्थियो आदि को प्रकट करते है।

मूल्यांकन

जब व्यक्ति ऐसे कार्य करता है जो समाज को अहित पहुँचाते है या उनसे अन्य व्यक्तियो को नुकसान पहुँचता हो तो उसे समाज-विरोधी व्यवहार करते है। अन्य शब्दो मे, समाज द्वारा निर्मित नियमो को अगर व्यक्ति पूर्ण रूप से पालन करने को इन्कार कर देता है तो उसे समाज विरोधी व्यक्ति की सज्ञा दी जाती है। समय व स्थान के आधार पर ही किसी व्यवहार को समाज-विरोधी ठहराया जा सकता है। इस प्रकार के व्यक्तियो की सख्या की निश्चित गणना सम्भव नही है। इस प्रकार के व्यक्ति देखने मे बड़े मिलनसार, मृदुभाषी, बुद्धिमान होते है। इस प्रकार के व्यक्ति व्यवहार को युक्तिसगत बनाये रखते है। ये व्यक्ति केवल अपने स्वार्थों के आधार पर वर्तमान की क्रियाओं को करता है। इन्हे भूत व भविष्य का कोई ख्याल नही होता। इस प्रकार के व्यवहार की उत्पत्ति करने में जैविक एव मनोवैज्ञानिको कारको का हाथ होता है। अपराध सम्बन्धी व्यवहारो की व्याख्या भी समाज-विरोधी व्यवहार के रूप मे की जा सकती है।

33
मानसिक आरोग्य-विज्ञान
(MENTAL HYGIENE)

मानसिक आरोग्य-विज्ञान आन्दोलन
(Mental Hygiene Movement)

इसी शताब्दी मे मानसिक आरोग्य विज्ञान का विकास हुआ है। वैसे तो इस दिशा मे अनेक व्यक्तियो एव सगठनो ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया परन्तु इस सम्बन्ध मे सर्वश्रेष्ठ कार्य मानसिक स्वास्थ्य के राष्ट्रीय सघ (National Association for Mental Health) का है। इसी राष्ट्रीय सघ को पहले मानसिक आरोग्य-विज्ञान की राष्ट्रीय समिति (National Committee for Mental Hygiene) कहा जाता था। सन 1908 मे कनैक्टीकट (Connecticut) के अन्दर 'मानसिक आरोग्य-विज्ञान समाज' (Mental Hygiene Society) की स्थापना की गई तथा सन् 1909 मे न्यूयार्क नगर मे मानसिक आरोग्य-विज्ञान के राष्ट्रीय सगठन (National Organisation of Mental Hygiene) की स्थापना हुई। इन दोनो प्रमुख सगठनो की स्थापना का श्रेय क्लिफोर्ड बीयर्स को है। बीयर्स स्वय मानसिक रूप से रोगी था और स्वस्थ हो जाने के उपरान्त, उसने एक 'पुस्तक' A Mind that Found Itself' लिखी जो काफी प्रसिद्ध हुई। राष्ट्रीय सघ ने सर्वप्रथम यह कार्य किया कि विभिन्न राज्यो व प्रदेशो का निरीक्षण करके मानसिक अस्पतालो की रोगियो की दशा का अध्ययन किया। वहाँ वैधानिक नियम (legal laws) जो लागू थे, उनके स्थान पर इस सघ ने चिकित्सीय मनोवैज्ञानिक उपागमो (medical and psychological approaches) का समर्थन किया तथा ऐसे स्कूलो को सुधारने का प्रयत्न किया जिनमे दुर्बल-बुद्धि (feeble-minded) व्यक्तियो की चिकित्सा की जाती थी या सुधारने का प्रयत्न किया जाता था। सन् 1922 से 1927 तक मानसिक स्वास्थ्य के राष्ट्रीय सगठन (National Association for Mental Health) तथा राष्ट्र मण्डल निधि ने

विभिन्न शहरों मे अनेक ऐसी निदानशालाओं की स्थापना की जिनके परिणामस्वरूप एक तरफ तो बाल-निर्देशन सेवाओ की उपयोगिता में वृद्धि हुई तो दूसरी तरफ निवारक मानसिक आरोग्य-विज्ञान (Preventive Mental Hygiene) से अधिक व नवीन बल प्राप्त हुआ।

20वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस सम्बन्ध में अधिक प्रोत्साहन देने का कार्य किया। प्रमुख शहरो में निदानशालाएँ स्थापित कीं, जिससे कि प्रथम बार वयस्को व प्रौढ़ो को मानसिक आरोग्य-विज्ञान की सेवाएँ प्राप्त हुईं। सन् 1949 मे अमेरिका में ही मानसिक स्वास्थ्य का राष्ट्रीय संस्थान स्थापित हुआ।

आधुनिक समय मे मानसिक आरोग्य-विज्ञान निदानशालाओ की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। सार्वजनिक स्वास्थ्य-सेवा (Public Health Service) की सूचना के आधार पर 1947 मे 850 समुदाय की सेवा हेतु निदानशालाएँ थीं जबकि 1954 मे 1280 समुदाय के लिए निदानशालाएँ उपलब्ध थी।

मानसिक स्वास्थ्य क्या है ?
(What is Mental Health ?)

अगर हम शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य की तुलना करे तो हम मानसिक स्वास्थ्य को आसानी से समझ सकते हैं। यह बात पूर्णतः स्पष्ट है कि अगर हमे कोई शारीरिक कष्ट नही है तो हम ठीक प्रकार से कार्य कर सकते हैं या अनेक प्रकार की शारीरिक क्रियाएँ कर सकते हैं परन्तु अगर ऐसा न हो तो क्या इन शारीरिक क्रियाओ को उचित प्रकार से कर सकते हैं ? इसका उत्तर नकारात्मक होगा। ठीक इसी प्रकार अगर हमारा मन स्वस्थ है तो हमें किसी भी प्रकार के संवेगात्मक विक्षोभ नही होंगे तथा हम ठीक प्रकार से कार्य कर पायेंगे। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति मे निम्न लक्षण पाए जाते है—

(1) सामान्य रूप से एक मानसिक स्वस्थ व्यक्ति सुखी जीवन व्यतीत करना चाहता है तथा अगर वह दुःखी भी होता है तो उसके कारण को समझता है।

(2) अधिकतर लोगो के साथ उसके मधुर, मैत्रीपूर्ण व सामाजिक सम्बन्ध होंगे तथा कुछ लोगो के साथ अधिक घनिष्ठता होगी।

(3) मानसिक रूप मे स्वस्थ व्यक्ति मे आत्मविश्वास व उत्साह रहता है। वह निराशावादी न होकर आशावादी होता है। हतोत्साहित होने पर भी वह धैर्य-पूर्वक कार्य करता रहता है।

(4) वह जीवन की विभिन्न समस्याओ का समाधान उचित चिन्ता व गम्भीरता के साथ करता है। वह समस्याओ से कतराता नही और न ही अन्य व्यक्तियों पर ही पूर्णरूप से निर्भर होता है।

(5) उन्ही स्थितियो या वातावरणो मे वह भय के भाव का अनुभव करता है।

(6) उसकी अन्तरात्मा गलत कार्यों को करने की अनुमति नही देती तथा उसके कार्यो व व्यवहारो मे कल्याणकारी भावना की झलक होती है।

(7) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति बात-बात पर बिगडता नही है और न ही क्रोध करता है। स्थितियो के अनुकूल ही वह क्रोध करता है।

(8) बुद्धि व योग्यता के अनुसार भविष्य की योजनाओ का निर्माण करता है तथा अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे उसे उग्र रूप से चिन्ता नही होती।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का अर्थ
(Meaning of Mental Hygiene)

आधुनिक युग चिन्ता का युग है। विज्ञान की उन्नति ने जहाँ एक तरफ मानव जीवन को सुखमय बनाने का प्रयास किया है वहाँ दूसरी ओर अनेक समस्याओ को भी उत्पन्न किया है। आज व्यक्ति के सम्मुख ऐसी अनेक स्थितियाँ है जो प्रत्यक्षत उसके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती हैं। असामान्य मनोविज्ञान व्यावहारिक मनोविज्ञान की एक शाखा है जो केवल असामान्य व्यवहार का ही अध्ययन नही करता है बल्कि इस बात का भी अध्ययन करता है कि इस प्रकार का व्यवहार क्यो होता है, इसके क्या-क्या कारण हैं, कौन-कौन-सी उपचारात्मक पद्धति इन्हे दूर करने मे सहायक है तथा व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य को किस प्रकार समायोजित या सामान्य बनाए रख सकता है। इस अध्याय मे हम मानसिक स्वास्थ्य के सन्दर्भ मे विस्तृत विवरण प्रस्तुत करेंगे।

शाब्दिक अर्थ मे मानसिक आरोग्य-विज्ञान व्यक्ति को मानसिक रूप से या मस्तिष्क को स्वस्थ स्थिति मे रखने वाला विज्ञान है। जिस प्रकार शारीरिक आरोग्य मनुष्य के शरीर को स्वस्थ रखने का विज्ञान होता है, उसी प्रकार मानसिक आरोग्य मनुष्य को मानसिक रूप से स्वस्थ रखने का विज्ञान है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियो से यह पूर्णत. सिद्ध हो चुका है कि जिस प्रकार स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मस्तिष्क होता है उसी प्रकार स्वस्थ मस्तिष्क मे स्वस्थ शरीर रहता है। अन्य शब्दो मे, शरीर उसी दशा मे स्वस्थ रहेगा जबकि उसका मस्तिष्क व शरीर (mind and body) दोनो स्वस्थ हो। मानसिक आरोग्य-विज्ञान के माध्यम से केवल मानसिक रोगो का उपचार व निवारण ही नही होता बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का समुचित विकास भी होता है।

इस शताब्दी के आरम्भ मे एक मानसिक रोगी ने चिकित्सालय मे अन्य रोगियो के साथ क्रूर वर्ताव को देखकर, अपने अनुभवो के आधार पर एक पुस्तक लिखी। यह लेखक व रोगी **बीयर्स** (*Biers*) था, जिसने बाद मे **विलियम जेम्स** (Willian James) व रूजवेल्ट (Roosevelt) की सहायता से मानसिक चिकित्सालयो की दशा सुधारने का प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप मानसिक आरोग्य-विज्ञान का आविर्भाव हुआ। आज मानसिक आरोग्य-विज्ञान एक निश्चित विज्ञान बन गया है।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान की अनेक परिभाषाएँ दी गई, जिन्हे सक्षेप मे यहाँ बताना आवश्यक प्रतीत होता है।

अमेरिकन मानसोपचारशास्त्र परिषद्[1] (*American Psychiatric Association*) के अनुसार, मानसिक आरोग्य-विज्ञान के अन्तर्गत वे मापन आते है जिनसे मानसिक रोग की घटनाओ की भी उचित रोकथाम एव प्रारम्भिक उपचार के माध्यम से कम किया जा सके एव मानसिक स्वास्थ्य को बढाया जा सके। प्रो० सिंह के अनुसार, "मानसिक आरोग्य-विज्ञान वह विज्ञान है जो सन्तुलित समायोजन एव स्वस्थ व्यक्तित्व-विकास के लिए मनोव्याधि, व्यक्तित्व-विकार तथा अन्य असामान्यताओ के उपचार एव निवारण के नियमो व साधनो का अध्ययन करता है।"[2] शेफर (Shaffer) के अनुसार, "मानसिक आरोग्य-विज्ञान अनुपयुक्त अभियोजन के निरोध एव इसकी प्रक्रिया-विधियो के अध्ययन का विज्ञान है।"

उपर्युक्त परिभाषाओ से यह बात पूर्णत. स्पष्ट हो जाती है कि मानसिक आरोग्य-विज्ञान के निम्नलिखित तीन पक्ष है

(1) **निरोधात्मक उपाय** (Preventive Measures)

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का प्रथम एव प्रमुख पक्ष यह है कि उन कारणो पर नियन्त्रण प्राप्त करना जोकि व्यक्ति को मानसिक रूप से अस्वस्थ बनाते है। अन्य शब्दो मे, व्यक्ति का आन्तरिक व बाह्य समायोजन इस प्रकार का हो कि वह व्यक्तिगत व सामाजिक रूप से सुखी व रचनात्मक व्यक्ति के समान जीवन-यापन करे। यह तभी सम्भव होगा जबकि व्यक्ति की जैविक, मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक परिस्थितियाँ उसके अनुकूल हो। इस प्रकार मानसिक आरोग्य-विज्ञान का प्रमुख पक्ष यह है कि मानसिक रोगो की रोकथाम के लिए जैविक, मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक उपायो का प्रयोग किया जाता है जिससे कि मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहे।

(1) **जैवकीय निरोधात्मक उपाय** (Biological Preventive Measures)—शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक स्वास्थ्य मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ शारीरिक रोगो मे (यथा—ब्रेन ट्यूमर, सिफलिस आदि) मे तो मानसिक लक्षणो की अधिक प्रधानता होती है। अत ऐसे उपायो का प्रबन्ध होना चाहिए कि लोगो का सामान्य

---

1. "Mental Hygiene consists of measures to reduce the incidence of mental illness through prevention and early treatment, and to promote mental health"—**Coville**, *et al*, *Abnormal Psychology*, p 264.

2 "Mental Hygiene is that science which studies laws and means of curing and preventing mental disease, personality disorders and other abnormalities for balancing adjustment and healthy development of personality"—**Singh, S** *Asamanya Manovigyan*, p. 272.

स्वास्थ्य अच्छा रहे। अनेक मानसिक रोगो का कारण जैविक होता है, जैसे—माँ-बाप की अस्वस्थता, गर्भ या जन्म के समय अनुपयुक्त जैविक परिस्थितियो का उत्पन्न होना आदि। अत इस दिशा मे भी उचित कदम उठाये जाने चाहिए।

(ii) **मनोवैज्ञानिक निरोधात्मक उपाय** (Psychological Preventive Measures)—मानसिक आरोग्य के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति के चारो ओर उचित पर्यावरण हो जिससे कि उसके व्यक्तित्व का भी उचित व समायोजनपूर्ण विकास हो सके। वह एक तरफ तो जीवन-दर्शन, जीवन मूल्यो, अभिवृत्तियो आदि के अनुसार अपने आचरण को प्रकट करता है तो दूसरी तरफ विभिन्न पर्यावरण सम्बन्धी दबाव-पूर्ण परिस्थितियो का सामना करना पडता है। अगर मनोवैज्ञानिक रूप से निरोधात्मक उपायो का उपयोग नही किया गया तो मानसिक स्वास्थ्य की एक जटिल समस्या आ सकती है। इस प्रकार की व्यवस्था आज के संघर्ष युग मे अति आवश्यक है कि प्रारम्भिक अवस्था मे ही रोगो की पहचान व उपचार हो। मुख्य रूप से मनोवैज्ञानिक निरोध के अन्तर्गत निम्न बाते आती है —

(i) बाल्यावस्था मे उचित पालन-पोषण की व्यवस्था।
(ii) किशोरावस्था के लिए पहले से ही उपयुक्त शिक्षा-व्यवस्था होना।
(iii) अपेक्षित सवेगात्मक व सामाजिक योग्यताओ को विकसित करना।
(iv) व्यावसायिक समायोजन (vocational adjustment)।
(v) उचित जीवन दर्शन के निर्माण के लिए प्रयत्न।

(2) उपचारात्मक उपाय (Curative Measures)

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का यह पक्ष इस तथ्य पर विशेष बल देता है कि जो मानसिक रोगी है, उनकी उचित उपचार-व्यवस्था की जावे। अन्य शब्दो में, यह मानसिक रोगो को दूर करने का उपाय बताता है।

(3) संरक्षणात्मक उपाय (Preservative Measures)

मानसिक आरोग्य-विज्ञान के इस पक्ष के अन्तर्गत वे नियम या उपाय आते है जिनका अनुसरण करने से व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा कर सकता है।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का उद्देश्य
(Aims of Mental Hygiene)

मानसिक आयोग्य-विज्ञान का उपयोग व उद्देश्य काफी व्यापक है, क्योंकि इसका उद्देश्य केवल मानसिक रोगो की रोकथाम तक ही सीमित न होकर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना है जो पर्यावरण के साथ ठीक प्रकार का समंजन कर सके तथा उसे जीवन में कम-से-कम अन्तर्द्वन्द्व व मानसिक तनाव का सामना करना पडे। सक्षेप मे इसके मुख्य उद्देश्य निम्न हैं :—

(1) मानसिक दोषों का निवारण
(Prevention of Mental Defects)

लॉरेंस एफ० शेफर (Lawrence F Shaffer) के अनुसार, मानसिक आरोग्य-विज्ञान जहाँ एक तरफ मनुष्य के अपर्याप्त समायोजनो की रोकथाम करता

है तो दूसरी तरफ उन प्रक्रियाओं या विधियो की खोज व उपयोग पर भी जोर देता है जिससे कि असन्तुलित व्यक्ति को सन्तुलित बताया जा सके। शेफर के विचार मानसिक आरोग्य-विज्ञान के निराकरणात्मक (curative) उद्देश्य की ओर संकेत करते हैं। अन्य शब्दो में, इस विज्ञान का आधारभूत तथ्य यह है कि रोगों का निवारण उसके प्रतिकार की अपेक्षा अच्छा होता है। (*Prevention is better than cure*)।

(2) समस्त व्यक्तित्व व्यतिक्रमों का उपचार
(Treatment of all Personality Disorders)

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का मुख्य उद्देश्य केवल मानसिक दोषो का निवारण करना ही नहीं है वल्कि व्यक्तित्व सम्बन्धी सभी गड़बड़ियों को रोकना है जिससे कि मानसिक दोष उत्पन्न ही न हों। अन्य शब्दो में, इस विज्ञान का यह भी उद्देश्य है कि किसी भी प्रकार की मनोव्याधि व असन्तुलन उत्पन्न होने पर उनका ठीक प्रकार से उपचार हो। थॉमस वी० मूरे (Thomas V. Moore) के अनुसार, मानसिक आरोग्य-विज्ञान वह विज्ञान है जो मानव-व्यक्तित्व व उसके विचलन या भ्रंशताओं (deviations) का निरोधात्मक दृष्टि से अध्ययन करता है। सरल शब्दो में, इसका मुख्य उद्देश्य मानसिक दोषो की उपचार व्यवस्था करना है।

(3) मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा
(Safeguard of Mental Health)

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करना है। स्मरण रहे कि यह कार्य तभी सम्भव होगा जबकि व्यक्तित्व का विकास व्यवस्थित एवं सन्तुलित ढंग से हो।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का क्षेत्र
(Scope of Mental Hygiene)

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का क्षेत्र काफी विस्तृत है, क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यक्ति की विभिन्न मनोव्याधियो, मानसिक दोषों व असन्तुलनों आदि के निवारण के साथ ही साथ स्वास्थ्य सन्तुलन आदि का संरक्षण भी आता है। इस प्रकार इसके क्षेत्र मे व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन आ जाता है। प्रत्येक पुरुष-स्त्री, युवक-युवतियों, बालक-बालिकाएँ आदि के सम्मुख ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं कि उसी समायोजन करने से अनेक कठिनाइयाँ महसूस होती हैं, जिसके फलस्वरूप मानसिक अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है तथा मानसिक स्वास्थ्य को हानि पहुँचने की सम्भावना होती है। इस प्रकार सभी लोगों को मानसिक आरोग्य-विज्ञान से सहायता प्राप्त होती है तथा उसकी समस्याओं का अध्ययन इसके क्षेत्र में होता है।

मानसिक आरोग्यता का प्रभावपूर्ण कार्यक्रम
(A Sound Programme of Mental Hygiene)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान वह साधन है जो मानसिक स्वास्थ्य के साध्य की

पूर्ति करता है। मुख्य रूप मे मानसिक आरोग्यता के प्रभावशाली कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्न बातें निहित होनी चाहिए —

(1) मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की उचित शिक्षा
(Proper Education of Mental Hygiene)

व्यक्तियो को इस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए कि असामान्यता सम्बन्धी भ्रामक विचारो का खण्डन हो तथा उचित अर्थ की जानकारी हो सके। भ्रामक विचारो को दूर करने के लिए व्यक्तियो को निम्न बातें समझनी चाहिए .—

(अ) मानसिक रोग या बीमारी पैत्रिक वशानुगत होते है (Mental illness is inherited)
(ब) मानसिक रोग कोई पाप या पुण्य का परिणाम नही है।
(स) सामान्य व असामान्य एक-दूसरे से भिन्न है।
(द) मानसिक रोग कोई सूचना देकर नही आते हैं।
(य) मानसिक रोग, असाध्य नही है, इसका उपचार सम्भव है।
(र) काम-भावना (sex-feeling) इसका मुख्य कारण है।
(ल) असामान्यता अनेक कारणों से उत्पन्न होती है।

(1) प्रारम्भिक लक्षणों की पहचान व उपचार
(Recognition and Treatment of Early Symptoms)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के कार्यक्रम के अन्दर इस बात का प्राविधान होना चाहिए कि मानसिक रोगो को उत्पन्न होते ही उनके लक्षणो को जानें तथा उचित उपचार करें।

(11) अवकाश के समय उचित प्रयोग
(Proper Utilization of Time)

समाज व सरकार को चाहिए कि वह ऐसे प्रबन्ध करे कि जहाँ लोग अपना अवकाश ठीक प्रकार से व्यतीत कर सकें।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का महत्त्व
(Importance of Mental Hygiene)

साधारणतया लोग मानसिक आरोग्य-विज्ञान का यह अर्थ लगाते हैं कि इसका मुख्य उद्देश्य पागल होने से बचाना है। परन्तु वास्तव मे इस प्रकार का अर्थ लगाना गलत है, क्योकि इसका महत्त्व केवल मानसिक रोगो, दोषो आदि का निवारण व उपचार (prevention and treatment) तक ही सीमित नही है बल्कि स्वस्थ व सामान्य व्यक्तियो के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। मानसिक आरोग्य-विज्ञान जहाँ एक तरफ मनोविकृतियो व मन स्नायुविकृतियो की उपचार व्यवस्था का प्रबन्ध करता है वहाँ दूसरी ओर सन्तुलन व्यक्तित्व के निर्माण एव उसकी रक्षा का भी प्रबन्ध करता है। स्मरण रहे कि सामान्य व्यक्ति व असामान्य मे प्रकार (kind) का अन्तर नही

है वल्कि मात्र (degree) का अन्तर है। सामान्य व्यवहार सन्तुलित होना चाहिए अन्यथा इसका जरा-सा अतिरंजन होने पर असामान्य व्यवहार हो जावेगा। मानसिक आरोग्य-विज्ञान इस प्रकार के नियमों व साधनों की व्यवस्था करता है जिनका पालन करने से स्वस्थ मस्तिष्क, सन्तुलित समायोजन एवं सामान्य व्यक्तित्व का निर्माण ही नहीं होता है बल्कि इनक सुरक्षा भी होती है। मानसिक आरोग्य-विज्ञान का प्रमुख महत्त्व मानसिक न्यूनता, व्यक्तित्व-विकास, चरित्र-विकार, अपराध आदि असन्तुलनों के निवारण या उत्पन्न होने से रोकने में भी है। इसका महत्त्व परिवार, शिक्षा आदि के क्षेत्र में भी है।

आज के इस चिन्ता रूपी युग में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उन प्रविधियों की जानकारी मनुष्य को करायी जावे जिससे कि वह अपने को मानसिक रूप से स्वस्थ रख सके। मानसिक आरोग्य विज्ञान मानसिक रूप से व्यक्ति को स्वस्थ स्थिति मे रखने वाला विज्ञान है। शरीर को पूर्णरूपेण स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि मस्तिष्क व शरीर—दोनों स्वस्थ रहें। इसके अन्तर्गत उपचार व रोगों के निवारण के साथ-साथ उन विधियो का भी अध्ययन करता है जो व्यक्तित्व के समुचित विकास में सहायक होते हैं।

मानसिक आरोग्य विज्ञान के उपयोग के क्षेत्र
(Area of Application of Mental Hygiene)

मानसिक आरोग्य विज्ञान का क्षेत्र काफी विस्तृत है क्योंकि न तो इसका क्षेत्र अस्पतालों व निदानशालाओं तक ही सीमित है और न ही पहले से असमायोजित व्यक्तियों के निदान व उपचार तक। वास्तव में इसका महत्त्व प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। सामान्य व्यक्तियों के लिए इसलिए कि वे निरन्तर सामान्य व समायोजित रहें तथा असामान्य या असमायोजित के लिए इसलिए कि वे पुनः सामान्य या समायोजित की ओर अग्रसर हो सकें। इस प्रकार मानसिक आरोग्यविज्ञान का क्षेत्र काफी विस्तृत है तथा निम्न क्षेत्रों में इसका बराबर उपयोग होता है—

1. परिवार व मानसिक आरोग्य विज्ञान
(Family and Mental Hygiene)

मानव-जीवन के प्रथम पाँच या वर्ष काफी महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इस काल से उसके व्यक्तित्व का निर्माण होना है तथा इस काल में मुख्यतः उसका सम्पर्क परिवार के सदस्यों के साथ ही होता है। अगर परिवार के सदस्य अर्थात् माँ-बाप, भाई-बहिन आदि समायोजित जीवन व्यतीत कर रहे होते हैं तो उनके बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। परिवार के सदस्य तभी समायोजित रह सकते हैं जबकि उन्हें मानसिक आरोग्य-जीवन की जानकारी हो। माँ-बाप के मध्य उचित पारस्परिक सम्बन्ध हो जिनसे कि वे उत्तरदायित्व के साथ बच्चों के शरीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास पर ध्यान दें तथा उनके साथ स्नेहपूर्ण व सन्तोषजनक सम्बन्ध बनाये रखें।

2. **शिक्षा एवं मानसिक आरोग्य-विज्ञान**
(Education and Mental Hygiene)

प्राय. दोनो के उद्देश्य एक ही हैं। उद्देश्य के दृष्टिकोण से ही नही दोनो की अध्ययन सामग्री मे भी समानता है क्योकि शिक्षा एव मानसिक आरोग्य विज्ञान दोनो के अध्ययन विषय वे व्यक्ति होते हैं जो समाज मे उचित व सन्तोषप्रद जीवन व्यतीत करें। शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक प्रशिक्षण (intellectual Training) ही नही है। **शेफर व शोबेन** (Shaffer and Shoben) के मतानुसार, वे स्कूल जो मानसिक आरोग्य विज्ञान से सम्बन्धित है उनकी दो जिम्मेदारियाँ है—

1. जिन कार्यों से स्कूल को पृथक रहना चाहिए जो विद्यार्थी को कुसमायोजन (maladjustment) की तरफ ले जाते हैं।
2. शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थी के जीवन मे सकारात्मक व रचनात्मक ढग से प्रभावित करे।

कभी-कभी स्कूल मे ही मानसिक आरोग्य-विज्ञान का संकट खडा हो जाता है। इसके तीन प्रमुख कारण होते हैं—

1. समस्त विद्यार्थियो की एक समान स्तर से शिक्षा प्रदान करने पर कुछ विद्यार्थी तो शीघ्र समझ लेते है, कुछ नही।
2. कुछ विद्यार्थी सवेगात्मक अनुभवो को स्कूल मे सीख लेते हैं।
3. कुछ विद्यार्थी घर से चिन्ता (anxiety) को लेकर आते है जिसका हानिकारक प्रभाव उनके स्कूल कार्यो पर पडता है।

ये कारण ऐसे हैं जिन्हे अगर दूर नही किया गया तो आगे चलकर अनेक मानसिक विकृतियो के कारणो मे परिवर्तित हो जाती है।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान को सकारात्मक (positive) **योगदान**—आधुनिक युग मे यह निर्विवाद तथ्य है कि शिक्षा को विद्यार्थियो के वैयक्तिक समायोजन (personal adjustment) मे सहायता प्रदान करनी चाहिए। इसके लिए अति आवश्यक कार्य यह है कि उसकी शैक्षिक कठिनाइयो को दूर किया जावे जिससे कि उसमे ऐसी मनोवृत्तियाँ, अन्तर्दृष्टियाँ व कुशलताएँ विकसित हो जो कि कठिन से कठिन समस्याओ के उत्पन्न होने पर भी न्यूनतम चिन्ता के साथ समायोजन करने मे सहायता प्रदान करें। इसी उद्देश्य के साथ शिक्षा मे आज अनेक परिवर्तन हुए है जो सकारात्मक मानसिक आरोग्यविज्ञान के लिए सफल साधन बन गए हैं।

शिक्षकों की समायोजन समस्या—शिक्षक अगर समायोजित है, उनके व्यक्तित्व मे अच्छे गुणों का समावेश हो चुका हो या अपने आपको वह सुरक्षित समझता हो तो इसका अनुकूल प्रभाव विद्यार्थियो पर पडेगा। इस प्रकार के शिक्षक विद्यार्थियों को प्रभावित करते हैं। परन्तु जो शिक्षक इस प्रकार के नही होते वे अपने विद्यार्थियो को न तो प्रभावित ही कर पाते हैं और न ही सवेगात्मक नियन्त्रण कायम कर पाते है। उनका यह व्यवहार विद्यार्थियो के लिए हानिकारक होता है। शिक्षक

के मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए उनके इन दोषों को दूर करना आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें मानसिक आरोग्य-विज्ञान का प्रशिक्षण हो तथा पूर्ण ज्ञान हो।

आप ही के लिए मानसिक आरोग्य-विज्ञान
(Mental Hygiene for Yourself)

वास्तविक व व्यावहारिक दृष्टिकोण यह है कि मानसिक आरोग्य-विज्ञान सभी के लिए है—आपके लिए है। इसके नियमों के परिपालन से आप अपना जीवन सुखमय बना सकते हैं। आप अपना आत्मसुधार कर सकते हैं, अपने अन्दर नवीन मनोवृत्तियाँ विकसित कर सकते हैं तथा नवीन व अच्छे व्यवहार को सीख सकते हैं। मानसिक आरोग्य-विज्ञान कुछ ऐसी विशेषताओं का उल्लेख करता है जो व्यक्तिगत समायोजन के लक्षण होते है—

1. वास्तविकता का नियम (Reality Principle)
2. आत्म-अवबोध प्राप्त करना (Achieving Self-Understanding)
3. चिन्ता स्वीकार करना (Accepting Anxiety)
4. रक्षा युक्तियों को त्यागना (Rejecting Defence-mechanisms)
5. अन्तर्द्वन्द्व व नैराश्य को कम करना (Reducing Conflict and Frustration)
6. संवेगों की अभिव्यक्ति करना (Expression of emotions)
7. नैराश्य-सहनता (Frustration-Tolerance)
8. अन्य व्यक्तियो का स्वीकरण (Acceptance of other people)

34

मानसिक दुर्बलता
(MENTAL DEFICIENCY)

मानसिक दुर्बलता क्या है ?
(What is Mental Deficiency ?)

मानसिक दुर्बलता को अन्य अनेक नामो, जैसे—क्षीणमनस्कता या मनोदौर्बल्य (feeblemindedness), मानसिक अपूर्णता (amentia), मानसिक असामान्यता (subnormality) आदि से पुकारते है। शाब्दिक रूप से मानसिक हीनता का अर्थ है—मानसिक कमजोरी या निर्बलता। अन्य शब्दों मे, जिस व्यक्ति मे औसत से कम बुद्धि होने का दोष विद्यमान होता है, उसे इस श्रेणी मे रखा जाता है। वुडवर्थ (Woodworth) के शब्दो मे, "क्षीणमनस्कता या मनोदौर्बल्य व्यक्तियो मे बुद्धि की इतनी कमी होती है कि वे देखरेख के बिना स्वयं अपना जीवन भी नहीं चला सकते।"[1] इस प्रकार का व्यक्ति समाज व परिवार—दोनों ही के लिए एक समस्या है।

मानसिक न्यूनता एक ऐसा शब्द है जिसके अन्तर्गत विविध प्रकार की ऐसी अवस्थायें आती हैं जो एक-दूसरे से करण विज्ञान (etiology) नैदानिक प्ररूप मे भिन्न होती है। अत मानसिक न्यूनता शब्द के स्थान पर मानसिक न्यूनतायें अधिक उपयुक्त होगी। इन अवस्थाओ को एक समूह मे इसलिए स्वीकार कर लिया गया है क्योकि इसमे एक विशेषता समान है और यह विशेषता बौद्धिक विकास मे महत्त्वपूर्ण न्यूनता है।

बौद्धिक विकास का अनुमान मानसिक क्रियाओ की परिपक्वता तथा अधिगम क्षमताओ के विकास, सवेगात्मक समायोजन के विशेष पक्षो, जैसे—सामाजिक पर्यावरण के अनुकूलन आदि से किया जाता है। अत वोलमैन (Wolman) के अनुसार, "मान-

---

1. "Feebleminded persons are so deficient in intelligence that they cannot manage their own lives without supervision."
—Woodworth.

सिक न्यूनता के क्षेत्र का सम्बन्ध ऐसे व्यक्तियों से है जिनका समायोजन उपलब्धि एवं सुख जैसी अवस्थाओ अथवा प्रभावों द्वारा कुण्ठित अथवा अपर्याप्त रह गये हैं जो सामान्य अथवा औसत से स्पष्ट रूप से नीचे बौद्धिक विकास के स्तर को उत्पन्न करते हैं।"[1]

मनोविकार शब्द अत्यधिक व्यापक संप्रत्यय है जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार के मानसिक रोग जिनमे मानसिक न्यूनता भी सम्मिलित है, आते हैं। 1907 में इमिल क्रेपलिन (Emil Kraeplin) ने मनोविकारो का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। यद्यपि इस वर्गीकरण मे बहुत कुछ संशोधन हो चुके है परन्तु फिर भी इसके अधिकतर महत्त्वपूर्ण तथ्य आज भी मान्य है।

1952 में *American Psychiatric Association* ने सभी मनोविकारों को दो मुख्य समूहों मे विभाजित किया है—आंगिक (organic) और प्रकार्यात्मक (Functional)। आंगिक मनोविकार मस्तिष्क ऊतक (Brain tissue) में क्षति के कारण उत्पन्न होते हैं। जबकि प्रकार्यात्मक मनोविकारो मे कोई ज्ञात तन्त्रिकीय (Neurological) क्षति का आधार नही है। यहाँ तक कि अधिक महत्त्वपूर्ण प्रकार्यात्मक मनोविकारो का कारण आंगिक दोष न मानकर दोषयुक्त सामाजिक समायोजन माना जाता है।

प्रकार्यात्मक मनोविकारों के अन्तर्गत (Psychoses) मन.स्ताप और तन्त्रिकाताप (Neurosis) के बीच अन्तर किया जाता है। इनके अलावा व्यक्तित्व सम्बन्धी मनोविकार भी आते है। यह अन्तर *APA* के निम्नलिखित वर्गीकरण से स्पष्ट हो जायेगा :

1 **मस्तिष्क ऊतक (Tissue) में क्षति से सम्बन्धित मनोविकार**
   - (क) तीव्र मस्तिष्क विकार (Acute brain disorders), जैसे—मद्यपान, भेपज-व्यसन, इत्यादि।
   - (ख) दीर्घकालिक मस्तिष्क विकार (Chronic brain disorders); जैसे—सिफिलिस प्रमस्तिष्कीय धमनी काठिन्य (Syphilis, cerebral arterio-sde roses) इत्यादि।

2. **मानसिक न्यूनता :**
   - (क) परिवार अथवा वंशानुक्रम से सम्बन्धित।
   - (ख) अज्ञात कारणों से विकसित।

1. "According to Wolman, the field of mental deficiency is concerned with individuals whose adjustments, achievements and happiness are thwarted or rendered inadequate by conditions or influences which produce a level of intellectual development markedly below normal or average."

3 मनोजन्य उत्पत्ति से सम्बन्धित मनोविकार :

(क) मनस्तापी मनोविकार ।

जैसे—मनोविदलन, उन्माद अवसाद मनस्ताप व्यामोह इत्यादि ।

4 तन्त्रिकातापी मनोविकार

जैसे—दुश्चिन्ता, हिस्टीरिया, दुर्भीति, मनोग्रस्तता-बाध्यता इत्यादि ।

5 व्यक्तित्व मनोविकार

जैसे—समाज विरोधी व्यक्तित्व, लैंगिकता विचलन, मद्यपान इत्यादि ।

6 क्षणिक व्यक्तित्व विकार

(Bansent Situational Personality Disorders)

उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट हो जाता है कि मानसिक न्यूनता एक प्रकार का मनोविकार है । APA के अनुसार मानसिक न्यूनता केवल सीमित बौद्धिक योग्यता की अवस्था है जो जन्म से विद्यमान होती है जिसका कोई आंगिक मस्तिष्क विकार ज्ञात नही है । बौद्धिक क्षमता मे कमी के कारण व्यक्ति मे जीवन की समस्याओ से जूझने की शक्ति कम हो जाती है ।

मानसिक न्यूनता और मनोविकार मे एक मुख्य अन्तर यह है कि मानसिक न्यूनता मे समायोजित प्रतिक्रियायें विकसित ही नही हो पाती क्योकि जन्म से ही बौद्धिक क्षमता का अभाव रहता है । इसके विपरीत मनोविकार मे समायोजित प्रतिक्रियाएँ एक बार विकसित हो जाने के पश्चात् विकार के उत्पन्न होने के फलस्वरूप लुप्त हो जाती है ।

मानसिक न्यूनता का निदान अथवा मापन कोई सरल कार्य नही है । इसके लिए प्राय बुद्धि परीक्षणो का उपयोग किया जाता है । परन्तु कठिनाई यह है कि कुछ ऐसे व्यक्ति जिनकी बुद्धि-लब्धि 70 से कम होती है, स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर होते हैं और अनेक आवश्यक कौशलो को विकसित कर लेते है । इसके विपरीत कुछ व्यक्ति जिनकी बुद्धि-लब्धि 70 से अधिक होती है, अपनी देखभाल भी नही कर सकते और उन्हे अस्पताल मे भर्ती करना पडता है । अत मानसिक न्यूनता के निदान मे बुद्धि-लब्धि का मापन एक कसौटी है । इसके अलावा सामाजिक सामर्थ्य (क्षमता) (Competence) अथवा परिपक्वता का मापन भी आवश्यक है ।

एडगर डाल (Edgar Dall, 1946) ने सामाजिक परिपक्वता मापनी का विकास किया । इसका उपयोग मानसिक न्यूनता से पीडित व्यक्ति के सामाजिक बौद्धिक क्षमता के मूल्याकन के लिए किया जाता है ।

डाल के अनुसार मानसिक न्यूनता सामाजिक अक्षमता की वह अवस्था है जो परिपक्वता पर प्राप्त होती है और शरीर गठनात्मक (वंशानुक्रमिक अथवा अर्जित) उत्पत्ति के कारण बुद्धि के विकासात्मक रोध (arrest) के कारण उत्पन्न होती है ।

"Mental deficiency is a state of social incompetance obtained at maturity, resulting from developmental arrest of intelligence because of constitutional (hereditary or acquired) origin."

(1) वैधानिक दृष्टिकोण

(Legal Viewpoint)

यह प्राचीन दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मानसिक दुर्बलता का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसे भले-बुरे, नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित को समझने की योग्यता या क्षमता या तो है ही नही या अभाव हो। यह दृष्टिकोण मानसिक दुर्बलता का आधार स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति (free will power) को मानता है। क्योंकि इस प्रकार का व्यक्ति अपने कार्य के परिणाम के सम्बन्ध मे भी नही सोच पाता। अतः वह वैधानिक व सामाजिक उत्तरदायित्वों से भी मुक्त होता है। परन्तु यह दृष्टिकोण ठीक प्रतीत नही होता। क्योंकि मनोविज्ञान के अन्तर्गत स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का कोई स्थान नही है।

(2) वैद्यक दृष्टिकोण

(Medical Viewpoint)

इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन ट्रेडगोल्ड (Tredgold) ने किया। इस दृष्टिकोण के आधार पर उसने मानसिक दुर्बलता की निम्न परिभाषा दी है—

"मानसिक दुर्बलता मस्तिष्क विकास की वह सीमित अवस्था है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति परिपक्व होने पर अपने पर्यावरण मे अभियोजित होने या समुदाय के भागो की पूर्ति करने से असमर्थ होता है तथा किसी वाह्य अवलम्ब या मार्गदर्शन के बिना अपने अस्तित्व का निर्वाह नही कर पाता है।"[1]

ट्रेडगोल्ड ने अपनी परिभाषा मे दो मुख्य बातो पर जोर दिया है—(1) मस्तिष्क विकास की सीमित अवस्था, व (2) 'सामाजिक सन्तुलन'। परन्तु इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिको मे काफी मतभेद है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के मानसिक विकास मे व्यक्तिगत भिन्नता पायी जाती है तथा मस्तिष्क के सम्बन्ध मे भी यही बात है कि किसी व्यक्ति का मस्तिष्क कम विकसित होता है तो किसी का अधिक। ऐसी दशा मे यह कैसे कहा जाय कि अमुक सीमा तक विकसित मस्तिष्क ही मानसिक रूप से दुर्बल है। इसी प्रकार सामाजिक विसन्तुलन का केवल मानसिक विकास के अवरोध

---

1. "........we may accordingly define amentia as a state of restricted potentiality for or arrested to cerebral development in consequence of which the person affected is incapable at maturity of so adopting himself to his environment or to the requirement of the community as to maintain existence independently of supervision or external support."

—Tredgold : *Mental Deficiency.*

ही कारण नहीं है बल्कि अनेक कारण हैं। इस प्रकार यह परिभाषा अनेक प्रश्नों को जन्म देती है।

(3) सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण
(Social-Economic Viewpoint)

इस दृष्टिकोण के अनुसार वह व्यक्ति मानसिक रूप से दुर्बल है जिसका मानसिक विकास जन्म से ही अपूर्ण होता है तथा इस दोष के कारण अनुकूल पर्यावरण के प्रति ठीक प्रकार से समायोजन नहीं कर पाता। इसी कमी के कारण उसमें दूरदर्शिता का अभाव होता है तथा वह व्यक्तिगत समस्याओं का भी समाधान नहीं कर पाता।

(4) अध्ययन सम्बन्धी दृष्टिकोण
(Pedalogical Viewpoint)

इस दृष्टिकोण का मापदण्ड अध्ययन-योग्यता है जो बच्चे 3 या 4 वर्षों तक अध्ययन में असफल रहते हैं वे इस दृष्टिकोण के अनुसार मानसिक रूप से दुर्बल होते हैं। वैसे तो यह दृष्टिकोण काफी दिनों तक प्रचलित व सर्वमान्य रहा, परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आवागमन से इस दृष्टिकोण की मान्यता ही समाप्त हो गई।

(5) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण
(Psychological Viewpoint)

प्राय: मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का आधार बुद्धि-लब्धि (I. Q.) माना जाता है। अन्य शब्दों में, जिस व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि 70 से कम होती है, उसे मानसिक दुर्बल व्यक्ति कहते हैं। हॉलिंगवर्थ[1] ने इस दृष्टिकोण के आधार पर मानसिक दुर्बलता की परिभाषा इस प्रकार दी है—"मानसिक दुर्बल व्यक्ति वह है, जिसकी बुद्धि-लब्धि, मौलिक रूप से 70 या उससे भी कम हो तथा जो बुद्धि के दृष्टिकोण से दो प्रतिशत निम्न बुद्धि के व्यक्तियों के अन्तर्गत हों।" हॉलिंगवर्थ की यह परिभाषा अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है क्योंकि इस परिभाषा में मानसिक दुर्बलता की मौलिकता पर जोर दिया जाता है। जेम्स डी० पेज (James, D. Page) ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है—"मानसिक दुर्बलता मानसिक विकास की वह असाधारण अवस्था है जो व्यक्ति में या तो जन्म से ही विद्यमान होती है या प्रारम्भिक अवस्था में उत्पन्न होती है, जिसकी प्रमुख विशेषता सीमित बौद्धिक स्तर व सामाजिक अपर्याप्तता है।"[2] यह परिभाषा मानसिक विकास की अनेक श्रेणियों (grades) पर

1. "Feebleminded person is one who has originally intelligence quotient to 70 per cent or less and whose status fails in the lowest per cent of human intellect." —Hollingworth.
2. "Mental deficiency is a condition of subnormal mental development, present at birth or early childhood and characterized mainly by limited intelligence and social inadequacy." —Page, J D · *Abnormal Psychology*, p 354

जोर देती है तथा इस दृष्टि से मानसिक विकास के निम्नतर स्तर को ही मानसिक दुर्बलता कहते है।

मानसिक दुर्बलता के सामान्य दृष्टिकोणो को निम्नाकित रेखाचित्र से स्पष्ट किया जा सकता है—
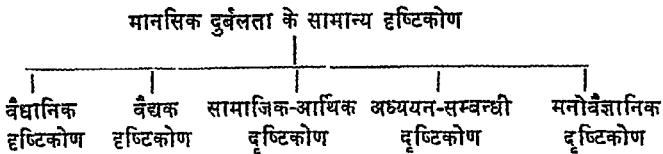
घटनाक्रम (Incidence)

मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियो की सख्या आयु की वृद्धि के साथ ही साथ कम होती जाती है क्योकि इनका एक बडा अनुपात तो जीवन के प्रारम्भिक दिनों मे ही समाप्त हो जाता है। 2 वर्ष तक के बच्चो की समस्त सख्या मे से करीब 5% मानसिक दुर्बल बालक होते है परन्तु स्कूल जाने तक यह प्रतिशत 2 या 3 ही रह जाता है तथा प्रौढावस्था तक यह सख्या केवल 1% ही रह जाती है। **कोलमैन** (Coleman) के अनुसार, अमरीका मे मानसिक रोगियो की अनुमानित सख्या लगभग 55,00,000 है।

मानसिक दुर्बलता के सामान्य लक्षण
(General Symptoms of Mental Deficiency)

(1) **सीमित बुद्धि** (Limited Intelligence)—मानसिक दुर्बलता का सबसे प्रमुख लक्षण सीमित बुद्धि है। इस प्रकार के व्यक्तियो की बुद्धि-लब्धि 70 से कम होती है (**हॉलिंगवर्थ**)। सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा इन व्यक्तियो का बुद्धि-विकास मन्द गति से होता है। इस बौद्धिक-क्षमता के अभाव के कारण रोगियो मे उपर्युक्त योग्यता का अभाव रहता है।

(2) **शारीरिक न्यूनता** (Organismic Inferiority)—मानसिक दुर्बल व्यक्तियो मे सीमित बुद्धि के साथ ही अनेक प्रकार की शारीरिक न्यूनता भी पायी जाती है। प्राय इस प्रकार के व्यक्तियो का कद नाटा, पैर छोटे व मोटे, सिर बडा एव होठ मोटे व भद्दे होते हैं। इन्हे देखने से ही पता चलता है कि ये अस्वस्थ है क्योकि इनकी चमडी मोटी व पीली दिखाई पडती है। इनमे अनेक प्रकार के भाषा सम्बन्धी दोष भी पाए जाते हैं।

(3) **सीमित ध्यान विस्तार** (Limited Attention Span)—इस प्रकार के बच्चो का ध्यान विस्तार अपेक्षाकृत बहुत कम होता है। ध्यान विस्तार व मात्रा की कमी के कारण इस प्रकार के बच्चे रुचिपूर्वक कार्य नही कर पाते है तथा इसका प्रभाव उसकी अन्य मानसिक क्रियाओ पर भी पडता है।

(4) सामाजिक अपर्याप्तता (Social Insufficiency)—मानसिक दुर्बलता के व्यक्तियो का सामाजिक जीवन भी सामान्य व्यक्तियो के समान नही होता। रोगी स्वय की देखभाल नही कर पाता तथा व्यक्तिगत व सामाजिक समस्याओ का निराकरण या समाधान नही कर पाता। अपनी इच्छाओ व आवेगो पर नियन्त्रण न होने के कारण ये व्यक्ति अवाछनीय सामाजिक कार्यों मे रत होते है। सन् 1939 मे प्रकाशित 'ब्रिटिश मानसिक हीनता कमेटी' (*British Mental Deficiency Committee*) की रिपोर्ट के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि मन्द-बुद्धि व्यक्तियो मे केवल 14 प्रतिशत लगभग आत्म-निर्भर थे जबकि 46 प्रतिशत अपने जीविकोपार्जन के लिए थोडा-सा कार्य कर सकते थे व शेष कुछ नही करते थे।

(5) अनुपयुक्त व्यक्तित्व (Inadequate Personality)—जबकि व्यक्ति के बौद्धिक योग्यता का विकास नही हो पाता तब उसका व्यक्तित्व भी सगठित नही हो पाता है। इस प्रकार के व्यक्तियो मे से बहुत कम ही व्यक्ति गतिशील, आकर्षक, साहसी व उत्कृष्ट व्यक्तित्व वाले होते है। इस प्रकार के व्यक्ति स्वय निर्णय नही ले पाते तथा इन्हे भविष्य की किसी प्रकार की चिन्ता नही होती। अन्य शब्दो मे, इस प्रकार के व्यक्तियो मे स्वाभाविकता, गत्यात्मकता, सम्पन्नता व विविधता की कमी होती है।

(6) चालनाओ व संवेगों के दोष (Defects of Drives and Emotions)—बुद्धि की कमी के कारण व्यक्ति की आवश्यकताओ (needs), चालनाओ व सवेगो मे भी अनेक प्रकार के दोष आ जाते है। मानसिक दुर्बलता की मात्रा के आधार पर ही इन व्यक्तियो की सवेगो आदि का रूप निर्धारण होता है, जैसे—अत्यन्त मन्द-बुद्धि वाले व्यक्तियो मे आत्म-रक्षण (self-preservation) की चालना का भी अभाव होता है। ये अपनी जैविक आवश्यकताओ तक की भी अभिव्यक्ति नही कर पाते तथा अपने को खतरे आदि से भी नही बचा सकते तथा इनका सवेगात्मक जीवन तो बहुत निम्न स्तर का होता है। मध्य के मानसिक दुर्बलता रोगियो मे विपरीत लिंग के प्रति कोई रुचि नही होती तथा ये केवल साधारण सवेगो की ही अभिव्यक्ति कर पाते हैं।

मानसिक दुलर्बता के सामान्य लक्षणो को निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया जा सकता है :—
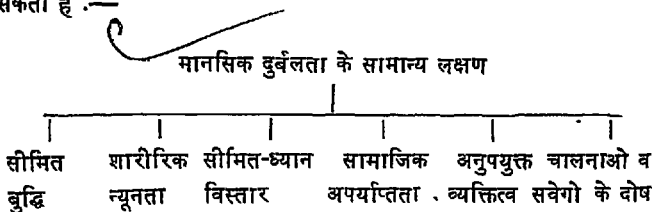
मानसिक दुर्बलता का वर्गीकरण
(Classification of Mental Deficiency)

(अ) बुद्धि-लब्धि व सामाजिक समायोजन या अनुकूली व्यवहार के आधार पर

सारणी—बुद्धि-लब्धि वितरण
(Table—Distribution of Intelligence Quotient)

बुद्धि-लब्धि का परिसर	जनसंख्या प्रतिशत
130—व अधिक	2.2
120—129	6 7
110—119	16 1
90—109	50 0
80—89	16·1
70—79	6 7
69—तथा कम	2 2

(1) मापित बुद्धि

(Measure Intelligence)

मापित बुद्धि के आधार पर मानसिक न्यूनता के वर्गीकरण का श्रेय बीने (Binet) तथा साइमन (Simon) को मिलता है जिन्होंने मानसिक न्यूनता से पीड़ित बालकों को पहचानने के लिए प्रथम बुद्धि परीक्षण का विकास किया और मानसिक आयु का सम्प्रत्यय प्रस्तुत किया। बाद में स्टर्न (Stern) ने बुद्धि-लब्धि (I. Q) का सम्प्रत्यय प्रस्तुत किया। मापित बुद्धि के अनुसार जिन व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि 90 और 110 के बीच होती है उन्हे सामान्य बौद्धिक स्तर का व्यक्ति कहा जाता है। 50% जनसख्या इसी श्रेणी मे आ जाती है। इस स्तर से नीचे मानसिक न्यूनता का क्षेत्र है। जिन व्यक्तियो का I. Q 20 से कम होता है उन्हें जड़बुद्धि (Idiot), 20-49 IQ वाले व्यक्ति को हीनबुद्धि (Imbecile) और 50-69 (I Q.) वाले व्यक्ति को मंदबुद्धि (Moron) कहा जाता है। यद्यपि इन शब्दो का उपयोग बहुत वर्षों तक होता रहा है परन्तु अब इनका उपयोग अवांछनीय माना जाता है। क्योकि इसमे संवेगात्मक भार (loading) है और रोगी पर बुरा प्रभाव डालता है। निम्नलिखित शब्दों का उपयोग अधिक उपयुक्त है।

I—Q.	वर्ग
70—84	सीमावर्ती (Borderline) मानसिक न्यूनता
55—69	मृदु (Mild) मानसिक न्यूनता
40—54	संयत (Moderate) मानसिक न्यूनता
25—39	तीव्र मानसिक न्यूनता
25—नीचे	गहन मानसिक न्यूनता

(2) व्यनुकूली व्यवहार

वर्षो के अनुभव से यह ज्ञात हुआ कि बुद्धि परीक्षणो के आधार पर मानसिक न्यूनता का वर्गीकरण अपूर्ण है क्योकि समान बुद्धि-लब्धि के रोगियो मे सामाजिक व्यनुकूलता के व्यापक अन्तर पाये जाते है। व्यनुकूली व्यवहार के आधार पर मानसिक न्यूनता को तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

(1) अप्रशिक्षणीय (Untrainable)—यह सबसे छोटा वर्ग है जिसमे 5% मानसिक न्यूनता के रोगी आते है। यह रोगी पूर्णरूप से पराश्रित होते है।

(2) प्रशिक्षणीय (Trainable)—इस दूसरे मुख्य समूह मे लगभग 20% रोगी आते है। इन्हे दैनिक जीवन मे स्वावलम्बी बनने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। इन रोगियो की सर्वाधिक अवहेलना की जाती है।

(3) शिक्षणीय (Educable)—इस समूह मे 75% रोगी आते हैं। यदि विशेष व्यवस्था की जाये तो यह पर्याप्त मात्रा मे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और इस प्रकार समुदाय मे सामाजिक और आर्थिक समायोजन कर सकते हैं।

(अ) अमरीकी मनोरोग चिकित्सा सम्बन्धी संघ के अनुसार

(1) 70—85 बुद्धि-लब्धि वाला व्यक्ति हल्की मानसिक न्यूनता (mild mental deficiency) का होता है।

(2) 50—70 बुद्धि-लब्धि वाला व्यक्ति साधारण मानसिक न्यूनता (moderate mental deficiency) का होता है।

(3) 0—50 बुद्धि-लब्धि वाला व्यक्ति तीव्र मानसिक न्यूनता (Severe mental deficiency) का होता है।

(ब) विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार

(1) 50—69 बुद्धि-लब्धि वाले व्यक्ति हल्के मन्दन (Mild retardation) प्रकार के होते है।

(2) 20—49 तक के व्यक्ति साधारण मन्दन (Moderate retardation) वाले होते हैं।

(3) 0—19 तक के व्यक्ति तीव्र मन्दन (Severe ratardation) के होते है।

(1) जड़ (Idiot)—मानसिक दुर्बलता की निम्नतम श्रेणी को जड़ कहते है, क्योकि इस प्रकार के व्यक्तियो मे बुद्धि की मात्रा सबसे कम होती है। इनकी बुद्धि-लब्धि 25 से भी कम होती है। समस्त मानसिक दुर्बल व्यक्तियो मे से इस प्रकार के रोगियो की सख्या 5% होती है। इनका शारीरिक विकास तो हो जाता है, परन्तु मानसिक विकास 3 वर्ष के बच्चो के समान भी नही होता। ट्रेडगोल्ड[1] के अनुसार,

1 "Idiots are the persons in whose case there exists mental defectiveness of such a degree that they are unable to guard themselves against common physical dangers"—Tredgold.

जड़ श्रेणी के अन्तर्गत वे मानसिक दुर्बल रोगी आते हैं जो स्वयं की भी रक्षा नहीं कर पाते तथा सामान्य शारीरिक खतरों का भी सामना नहीं कर पाते। ये न तो स्वयं खा सकते हैं और न ही वाह्य खतरों से बचाव ही कर पाते हैं। इनमें अनेक प्रकार के शारीरिक दोष भी पाये जाते हैं। Imbecile

(2) मूढ़ (Imbecile)—मूढ़ प्रकार के मानसिक दुर्बल व्यक्तियो मे बुद्धि-लब्धि 26 तथा 50 के बीच होती है। इनकी मानसिक आयु 3 से 7½ साल के बच्चों के बराबर होती है। समस्त मानसिक दुर्बल व्यक्तियो में से इस प्रकार के व्यक्तियों की सख्या 20% होती है। मृत्यु संख्या जड़ की तुलना में कम होती है। ये अपनी रक्षा स्वयं नही कर पाते। धूप, वर्षा तथा अन्य खतरों से ये अपना बचाव भी नहीं कर पाते। पढ़ने-लिखने की योग्यता का इनमें अभाव होता है। इनका शारीरिक संगठन जड़ व्यक्तियो की अपेक्षाकृत अच्छा होता है। Moron

(3) मूर्ख (Moron)—इस प्रकार के मानसिक दुर्बल व्यक्ति अन्य प्रकारों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान होते हैं। इनकी बुद्धि-लब्धि (I. Q.) 50 से 75 तक होती है। इस प्रकार के व्यक्तियो का शारीरिक विकास तो हो जाता है परन्तु मानसिक विकास नही हो पाता। युवावस्था में भी इनकी मानसिक आयु 7½ वर्ष से 10 वर्ष तक होती है। साधारण पढ़ने-लिखने की इनमें मानसिक क्षमता रहती है। साधारण प्रशिक्षण के द्वारा ये व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए साधारण कार्य कर सकते हैं। इनका शारीरिक संगठन अपेक्षाकृत अन्य प्रकारों से अच्छा होता है। Idiot

(ग) ट्रेडगोल्ड के अनुसार मानसिक दुर्बलता के प्रकार

ट्रेडगोल्ड ने मानसिक दुर्बल व्यक्तियों को दो प्रकारों में बाँटा है—

(i) **प्राथमिक मानसिक दुर्बलता** (Primary Mental Deficiency)—मानसिक दुर्बलता के इस वर्ग में ट्रेडगोल्ड के अनुसार 80% व्यक्ति आते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि कम होने का कारण वंश-परम्परा है। परन्तु कभी-कभी बीज-कोषो (germ cell) मे दोष हो जाने पर भी मानसिक दुर्बलता आ जाती है। इस दोष के फलस्वरूप व्यक्तियों का मानसिक विकास रुक जाता है व सामाजिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। **गोडार्ड तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों** (Goddard *et. al.*) ने अध्ययनो के आधार पर बताया कि जड़ या मूढ़ की अपेक्षा मूर्ख के सम्बन्धियों के मध्य प्राथमिक मानसिक दुर्बलता की संख्या बहुत कम होती है।

(ii) **गौण मानसिक दुर्बलता** (Secondary Mental Deficiency)—इस वर्ग मे लगभग 20% मानसिक दुर्बल व्यक्ति आते हैं तथा बुद्धि की कमी के दोष का कारण वंशानुक्रम नही होता। मानसिक क्षति ही इसका प्रमुख कारण है। जब बच्चे के मस्तिष्क मे आघात या अन्य कारणों से क्षति पहुँचती है तथा उसका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसमे मानसिक न्यूनता आ जाती है। बुद्धि की न्यूनता कम होगी या अधिक, यह दो बातों पर निर्भर होती है—मस्तिष्क के

क्षतिग्रस्त भाग का विस्तार व व्यक्ति की अवस्था। लैंडिस (Landis) के अनुसार, इस श्रेणी मे जड तथा मूढ मानसिक दुर्बलता भी आती है। ट्रेडगोल्ड के इस वर्गीकरण की अनेक विद्वानो ने आलोचना की है। इन आलोचको का कहना है कि इन दोनो प्रकारो की मानसिक दुर्बलताओ के लक्षण काफी मिलते-जुलते है तथा कभी-कभी यह ज्ञात करना बडा ही कठिन हो जाता है कि अमुक लक्षण का कारण वशानुगत है या अर्जित।

(स) लेविस (Lewis) के अनुसार मानसिक दुर्बलता के प्रकार

लेविस ने भी मानसिक दुर्बलता को दो प्रकारो मे बाँटा है—

(i) उप-सास्कृतिक (Sub-cultural) मानसिक दुर्बलता—इस प्रकार के मानसिक दुर्बल व्यक्ति सामान्य व्यक्तियो से अधिक भिन्न नही दिखाई पड़ते। इसका प्रमुख कारण यह है कि इनमे शारीरिक दोषो का अभाव रहता है। इस प्रकार की दुर्बलता का कारण वंश-परम्परा होती है।

(ii) विकारात्मक (Pathological) मानसिक दुर्बलता——उप-सांस्कृतिक मानसिक दुर्बलता के व्यक्तियो की अपेक्षा इस वर्ग मे आने वाले व्यक्तियो मे शारीरिक दोष स्पष्ट रूप से देखे जा सकते है तथा ये व्यक्ति सामान्य व्यक्तियो से भिन्न दिखाई पडते है। वास्तव मे यह भी वर्गीकरण पूर्णत. ठीक नही है।

(द) उपचार या कारण विज्ञान सम्बन्धी मानसिक दुर्बलता के प्रकार

कारण विज्ञान के आधार पर मानसिक न्यूनता को 8 मुख्य समूहो मे बाँटा जा सकता है। इन आठ समूहो मे वह मानसिक न्यूनता भी सम्मिलित है जो निम्नलिखित कारणो से उत्पन्न रोग से सम्बन्धित है—

(i) सक्रमण (Infection),
(ii) मत्तता (Intoxication),
(iii) आघात (Trauma),
(iv) चयापचय, वृद्धि, पोपण सम्बन्धी विकार (Disorders of Metabolism, Growth nutrition)
(v) नयी वृद्धियाँ (New growths),
(vi) अज्ञात पैतृक प्रभाव (Unknown Parental Influence),
(vii) अज्ञात आंगिक कारण (Unknown Organic Cause),
(viii) अज्ञात मानसिक कारण (Uncertian Psychologic Cause),

निम्नलिखित मानसिक न्यूनता के रोगियो का विवरण आवश्यक है—

(i) सरल बुद्धि भ्रश (Simple aments),
(ii) मंगोलिज्म (Mongolism),
(iii) माइक्रोसेफैली (Microcephaly) लघुशीर्षता,
(iv) जलशीर्षता या हाइड्रोसेफैली (Hydrocephaly),

(v) क्रेटेनिज्म (Cretinism),
(vi) जन्मजात सिफलिस (Congenital Syphilis),
(vii) जड-विद्वान (Idiot-Savant),

मुख्य रूप से उपचार सम्बन्धी मानसिक दुर्बलता के प्रकार निम्न हैं —

(i) **सरल बुद्धिभ्रंश** (Simple Aments)—इस प्रकार के मानसिक दुर्बल व्यक्तियों मे कोई विशिष्ट शारीरिक या मानसिक लक्षण नही पाए जाते जिसके आधार पर सामान्य व्यक्तियो से भेद किया जावे फिर भी कुछ शारीरिक दोष, ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है जैसे ये प्राय. छोटे कद व आकर्षण-विहीन शक्ल-सूरत वाले होते हैं। इसका प्रमुख कारण वंश-परम्परा होता है। इनसे $\frac{2}{8}$ मूर्ख (morons) व शेष मूढ (imbecile) होते है।

(ii) **मंगोलिज्म** (Mongolism)—इस प्रकार के व्यक्तियो मे कुछ विशेष प्रकार के शारीरिक व मानसिक लक्षण पाए जाते हैं जिसके कारण इन्हे सामान्य व्यक्तियो से पृथक् करना आसान होता है। इनका सिर छोटा व गोल, धँसी हुई आँखें, नाक छोटी व चिपटी, नाटा कद, हाथ छोटे परन्तु मोटे होते हैं। जन्म के समय ही ये लक्षण उनमे विद्यमान होते है परन्तु इनकी मात्रा सभी मगोलो मे एक समान नही होती तथा कुछ लक्षण तो वाद मे समाप्त भी हो जाते हैं। अमरीका मे इनकी सख्या 1,00,000 है। इनकी मानसिक आयु की सीमा 7 साल से अधिक नही होती। औसतन जीवनकाल 10 वर्ष का होता है। इनकी ज्ञानात्मक व क्रियात्मक क्षमताओ मे कोई विशेष विकृति नही पायी जाती। देखने मे ये लोग वडे ही हँसमुख स्वभाव के होते है। ये केवल मगोलियन जाति मे ही नही, अन्य जातियो मे भी पाये जाते है परन्तु लक्षण अवश्य ही मगोलियन जाति के समान लगते है। इनके कारणो के सम्बन्ध मे एकमत नही है। बेन्डा (Benda) ने पिट्यूटरी ग्रन्थि (Pituitary Gland) के विसन्तुलित स्राव को ही इसका एकमात्र कारण माना है, जबकि अन्य मनोवैज्ञानिको ने वंशपरम्परा, मदिरापान, सिफलिस आदि को इसका कारण माना है।

(iii) **माइक्रोसफैली या लघुशीर्षता** (Microcephaly)—इस प्रकार के रोगियो की प्रमुख विशेषता यह होती है कि इनका सिर वहुत छोटा होता है। सिर की परिधि करीव 17 इच होती है तथा आकृति शुण्डाकार होती है। कान व भौह के ऊपर के भाग का समुचित विकास न होने के कारण इनका सिर देखने मे वडा ही विचित्र लगता है। ये मूर्ख कम होते है, जड़ या मूढ अधिक। ये प्राय वड़े चंचल व फुर्तीले होते है। इनकी सख्या वहुत कम होती है। इसके दैहिक गुण के सम्वन्ध मे उचित जानकारी प्राप्त नही है। ट्रेडगोल्ड के अनुसार, कीटाणु की विकृत विभिन्नता (pathological variation)—**ग्रीनफील्ड व बुल्फसन** के अनुसार गर्भस्थ अवस्था मे मेनेन्जाइटिस के प्रभाव के कारण यह रोग उत्पन्न होता है।

(iv) जलशीर्षता या हाइड्रोसेफैली (Hydrocephaly)—इनकी खोपडी अपेक्षाकृत बडी होती है। इसकी परिधि 30 इंच से कम नही होती है। व्यक्ति के सिर का बडा होने का प्रमुख कारण क्रेनियम (cranium) मे मस्तिष्क सौषुम्निक द्रव (cercbo-spinal fluid) का अधिक मात्रा मे एकत्रित होना है। अधिक मात्रा मे इस द्रव्य के एकत्रित हो जाने व उचित प्रवाह रुक जाने से सिर बडा हो जाता है। अन्य विद्वान् इसका कारण मानसिक आघात (trauma), जन्मजात सिफलिस (congential syphilis) आदि मानते हैं।

(v) क्रेटिनिज्म (Cretinism)—क्रेटिनिज्म प्रकार के मानसिक दुर्बल व्यक्तियो मे कुछ ऐसे विशेष लक्षण वर्तमान होते हैं जिनके आधार पर अन्य प्रकार मानसिक दुर्बल व्यक्तियो मे अन्तर किया जा सकता है। इनका कद छोटा, मोटी पलकें, रूखी व मोटी त्वचा, शरीर पर अधिक घने बाल, मोटे होठ होते हैं। ये लक्षण जन्म के समय पर ही विद्यमान होते है परन्तु 6-7 महीने तक पहचानना प्राय कठिन होता है। इनकी क्रियात्मक क्षमताओ का विकास भी बहुत धीरे-धीरे होता है। देर से भाषा-विकास होता है तथा बुद्धि व सवेगात्मक विकास भी धीरे-धीरे होते हैं।

5. क्रेटिनिज्म (Cretinism)

यह शैशवावस्था मे ही प्रकट हो जाता है और इसकी श्रेणियाँ होती है। कुछ विशेष लक्षणो के आधार पर इनको अन्य मानसिक दुर्बल व्यक्तियो से पृथक् किया जा सकता है। इनमे ये लक्षण जन्मजात होते है। इनका कद छोटा, पलकें मोटी, रूखी तथा मोटी त्वचा शरीर पर जरूरत से ज्यादा घने तथा काले बाल, होठ मोटे, गर्दन मोटी, जिह्वा मोटी, ढीली त्वचा, अत्यधिक सुस्त तथा उदासीन होते हैं। चार-पांच वर्ष की अवस्था के पूर्व ये बैठना तथा चलना-फिरना भी नही कर सकते। इसका मस्तिष्क का विकास अधूरा रहता है। इनमे लगभग 80% मूढ या मूर्ख होते हैं।

क्रीटिनिज्म का मुख्य कारण गल-ग्रन्थि (thyroid gland) से निकलने वाले स्राव की कमी है। थॉयरोक्सीन (thyroxin) को सुई देने इस कमी की पूर्ति कुछ अशो तक हो जाती है। यह सुधार की सम्भावना प्रारम्भ तक ही रहती है। रोग के प्रकट होने के काफी समय बाद उपचार करने से लाभ नही के बराबर होता है।

6. जन्मजात सिफलिस (Congenital Syphilis)

इस प्रकार की मानसिक दुर्बलता का मूल आधार सिफलिस है। इस प्रकार के बच्चो मे अधिकाशत जड या मूढ होते हैं। सामान्यतया इनके अंगो पर लकवा का असर होता है। इस श्रेणी मे लगभग 5% व्यक्ति आते हैं। अन्धापन, गूंगापन आदि ~ भी कुछ रोगियो मे मिलते है।

7. जड़ विद्वान्
(Idiot-Savont)

इनमे कई प्रकार के शारीरिक व मानसिक दोष विद्यमान रहते है। लेकिन वे कुछ विशेष प्रकार के होते है। इसमे बुद्धि मूढ की तुलना मे अधिक होती है। इसी कारणवश इन्हे जड विद्वान् कहा जाता है। इनकी स्मरण-शक्ति अच्छी होती है तथा इनमे यान्त्रिक योग्यता भी होती है। इस प्रकार के मानसिक दुर्बल व्यक्ति बहुत दिखायी देते है।

मानसिक दुर्बलता के कारण
(Causes of Mental Deficiency)

अधिकाश मनोवैज्ञानिक मानसिक दुर्बलता का कारण वंशानुक्रम (heredity) मानते है। परन्तु वशानुक्रम का कितना प्रभाव रहता है, इस बारे मे मनोवैज्ञानिक एकमत नही हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि 50 से 75 प्रतिशत दुर्बल बुद्धि के माता-पिता भी दुर्बल बुद्धि के होते हैं। इस बात की पुष्टि गोडार्ड (Goddard) तथा कालीकाक (Kallikak) ने परिवारो का अध्ययन करके की। रोजनोफ (Rosanoff) तथा उसके सहयोगियो ने समान (identical) तथा असमान (fraternal) जुड़वाँ बच्चो (twin children) पर अध्ययन करके बताया कि 91% समान जुडवाँ बच्चो मे और 53% असमान जुडवाँ बच्चे मानसिक दुर्बल पाए जाते हैं। इस बात की पुष्टि जुड (Judd) ने अपने अनुसन्धानो के आधार पर की।

जन्म-आघात (birth trauma) के कारण भी मानसिक दुर्बलता हो सकती है। ऐसा जन्म के समय या जन्म के बाद मस्तिष्क पर आघात पहुँचने के कारण होता है। परन्तु यही केवल कारण नही है क्योकि कुछ बच्चे बिना जन्म आघात के भी मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त हो जाते है।

गर्भावस्था (pregnancy) के समय माता को संक्रामक रोग (infectious disease) होने से बच्चे की बुद्धि क्षति पहुँचने तथा मानसिक दुर्बलता की सम्भावना रहती है। इन सक्रामक रोगो मे चेचक, टाइफाइड आदि रोग आते हैं।

माता-पिता के सिफलिस (Syphilis) का शिकार या मद्यपान करने वाले माता-पिता की सन्तान भी मानसिक दुर्बलता का शिकार हो जाती है।

कुछ विशेष प्रकार की अन्तर्स्रावी ग्रन्थियों (endocrine glands) के सामान्य रूप से कार्य न करने के कारण भी मानसिक दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है।

पारिवारिक पृष्ठभूमि (Family background) के कारण भी मानसिक दुर्बलता उत्पन्न होती है। ट्रेडगोल्ड (Tredgold) ने इसको बहुत महत्त्व दिया। लेविस (Lewis) ने दो विपरीत पारिवारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने पर अग्रांकित तथ्य प्राप्त किये :—

परिवार	मूर्ख	मूढ़	जड़
श्रेष्ठ परिवार	11%	30%	33%
न्यून परिवार	62%	35%	27%

मानसिक दुर्बलता का उपचार
(Therapy of Mental Deficiency)

मानसिक दुर्बलता की सफल चिकित्सा अत्यधिक कठिन कार्य है। पूर्ण रूप से इसका उपचार नही हो सकता। हाँ, कुछ अशो तक सुधार अवश्य किये जा सकते है।

मानसिक दुर्वलता रोकने का सरल उपाय इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति की सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति को नष्ट करके किया जा सकता है तथा इससे मानसिक दुर्बलता वाले अन्य बच्चो के जन्म को रोका जा सकता है। पेज (Page) के अनुसार, इस विधि के द्वारा अधिक से अधिक 15% मानसिक दुर्बलता मे कमी हो सकती है।

मानसिक दुर्बल बच्चो को सामान्य बच्चो से अलग रखकर भी मानसिक दुर्बलता मे कमी आती है। सामाजिक सरक्षण प्रदान करके भी कमी की जा सकती है। परन्तु यह विधि भी सन्तोपजनक नही है। मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त स्त्रियो का गर्भपात (abortion) के द्वारा बच्चा पैदा होना रोका जा सकता है।

इसके अतिरिक्त माता-पिता को शिक्षा के द्वारा बच्चे की मानसिक दुर्बलता तथा प्रारम्भिक उपचार का ज्ञान कराना चाहिए। अक्सर ऐसा होता है कि माता मानसिक दुर्बल बच्चे की अपेक्षा अन्य बच्चो को अधिक चाहने लगती है। इससे मानसिक दुर्बल बच्चो का मानसिक सन्तुलन बिगड जाता है तथा उसमे सवेगात्मक अस्थिरता आ जाती है। इसे दूर करने के लिए घर का प्रशिक्षण (home training) देना चाहिए। स्कूल-प्रशिक्षण (school training) की भी व्यवस्था करनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे व्यवसाय चिकित्सा (occupational therapy) बहुत लाभदायक सिद्ध होती है। इस प्रकार के बच्चो को किसी सस्था मे भी भेजा जा सकता है।

मानसिक दुर्बलता और मानसिक विकृति में अन्तर
(Differences between Mental Deficiency and Mental Disorders)

मानसिक दुर्बलता प्राय जन्मजात होती है जबकि मानसिक विकृति अर्जित होती है। साथ ही मानसिक दुर्बलता मे मस्तिक का विकास समुचित रूप से नही हो पाता लेकिन मानसिक विकृति मे मस्तिष्क का विकास तो होता है। परन्तु उसके कार्यों मे कई प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है। मानसिक दुर्बल व्यक्ति की जहाँ बुद्धि एक स्तर पर आकर रुक जाती है अर्थात् सीमित होती है वहाँ मानसिक विकृति मे ऐसा कुछ नही होता। मानसिक दुर्बल व्यक्तियो मे मानसिक विकृत व्यक्तियो की अपेक्षा अपराध करने की बहुत अधिक सम्भावना रहती है क्योंकि इन्हे भले-बुरे या उचित-अनुचित का सीमित बुद्धि के कारण मे कोई ज्ञान नही होता।